# DCEEC-102(N):
## आर्थिक विचारों का इतिहास


**परामर्श–समिति**

| | |
|---|---|
| **प्रोफेसर सत्यकाम** | **कुलपति–अध्यक्ष** |
| प्रो. सत्यपाल तिवारी | निदेशक, मानविकी विद्याशाखा–कार्यक्रम संयोजक |
| श्री विनय कुमार | कुलसचिव–सचिव |

**विशेषज्ञ समिति**

| | | |
|---|---|---|
| प्रो. सत्यपाल तिवारी | **अध्यक्ष** | उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज |
| डॉ अनिल कुमार यादव | **संयोजक** | उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज |
| प्रो.किरन सिंह | | इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज |
| प्रो. एम.के. सिंह | | एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली |
| डॉ. विश्वनाथ कुमार | | एस.बी. पी.जी. कालेज, बड़ागाँव, वाराणसी |
| डॉ. अनूप कुमार | | इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज |

**पाठ्यक्रम समन्वयक**

डॉ. अनिल कुमार यादव — सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

**सम्पादक**

प्रो0 किरन सिंह — विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

**परिमापक**

डॉ. अनिल कुमार यादव — सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज



**लेखक मण्डल**

**लेखक**

डॉ. अनिल कुमार यादव, सहा. आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र.रा.ट.मु. वि.वि., प्रयागराज **खण्ड–2** इकाई–05,06,07,

डॉ. शैलेन्द्र कुमार सिंह, सहा. आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र.रा.ट.मु. वि.वि., प्रयागराज **खण्ड–3** इकाई–01,02,03,04

डॉ. सतेंद्र कुमार, सहा. आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र.रा.ट.मु. वि.वि., प्रयागराज **खण्ड–2** इकाई–01,02,03,04

डॉ. विश्वनाथ कुमार, प्रो. अर्थशास्त्र विभाग, श्री बलदेव पीजी कालेज, बड़ागॉव, वाराणसी **खण्ड–1** इकाई–01,02,03,04,05,06,07

डॉ. अजय कुमार पाण्डेय, विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, हडिया पीजी कालेज, प्रयागराज **खण्ड–4** इकाई–01,02,03,04,05,06,07



मुद्रित– (माह), (वर्ष)



**© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज – (वर्ष)**



**ISBN-**



सर्वाधिक सुरक्षित। इस पाठ्य सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।



उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से श्री विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, (माह) (वर्ष), (मुद्रक का नाम व पता)

# DCEEC-102(N): आर्थिक विचारों का इतिहास

## खण्ड 1 – प्राचीन आर्थिक विचारक

1. प्लेटो के आर्थिक विचार, अरस्तू का न्यायसंगत मूल्य तथा लागत विचार
2. वणिकवाद–मुख्य विशेषताएँ
3. प्रकृतिवाद, प्राकृतिक व्यवस्था
4. पैटी, लॉक तथा ह्युम के आर्थिक विचार
5. एडम स्मिथ–श्रम विभाजन
6. वितरण का सिद्धान्त, व्यापार से सम्बन्धित विचारधारा, आर्थिक प्रगति
7. मूल्य का सिद्धान्त, धन संचय

## खण्ड 2 – रिकार्डो, माल्थस एवं मिल

1. डेविड रिकार्डो का लगान तथा मूल्य का सिद्धान्त
2. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त
3. माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त, अति उत्पादन का सिद्धान्त
4. जे.एस. मिल की विचारधारा, पारस्परिक मॉग सिद्धान्त
5. जर्मनी का इतिहासवादी सम्प्रदाय, सिसमाण्डी
6. कार्ल मार्क्स का सामाजिक परिवर्तन चिन्तन, मूल्य का सिद्धान्त
7. सीमान्त विचारधाराः जेवन्स, मेंगर, वालरा, बाम बॉवर्क

## खण्ड 3 – कीन्सीयन क्रान्ति एवं पूर्ववर्ती/उत्तरवर्ती विचारक

1. अल्फ्रेड मार्शल एवं पीगू
2. जान मेनर्ड कीन्स एवं कीन्सीयन क्रान्ति
3. शुम्पीटर – साहसी की भूमिका व नव प्रवर्तन, विकास सिद्धान्त
4. नव क्लासिकी विचारक – मिल्टन फ्रीडमैन

## खण्ड 4 – भारतीय आर्थिक विचारक

1. भारतीय आर्थिक विचार : कौटिल्य, तिरूवल्लुवर, दादाभाई नैरोजी, रानाडे, गोखले
2. गाँधी जी के आर्थिक विचार, स्वदेशी विचारधारा, श्रम तथा मशीनों का महत्व, न्यायवादी सिद्धान्त
3. जे.के. मेहता के विचार
4. बी.आर. अम्बेडकर के आर्थिक विचार
5. नेहरू का प्रजातांत्रिक समाजवाद
6. पाल.ए. सैम्मुलसन एवं सर जान हिक्स
7. अमर्त्यसेन एवं अन्य नोबेल अर्थशास्त्री

# खण्ड:1

# प्राचीन आर्थिक विचारक

## इकाई–1

## प्लेटो के आर्थिक विचार, अरस्तू का न्यायसंगत मूल्य तथा लागत का विचार

**इकाई की योजना**

**1.1 उद्देश्य**

**1.2 परिचय 1.3 प्लेटो के आर्थिक विचार**

**1.3.1 राज्य के उदय के आर्थिक कारण**

**1.3.2 धन के वितरण एवं सम्पत्ति सम्बन्धी विचार**

**1.3.3 श्रम सम्बन्धी विचार**

**1.3.4 उत्तराधिकार तथा जनसंख्या सम्बन्धी विचार**

**1.3.5 मूल्य सम्बन्धी विचार**

**1.3.6 उद्योग एवं कृषि सम्बन्धी विचार**

**1.3.7 प्लेटो का साम्यवाद**

**1.4 अरस्तू के आर्थिक विचार (384–322 ई०पू०)**

**1.4.1. अर्थशास्त्र की परिभाषा एवं क्षेत्र**

**1.4.2. राज्य का उद्गम**

**1.4.3. मूल्य–सम्बन्धी विचार**

**1.4.4. मुद्रा तथा ब्याज सम्बंधी विचार**

**1.4.5. धन एवं सम्पत्ति सम्बंधी विचार**

**1.4.6. उद्योग तथा कृषि**

**1.5 सारांश**

**1.6 उपयोगी पुस्तकें**

### 1.1 उद्देश्य (Objectives)

वर्तमान इकाई का प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

- विद्यार्थियों को आर्थिक विचारों के इतिहास से परिचय कराना तथा
- विद्यार्थियों को प्रमुख प्राचीन आर्थिक विचारकों प्लूटो और अरस्तू के आर्थिक विचारो से अवगत कराना है।

## 1.2 परिचय (Introduction)

यूनानियों ने आर्थिक सिद्धान्तों के विकास की ओर कुछ प्रयास किए थे किन्तु उनके विचार भी आकस्मिक वाक्यों के रूप में इधर–उधर विखरे हुए मिलते हैं। उस काल में नीतिशास्त्र की प्रमुखता थी और अर्थशास्त्र को भी नीतिशास्त्र के अधिन माना जाता था।

समाजिक संगठन की आर्थिक समस्याओं की ओर सबसे पहले प्लेटो का ध्यान गया था। अर्थशास्त्र का नीतिशास्त्र और राजनीति की एक शाखा मानते हुए भी उसने सामाजिक संगठन के सिद्धान्तों की विस्तृत विवेचना की थी। उन्होंने आदर्श संगठन के लिए एक योजना भी बनायी थी। वास्तव में यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने अर्थ विज्ञान की नींव डाली थी। अपनी पुस्तक पॉल्टिक्स और इथिक्स में उन्होंने उन सिद्धान्तों के ज्ञान का पूरा परिचय दिया हैजिनके आधार पर तात्कालीन समाज आधारित था। उन्होंने ही विज्ञान की नींव डाली और सबसे पहले उन आर्थिक समस्याओं की ओर संकेत किया जिनका बाद के विचारकों ने अध्ययन किया था।

## 1.3 प्लेटो के आर्थिक विचार (Economic Thought of Plato)

### प्लेटो के आर्थिक विचार (427–347 ई०पू०) :

**प्लेटो का जन्म एथेन्स** (**Athens**) के एक धनी परिवार में हुआ था। वह सुकरात से अत्यधिक प्रभावित था। सुकरात समाज को सुदृढ़ करना चाहते थे अतः प्लेटो ने सुकरात के विचारों को अपनाया तथा उनकी मृत्यु के पश्चात वह अनेक देशों के भ्रमण पर निकल पड़े तथा स्वदेश लौटने पर उन्होंने अपने आर्थिक विचारों को दो प्रमुख पुस्तकों 'The Republic' तथा 'The Laws' में व्यक्त किया। प्रारम्भ में वह साम्यवाद का समर्थक था परन्तु बाद में उसने इस बात का समर्थन किया कि आर्थिक जीवन की समस्याओं को अधिक वास्तविक दृष्टि से समझना चाहिए। उसने अपने विचार संवादों के रूप में प्रस्तुत किए थे। प्लेटो के आर्थिक विचार निम्नलिखित हैं:

### 1.3.1 राज्य के उदय के आर्थिक कारणः

प्लेटो के अनुसार, राज्य का जन्म एक आर्थिक घटना थी। बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए अधिक से अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है। विभिन्न प्रकार के कार्य विभिन्न व्यक्तियों द्वारा किये जाते हैं। इस प्रकार अनेक व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है जिस कारण लोग एक ही स्थान पर रहना पसन्द करते हैं। इसी समूह को राज्य कहते हैं।

प्लेटो के अनुसार, ''मेरे विचार से राज्य का जन्म मानव जाति की आवश्यकताओं के कारण हुआ है; कोई भी स्वाबलम्बी नहीं है, अपितु हम सभी की बहुत–सी आवश्यकताएँ होती हैं... और उनकी पूर्ति के लिए अनेक व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। कोई एक उद्देश्य की पूर्ति के लिये सहायक ढूंढता है तो, कोई दूसरे के लिए और जब ये सभी सहयोगी एक समूह में एकत्र होते हैं तो उनसे बनने वाली संस्था को राज्य कहते हैं।'' इस प्रकार राज्य का उद्गम परस्पर सहयोग की भावना से हुआ।

### 1.3.2 धन के वितरण एवं सम्पत्ति सम्बन्धी विचारः

प्लेटो समाज में धन के असमान वितरण को समाप्त करना चाहते थे। वे समाज में अत्यधिक धनी व अत्यधिक निर्धन व्यक्ति की स्थिति को न्यायोचित नहीं समझते थे। यूनानी विचारकों का मानना था कि अत्यधिक धनी व्यक्ति घन का संग्रह करते समय अनैतिकता का सहारा लेते हैं अर्थात् एक धनी व्यक्ति अत्यधिक धन को न्यायपूर्ण ढंग से न तो प्राप्त कर सकता है और न ही व्यय कर सकता है।

प्लेटो के अनुसार अत्यधिक धनी होना धनवानों को निर्धनों का शोषक बनाता है। उनके अनुसार, ''अधिक घन और सुख असंगत वस्तुएँ हैं। एक धनी व्यक्ति पूर्ण रूपेण अच्छा आदमी नहीं हो सकता, क्योंकि उसके धन का कुछ भाग अवश्य ही अनैतिक ढंग से प्राप्त अथवा व्यय किया जाता है।''

शासक वर्ग के विषय में प्लेटो का विचार था कि उनके पास अपनी सम्पत्ति व घर नहीं होना चाहिए तथा उन्हें धन–सम्पत्ति के लोभ से दूर रहना चाहिए व सामूहिक जीवन व्यतीत करना चाहिए।

### 1.3.3 श्रम सम्बन्धी विचारः

प्लेटो ने श्रम विभाजन को अत्यधिक महत्वपूर्ण माना है। उन्होंने राज्य के उदय का कारण आपसी सहयोग व श्रम–विभाजन बताया है। इस प्रकार प्लेटो को श्रम–विभाजन का जनक कहा जा सकता है। प्लेटो का विचार था कि श्रम विभाजन के द्वारा वस्तु की गुणवत्ता व मात्रा को बढ़ाया जा सकता है तथा इससे श्रमिकों की कार्यकुशलता भी बढ़ती है। प्लेटो के अनुसार, ''हमें यह निषकर्ष निकालना चाहिए कि जब एक व्यक्ति किसी वस्तु को समय पर उत्पन्न करता है, जो उसकी प्राकृतिक देन है और अन्य वस्तुओं को छोड़ देता है तो सभी वस्तुएँ अधिक मात्रा में सरलता से तथा अच्छे गुण वाली उत्पन्न की जा सकती है।'' प्लेटो के इस विचार को आगे चलकर हचेसन, ह्यूम तथा एडम स्मिथ, ने आगे बढ़ाया।

### 1.3.4 उत्तराधिकार तथा जनसंख्या सम्बन्धी विचारः

प्लेटो के अनुसार प्रशासकों को छोड़कर राज्य के प्रत्येक नागरिक के पास भूमि होनी चाहिए। काई भी व्यक्ति भूमि को बेच नहीं सकता तथा भूमि का हस्तान्तरण उत्तराधिकार के नियमों द्वारा ही किया जाना चाहिए। पिता के पश्चात उसके पुत्र को उत्तराधिकारी नियुक्त किया जाये। यदि पुत्र न हो तो पुत्री को और यदि व्यक्ति निःसंतान हो तो वह बालक गोद लेकर उसे उत्तराधिकारी नियुक्त कर सकता था। इस प्रकार भूमि के उप–विभाजन को रोका जा सकता था। प्लेटों ने यह नियम भूमि के सम्बन्ध में ही दिया अन्य सम्पत्ति के सम्बन्ध में नहीं।

प्लेटो के जनसंख्या सम्बन्धी विचार बड़े ही विचित्र है। उसने एक आदर्श राज्य की जनसंख्या 5040 तय की और कहा कि जनसंख्या इससे अधिक नहीं होनी चाहिए परन्तु यदि कम हो तो दूसरे राज्यों से अपने राज्य की ओर जनसंख्या को आकर्षित करना चाहिए। उसने यह विचार नहीं दिया की राज्य के भीतर जनसंख्या बढ़ाने के लिये लोगों को प्रोत्साहित किया जाये। सामाजिक सन्तुलन को बनाये रखने के लिए प्लेटो ने यह विचार दिया कि यदि किसी राज्य में जनसंख्या अधिक है तो उपनिवेश स्थापित करके उस अतिरिक्त जनसंख्या को वहाँ बसाया जाना चाहिए।

### 1.3.5 मूल्य सम्बन्धी विचारः

प्लेटो के अनुसार विक्रेता को सदैव वस्तु की असली कीमत मांगनी चाहिए। उनके अनुसार वस्तु का मूल्य वस्तु के आन्तरिक गुणों पर निर्भर करता है। परन्तु प्लेटों ने कीमत शब्द की स्पष्ट व्याख्या नहीं की। अतः मूल्यों के सम्बन्धों में प्लेटों के विचार स्पष्ट नहीं थे।

### 1.3.6 उद्योग एवं कृषि सम्बन्धी विचारः

उद्योग एवं कृषि के सम्बन्ध मे प्लेटों के विचार यहूदी विचारकों से मिलते–जुलते थे। उस समय उद्योग को अनिश्चित एवं जोखिमपूर्ण समझा जाता था तथा कृषि को उद्योग से सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। प्लेटों के अनुसार, ''मुद्रा उधार लेकर किया गया व्यापार व पशु–पालन कृषि की तुलना में निकृष्ट है। कृषि उत्पादन भी उतना ही किया जाये जो आवश्यकता की पूर्ति कर सके।''

### 1.3.7 प्लेटो का साम्यवादः

प्लेटो का साम्यवाद यूनानी दर्शन का एक महत्वपूर्ण अंग है। समाज को वर्ग संघर्ष से बचाने के लिए प्लेटों ने अपने साम्यवाद में भूमि व सम्पत्ति के साथ–साथ स्त्रियों व बच्चों को भी सम्मिलित किया था। प्लेटों ने राज्य को एक परिवार का रूप प्रदान किया।

प्लेटो ने समाज को दो भागों में बाँटा (i) शासक, तथा (ii) शासित। प्लेटों का विचार था कि शासक वर्ग को हर प्रकार की बुराइयों से दूर रहना चाहिए तथा शासकों के बच्चों को बचपन में ही अलग करके उन्हें शासनतन्त्र को चलाने के लिये उच्च्य शिक्षा दी जाये। शासक वर्ग त्याग का जीवन व्यतीत करें तथा उन्हें निश्चिन्त जीवन बिताने के लिये वेतन प्रदान किया जाये। शासक वर्ग सम्पत्ति का संग्रह न करें यदि उनके पास अतरिक्त धन हो भी जाता है तो वे शासक के बजाए घर चलाने वाले खेतिहर हो जायेंगे।

इस प्रकार प्लेटों के विचारों का अध्ययन करने के पश्चात यह कहा जा सकता है कि प्लेटो के समस्त आर्थिक विचार सामाजिक दृष्टिकोण पर आधारित हैं। वे समाज सुधारक के रूप में उभरे तथा बाद के आर्थिक–सामाजिक विचारक इनके विचारों से लाभान्वित हुए तथा अनेक सिद्धान्तों एवं विचारों का प्रतिपादन किया गया।

### 1.4 अरस्तु के आर्थिक विचार (384–322 ई०पू०) :

**अरस्तू का जन्म स्टेगिरा (Stagira)** में एक सामान्य से परिवार में हुआ था। बचपन में ही इनके माता–पिता की मृत्यु हो गयी थी। अपने माता–पिता की मृत्यु के पश्चात अरस्तू ने एथेन्स पहुँचकर अध्ययन कार्य पूर्ण किया। प्रतिभावान जाक डॉन तथा प्लेटो के संरक्षण में दीक्षा लेने के कारण वह सिकन्दर के गुरू नियुक्त किये गये। अरस्तू ने नीतिशास्त्र, राजनीति तथा अर्थशास्त्र पर अपने विचार प्रस्तुत किये। उन्होंने लिसियम में एक विद्यालय खोला तथा बारह वर्ष तक उसे चलाया। अरस्तू अपने शिष्यों को चलते–फिरते उपदेश देते थे, जिस कारण उनके विद्यालय को चलता–फिरता (Paripatetic) कहा जाता था। अरस्तू ने विभिन्न स्थानों की यात्रा की जिससे अरस्तू के विचारों में अभिवृद्धि हुई । प्रसिद्ध दार्शनिक बर्ट्रेण्ड रसेल के अनुसार, ''अरस्तू के स्तर का विचारक संसार में 2000 वर्ष तक पैदा नहीं हुआ।

अरस्तु वैज्ञानिक सत्यता का पुजारी था। अरस्तू ने अनेक आर्थिक समस्याओं पर भी विचार किया। अरस्तू के आर्थिक विचार उनके प्रमुख पुस्तकों 'Politics' तथा 'Ethics' में पाये जाते हैं। अरस्तू के प्रमुख आर्थिक विचार निम्नलिखित हैं:

#### 1.4.1. अर्थशास्त्र की परिभाषा एवं क्षेत्रः

अरस्तू ने अर्थशास्त्र को दो भागों में विभाजित किया (i) OIKONOMIKS (Economics) इसका सम्बन्ध धन के उपभोग एवं आवश्यकताओं की पूर्ति से है, (ii) CHREMATISTIK (क्रेमाटिस्टिक), इसका सम्बन्ध घन के उत्पादन तथा विनिमय से है। दूसरे भाग के विषय में अरस्तू ने लिखा है कि, ''परिवार का एक दूसरा पक्ष भी है जिसे धन अर्जन की कला कहा जाता है। कुछ लोगों की राय में यही गृह–प्रबन्ध है और कुछ की राय में यह गृह–प्रवन्ध का एक महत्वपूर्ण भाग है।

दूसरे भाग ''क्रेमाटिस्टिक' के भी अरस्तू ने दो भाग किये हैं (i) प्राकृतिक (Natural) तथा (1) अप्राकृतिक (Un-natural)

प्रथम भाग का सम्बन्ध वस्तु–परिवर्तन से है। स्वयं अरस्तू के अनुसार, ''यह प्रकृति के विपरीत नहीं है, क्योंकि इसका बिना आवश्यकता को पूर्ति नहीं हो सकती। इस प्रकार वस्तु विनिमय के अतिरिक्त खेती और पशुपालन को भी उन्होंने प्राकृतिक आर्थिक क्रिया माना।

दूसरे भाग का सम्बन्य मुद्रा के माध्यम से सम्पादित विनिमय की समस्त क्रियाओं से है। आगे चलकर उपभोग को भी अरस्तू ने दो भागों में बांटा–प्राकृतिक उपभोग तथा अप्राकृतिक उपभोग। उदाहरणार्थ, जूते को पहनना प्राकृतिक उपभोग है तथा जूते को बेचना अप्राकृतिक उपभोग है। हैने के अनुसार, ''बाद में यह अन्तर वस्तुतः उपभोग–मूल्य तथा विनिमय मूल्य का अन्तर बन गया था।''

#### 1.4.2. राज्य का उद्गमः

इस सम्बन्ध में अरस्तू के विचार अपने गुरू प्लेटो से भिन्न थे। प्लेटो के अनुसार आर्थिक कारणों से मनुष्य मिलजुल कर राज्य का निर्माण करते हैं। परन्तु अरस्तू के अनुसार राज्य का उद्गम दैनिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए हुआ है। अरस्तू के अनुसार राज्य की उत्पत्ति तीन चरणों में होती है। सर्वप्रथम परिवार बनता है ''जो कि प्रतिदिन की आवश्यकता की पूर्ति का समुदाय है।'' इन परिवारों से ग्राम बनता है और ग्रामों से राज्य, जिसका उद्देश्य पूर्ण स्वाधीनता कायम रखना है।

### 1.4.3. मूल्य–सम्बन्धी विचारः

अरस्तू ने मूल्य का आधार उपयोगिता को माना है। उनका मानना था कि जितनी तीव्र आवश्यकता किसी वस्तु के लिये होगी उतनी ही उसकी मूल्य वृद्धि होगी। अरस्तू एकाधिकार के विरूद्ध थे क्योंकि इसमें किसी भी वस्तु की मनचाही कीमत वसूल की जा सकती है। अतः वे कीमत स्थिर बनाये रखने के पक्ष में थे। उनके अनुसार, न्यायपूर्ण विनिमय में समान वस्तुओं का आदान–प्रदान होना चाहिए, परन्तु समानता का अर्थ समान आवश्यकता पूर्ति करने वाली वस्तु से था।''

### 1.4.4. मुद्रा तथा ब्याजः

अरस्तू के अनुसार, अन्य वस्तुओं के समान मुद्रा का मूल्य बदलता है। अरस्तू ने मुद्रा की परिभाषा एवं इसके कार्यों पर अपने विचार प्रस्तुत करके अर्थशास्त्र के विकास में एक बड़ा योगदान दिया है। अरस्तू ने ''मुद्रा विनिमय का माध्यम है'' के विचार को आगे बढ़ाया। अरस्तू ने मुद्रा को मूल्य मापन तथा भुगतान के लिए उपयुक्त माना। वे मुद्रा को संचय हेतु भी उपयुक्त मानते थे। हैने के अनुसार, ''अरस्तू के विचार निःसन्देह इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण है। वह द्रव्य को धन का संचय करने का माध्यम मूल्य की माप तथा भुगतान का प्रमाण समझते हैं।'' शुम्पीटर ने लिखा है कि 19 वीं शताब्दी की पाठ्यपुस्तकों में उल्लिखित मुद्रा के चार कार्यों में से तीन की व्याख्या स्वयं अरस्तू ने की थी।'' परन्तु अरस्तु मुद्रा को अनुत्पादक मानते थे और इसलिए वे व्याज के विरूद्ध थे। वे ब्याज को नैतिक दृष्टि से भी उचित नहीं समझते थे।

### 1.4.5. धन एवं सम्पत्ति सम्बन्धी विचारः

यूनानी विचारक धन एवं सम्पत्ति संग्रह के पक्ष में नहीं थे, किन्तु निर्धनता से उन्हें चिढ़ थी। अरस्तु ने साम्यवाद के विपक्ष में तर्क प्रस्तुत किये। उन्होंने व्यक्तिगत सम्पत्ति को उचित बताया और साम्यवाद को अव्यवहारिक बताया। सामूहिक धन आपस में विरोध उत्पन्न करता है। क्योंकि इसमें काम करने वाले और काम न करने वाले दोनों बराबरी का हिस्सा प्राप्त करना चाहते है। यदि प्रत्येक व्यक्ति को सम्पत्ति रखने व व्यय करने का अधिकार प्राप्त हो जाये, तो यह आपस का विरोध समाप्त हो जायेगा और व्यक्ति अधिक प्रगति कर सकेगा।

### 1.4.6. उद्योग तथा कृषिः

यूनानियों ने कृषि को उद्योग से अधिक महत्व प्रदान किया। वे कृषि को महत्वपूर्ण व्यवसाय मानते थे। इसके अतिरिक्त पशुपालन भी प्राकृतिक व्यवसाय है। व्यापार व अन्य व्यवसाय अप्राकृतिक श्रेणी में रखे गये।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अरस्तू ने अति महत्वपूर्ण अर्थिक विचार प्रस्तुत किये। उपभोग मूल्य व विनिमय–मूल्य का विचार सर्वप्रथम अरस्तू ने ही प्रस्तुत किया। उनके वर्गीकरण में हम उपभोग उत्पादन, विनिमय आदि के संकेत स्पष्ट रूप से पाते हैं। अरस्तू ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर प्रकाश डाला। अपने नीतिशास्त्र के ग्रन्थ Nicomachaen Ethics में भी अरस्तू ने आर्थिक विचार प्रस्तुत किये।

अरस्तू के महत्व को स्पष्ट करते हुए एरिक रोल ने लिखा है ''यदि प्लेटो सुधारकों को लम्बी कतार के अग्रणी व्यक्ति थे। तो उनके शिष्य अरस्तू प्रथम विश्लेषणवादी अर्थशास्त्री थे। वे अभिजात्य वर्ग से सम्बन्धित नहीं थे। और एक नवीन समाज के विकास के सम्बन्ध में अधिक उदार थे ..... अरस्तू ने ही विज्ञान की आधारशिला रखी और आर्थिक समस्याओं को प्रस्तुत किया जिनसे बाद के सभी अर्थशास्त्री सम्बन्धित रहे।''

## 1.5 सारांश

मनुष्यों ने अपने जीवकोपार्जन के लिए प्रारम्भ से ही कुछ न कुछ क्रियाएँ की है। उसने अपनी जीविका चलाने के लिए साधनों का संग्रह किया और सीमित साधनों को विभिन्न आवश्यकताओं के बीच इस क्रम से बाँटा कि उनसे उसे अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो सके। विदित है कि प्रोफेसर एडम स्मिथ को

आधुनिक अर्थशास्त्र का जनक माना जाता है परन्तु आर्थिक विचारों की शुरूआम काफी प्राचीन काल से हो चुकी थी। आर्थिक विचारों के प्रारम्भ में युनान के विचारकों का काफी योगदान रहा है।

इस संदर्भ में हैने का कथन है ''विशेषकर अरस्तू व प्लेटो के शिक्षणों में महत्वपूर्ण आर्थिक विचार मिलते हैं, जिनका वर्तमान आर्थिक सिद्धान्तों में महत्वपूर्ण स्थान है।

इसी प्रकार एरिक रोल ने भी कहा है कि, ''यदि प्लेटो सुधारकों की एक लम्बी पंक्ति में पहला था, तो उसका शिष्य अरस्तू पहला अर्थशास्त्री था, जिसने विश्लेषण के क्षेत्र में पग उठाया और वह समाज में होने वाले परिवर्तनों से अपने गुरू की अपेक्षा अधिक सन्तुष्ट था।''

## 1.6 अभ्यास के प्रश्न

1. प्लेटो का सामान्य परिचय दें।
2. प्लेटो के आर्थिक विचार किन पुस्तकों में मिलते हैं?
3. प्लेटो के राज्य की स्थापना के आर्थिक आधार क्या थे?
4. प्लेटो के श्रम सम्बंधी विचार बताएँ।
5. प्लेटो के जनसंख्या सम्बंधी विचार बताएँ।
6. प्लेटो के मूल्य सम्बंधी विचार बताएँ।
7. लेटो के उद्योग सम्बधी विचार बताएँ।
8. प्लेटो के कृषि सम्बधी विचार बताएँ।
9. प्लेटो का साम्यवाद की अवधारणा क्या थी?
10. अरस्तू का सामान्य परिचय दें।
11. अरस्तू अर्थशास् को किस तरह से परिभाषित करते थे?
12. अरस्तू के राज्य के उद्‌गम सम्बंधी विचार बताएँ।
13. अरस्तू के मूल्य सम्बंधी विचार बताएँ।
14. अरस्तू के मुद्रा तथा ब्याज सम्बंधी विचार बताएँ।
15. अरस्तू के धन तथा सम्पत्ति सम्बंधी विचार बताएँ।
16. अरस्तू के उद्योग सम्बंधी विचार बताएँ।
17. अरस्तू के कृषि सम्बंधी विचार बताएँ।

## 1.7 उपयोगी पुस्तकें

**एम सी वैश्य ().** आर्थिक विचारों का इतिहास. सप्तम संस्करण, प्रकाशक– मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर।

Eric Roll (1986). A History of Economic Thought. Forth Edition. Calcutta Oxford University Press (India)

टी एन हजेला (2002). आर्थिक विचारों का इतिहास. नौवाँ संस्करण, कोणार्क पब्लिशर्स प्रा. लि., नयी दिल्ली 110092।

फ्रैंक थिली (2018). पश्चात दर्शन का इतिहास (अनुवादक– एन. ए. खान 'शाहिद'), अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लिमिटेड, नर्द दिल्ली– 110002।

बी. एस. यादव, नन्दिनी शर्मा एवं उपासना शर्मा (2011). आर्थिक विचारों का इतिहास. प्रकाशक– यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नयी दिल्ली।

शिव नारायण गुप्त (2005). आर्थिक विचारों का इतिहास. प्रथम संस्करण, मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन वाराणसी।

# इकाई–2

# वणिकवाद–मुख्य विशेषताएँ

## इकाई की योजना

1.1 उद्देश्य
1.2 परिचय
1.3 वणिकवाद का जन्म एवं विकास

1.3.1 सुधारवादी आन्दोलन (Reformation):

1.3.2 पुनर्जागरण आन्दोलन (Renaissance):

1.3.3 आर्थिक कारण

1.3.4 राजनीतिक कारणः

1.4 वणिकवाद के प्रमुख विचार

1.4.1 बहुमूल्य धातुओं को महत्व

1.4.2 विदेशी व्यापार को महत्व

1.4.3 औद्योगिक तथा व्यापारिक नियम

1.4.4 जनसंख्या सम्बन्धी विचार

1.4.5 ब्याज तथा मूल्य का सिद्धान्त

1.4.6 मजदूरी एवं लगान का सिद्धान्त

1.4.7 करारोपण तथा उत्पादन सम्बन्धी विचार

1.4.8 व्यक्तिगत हित तथा लाभ का सिद्धान्त

1.4.9 कृषि सम्बन्धी विचार

1.4.10 विभिन्न व्यवसायों की उत्पादकता का विचार

1.5 वणिकवाद के पतन के कारण

1.5.1 कृषक व श्रमिक वर्ग का शोषण

1.5.2 सोने–चाँदी को अत्यधिक महत्व

1.5.3 व्यापार–सन्तुलन का दोष

1.5.4 विदेशी व्यापार को अत्यधिक महत्व की नीति

1.5.5 कॉलबर्ट की आर्थिक नीति की पराजय

**1.5.6. अवन्ध व्यापार की नीति का उदय**

**1.5.7. एडम स्मिथ के प्रभावपूर्ण विचार**

**1.5.8 नियन्त्रणों का विरोध**

**1.6 वणिकवाद का मूल्यांकन**
**1.7 नव–वणिकवाद (Neo & Mercantilism)**
**1.8 सारांश**

**1.9 उपयोगी पुस्तकें**

## 1.1 उद्‌देश्य

वर्तमान इकाई का प्रमुख उद्‌देश्य निम्नलिखित है–

- विद्यार्थियों को वणिकवाद से परिचय कराना।
- वणिकवाद के प्रमुख विचारों से अवगत कराना।
- वणिकवाद के उदय पर प्रकाश उालना
- वणिवाद के पतन के कारणों पर प्रकाश डालना।

## 1.2 परिचय

**वणिकवाद (Mercantilism)**, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है एक ऐसी विचारधारा जिसमें व्यापार या वाणिज्य को प्रधानता प्रदान की जाये। वणिकवाद का उदय 16वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक यूरोप के विभिन्न देशों में हुआ था। तत्कालीन परिस्थितियों में मानव की बढ़ती आवश्यकताओं के कारण व्यापार व उद्योग को महत्वपूर्ण स्थान मिला, जिससे एक नये वर्ग 'व्यापारी' का उदय हुआ। इसी कुशल व्यापारी वर्ग द्वारा जो आर्थिक विचार नीतियाँ तथा नियम प्रस्तुत किए गये, उन्हें वाणिकवाद के सन्दर्भ में रखा गया। ''इस प्रकार वणिकवाद उन सिद्धान्तों, नीतियों और रीति–रिवाजों की ओर संकेत करता है जो तत्कालीन परिस्थितियों के कारण उत्पन्न हुए थे और जिनके द्वारा राष्ट्र अथवा राज्य आर्थिक क्षेत्र में अपनी शक्ति, धन और समृद्धि बढ़ाने का प्रयत्न कर रहा था।''

वणिकवादी विचारधारा किसी एक व्यक्ति की न होकर अनेक देशों के अनेक व्यक्तियों के मस्तिष्क की उपज थी। स्कॉट के शब्दों में ''मुख्य रूप से यह उस समय के राजनीतिज्ञों, सरकारी कर्मचारियों एवं व्यापारियों के मस्तिष्क की उपज थी।'' प्रो० हैने का मत है कि प्रथम उत्तर मध्ययुग के पश्चात तत्कालीन विचारकों द्वारा प्रतिपादित आर्थिक विचार और नीतियों को ही वणिकवाद की संज्ञा दी गई है। ''इस प्रथम उत्तर मध्यकालीन युग के आर्थिक विचारों एवं तत्सम्बन्धी नीतियों को वाणिज्य–पद्धति, कालबर्टवाद, प्रतिबन्धक पद्धति, व्यापारिक पद्धति और वणिकवाद आदि नामों से पुकारा गया। चूंकि ये समस्त विचारक पूर्णतया किसी पद्धति का निर्माण नहीं करते और यह विचार किसी एक व्यक्ति के भी नहीं हैं और न ही किसी एक केन्द्रीय आर्थिक विचार की ओर उन्मुख हैं, इसलिये इस विचारधारा को वणिकवाद की संज्ञा देना ही अधिक युक्ति संगत है।'' क्योंकि ये सभी विचारक विभिन्न देशों के थे अतः इनके विचारों में भी एकरूपता नहीं थी इसलिए वणिकवाद को अनेकों नामों से पुकारा जाने लगा जो इस प्रकार हैं (1) कालबर्टिज्म (2) वाणिज्य पद्धति (3) प्रतिबन्धित प्रणाली (4) कैमरलिज्म (5) वणिकवाद।

**1. कालबर्टिज्म :** फ्रांस के वित्त मन्त्री कालवर्ट इस विचार धारा के समर्थक थे। उन्होंने उस समय फ्रांस की आर्थिक नीति में अनेक संशोधन किये। इन संशोधनों ने आर्थिक विचारों को एक नया मोड़ प्रदान किया। अतः 'कालबर्ट'के नाम पर ही वणिकवाद को कालबर्टिज्म कहा जाने लगा।

**2. वाणिज्य पद्धति :** चूंकि वणिकवादी विचारकों ने व्यापार एवं वाणिज्य को विशेष महत्व प्रदान किया था। इसलिए इस पद्धति को वाणिज्य पद्धति का नाम दिया गया।

**3. प्रतिबन्धित प्रणाली :** इस विचारधारा में स्वतन्त्र व्यापार का विरोध किया गया और सरकारी नियन्त्रण को प्रमुखता दी गई, इसलिए इस विचार धारा को प्रतिबन्धित प्रणाली का नाम दिया गया।

**4. कैमरलिज्म :** यह नाम जर्मनी तथा आस्ट्रिया में अधिक प्रचलित हुआ। कैमरलिज्म का अर्थ एक ऐसी आर्थिक नौति से है जिससे देश में सरकारी खजाने में धन की वृद्धि हो। हैने के मतानुसार, ''कैमरलिज्म वह कला थी, जिसके माध्यम से जर्मनी में राज्य की आय की व्यवस्था, वृद्धि एवं प्रतिपादन किया जाता था।''

**5. वणिकवाद :** इन विचारको के अनुसार किसी भी देश की आर्थिक उन्नति व्यापार द्वारा ही सम्भव है। अतः इनके विचार इसी विषय पर आधारित थे कि किस प्रकार उद्योग–धन्धों व व्यापार द्वारा देश की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाया जाये। इन्हीं विचारों के कारण इन्हें वणिकवाद की संज्ञा दी गई। अतः स्पष्ट है कि इस विचारधारा को अलग–अलग नामों से सम्बोधित किया गया, परन्तु सबसे अधिक उपयुक्त नाम वणिकवाद ही रहा। इस सम्बन्ध में प्रो० हैने ने भी कहा है, ''इस प्रथम मध्ययोत्तर कालीन व्यक्तियों की विशेषताओं, नीतियों और आर्थिक विचारों को वाणिज्य पद्धति, कालबर्टवाद, प्रतिबन्धक व्यवस्था, व्यापारिक व्यवस्था और वणिकवाद आदि अनेक नामों से पुकारा गया है। परन्तु उन्होंने व्यवस्थित रूप से किसी पद्धति का आयोजन नहीं किया। ये विचार किसी एक व्यक्ति से सम्बन्धित नहीं हैं, और न ही उनका कोई केन्द्रीय आर्थिक विचार है, इसलिये इन्हें 'वणिकवाद' कहना ही अधिक तर्कसंगत है।''

### 1.3 वणिकवाद का जन्म एवं विकासः

**ऐ**लेक्जैन्डर ग्रे के शब्दों में, ''प्रत्येक स्थान पर आर्थिक सिद्धान्त का जिस युग में उदय होता है, वह उस युग का प्रतिबिम्ब होता है।''

इस विचारधारा के लोगों ने सोने चाँदी को अधिक महत्व दिया। किसी भी तरीके से धन एकत्र करना इनका मुख्य उद्देश्य था। इनका दृष्टिकोण अत्यन्त संकुचित एवं राष्ट्रवादी था। लोगों में चर्च की धार्मिक दासता के स्थान पर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की भावना अधिक तेजी से फैलने लगी थी। सामन्तवाद के पतन के कारण सामाजिक व धार्मिक परिस्थितियाँ बदलने लगी थी। दूसरे राज्यों का शोषण करके धन कमाना इनका मुख्य उद्देश्य बन गया था। इसके लिए ये विदेशी व्यापार व सरकारी नियन्त्रण को आवश्यक समझते थे। उस समय ऐसी क्या परिस्थितियाँ थी जिसके कारण वणिकवादी धनोन्मुख हो गये? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए हमें उस समय की सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक दशाओं का अध्ययन करना होगा। वणिकवाद को जन्म देने वाले कारणों को **प्रो० हैने** ने दो भागों में विभक्त किया हैः (i) दूरवर्ती अभौतिक कारण तथा (ii) सीमावर्ती भौतिक कारण (जैसे सोने–चाँदी की नई खानों की खोज सामान्तवाद का पतन, बैंकिंग का विकास, मुद्रा स्फीति, राजनीतिक विचारधारा में परिवर्तन आदि)। दूरवर्ती अभौतिक कारणों में सुधारवाद तथा पुनर्जागरण आन्दोलन मुख्य रूप से थे।

### (i) दूरवर्ती अभैतिक कारणों की संक्षिप्त व्याख्या निम्नलिखित है–

**1.3.1 सुधारवादी आन्दोलन (Reformation):** यूरोप में समान्तवादी अर्थव्यवस्था अपनी चरम सीमा पार कर चुकी थी। पोप को राजा से अधिक शक्तिशाली समझा जाता था। वह स्वर्गीय आनन्दों को जनता के बलबूते प्राप्त कर विलासिता का जीवन व्यतीत करता था और जनता को उपदेश देता था कि लालच व्यक्ति को पाप की ओर ले जाता है, भौतिक सुख क्षण भर का है अतः सांसारिक धन–दौलत का संग्रह करना बेकार है, जीवन में अधिक से अधिक त्याग करना ईश्वर को प्राप्त करना है। सुधारवादी आन्दोलन फ्रान्स के उन नवयुवकों ने चलाया था, जो जर्मनी से शिक्षा पाकर लौटे थे। इन्हीं लोगों ने

प्रोटेस्टेन्ट धर्म की स्थापना की एवं मुद्रा–प्राप्ति की क्रियाओं को मनुष्य के लिए आवश्यक ठहराया, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्तिवाद को प्रेरणा मिली। इनका मुख्य उद्देश्य स्वतन्त्र विनिमय प्रणाली तथा वाणिज्य को सरल बनाना था। काल्विन (1509–1564) ने भी वाणिज्य को धर्म के अनुकूल माना है। सुधारवादियों ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के विचारों को बढ़ाया तथा शक्तिशाली राज्य के निर्माण की ओर जोर दिया। सुधारवाद ने राजकीय गिरजाघर स्थापित किए व राजा को उनका सर्वोच्च अधिकारी बनाया, और वह सर्वोच्च अधिकारी घोषित किया गया हेनरी अष्ट्म (Henry VIII) को।

नये विचारकों ने रोमन कैथोलिक चर्च के स्थान पर प्रोटेस्टेण्ट धर्म की स्थापना कर दी थी। अब लोगों में व्यक्तिगत सम्पत्ति के निर्माण की भावना आने लगी। वे स्वतन्त्रतापूर्वक अपने विचारों को व्यक्त करने लगे। यद्यपि इसके बाद भी दैविक अधिकारों का विषय तर्क का मुद्दा बना रहा। अतः लोग इस प्रकार के अधिकारों पर प्रश्न उठाने लगे तथा आर्थिक मामलों में लोग तर्क की सहायता लेने लगे। अतः कह सकते हैं कि सुधारवादी आन्दोलन के पश्चात् धर्म का भय एवं प्रभाव कम हो गया तथा आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्रों में परिवर्तन लाना सरल हो गया।

**1.3.2 पुनर्जागरण आन्दोलन (Renaissance):** 15वीं–16वीं शताब्दी में ग्रीस और रोम के युग की सांस्कृतिक चेतना का फिर से जागरण हुआ जो विश्व के इतिहास में 'रिनैसां' (Renaissance) के नाम से प्रसिद्ध है। इस युग में एक क्रान्ति आयी जो कला, साहित्य, विज्ञान तथा दर्शन के विकास के रूप में सामने आई। पुनर्जागरण आन्दोलन सुधारवाद से भी अधिक महत्वपूर्ण था। इन आन्दोलनों ने रूढ़िवादिता तथा अंधविश्वासों को समाप्त कर नया मार्ग प्रशस्त किया। नवीन विचारकों ने इस बात पर जोर दिया कि स्वर्ग व नरक इसी संसार में है। अतः हमें अपने को सुखी बनाने का प्रयत्न इसी संसार में करना चाहिए। प्रो० हैने के शब्दों में, ''मानववाद या मनुष्य–सेवा आन्दोलन का सार यह था कि पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों के कल्याण पर ही अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए और इस बात का प्रयत्न किया जाना चाहिए कि मानव–सुख व सभ्यता की उन्नति हो। यह आन्दोलन भौतिकवाद पर आधारित था और मनुष्य के भौतिक सुख पर जोर देता था।'' टॉमस मोर (Thomas More) ने सन् 1516 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'Utopia' में इस बात पर जोर दिया था कि मनुष्य को अपना सांस्कृतिक विकास स्वंय करना चाहिए। इस आन्दोलन का मुख्य प्रचार यह था कि राष्ट्रीयता की उन्नति हो तथा राज्य शक्तिशाली हो परन्तु राज्य को शक्तिशाली बनाने का उद्देश्य मानव कल्याण था।

पुनर्जागरण आन्दोलन के विचारकों में ल्यूनार्डो दा विंसी (Leonardo da vinci), गैलीलियो, कोपरनिकस, ब्रूनो, मिशैल एन्जिलो, न्यूटन, केपलर तथा शेक्सपीयर आदि प्रमुख थे। जिन्होंने अपने लेखों, आविष्कारों एवं कला से अज्ञान रूपी अंधकार का अंत किया। इसी युग में छापेखाने, दूरबीन, घड़ी तथा कुतुबनुमा जैसे यन्त्रों का आविष्कार हुआ। फलतः अर्थशास्त्र का क्षेत्र भी अछूता न रहा तथा आर्थिक क्षेत्र में पुनर्जागरण वणिकवाद के रूप में सामने आया।

**(ii) सीमावर्ती भौतिक कारणः** 15वीं शताब्दी के अन्त में राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्र में उन्नति ने भी राष्ट्रों के निर्माण में विशेष योगदान दिया। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित कारणों का अध्ययन किया जायेगा :

**1.3.3 आर्थिक कारणः**

कुछ ऐसे आर्थिक कारण जिन्होंने सांस्कृतिक, धार्मिक व राजनीतिक कारणों के साथ मिलकर वाणिकवाद को जन्म दिया निम्नलिखित हैं–

**(क) सामन्तवादी अर्थव्यवस्था का पतन**: 15 वी शताब्दी में सामन्तवाद के पतन के पश्चात सामन्तवादी अर्थव्यवस्था का भी पतन होने लगा। इस युग में आत्म–निर्भर अर्थव्यवस्था प्रचलित थी और आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन स्वयं किया जाता था। अतः उत्पादन स्थानीय क्षेत्र में ही किया जाता था अन्य स्थानों से वस्तुओं का कोई आदान–प्रदान नहीं होता था। सामन्तों द्वारा कृषकों का शोषण किया जा रहा था। करारोपण का बोझ अधिक था। भू–स्वामी स्वयं विलासिता का जोवन व्यतीत कर रहे थे। अतः यह युग शोषण, गरीबी एवं अत्याचार, का युग था, जिससे किसान तंग आ चुके थे और इस अर्थव्यवस्था को बदल देना चाहते थे।

**(ख) मुद्रा का जन्मः** इस युग में लोगों को वस्तु–विनिमय की कठिनाइयाँ महसूस होने लगी। जिसके परिणामस्वरूप मुद्रा का जन्म हुआ। इस खोज से क्षेत्रीय निर्भरता ने राष्ट्रीय निर्भरता का रूप ले लिया। विदेशी–व्यापार को प्रोत्साहन मिला। मालिक व मजदूरों के सम्बन्ध व्यक्तिगत स्तर के स्थान पर मुद्रा पर आधारित होने लगे एवं वस्तुओं के कीमत–निर्धारण में प्रतियोगिता होने लगी।

**(ग) नये देशों व मार्गों की खोज**ः इस युग में पालदार जहाजों व दिशा सूचक यन्त्र का आविष्कार भी हो चुका था। जिसके कारण नए–नए मार्गों व देशों की खोज हुई। 1492 में अमेरिका तथा 1497 में भारत के नये मार्गों का पता चला। इन खोजों से विदेशों के नये मार्गों का पता चला। इन खोजों से विदेशी व्यापार को बढ़ावा मिला।

**(घ) मूल्यवान धातुओं की खानों की खोजः** 1540 से 1600 तक की अवधि में अमेरिका में अनेक स्थानों पर सोने व चाँदी की खानों का पता चल चुका था। मुद्रा के आविष्कार के कारण सोने चाँदी को सिक्कों में ढालना शुरू कर दिया गया था। इन खोजों से प्रत्येक देश की यह प्रबल इच्छा हुई कि दूसरे देश का सोना चाँदी अपने देश में लाया जाये। फलस्वरूप विदेशी व्यापार को बढ़ावा मिला।

**(ङ) व्यापाराधिक्यः** यूरोप के प्रत्येक देश में सोने–चाँदी की खानें नहीं थी। अतः इन धातुओं को प्राप्त करने के लिए यूरोप में उद्योग–धन्धों का विकास हुआ तथा विदेशी व्यापार को बढ़ावा मिला।

**(च) नए श्रमिक वर्ग का जन्मः** सामन्तवाद के पतन तथा उद्योग–धन्धों के विकास के कारण एक नये मजदूर वर्ग का जन्म हुआ। उनके साथ–साथ अनेक श्रम समस्याओं का भी जन्म हुआ। अपनी समस्याओं को सुलझाने के लिए श्रमिक संगठनों का जन्म होने लगा ।

**(छ) बैंकिग का विकासः** उद्योग धन्धों के विकास ने बचत एवं विनियोग को प्रोत्साहित किया, जिससे बैंकिंग के विकास को बल मिला। बैंकिंग के विस्तार ने स्वयं उद्योग–धन्धों को आगे बढ़ाया जिससे ये एक–दूसरे के पूरक सिद्ध हुए।

**(ज) मुदा–स्फीतिः** उस समय मुद्रा की पूर्ति सरलता से पूरी होने के कारण समस्त यूरोप में भयंकर मुद्रा–स्फीति फैल गई, जिससे कीमतें तीव्र गति से बढ़ने लगी। सरकारी व्यय बढ़ने लगा, जिसे जनता से करारोपण के द्वारा वसूला जाता था। उत्पादक वर्ग को लाभ तथा उपभोक्ता वर्ग को हानि होने लगी। उत्पादकों के लाभ में भारी वृद्धि के कारण विनियोग बढ़ने लगा।

### 1.3.4 राजनीतिक कारणः

रोमन साम्राज्य के पतन के पश्चात पूरे यूरोप में अंधकार छाने लगा। यह स्थिति 14वीं शताब्दी से लेकर 15वीं शताब्दी तक रही। राज्य की सम्पूर्ण शक्ति पोप के पास थी और राजा पोप की शक्ति के अधीन रहता था। अतः राज्य की बिगड़ती हुयी हालत को देखते हुये और राज्य की शक्ति क्षीण होते देखकर एक शक्तिशाली राज्य के निर्माण के लिए जोर दिया जाने लगा। इस युग की राजनीतिक दशा बड़ी ही शोचनीय थी छोटी–छोटी बातें आन्तरिक कलह का कारण बन जाती थी। इस युग में नगरों का शासन प्रबन्ध गिल्ड्स् (Guilds) के हाथों में तथा गाँवों का शासन प्रबन्ध सानन्तों के हाथों में था। अपने–अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए ये दोनों आपस में लड़ते रहते थे। जिससे सामान्य व्यक्ति का जीवन अव्यवस्थित तथा असुरक्षित हो गया था तथा घरेलू अर्थव्यवस्था कमजोर पड़ने लगी थी। यूरोप के प्रायः सभी देशों में विदेशी आक्रमण का भय भी लगातार बना रहता था। अतः इन सब से सुरक्षा के लिए एक शक्तिशाली राज्य की आवश्यकता महसूस किया जाल लगाा था जिसके लिए व्यापार को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। क्योंकि व्यापार के बदले ही देश में सोना, चाँदी का संग्रह किया जा सकता था और देश मजबूत बनाकर विदेशी आक्रमणों के भय से बचाया जा सकता था। इस बात की पुष्टि इस कथन से व्यक्त की जा सकती है कि, ''वही राजा युद्धों को जीतने में सफल हो सकता है जो अपनी सेना को अच्छी तरह से खिला सकता है। इसके विपरीत शक्तिशाली से साक्तिशाली सेना भी युद्धों को जीतने में सफल नहीं हो सकती, जब तक उसका सही ढंग से भरण–पोषण न किया जाय। अतः स्पष्ट है कि एक शक्तिशाली सेना के निर्माण के लिए अधिक धन की आवश्यकता पड़ने लगी, जिसे पूरा करने के लिए व्यापार को बढ़ावा मिला। प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार किया जाने लगा तथा देश, विदेशों के साथ व्यापार बढ़ने लगा जिससे देशों के मध्य मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गए। क्योंकि सरकारी खर्चों

की पूर्ति सिर्फ कृषि अथवा घरेलू अर्थव्यवस्था के भरोसे नहीं हो सकती थी इसलिए विदेशी व्यापार को बढ़ावा मिला और वणिकवाद का उत्थान हुआ।

### 1.4 वणिकवादी आर्थिक विचार एवं सिद्धान्त (Ideas And Doctrine of Mercantilism)

वणिकवादियों का प्रमुख उद्देश्य राज्य को शक्तिशाली बनाना था और राज्य के आर्थिक पक्ष को मजबूत बनाने के लिए उन्होंने धन संग्रह पर बल दिया। वणिकवादी आर्थिक विचार एवं सिद्धान्तों के सम्बन्ध में प्रो० एरिक रोल का कथन है, ''वणिकवादियों के विचार चर्च के कानून की तरह किसी एक सिद्धान्त में निहित नहीं थे। वणिकवाद के प्रसार का मुख्य कारण अनेक देशों में उन सिद्धान्तों का उद्गम है जो दीर्घकाल तक राजनीतिज्ञों द्वारा व्यवहार में लाये गये।

वणिकवाद के मुख्य विचार निम्नलिखित हैं :

#### 1.4.1 बहुमूल्य धातुओं को महत्वः

वणिकवादियों द्वारा सोने तथा चाँदी को विशेष महत्व दिया जाता था। यह समझा जाता था कि जिस राष्ट्र के पास सोने व चाँदी के भंडार हैं, वह राष्ट्र सबसे अधिक शक्तिशाली है। वणिकवादियों का प्रमुख उद्देश्य व्यापार के माध्यम से सोने–चाँदी को अपने देश में लाना था। धन का संग्रह इसलिए किया जाता था क्योंकि उस समय औद्योगिक संग्रहों का भी अभाव था। उस समय दो प्रमुख नारे लगाये जाते थे, ''अधिक सोना, अधिक धन, अधिक शक्ति'' (More Gold] More Wealth] More Power) तथा ''मुद्रा ही व्यापार व वाणिज्य का जीवन है।'' उस समय सभी आर्थिक क्रियाओं का मुख्य उद्देश्य धन एकत्रित करना बन गया था। कोलम्बस ने कहा था कि, ''स्वर्ण एक अद्भुत पदार्थ है जिस व्यक्ति के पास यह होता है वह अपनी इच्छा की प्रत्येक वस्तु को प्राप्त कर सकता है। इसके द्वारा आत्माओं को भी स्वर्ग में पहुंचाया जा सकता है।'' सर विलियम पेट्टी ने भी धन की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा है कि, ''विदेशी व्यापार का अन्तिम उद्देश्य धन प्राप्त करना नहीं है परन्तु विशेष रूप से प्रचुर मात्रा में सोना–चाँदी एवं हीरे–जवाहरात प्राप्त करना है, जो न तो नष्ट होते है और न अन्य धातुओं के समान परिवर्तनशील होते हैं वरन् सदैव प्रत्येक स्थान पर धन ही रहते है।'' अतः किसी देश की शक्ति और गौरव सोना–चाँदी आदि उपयोगी वस्तुओं के अतिरेक पर निर्भर करता है।

वणिकवादियों द्वारा बहुमूल्य धातुओं व मुद्रा को इतना अधिक महत्व देने के प्रमुख कारण इस प्रकार है :–

(i) सोना–चाँदी हो ऐसी वस्तुएँ थी जिन्हें व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता था। **अलेकजैन्डर ग्रे** के शब्दों में, ''धन का एकमात्र रूप जो सबसे अधिक सहनशील, लाभप्रद व साधारणतः स्वीकृत था, वह बहुमूल्य वस्तुओं का खजाना ही था।'' उस समय बैंकिंग सुविधायें नहीं थी। अतः धन सोना–चाँदी के रूप में ही एकत्र किया जाता था।

(iii) राज्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिए करों की आवश्यकता थी जो वस्तु के रूप में संभव न था, अतः मुद्रा को महत्व दिया गया।

(iv) युद्धों को जीतने के लिए भी अधिक धन को आवश्यकता होती थी।

(v) सैनिकों व अधिकारियों को वेतन देना मुद्रा द्वारा आसान हो गया था।

हालांकि वणिकवादियों ने सोने–चाँदी व मुद्रा को अधिक महत्व प्रदान किया जबकि सत्य तो यह है कि मुद्रा में स्वयं का कोई मूल्य नहीं होता। प्रो० एड्म स्मिथ ने वाणिज्यवादियों को इस बात के लिए आलोचना की है कि उन्होंने मुद्रा व घन में भ्रम पैदा किया। एड्म स्मिथ ने इसे आर्थिक असंगति की संज्ञा दी है।

#### 1.4.2 विदेशी व्यापार को महत्वः

देश में धन की मात्रा को बढ़ाने के लिए वाणिकवादियों ने विदेशी व्यापार को अधिक महत्व दिया। प्रसिद्ध वणिकवादी मन (Munn) का विचार था कि, ''जिस देश में सोने–चाँदी की खानों की कमी है

अथवा नहीं है वह देश केवल एक ही साधन से सोना–चाँदो प्राप्त कर सकता है और वह साधन है विदेशी व्यापार।'' अतः मन ने स्पष्ट किया है कि विदेशी व्यापार द्वारा ही अपने देश में सोने–चाँदी के भंडार को बढ़ाया जा सकता है। वणिकवादियों की धारणा थी कि देश को विदेशी–व्यापार द्वारा ही सम्पन्न बनाया जा सकता है। अतः अनुकूल व्यापार सन्तुलन को अपनाया गया जिसमें अधिक निर्यात पर बल दिया गया। आयात की वस्तुओं को अपने ही देश में उत्पादित करने के लिए प्रयत्न किए गये जिससे देश का सोना–चाँदी अपने ही देश में रहे। **सर जोशिया चाइल्ड** के शब्दों में, ''आयात की अपेक्षा निर्यात अधिक करने से जो बचत सोना–चाँदी के रूप में आती है उससे देश के खजाने में वृद्धि होती है।'' यह भी मान्यता थी कि विदेशी–व्यापार मुक्त नहीं होना चाहिए। अतः ऐसी व्यापारिक नीति बनाये गए जो देश के हित में हो, तथा देश में ही माल तैयार करने के लिए कच्चे माल का आयात किया जाये। **प्रो. चाइल्ड** के अनुसार, ''उन उद्योगों को सबसे अधिक प्रोत्साहन देना चाहिए जिनमें जहाजरानी का सबसे अधिक प्रयोग किया जाए।'' इसी प्रकार **टॉमस मन** ने भी कहा, ''हमारे निर्यातों का मूल्य और भी अधिक हो सकता है यदि हम उनको अपने जहाजों द्वारा पहुँचाए क्योंकि व्यापारियों को न केवल वस्तुओं का हो मूल्य प्राप्त होता है बल्कि बीमे तथा भाड़ों से भी आय प्राप्त होती है।''

### 1.4.3 औद्योगिक तथा व्यापारिक नियमः

वणिकवादी प्रथम व्यापार को द्वितीय उद्योग को तथा अन्त में कृषि को महत्व देते थे। वणिकवादी निर्यात बढ़ाने के लिए उद्योगों को विकसित करना चाहते थे। इस विषय में वे एक नियन्त्रित अर्थव्यवस्था के पक्षपाती थे। व्यापार सन्तुलन को अनुकूल बनाये रखने के लिए वणिकवादियों ने सरकार द्वारा आवश्यक नियम बनाये जाने का सुझाव दिया जो इस प्रकार हैः

(i) वणिकवादी सोना–चाँदी के आयात के पक्ष में थे व निर्यात के विपक्ष में। **वॉन हार्निक** ने भी लिखा। कि ''आयात या तो किया ही न जाय और यदि करना आवश्यक ही हो तो बदले में सोना–चाँदी न देकर देश में उत्पन्न वस्तुएँ देनी चाहिए।

(ii) विदेशी व्यापार जहाँ तक सम्भव हो सके देश के ही जहाजों द्वारा किया जाये। इससे दो लाभ होंगे (अ) व्यय कम होगा, और (ब) अपने देश का घन अपने ही देश के काम आएगा।

(ii) आने वाले माल पर भारी कर लगाये जायें और बाहर जाने वाले माल पर कर की छूट दी जाये।

(iv) कच्चे माल का आयात किया जाये तथा पक्के माल का निर्यात किया जाये।

(v) जनसंख्या का विस्तार होना चाहिए, जिससे मानवीय संसाधन अधिक मात्रा में प्राप्त हो सके।

(vi) उन्होंने पूंजी व साख व्यवस्था का भी सुझाव दिया ।

(vii) वणिकवादियों ने यह भी सुझाव दिया कि विदेशी व्यापार को सुविधाजनक बनाने के लिए हर व्यक्ति को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान करनी चाहिए।

(viii) बंजर भूमि को उत्पादनशील बनाया जाये और प्राकृतिक साधनों का विकास किया जाये।

अतः वणिकवादी अर्थव्यवस्था प्रतिबन्धों और नियन्त्रणों की अर्थव्यवस्था थी। अतः वणिकवादी अर्थव्यवस्था समाजवाद की ओर उन्मुख थी, परन्तु **प्रो० हैने** ने इससे भिन्न मत प्रकट करते हुए लिखा है कि, ''उस समय न तो स्वतन्त्र व्यापार नीति का ही विशेष प्रचलन था और न सरकारी उपक्रम का ही बड़े पैमाने पर अस्तित्व था। सरकार के सम्मुख सामान्य कल्याण का कोई आदर्श नहीं था।''

### 1.4.4 जनसंख्या सम्बन्धी विचारः

वणिकवादी जनसंख्या वृद्धि को प्रोत्साहन देते थे। जिससे सेना की संख्या में वृद्धि की जा सके तथा सस्ता श्रम भी उपलब्ध हो सके। इनका मानना था कि अधिक लोगों को रोजगार देने से राज्य की आय में वृद्धि होगी। **देवनान्त** के शब्दों में, ''एक समुदाय की वास्तविक शक्ति उसकी जनता है।'' **प्रो० फोर्ट** का मत है, ''एक राष्ट्र को महान एवं शक्तिशाली बनाने के लिए दो बातें महत्वपूर्ण हैं– सम्पत्ति और जनसंख्या।''

वणिकवादियों ने विवाह व सन्तान सम्बन्धी नियम भी बनाये। जिसे **प्रो० हैने** ने निम्न शब्दों में व्यक्त किया है, ''विदेशों द्वारा निर्मित माल के साथ प्रतियोगिता करने के लिए सस्ते व पर्याप्त श्रम की आवश्यकता थी। इसलिए विवाह संस्कार पैतृकता को प्रोत्साहन देने के लिए कानून व नियम बनाये गये।'' वणिकवादियों ने देशवासियों की शिक्षा विषयक नियम भी बनाये जिससे कुशल श्रमिक तैयार हो सकें।

### 1.4.5 ब्याज तथा मूल्य का सिद्धान्तः

प्रसिद्ध वणिकवादी **टॉमस मन** के अनुसार ब्याज की सहायता से ऋण लेकर उत्पादन कार्य में वृद्धि की जा सकती है। इस प्रकार जिसका धन बेकार पड़ा है उसे आय प्राप्त होती है और जिसके पास धन का अभाव है वह ऋण प्राप्त कर लेता है अर्थात उस बचत से उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। इस प्रकार दोनों ही लाभ प्राप्त करते हैं। वणिकवादियों का मत था कि ''ब्याज की दर नीची ही रखनी चाहिए, क्योंकि जब ब्याज की दर ऊँची हो जाती है तो द्रव्य की माँग घट जाती है जिससे उत्पादन की मात्रा में भी कमी आ जाती है।'' **प्रो. चाइल्ड** का कहना था कि ब्याज की नीची दर से पूंजी सस्ती हो जाएगी जिससे व्यापारी प्रोत्साहित होंगे। अन्त में यह कहना अनुचित न होगा कि अधिकांश वणिकवादियों को इस बात का ज्ञान नहीं था कि पूंजी की उत्पादिता और ब्याज में क्या सम्बन्ध होता है। जैसे कि **प्रो० हैने** ने कहा है, ''इनमें अधिकांश व्यक्तियों ने सोचा कि ब्याज दर कम करने वाला कानून प्रभावशाली होगा और मुद्रा को सस्ता कर देगा। स्पष्टतया उन्होंने गाड़ी को घोड़े के सम्मुख रख दिया और 'प्रभाव' को 'कारण' समझ लिया। यह सब उनकी पूंजी और मुद्रा के कार्यों की अज्ञानता का सूचक है।'' मूल्य का सिद्धान्त मुख्य रूप से **विलियम पैटी, जॉन लॉक तथा कैण्टीलोन** ने प्रस्तुत किया। पैटी ने सर्वप्रथम यह घोषित किया कि ''वस्तु का मूल्य उसकी लागत के द्वारा निर्धारित होता है और लागत का मुख्य आधार श्रम है।'' जॉन लॉक ने प्रकृति को उत्पादन में सहयोगी माना और मूल्य को प्रकृति तथा मनुष्य दोनों के सहयोग का फल बताया, अर्थात उत्पादन का कारण केवल श्रम ही नहीं है– प्रकृति भी है। कैण्टीलोन ने बाजार मूल्य तथा आन्तरिक मूल्य, दो प्रकार के मूल्य बताये। कैण्टीलोन के शब्दों में, ''घातुओं का आन्तरिक मूल्य भी अन्य धातुओं के मूल्य के समान ही उत्पादन में लगे हुए श्रम के अनुपात में होता है और उसका बाजार मूल्य उसकी मांग और पूर्ति के बदलने से बदलता है।''

### 1.4.6 मजदूरी एवं लगान का सिद्धान्तः

वणिकवादियों के मजदूरी सिद्धान्त स्पष्ट नहीं थे, क्योंकि वणिकवादियों ने अपना पूरा ध्यान उत्पादन पर केन्द्रित किया था। उन्हें वितरण की फिक्र नहीं थी। **पैटी** का मत था कि श्रम का मूल्य उसके द्वारा उत्पन्न की गयी वस्तु पर निर्भर करता है। परन्तु कुछ वणिकवादियों को मजदूरी निर्धारण की चिन्ता अवश्य थी। **कैण्टीलोन** के शब्दों में, ''श्रम का मूल्य उस सामग्री के बराबर है जो मजदूर के जीवन–निर्वाह के लिए आवश्यक होती है।'' इस प्रकार एडम स्मिथ व रिकार्डो का 'जीवन–निर्वाह सिद्धान्त' के लिए एक नई दिशा मिली। लगान के सम्बन्ध में वणिकवादियों का मत था कि लगान एक प्रकार की बचत है जो प्रकृति के सहयोग से प्राप्त होती है। **विलियम पैटी** ने प्रकृति और श्रम दोनों को ही उत्पादन का साधन माना। शुम्पीटर के अनुसार शुद्ध उपज का विचार **कैण्टीलोन** की देन है जो आगे चलकर प्रकृतिवाद का मूल सिद्धान्त बना।

### 1.4.7 करारोपण तथा उत्पादन सम्बन्धी विचारः

सर्वप्रथम, 1655 में **वॉन जस्टी** ने करारोपण के सिद्धान्तों को रचना कर डाली थी। जिससे एड्म स्मिथ के साथ–साथ वर्तमान समय में प्रो० काल्डोर भी प्रभावित हुए। वणिकवादियों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति पर कराधान राज्य से प्राप्त सुविधाओं के अनुसार किया जाना चाहिए। पैटी ने भी स्पष्ट किया है कि, ''प्रत्येक व्यक्ति को अपने धन तथा सम्पत्ति के अनुसार राजकीय कोष में योगदान देना चाहिए।'' वणिकवादी 'भूमि' को ही उत्पत्ति का एक मात्र साधन स्वीकार करते थे। पैटी के मतानुसार ''श्रम सम्पत्ति का पिता एवं सक्रिय कारण है, जबकि भूमि उसकी माता है।''

### 1.4.8 व्यक्तिगत हित तथा लाभ का सिद्धान्तः

व्यक्ति अपने स्वहित को ही ध्यान में रखकर कार्य करता है। **हॉब्स** का कथन है कि ''प्रत्येक व्यक्ति अपने हित को ध्यान में रखकर कार्य करता है।'' **लॉक** ने भी यही कहा है कि ''व्यक्ति कम से कम त्याग के बदले में अधिकतम लाभ प्राप्त करना चाहता है।'' सर्वप्रथम **सर जेम्स स्टुअर्ट** ने अपने ग्रन्थ Principles of Political Economy में लाभ के दो भेद बताये पहला Positive Profit जिससे देश की समृद्धि बढ़ती है और यह मेहनत तथा योग्यता से अर्जित होता है। दूसरा Relative Profit जो दो दलों में लेन–देन पर निर्भर होता है। एक के लाभ में दूसरे की हानि होती है समाज में इससे कोई धन की वृद्धि नहीं होती।

### 1.4.9 कृषि सम्बन्धी विचारः

कृषि वणिकवाद के युग में भी महत्वपूर्ण व्यवसाय था और प्रत्येक देश की 70 से 80 प्रतिशत जनता खेती करती थी। परन्तु महत्व की दृष्टि से **वणिकवादियों ने व्यापार को प्रथम औद्योगिक विकासको द्वितीय तथा कृषि व्यवसाय को तृतीय स्थान प्रदान किया।** इन विचारकों ने कच्चे माल का उत्पादन करने के लिए बंजर भूमि को भी उपयोग में लाने का सुझाव दिया। तथा खाद्यान्न के आयात पर भी कड़ा प्रतिबन्ध लगाने का सुझाव दिया। कृषि के अतिरिक्त **टॉमस मन** ने मछली उद्योग के विकास का भी सुझाव दिया है।

### 1.4.10 विभिन्न व्यवसायों की उत्पादकता का विचारः

वणिकवादियों ने उत्पादक तथा अनुत्पादक में भेद स्पष्ट किया है। **सर जोशिया चाइल्ड** के शब्दों में, ''यह सबको स्वीकार है कि व्यापारी, दस्तकार, भूमि के कृषक और उन पर निर्भर व्यक्ति अपने अध्ययन और परिश्रम द्वारा मुख्यतः एक देश में विदेशों से धन लाते हैं। अन्य प्रकार के व्यक्ति जैसे अभिजात वर्ग, कुलीन जन, वकील, चिकित्सक, छात्र तथा दुकानदार धन को देश के भीतर एक हाथ से दूसरे हाथ में ले जाने का ही कार्य करते हैं।''

## 1.5 वणिकवाद के पतन के कारण

परिवर्तन ही प्रकृति का नियम है। मनुष्य के विचार उसकी आवश्यकताओं, समस्याओं तथा देश व काल की परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होते रहते है। 16वीं से 18वीं शताब्दी तक तो यूरोप में वणिकवाद का बोलबाला रहा परन्तु 18 वीं शताब्दी के अन्त में वणिकवाद का पतन आरम्भ हो गया और इस विचारधारा के पतन के बाद प्रकृतिवाद व प्रतिष्ठित विचारधारा का उदय हुआ। जिसके प्रणेता डॉ० क्विजने (Quesney) तथा एडम स्मिथ (Adam Smith) थे। एडम स्मिथ की पुस्तक 'Wealth of Nations' में वणिकवाद के विचारों की कड़ी आलोचना की गयी जो उसके पतन के लिये मुख्य रूप से उत्तरदायी था। न्यूटन, ह्यूयम, लॉक आदि ब्रिटिश विचारको ने भी फ्रांसीसियों के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोड़ा । वणिकवाद के पतन के कारण निम्नलिखित हैं :

### 1.5.1 कृषक व श्रमिक वर्ग का शोषणः

वणिकवादियों ने व्यापार को प्रथम, उद्योग–धन्धों को द्वितीय तथा कृषि को तृतीय स्थान प्रदान किया। विदेशी व्यापार सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी साबित हुआ। विदेशी व्यापार में प्रतियोगिता करने हेतु उन्होंने वस्तुओं की लागत व्यय को घटाने पर बल दिया तथा इसके लिये कच्चा माल व सस्ता श्रम खरीदने की नीति अपनाई गई। परिणामतः कृषक एवं कृषि की दशा बड़ी शोचनीय हो चुकी थी। जमींदार वर्ग भोग–विलास का जीवन व्यतीत कर रहे थे। कृषि सुधारों के बारे में जमींदार व सरकार दोनों ही उदासीन थे। कृषकों से कर लिया जाता था। इससे फ्रांस की अर्थव्यवस्था को भारी आघात पहुँचा। इन सन्दर्भ में **हैने** ने कहा है कि, ''फ्रान्स की अर्थव्यवस्था उस विशाल रेल–कारखाने के समान बन चुकी थी जिसकी टूट–फूट व ह्रास की क्षतिपूर्ति के लिए प्रबन्ध नहीं किया गया था फलतः उसकी उत्पादन क्षमता कुण्ठित हो चुकी थी और उसकी साख को ठेस लग चुकी थी।'' नये विचारक व्यापार व उद्योग की अपेक्षा कृषि के पक्ष में अधिक थे। अतः उन्होंने कृषकों का भरपूर समर्थन किया। इंगलैण्ड की कृषि क्रान्ति का प्रभाव फ्रान्स में भी पड़ा। फ्रांस के विचारक डॉ० क्विजने के निर्वाधवाद की रूपरेखा

प्रस्तुत करने में जुट गये। अतः समाज के इस वर्ग ने श्रमिकों व कृषकों का पक्ष लेकर वणिकवादी विचारों की आलोचना की।

### 1.5.2 सोने–चाँदी को अत्यधिक महत्वः

वणिकवादी सोने–चाँदी को आवश्यकता से अधिक महत्व देते थे। उन्होंने बहुमूल्य धातुओं की प्राप्ति ही राष्ट्र का एकमात्र लक्ष्य निर्धारित किया। परन्तु धीरे–धीरे यह सच्चाई सामने आने लगी कि सिर्फ सोने–चाँदी को एकत्र करने से सभी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं की जा सकती। अतः सोने–चाँदी का महत्व घटने से इस विचारधारा का महत्व स्वतः ही कम हो गया।

### 1.5.3 व्यापार–सन्तुलन की दोषपूर्ण नीतिः

टॉमस मन ने इस नीति को दोषपूर्ण बतलाया और कहा कि ''यह नोति प्रत्येक देश व काल के लिए लाभप्रद सिद्ध नहीं हो सकती, क्योंकि इस नीति के द्वारा यदि एक देश को लाभ होगा तो दूसरे देश को हानि होगी। अनुकूल व्यापार को स्थायी रूप देना भी असम्भव है, क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में निर्यात आयात का भुगतान करते हैं। अतः दूसरा देश भी इसी नीति को अपनाएगा। जिसके कारण व्यापारशेष का सदैव अनुकूल रहना असम्भव है।'' अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था से उस समय के लोग एकदम अनभिज्ञ थे। प्रत्येक देश अपने को सशस्त्र बनाना चाहता था और इसी दिशा में उन्होंने उस समय प्रयत्न किया। अतः वणिकवादियों ने विदेशी–व्यापार पर तो बल दिया, परन्तु आन्तरिक व्यापार को वह भुला बैठे थे।

### 1.5.4 विदेशी व्यापार को अत्यधिक महत्वः

वणिकवादियों ने विदेशी व्यापार को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया था। उन्होंने आन्तरिक व्यापार व कृषि की पूर्णतया उपेक्षा कर दी। जबकी कृषि के द्वारा ही व्यापार के लिए कच्चा माल प्राप्त होता है। अतः इसकी उपेक्षा करना उचित नहीं है। वणिकवादी समझते थे कि विदेशी व्यपार से सिर्फ निर्यातकर्ता देश को ही लाभ प्राप्त होता है जबकि सत्य तो यह है कि आयातकर्ता देश को भी इससे लाभ प्राप्त होता है।

### 1.5.5 कॉलबर्ट की आर्थिक नीति की पराजयः

कॉलबर्ट ने कृषि की अपेक्षा उद्योग–धन्धों को अधिक महत्व दिया। जनता ने इसका घोर विरोध करना आरम्भ कर दिया। अब लोग औद्योगिक व व्यापारिक नियन्त्रणों की अपेक्षा स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था पर अधिक विश्वास करने लगे। कृषि की दशा खराब होने के कारण तथा राजकीय व्यय में वृद्धि होने से राजकोष खाली होने लगे। जिसे पूरा करने के लिए भारी करारोपण किया गया। लोगों में इस सबके खिलाफ आक्रोश फैल गया और वे इसका खुलकर विरोध करने लगे।

### 1.5.6. अवन्ध व्यापार की नीति का उदयः

1776 में एडम स्मिथ के ग्रन्थ 'Wealth of Nations' के प्रकाशन के साथ ही अबन्ध व्यापार की नीति का प्रादुर्भाव हुआ। औद्योगिक क्षेत्र में नवीन अनुसन्धानों, बड़े पैमाने के उत्पादन, श्रम–विभाजन और विशिष्टीकरण के चलते सरकारी हस्तक्षेप सम्बन्धी कठिनाइयाँ सामने आईं। अतः सरकारी नियन्त्रण को समाप्त कर अबंध व्यापार की नीति का उद्‌भव हुआ। व्यापार समझौतों के स्थान पर स्वतन्त्र व्यापार को प्रगति के लिए उपयुक्त समझा जाने लगा था। राजकीय नियन्त्रित कम्पनियों के स्थान पर निजी कम्पनियाँ स्वेच्छा से आयात निर्यात का कार्य करने लगीं थी।

### 1.5.7. एडम स्मिथ के प्रभावपूर्ण विचारः

एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'Wealth of Nation' में व्यापारवाद की कमजोरियों को लोगों के सामने रखा तथा निर्वाधवादियों के साथ मिलकर अहस्तक्षेप की नीति का खुलकर समर्थन किया। एडम स्मिथ के अनुसार वणिकवादी व्यवस्था व्यावसायिक वर्ग के द्वारा जनता के साथ किया गया एक घोखा

था। ''व्यापारियों और निर्माताओं के द्वारा अपने हितों की वृद्धि के लिए दिये गये कुतर्कों ने मानव समाज की सामान्य वृद्धि को सम्भ्रान्त कर दिया था।''

### 1.5.8 नियन्त्रणों का विरोधः

उत्पादन तथा उपभोग के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के नियन्त्रणों का व्यक्तिगत आर्थिक स्वतन्त्रता तथा सन्तुलित आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से विरोध किया गया। **प्रो० हैने** का मत है कि, ''18 वीं शताब्दी के द्वितीय अर्द्ध भाग में औद्योगिक क्रान्ति और बढ़ती हुई राजनैतिक स्वतन्त्रता के कारण वणिकवाद का परित्याग प्रारम्भ हो गया।''

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जिन तत्वों के आधार पर व्यापारवाद की आलोचना की जाती है, वही तत्व व्यापारवाद के पतन का कारण बने। धीरे–धीरे वणिकवाद का अन्त व प्रकृतिवाद का उदय होता चला गया और स्वतन्त्रतावाद का विकास हुआ। फिर भी वणिकवाद का अपना अलग ही महत्व है। कीन्स ने वणिकवाद के आधार पर अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया तथा करारोपण, लगान व ब्याज सम्बन्धी विचार वणिकवाद की ही देन है।

## 1.6 वणिकवाद का मूल्यांकन (Evaluation of Mercantilism)

वणिकवादी अर्थशास्त्री व्यवहारिक थे। उनका दृष्टिकोण राष्ट्रवादी था। उनका मुख्य उद्देश्य धन एकत्र करना था। इसलिए अन्य देशों के शोषण करने से वे चूकते नहीं थे। आज भी यही दृष्टिकोण है परन्तु इतना संकुचित नहीं है। अभी भी विदेशी व्यापार, निर्यात उद्योगों का विकास संरक्षण की नीति आदि लगभग देशों द्वारा मान्य है। अभी भी आयात कम व निर्यात अधिक की नीति पर बल दिया जाता है। वणिकवादियों ने सोने व चाँदी आदि मूल्यवान धातुओं को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया था। उनका उद्देश्य किसी भी तरीके से घन एकत्र करना था। जबकि आज के विचार में धन किसी भी उपयोगी वस्तु को कहते है जिसका मूल्य है।

वणिकवादियों ने व्यापार को कृषि व उद्योग से अधिक महत्व दिया। उनका प्रधान उद्देश्य धन कमाना था। इसलिए उन्होंने व्यापार को अत्यधिक महत्व दिया। **जोहन्स हेनरिक वॉन जस्टी (Johannes Heinrich Von Justi) (1717–1771)** ने अपनी पुस्तक 'FINANZ & SCHRIFTEN' में लिखा है कि, ''व्यापार के अतिरिक्त जनता के धनी होने का कोई रास्ता नहीं है।'' अतः उद्योग व कृषि को क्रमशः द्वितीय व तृतीय स्थान प्राप्त हुआ। आज का युग यह समझ चुका है कि सिर्फ विदेशी व्यापार द्वारा घन एकत्र करने से सभी आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव नहीं है। अतः आज प्रत्येक देश कृषि व उद्योग को प्रमुख स्थान प्रदान कराता है। यद्यपि विदेशी व्यापार को आज भी महत्व दिया जाता है। फिर भी भारतीय परम्परा में खेती को सबसे उत्तम बताया गया है। 'उत्तम खेती मध्यम वान। वणिकवादियों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि वह सिर्फ अपने ही देश के हित को महत्वपूर्ण मानते थे। जबकि आज अन्तर्राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखा जाता है। वर्तमान दृष्टिकोण अधिक उदार व मानवतावादी होता जा रहा है। यद्यपि राष्ट्र के हित को आज भी महत्व दिया जाता है। **वर्ट्रेण्ड रसैल** के अनुसार, ''प्रत्येक युग की अपनी मूर्खता होती है। हमारी मूर्खता राष्ट्रवाद है।'' वणिकवाद में एक दोष यह भी था कि उन्होंने उपभोक्ता के हित को महत्व न देकर केवल उत्पादक के हित को ही महत्व दिया। जिसके परिणामस्वरूप साम्राज्यों का विस्तार हुआ ।

## 1.7 नव–वणिकवाद (Neo & Mercantilism)

20वीं शताब्दी में द्वितीय महायुद्ध के पश्चात नव–वणिकवाद का उदय हुआ तथा 1930 की विश्वव्यापी मन्दी नव–वणिकवाद के पुनः उदय का प्रधान कारण बनीं। नव–वणिकवाद में सोना–चाँदी का अंधविश्वास समाप्त हो गया। आर्थिक दृष्टिकोण को अधिक महत्व दिया गया तथा घन का उपयोग गरीब जनता को रोजगार देने और उनकी गरीबी दूर करने के लिए की गई। नव–वणिकवाद पर राष्ट्रवादी विचारधारा का प्रभाव होने के कारण **फ्रेडरिक लिस्ट ने इसे नव–राष्ट्रवाद** का नाम दिया। नव–वणिकवाद में विदेशी विनिमय की बचत, आत्म–निर्भरता, रोजगार की वृद्धि, जनसंख्या की वृद्धि की समस्या, खाद्य पदार्थों की कमी, कच्चे माल की कमी तथा विदेशी व्यापार सम्बन्धी नीति आदि पर ध्यान दिया गया है।

नव–वणिकवाद में अवमूल्यन, राज्य सहायता तथा राजकीय व्यापार आदि द्वारा व्यापार को बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है। आज के कार्य योजनाबद्ध होते हैं। मुद्रा, साख, कर, लोक ऋण तथा विदेशी पूंजी इत्यादि के उपयोग में आज बहुत प्रगति हुई है। **हैने** का कथन है कि, ''नव–वणिकवाद प्राचीन वणिकवाद से एक बात में बहुत भिन्न है जो यह कि नव–वणिकवाद आदर्शवादी दृष्टिकोण रखता है। अर्थात इसका उद्देश्य जन–कल्याण है न कि महत्वकांक्षी राजाओं की साम्राज्य लिप्सा।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि नव–वणिकवाद, वणिकवाद पर एक सुधार है। यद्यपि आज भी विकसित देश कुछ हद तक वणिकवादी विचारधारा से ग्रस्त है परन्तु उन्हें यह छोड़कर विकासशील देशों के हित को बढ़ाना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी यह विचार फैल रहा है कि गरीब देशों के विकास के लिए सम्पन्न देश त्याग करें। विकासशील देशों के लिये तो यह आवश्यक है कि उनका निर्यात बढ़े और आयात सीमित रहें। अतः किसी न किसी सीमा तक उन्हें संरक्षण अपनाना ही पड़ेगा और वणिकवाद के कई सिद्धान्त मानने पड़ेगे फिर भी वणिकवाद को कुछ न कुछ उदार अवश्य बनाया जा सकता है।

### 1.8 सारांश

आर्थिक विचारों के इतिहास में वणिकवाद प्रथम व्यवस्थित विचार थे। ये आर्थिक विचचार तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक वातावरण के अनुकूल थे। ये विचार अपने समय के लिए काफी क्रांतिकारी थे। इसमें तात्कालिक धार्मिक अंधविश्वासों के विरूद्ध राज्य का पक्ष मजबूत किया था। शक्तिशाली राज्य की स्थापना उस समय की मांग थी। इसके लिए बड़ी सेना और मजबूत अर्थव्यवस्था की आवश्यकता थी। वणिकवादियों ने इसी के अनुकूल अपने विार प्रस्तुत किए थे। वे सोना चाँदी और अन्य कीमती धातुओं को ही धन मानते थे तथा इनके संग्रह के लिए विदेशी व्यापर को महत्वपूर्ण साधन मानते थे। हालांकि उनकी यह सोच एकांगी थी। जब सभी देश केवल अपना निर्यात को बढ़ावा देने की सोचेंगे तो आयात के अभाव में विदेशी व्यापार सम्भव नहीं हो सकता है। कृषि एवं उद्योगों की उपेक्षा के कारण भी इसकी आलोचना की जाती है।

इस व्यवस्था की सबसे बड़ी खामी यह थी कि व्यापार से प्राप्त धन का उपयोग जनता की भलाई के लिए न करके दूसरे देशों से यद्ध आदि अनावश्यक आक्र विनाशकारी कार्यों के लिए किया जाता था। तमात खामियों के कारण इसका पतन सुनिश्चित हुआ और इसके विरोध में प्रकृतिवाद का उदय हुआ।

### 1.9

### 1.10 अभ्यास के प्रश्न

1. **वणिकवाद से आप क्या समझते हैं?**
2. **वणिकवाद को अन्य किन नामों से पुकारा जाता था?**
3. **वणिकवाद के उदय के कारणों पर प्रकाश डालें।**
4. **वणिकवाद के प्रमुख आर्थिक विचारों का उल्लेख करें।**
5. **वणिवादियों का जनसंख्या के प्रति क्या विचार थे?**
6. **वणिकवादी सोना चाँदी एवं अन्य कीमती धातुओं को क्यों महत्व देते थे?**
7. **वणिकवाद के पतन के प्रमुख कारणों का उल्लेख करें।**
8. **नव वणिकवाद से आप क्या समझते हैं?**

### 1.11 उपयोगी पुस्तकें

**एम सी वैश्य ().** आर्थिक विचारों का इतिहास. सप्तम संस्करण, प्रकाशक– मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर।

Eric Roll (1986). A History of Economic Thought. Forth Edition. Calcutta Oxford University Press (India)

टी एन हजेला (2002). आर्थिक विचारों का इतिहास. नौवाँ संस्करण, कोणार्क पब्लिशर्स प्रा. लि., नयी दिल्ली 110092।

फ्रैंक थिली (2018). पश्चात दर्शन का इतिहास (अनुवादक– एन. ए. खान 'शाहिद'), अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लिमिटेड, नर्द दिल्ली– 110002।

बी. एस. यादव, नन्दिनी शर्मा एवं उपासना शर्मा (2011). आर्थिक विचारों का इतिहास. प्रकाशक– यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नयी दिल्ली।

शिव नारायण गुप्त (2005). आर्थिक विचारों का इतिहास. प्रथम संस्करण, मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन वाराणसी।

# इकाई–3

## प्रकृतिवाद, प्राकृतिक व्यवस्था

1.1 उद्देश्य
1.2 परिचय
1.3 प्रकृतिवाद के उदय के कारण
1.4 प्रकृतिवाद के प्रमुख सिद्धान्त

1.4.1 प्राकृतिक व्यवस्था का सिद्धान्त (**Theory of Natural Order**)

1.4.2. शुद्ध उत्पादन का सिद्धान्त (**Theory of Net Product**)

1.4.3. धन के परिभ्रमण का सिद्धान्त (**Theory of Circulation of Wealth**)

1.4.4. प्रकृतिवादियों के अन्य आर्थिक विचार

1.4.4.1 कर प्रणाली

1.4.4.2 विदेशी व्यापार

1.4.4.3 व्यक्तिगत सम्पत्ति

1.4.4.4 मूल्य सम्बन्धी विचार

1.4.4..5 मजदूरी, ब्याज एवं जनसंख्या सम्बन्धी विचार

1.5 प्रकृतिवाद का महत्व एवं प्रभाव

1.6 प्रकृतिवाद तथा वणिकवाद एक तुलनात्मक अध्ययन

1.7 प्रकृतिवाद का पतन

1.8 सारांश
1.9 अभ्यास के प्रश्न

1.10 उपयोगी पुस्तकें

## 1.1 उद्देश्य

वर्तमान इकाई का प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

- प्रकृतिवाद का परिचय कराना
- प्रकृतिवाद के प्रमुख अर्थिक विचारों को जानना
- प्राकृतिवाद और वणिकवाद का तुलनात्मक अध्ययन करना
- प्रकृतिवाद के पतन के कारणों को जानना

## 1.2 परिचय

18 वीं शताब्दी के मध्य में फ्रांस में प्रचलित विचारधारा को प्रकृतिवाद की संज्ञा दी गई तथा इन विचारकों को प्रकृतिवादी कहा गया। फिज्योक्रेसी (Physiocracy) शब्द फ्रेन्च भाषा से लिया गया है। जो ग्रीक के 'फिजियस' और 'क्रेट्स' नामक दो शब्दों से मिलकर बना है जिसका अर्थ 'प्रकृति का शासन' (Rule of Nature) है। प्रकृतिवादियों का मत था कि सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था का मुख्य आधार एक प्राकृतिक विधान है अर्थात आर्थिक व्यवस्था प्राकृतिक नियमों द्वारा संचालित होती है। उनका मत था कि प्राकृतिक व्यवस्था प्रत्येक दृष्टिकोण से लाभप्रद है, क्योंकि इससे व्यक्ति व समाज दोनों का ही कल्याण होता है। प्रकृतिवाद की कुछ परिभाषाएँ निम्न हैं:

**जीड एवं रिस्ट** के अनुसार, ''प्रकृतिवाद का यह अर्थ निकाल सकते हैं कि वह एक प्राकृतिक स्थिति है जबकि सभ्य सामाजिक व्यवस्था एक कृत्रिम व्यवस्था है। इस प्रकार की प्राकृतिक व्यवस्था को खोजने के लिए तो हमको आदि कालीन जीवन का पता लगाना होगा।''

**टेलर के अनुसार,** ''समस्त मानवीय समुदाय का प्राकृतिक नियम के द्वारा पूर्णतः शासन है।''

**ड्यूपोण्ट डि नेमर्स के अनुसार,** ''प्रकृतिवादी प्राकृतिक नियमों का विज्ञान है।''

**जे० डब्ल्यू नार्मन के अनुसार,** ''प्रकृतिवाद कुछ विशिष्ट राजनीतिक उद्देश्यों का विवेकीकरण है।''

**हिवटेफर के अनुसार :** ''प्रकृतिवाद बुद्धिजीवियों का एक छोटा–सा समूह था जिन्होंने आर्थिक दृष्टिकोण से परिस्थिति का निदान और उसका उपचार किया।''

यह विचारधारा मुख्य रूप से फ्रांस में विकसित हुई। इस विचारधारा के प्रमुख विचारक **डॉ० फ्रान्सिस क्विजने, मिराबू, मर्सियर द ला रिवियर, ड्यूपोण्ट डि नेमर्स, रॉबर्ट जैक्स तारगो, ले ट्रॉस्ने, एवं बैंद्य** आदि प्रमुख प्रकृतिवादी विचारक थे ।

## 1.3 प्रकृतिवाद के उदय के कारण

प्रकृतिवाद, वणिकवाद पर एक सुधार स्वरूप है। वणिकवाद के पतन के साथ–साथ प्रकृतिवाद का जन्म हुआ। सर्वप्रथम प्रकृतिवाद का उदय एवं विकास फ्रांस में हुआ। According to 'Haney' – "Physiocracy, though it meant much more, had several motives, might also be defined as a revolt of the French against Mercantilism."

### प्रकृतिवाद के उदय के निम्नलिखित कारण थे:

### 1. फ्रांस की बदलती आर्थिक प्रणाली:

लुई 15वें एवं लुई 16वें के शासनकाल में कुछ आर्थिक नीतियों के कारण फ्रांस की आर्थिक व सामाजिक दशा शोचनीय हो गई। राजा ने 'मैं राज्य हूँ' का सिद्धान्त अपनाकर जनता का शोषण किया। इस बीच कई युद्ध हुए। सम्राट का व्यभिचार व अपव्ययिता बढ़ते गये। जिसे पूरा करने के लिए जनता

पर भारी कर लगाये गये जिससे जनता में विद्रोह पैदा हो गया। समाज में एक क्रांति सी फैल गयी और फ्रांस की सत्ता का पतन हो गया। **प्रो० हैने** ने तत्कालीन फ्रांस की तुलना उस रेलवे फ्रैक्ट्री से की है 'जिसके ह्रास व क्षय के लिये कोई व्यवस्था नहीं हो जिसकी उत्पादन शक्ति क्षिण हो चुकी हो तथा जिसकी साख व्यवस्था हिल चुकी हो।' **गिलबर्ट तथा वॉबन** के नये विचारों ने फ्रांस की जनता में आशा की एक नयी किरण प्रस्फुटित की जिसके परिणामस्वरूप प्रकृतिवादी विचारधारा को बल मिला।

**2. जनता पर भारी करारोपणः**

लुई 15वें व 16वें के शासनकाल में जनता पर भारी कर लगाये गये । फ्रांस के पादरी व विशेषाधिकार वर्ग को कर की छूट थी तथा कृषक वर्ग व साधारण जनता से भारी मात्रा में कर वसूल किया जाता था। सड़क व पुल का प्रयोग करने पर कर लिया जाता था। इतना ही नहीं आवश्यक खाद्य सामग्री नमक तक पर भारी कर लिया जाता था। जनता द्वारा इसका विरोध करना स्वाभाविक था। अतः किसानों व कारीगरों पर हुए अत्याचार ने प्रकृतिवादी विचारधारा के निर्माण में सहयोग दिया।

**3. दोषपूर्ण वणिकवादी नीतियाँः**

परिस्थितियों के परिवर्तन के कारण वणिकवादी सिद्धान्तों में दोष दृष्टिगोचर होने लगे। प्रकृतिवादियों ने वणिकवदियों की विदेशी व्यापार, करारोपण, विभिन्न व्यवसायों की उत्पादकता तथा व्यापारिक नियन्त्रण सम्बन्धी नीतियों की कटु आलोचना कर समाधान प्रस्तुत किया। उन्होंने स्वतन्त्र विदेशी व्यापार का समर्थन किया तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को भी महत्वपूर्ण बताया। सोने–चाँदी को अत्यधिक महत्व देने का प्रकृतिवादियों ने कड़ा विरोध किया। इन विचारकों ने कृषि पर अत्यधिक ध्यान दिया। प्रो० हैने के अनुसार, ''वणिकवादी युग में फ्रांस में पायी जाने वाली सामाजिक एवं राजनैतिक दशाएँ ही प्रकृतिवाद के प्रार्दुभाव के लिए उत्तरदायी है। उस समय करारोपण एवं द्रव्य सम्बन्धी सरकार की नीतियाँ समाज के आन्तरिक संगठन एवं विकास के हेतु अत्यन्त हानिकारक थीं।''

**4. इंग्लैण्ड में कृषि क्रान्तिः**

फ्रांस की अर्थव्यवस्था पर कृषि उपज में तेजी से गिरावट के कारण बुरा असर पड़ा। जबकि इंग्लैण्ड में कृषि को अधिक महत्व देने के कारण कृषि में क्रान्तिकारी उपज प्राप्त हुई। जिससे इंग्लैण्ड समृद्धि की ओर बढ़ गया। डॉ० क्विजने इंग्लैण्ड के कृषि सुधारों की ओर विशेष आकर्षित हुए तथा उन्होंने इन सिद्धान्तों को फ्रांस में सफलतापूर्वक लागू किया। इस कार्य में योगदान करने वालों में न्यूटन, ह्यूम तथा लॉक के नाम उल्लेखनीय हैं।

**5. वैज्ञानिक अनुसंधानों का प्रभावः**

न्यूटन के गुरूत्वाकर्षण का नियम तथा क्विजने के कृषि सम्बन्धी एवं शरीर–रचना सम्बन्धी नियमों ने यह सिद्व कर दिया कि प्रकृति एक निर्धारित व निश्चित नियम के अनुसार कार्य करती है जो प्रत्येक मनुष्य के लिए हितकर है। अतः प्रकृति के प्रति बढ़ती आस्था ने प्रकृतिवाद को जन्म दिया।

## 1.4 प्रकृतिवाद के प्रमुख सिद्धान्त

प्रकृतिवाद के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं :

### 1.4.1 प्राकृतिक व्यवस्था का सिद्धान्त (Theory of Natural Order):

यह प्रकृतिवाद का मूल सिद्धान्त है। **ड्यूपोण्ट डि नेमर्स** ने प्रकृतिवाद की परिभाषा देते हुए कहा है कि ''प्रकृतिवाद प्राकृतिक विधान का विज्ञान है।'' **रूसो** के ग्रन्थ 'Contract Social' से भी यही संकेत मिलता है। प्रकृतिवादियों के अनुसार यह व्यवस्था प्राकृतिक नियमों द्वारा संचालित होती है। उनके अनुसार सामाजिक व्यवस्था दो प्रकार की होती है। (i) प्रकृति पर आधारित, तथ (ii) मनुष्य द्वारा निर्मित। मनुष्य द्वारा निर्मित व्यवस्था में स्वार्थ को प्रमुखता दी जाती है। जबकि प्रकृति स्वार्थी नहीं होती। प्रकृति द्वारा सदैव सभी का हित होता है। अतः प्राकृतिक व्यवस्था ईश्वरीय, शाश्वत व मानव कल्याण की द्योतक है। **जीड एण्ड रिस्ट** के अनुसार प्रकृतिवादी जंगल के नियम के समर्थक नहीं थे,

''प्रकृतिवादियों में जंगलीपन या बर्बरता का कोई लक्षण नहीं था। वे सब प्रतिष्ठित एवं सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति थे।'' **क्विजने** के अनुसार, 'प्राकृतिक अधिकार प्रकृति की अवस्था में उपलब्ध नहीं हो सकता।'' ''प्राकृतिक अधिकार तभी उत्पन्न होता है जब न्याय और श्रम प्रतिष्ठित होते हैं।'' **हैने** के अनुसार, ''समाज का प्राकृतिक विधान प्राकृतिक अवस्था से भिन्न वस्तु है, क्योंकि प्राकृतिक विधान नियम तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति पर आधारित है। **क्विजने** ने प्राकृतिक व्यवस्था को ईश्वर का एक आदर्श नियन माना है। उनके अनुसार, ''प्राकृतिक व्यवस्था ऐसी शारीरिक संरचना है जिसे कि स्वयं ईश्वर ने संसार को प्रदान किया है।'' अतः प्रकृतिवादियों का मत था कि मनुष्य को ईश्वर के बनाये हुये नियमों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। उनके अनुसार सभी कुछ प्रकृति के अनुसार व्यवस्थित होने पर मानव जीवन सुखी बनेगा । प्रकृतिवादी मत के अनुसार, ''समाज के मौलिक नियम मनुष्य के हृदय पर अकिंत होते हैं और वे ही उस प्रकाश का कार्य करते हैं जो उसके अन्तःकरण को प्रकाशित करता है।'' अतः प्राकृतिक व्यवस्था मनुष्य की भलाई के लिए ईश्वर द्वारा प्रदत्त की गई है। उनके अनुसार यदि मनुष्य प्रकृति पर निर्भर रहे उसके कार्य में हस्तक्षेप न करें तो प्रकृति मनुष्य को स्वर्गीय आनन्द की अनुभूति कराती है। प्रकृतिवादियों ने इसे भगवान द्वारा पूरे संसार के लिए बनाया बताया है। अतः इससे सदैव सम्पूर्ण मानव जाति का कल्याण होता है। प्रकृतिवादियों की एक महत्वपूर्ण युक्ति है Laissez Faire-Lasseze Passer अर्थात ''रूकावट न डालो, जाने दो। अतः मनुष्य को बिना किसी हस्तक्षेप के अपनी इच्छानुसार कार्य करने दो। प्रकृतिवादियों के इस नारे से प्रेरित होकर, **क्विजने** ने कहा है, ''हर व्यक्ति को यह स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि कम से कम व्यय में वह अधिक से अधिक आनन्द प्राप्त कर सके। जब प्रत्येक व्यक्ति यह करेगा तब प्राकृतिक विधान संकट में नहीं पड़ेगा बल्कि निश्चित हो जायेगा।'' **क्विजने** के अनुसार शिक्षा प्रणाली भी इस तरह की होनी चाहिए कि सभी व्यक्ति प्राकृतिक विधान से परिचित हो सकें। सामाजिक व राजनीतिक हस्तक्षेप कम से कम होना चाहिए। अतः जो भी नियम बनाये जाएँ वह प्राकृतिक विधान के पालन में सहायक हों। प्राकृतिक अधिकार (Natural Right) का सिद्धानत भी इसी सिद्धान्त पर आधारित है। मनुष्य का किसी वस्तु पर कितना अधिकार होना चाहिए इस सम्बन्ध में **क्विजने ने लौक** का यह सिद्धान्त माना है कि जितना धन मनुष्य ने अपने श्रम से उत्पन्न किया है वह उसका है। यही उसका प्राकृतिक अधिकार है।

अतः प्रकृतिवादी, प्राकृतिक विधान को सर्वोत्तम समझते थे। उनके अनुसार, इस नियम का अनुसरण करने पर मनुष्य स्वतन्त्र व सभ्य बनेगा। प्रकृतिवादियों ने आर्थिक स्वतन्त्रता का महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किया जिसके आधार पर एड्म स्मिथ एवं उनके अनुयायियों ने आर्थिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

**आलोचनात्मक व्याख्याः**

प्राकृतिक व्यवस्था के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या निम्नलिखित हैंः

प्रकृतिवादी व्यवस्था पूर्ण रूप से प्रकृति पर आधारित थी। कई अर्थशास्त्रियों ने तो इसे, 'प्राकृतिक राज्य' को संज्ञा भी दी। परन्तु सभी आवश्यकताएँ प्रकृति द्वारा पूर्ण नहीं की जा सकती। अतः भौतिक जगत में व्यापार व उद्योग को आवश्यक समझा जाने लगा। प्रकृतिवादियों ने सामाजिक प्रतिबन्धों का विरोध किया था परन्तु इसकी सीमा निश्चित नहीं की थी। भौतिक जगत में सामाजिक प्रतिबन्धों को कुछ हद तक आवश्यक समझा गया है। लगभग सभी राज्यों में विकास के लिये ये प्रतिबन्ध आवश्यक भी माने गये हैं लेकिन प्रकृतिवादियों ने सरकारी प्रतिबन्धों को अनावश्यक माना। उनके अनुसार, ''अधिकांश प्रभावशाली प्रकृतिवादियों का मुख्य विचार यह था कि मनुष्य अपना हित सर्वोत्तम विधि से जानता है अतः वह सरकार के नियमों की अपेक्षा प्रकृति के इसी नियम के अनुसार अनुसरण करता है। **हैने** के अनुसार प्रकृतिवादी समझते थे कि समाज के सदस्य अपने हितों व अहितों का तथा दूसरे के साथ सहयोग को अच्छी तरह समझते हैं और प्रकृति के नियमों का पालन करके चलते हैं यह कथन सही नहीं है क्योंकि यदि सभी मनुष्य एक दूसरे का हित सोचते तो आज के समाज में गरीबी अमीरी, हर्ष–गम, ऊँच–नीच आदि न होते। क्योंकि किसी व्यक्ति के हित किसी दूसरे व्यक्ति के हित नहीं हो सकते। इस प्रकार इस सिद्धान्त में कई स्थानों पर विरोधाभास पाया गया है क्योंकि प्राकृतिक विधान का ज्ञान होना सभी के लिए सम्भव नहीं है।

प्रकृति हमें सदैव सुख प्रदान करती है यह तथ्य भी दोषपूर्ण है क्योंकि मानव का सुख का विचार दार्शनिक सुख के विचार से भिन्न हो सकता है। श्री अरविन्द का कथन है, ''नियति (Providence)

केवल वह ही नहीं है जो संकट में हमारी सहायता करती है नियति वह भी है जो समुद्र में हमारे अन्तिम सहारे को हमसे छीन लेती है।'' अतः स्पष्ट है कि ईश्वर सदा हमें भोजन ही प्रदान नहीं करता वरन् हमें भूखों भी मार सकता है। वह अपने तरीके से कार्य करता है। अतः यह प्राकृतिक विधान का सिद्धान्त न होकर, ईश्वरीय विधान का सिद्धान्त अधिक सिद्ध होता है।

### 1.4.2. शुद्ध उत्पादन का सिद्धान्त (Theory of Net Product):

प्रकृतिवादियों के 'प्राकृतिक व्यवस्था' के सिद्धान्त के उपरान्त 'शुद्ध उत्पादन' का सिद्धान्त प्रकृतिवादियों का दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। 'शुद्ध उत्पादन' का अर्थ स्पष्ट करते हुए **प्रो० जीड** ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक'। **'History of Economic Doctrines'** में लिखा है, ''आवश्यकता के प्रत्येक उत्पादन कार्य में कुछ न कुछ सम्पत्ति की हानि अवश्य होती है। दूसरे शब्दों में, नई सम्पत्ति के उत्पादन में धन का कुछ परिमाण नष्ट होता है यह परिमाण नई उत्पादित सम्पत्ति के परिमाण में से घटा देना चाहिए। यह अन्तर सम्पत्ति में वृद्धि है जो कि प्रकृतिवादियों के समय से ''शुद्ध उत्पादन'' के नाम से जानी जाती है।'' इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी भी धन के उत्पादन में व्यय की गयी राशि लागत कहलाती है तथा इसे जब उत्पन्न घन में से घटाया जाता है तब प्राप्त उपज को शुद्ध उपज कहते हैं। शुद्ध उपज ही समाज की वास्तविक आय कहलाती है। ड्यूपोण्ट के नेमर्स (Dupont de Nemours) के अनुसार, ''मनुष्य जाति की समृद्धि अधिकतम शुद्ध उपज पर आश्रित है।''

प्रकृतिवादियों के अनुसार शुद्ध उपज प्राकृतिक देन है। **एरिक रोल** के अनुसार, ''मनुष्य का जो श्रम शुद्ध उत्पादन या बचत अर्जित कर सकता है वही उत्पादक है। इसके अतिरिक्त सब श्रम अनुत्पादक है। अतः स्पष्ट है कि व्यापार व उद्योग की अपेक्षा कृषि को अधिक महत्व दिया गया। कृषि के अतिरिक्त अन्य उद्योगों में कार्यरत वर्ग की अनुत्पादक वर्ग समझा गया। **मर्सियर डी ला रिवियरि** के अनुसार, ''इन उद्योगों में मूल्य बढ़ता है परन्तु धन का उत्पादन नहीं होता।''

प्रकृतिवादियों के अनुसार मनुष्य न तो किसी पदार्थ का निर्माण कर सकता है और न ही उसे नष्ट कर सकता है। वह केवल प्रकृति के सहयोग से ही कार्य कर सकता है तथा उसी से उसे शुद्ध उत्पादन प्राप्त होता है। **ली ट्रोसने** के अनुसार, ''यह भौतिक सत्य है कि पृथ्वी ही समस्त वस्तुओं की स्रोत है, इतना स्पष्ट है कि इसमें कोई सन्देह नहीं कर सकता।'' **क्विजने** ने तो कृषि को समस्त राज्य की सम्पत्ति का स्रोत कहा है। उनके अनुसार, ''कृषि राज्य की समस्त सम्पत्ति एवं समस्त नागरिक सम्पत्ति की स्रोत है।'' प्रकृतिवादी कृषि को अधिक महत्व दिए जाने के पक्ष में थे। वे उद्योग व व्यापार को समाप्त नहीं करना चाहते थे। उनके अनुसार वह कृषि ही है जो उद्योग व वाणिज्य को कच्चा माल प्रदान करती है। **डॉ० क्विजने** के अनुसार, ''कृषि और वाणिज्य हमारी सम्पत्ति के दो स्रोत माने जाते हैं। उद्योग की भाँति वाणिज्य भी कृषि की एक शाखा है। यह कृषि ही है जो उद्योग और वाणिज्य को कच्चे माल प्रदान करती है और जिससे दोनों को लाभ प्राप्त होता है जो सम्पत्ति का नवीनीकरण करती है जिसका प्रतिवर्ष व्यय और उपभोग किया जाता है।'' **टरगॉट (Turgot)** ने भी कृषि को महत्व देते हुए लिखा है कि, ''कृषि प्रतिवर्ष प्रतिफल उत्पन्न करती है, खदान ऐसा प्रतिफल उत्पन्न नहीं करती। खनिज स्वयं संचित प्रतिफल है।''

अतः प्रकृतिवादी कृषि को उत्पादक मानते थे और उद्योग व वाणिज्य को अनुत्पादक, परन्तु उनका उद्देश्य उन्हें समाप्त करना बिल्कुल नहीं था। वे सिर्फ कृषि को महत्व दिए जाने के पक्ष में थे। **प्रो० जीड और रिस्ट** के शब्दों में, ''प्रकृतिवादियों ने कृषि और औद्योगिक उत्पादन के बीच जो आवश्यक अन्तर किया उसका आधार आध्यात्मिक था। पृथ्वी के उत्पादन में ईश्वर का हाथ रहता है, जबकि शिल्प एवं उद्योगों में मनुष्य कार्य करता है जो वस्तु का सृजन कर सकता है।'' मिस्टर बाउडू (Mr. Baudeau) ने भी यही कहा है, ''अनुपयोगी होना तो दूर रहा, ये वे कलायें हैं जो जीवन की विलासिता सम्बन्धी एवं आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति करती हैं और इन पर मानव जाति की सुरक्षा एवं कल्याण निर्भर रहता है।''

**आलोचनात्मक व्याख्या:**

शुद्ध उत्पादन सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या निम्नलिखित है:

प्रकृतिवादियों ने कृषि को उत्पादक व उद्योगों को अनुत्पादक माना जबकि सत्य तो यह है कि अन्य उद्योगों व व्यवसायों से भी शुद्ध उपज प्राप्त होती है। **एलैक्जेण्डर ग्रे** के शब्दों में, ''प्रकृतिवादियों का यह तर्क कि केवल कृषि में ही शुद्ध उपज मिलती है अन्य किसी उद्योग में नहीं नितान्त भ्रमपूर्ण है।'' प्रकृतिवादियों का उत्पादक व अनुत्पादक का भेद निरर्थक था। उनके अनुसार भूमि का स्वामी ही उत्पादक वर्ग कहा जायेगा जबकि भूमि पर कार्यरत श्रमिक अनुत्पादक वर्ग। यह कथन दोषपूर्ण है जबकि सत्य तो यह है कि कृषक ही भूमि पर अपना श्रम लगाकर कुछ पैदा करते है अतः वह उत्पादक वर्ग है और भू–स्वामी अनुत्पादक क्योंकि वह कोई कार्य नहीं करता ।

प्रकृतिवादियों का यह कथन की कृषि पर ही उद्योग निर्भर रहते है निरर्थक जान पड़ती है क्योंकि कृषि भी उद्योगों पर निर्भर करती है। जैसे मशीनें, सिंचाई के साधन, उर्वरक आदि उद्योगों की सहायता से कृषि में वृद्धि हुई है।

प्रकृतिवादियों का यह स्वीकार करना की सिर्फ कृषि से ही अतिरेक प्राप्त होता है सही नहीं है। कृषि में हानि भी होती है। अतः कृषि से सदैव अतिरेक प्राप्त नहीं होता।

अतः उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि शुद्ध उत्पादन कृषि में ही नहीं वरन अन्य उद्योगों में भी प्राप्त होता है। प्रकृतिवादियों का कृषि को अधिक महत्व देना वणिकवादियों का विरोध करना था क्योंकि उन्होंने कृषि को तृतीय स्थान प्रदान किया था। अतः वणिकवादियों के पतन के लिए यह सिद्धान्त आवश्यक था। इन्होंने कृषि में शुद्ध उत्पादन इसलिए माना क्योंकि भूमि ईश्वरीय देन है उस पर मनुष्य जो भी कार्य करेगा, उसे अतिरेक प्राप्त होगा क्योंकि इसमें मनुष्य का हस्तक्षेप बहुत कम होता है। प्रकृतिवादियों के शुद्ध उत्पादन के सिद्धान्त ने आर्थिक विश्लेषण के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया क्योंकि इसी के आधार पर उपभोक्ता की बचत आदि सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया। **रोबर्टस एवं कार्ल मार्क्स** आदि के विचारों में प्रकृतिवादियों द्वारा प्रतिपादित 'अतिरेक' के विचार ने महत्वपूर्ण योगदान किया है।

### 1.4.3. धन के परिभ्रमण का सिद्धान्त (Theory of Circulation of Wealth):

वे प्रकृतिवादी ही थे जिन्होंने सर्वप्रथम धन के परिभ्रमण का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। वे यह जानना चाहते थे, कि समाज में धन का परिभ्रमण किस प्रकार होता है। **डॉ० क्विजने** ने 'रक्त परिभ्रमण सिद्धान्त' (Theory of blood circulation) के आधार पर अपनी 'आर्थिक सारणी' (Tableau Economique or Economic Table) का निर्माण किया। उन्होंने इस सिद्धान्त के आधार पर यह बताया कि जिस प्रकार शरीर में रक्त का परिभ्रमण प्रकृति के नियमों के अनुसार होता है ठीक उसी प्रकार समाज के विभिन्न वर्गों में धन का परिभ्रमण होता है। इस प्रकार उन्होंने धन के पभ्रिमण की एक तालिका प्रस्तुत की जिसे एक नया आविष्कार माना गया। इस सम्बन्ध में **मिराबियो** ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है, ''संसार में तीन महान आविष्कार हुए हैं। प्रथम, लेखन कला का आविष्कार द्वितीय, मुद्रा का व तृतीय, आर्थिक तालिकाओं का।'' इन्होंने आगे चलकर यह भी कहा कि, ''धन के परिभ्रमण की खोज को आर्थिक समुदायों में आर्थिक विज्ञान के इतिहास में वही स्थान प्राप्त है, जो जीव विज्ञान के इतिहास में रक्त के परिभ्रमण की खोज को प्राप्त है।'' धन के परिभ्रमण का महत्व प्रकट करते हुए टरगॉट ने भी कहा है कि, ''धन का यह निरन्तर परिभ्रमण आर्थिक विज्ञान के लिए उसी प्रकार जीवन–प्राण था जिस प्रकार शरीर के लिए रक्त संचालन।

इस 'आर्थिक सारणी' को स्पष्ट करते हुए **डॉ० क्विजने** ने समाज को तीन वर्गों में बाँटा है:

1. उत्पादक वर्ग (Productive Class)

2. सम्पत्ति–स्वामी वर्ग (Proprietory Class)

3. अनुत्पादक वर्ग (Sterile Class)

**1. उत्पादक–वर्गः** इस वर्ग में मुख्य तो कृषक ही रखे गये है। परन्तु मछली पकड़ने वाले तथा खान खोदने वालों को भी इसमें शामिल किया जा सकता है।

**2. सम्पत्ति–स्वामी–वर्गः** इस वर्ग में भू–स्वामी, सम्राट तथा प्रभुता सम्पन्न व्यक्ति शामिल थे। प्रो० हैने ने इस वर्ग को आंशिक रूप से उत्पादक बताया है।

**3. अनुत्पादक–वर्गः** इस वर्ग के अन्तर्गत उद्योगपति, व्यापारी, मजदूर व अन्य व्यवसायों के सदस्य सम्मिलित थे।

डॉ० क्विजने के अनुसार प्रथम वर्ग के व्यक्ति ही धन का उत्पादन करते हैं। दूसरे वर्ग के व्यक्ति तथा तीसरे वर्ग के व्यक्ति अनुत्पादक होते थे। अतः धन प्रथम वर्ग से अन्य वर्गों में परिभ्रमण करता है। क्विजने का विश्वास था कि समाज में परिभ्रमण होने वाले सम्पूर्ण धन की पूर्ति प्रथम वर्ग द्वारा ही की जाती है।

**धन के इस परिभ्रमण का रूप निम्नलिखित हैः**

माना, किसी वर्ष कुल 50 करोड़ रूपये के बराबर उत्पादन हुआ। इसमें से 20 करोड़ रूपये कृषक वर्ग के जीवन–निर्वाह एवं कृषि उत्पादन के लिए आवश्यक है। अतः इन 20 करोड़ का परिभ्रमण नहीं होगा। शेष घन 30 करोड़ रहा जिसका परिभ्रमण होगा।

अनाज के अतिरिक्त कृषक वर्ग को अपने जीवन–निर्वाह के लिए आवश्यक वस्तुओं की भी आवश्यकता होती है जैसे मकान, वस्त्र, जूते इत्यादि। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वे 10 करोड़ रूपये अनुत्पादक वर्ग को देंगे।

अब कृषक के पास शेष 20 करोड़ रूपये बचे जो सम्पत्ति–स्वामी–वर्ग के पास क्रमशः लगान व कर के रूप में चले जाते हैं।

इनमें से सम्पत्ति स्वामी–वर्ग 10 करोड़ रूपये अनाज प्राप्त करने के लिए कृषक वर्ग को अथवा उत्पादक वर्ग को तथा अन्य वस्तुओं की पूर्ति के लिए 10 करोड़ रूपये अनुत्पादक वर्ग को दे देता है।

अब अनुत्पादक वर्ग के पास 20 करोड़ रूपये हैं। अनुत्पादक वर्ग जो प्रकृतिवादियों की दृष्टि में कुछ भी उत्पादित नहीं करता। इन 20 करोड़ रूपये का उपयोग अनुत्पादक वर्ग उत्पादक वर्ग से जीवन की आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति तथा कच्चा माल क्रय करने के लिए करता है। अतः ये 20 करोड़ रूपये पुनः उत्पादक वर्ग के पास पहुँच जाते हैं।

अतः कुल 30 करोड़ रूपये कृषक वर्ग के पास पुनः पहुँच जाते हैं। इस प्रकार यह चक्र निरन्तर चलता रहता है।

**डॉ० क्विजने की 'आर्थिक सारणी'** के अनुसार धन के परिभ्रमण को नीचे दी हुई सारणी द्वारा सरलता से समझा जा सकता है :

धन का परिभ्रमण उत्पादक–वर्ग द्वारा कुल उत्पादन (50 करोड़ रू०)

↓

↓ ↓

20 करोड़ उत्पादन की लागत

30 करोड़ रूपया शुद्ध उत्पादन जो प्रवाहित होगा

↓

↓

↓ ↓

10 करोड़ अनुत्पादक वर्ग को (वस्त्र, जूते आदि के लिए)

20 करोड़ सम्पत्ति स्वामी वर्ग को (लगान व कर के रूप में)

↓

↓ ↓

10 करोड़ कृषक वर्ग को (खाद्यान्न के लिए)

10 करोड़ अनुत्पादक वर्ग को (वस्तुओं के लिए)

अनुत्पादक वर्ग को प्राप्त 20 करेड़ रुपये

↓

↓ ↓

10 करोड़ कृषक वर्ग को

(खाद्यान्न के लिए)

10 करोड कृषक वर्ग को

(कच्चा माल प्राप्ति के लिए)

इस प्रकार शेष 30 करोड़ रूपये कृषक वर्ग को पुनः प्राप्त हो जाते हैं।

**धन के परिभ्रमण सिद्धान्त की आलोचनाः**

प्रकृतिवादियों द्वारा धन के परिभ्रमण का सिद्धान्त अधूरा व काल्पनिक सिद्ध हुआ। इस सिद्धान्त के निम्न दोष हैं:

**(i) तीन वर्गों में विभाजन :** प्रकृतिवादियों द्वारा समाज को तीन वर्गों में विभाजित करना त्रुटिपूर्ण है तथा अवैज्ञानिक प्रतीत होता है।

(**ii**) धन का परिभ्रमण भ्रामक **प्रो० जीड** ने इसकी आलोचना करते हुए कहा है कि इन्होंने इस बात पर बल दिया है कि धन का परिभ्रमण कुछ विशेष नियमों के आधार पर होता है और फिर इस आधार पर विभिन्न वर्गों की आय के निर्धारण का मार्ग वास्तव में आश्चर्यजनक है। उन्हीं के शब्दों में, ''निर्वाधवादियों की वितरण की पद्धति में सर्वाधिक रूचि–पूर्ण बात वह विशेष प्रदर्शन नहीं है जो उन्होंने इसे प्रदान किया, परन्तु उन्होंने विशेष बल इस तथ्य पर डाला कि धन का परिभ्रमण कुछ निश्चित

नियमों के आधार पर होता है तथा उस मार्ग को बताया जिसमें इस परिभ्रमण के द्वारा प्रत्येक वर्ग की आय का निर्धारण होता है।''

(iii) उत्पादक एवं अनुत्पादक वर्ग उत्पादक एवं अनुत्पादक वर्ग का विभाजन सही नहीं था क्योंकि भू–स्वामी वर्ग कुछ कार्य नहीं करता इसलिए उसे अनुत्पादक वर्ग में रखा जाना चाहिए था। जीड एवं रिस्ट ने भी कहा है कि, ''अनुत्पादक का दुर्नाम इस वर्ग को न देकर उद्योगपतियों और शिल्पकारों को दिया ।''

**(iv) विरोधाभासः** प्रकृतिवादियों द्वारा श्रम को अधिक महत्व देने के लिए कहा गया कि यदि कृषक वर्ग श्रम न करें तो उत्पादन नहीं होगा। दूसरी ओर भू–स्वामियों का महत्व बताते हुए वे कहते हैं कि यदि वे प्रारम्भिक पूँजी का उपयोग न करें तो उत्पादन नहीं होगा। अतः यहाँ विरोधाभास पाया जाता है।

(v) प्रकृतिवादियों ने विशुद्ध उत्पादन के वितरण सम्बन्धी जो आँकड़े प्रस्तुत किए, वे भी काल्पनिक प्रतीत होते हैं कि विशुद्ध उत्पादन का किसको कितना भाग मिलना चाहिए, इस निश्चय पर वे कैसे पहुँचे, समझ में नहीं आता।

(vi) प्रकृतिवादियों का यह मानना कि धन पुनः कृषक के पास वापस आ जाता है, त्रुटिपूर्ण है। यदि ऐसा होता तो आज कृषकों की स्थिति इतनी दयनीय नहीं होती।

(vii) प्रो० शुम्पीटर के अनुसार डॉ० क्विजने द्वारा प्रतिपादित आर्थिक सारणी से यह स्पष्ट होता है कि उत्पादन और वितरण दो अलग–अलग प्रक्रियायें हैं, जबकि पूँजीवादी व्यवस्था में ये एक ही क्रिया के दो रूप होते हैं।

### 1.4.4.प्रकृतिवादियों के अन्य आर्थिक विचार

#### 1.4.4.1 कर प्रणालीः

प्रकृतिवादियों का मत था कि राज्य को जनकल्याण के लिए कर लेने चाहिये। इन करों से राज्य के कार्य जैसे सड़क निर्माण, शिक्षा–व्यवस्था एवं चिकित्सा के क्षेत्र में आवश्यक व्यय को पूर्ण किए जाने चाहिए। राज्य को करों से जो भी आय प्राप्त हो उस पर राज्य का ही अधिकार होना चाहिए। प्रकृतिवादियों ने प्रत्यक्ष करों का समर्थन किया तथा यह माना कि कर केवल भू–स्वामी वर्ग से ही वसूल किए जाये अन्य से नहीं क्योंकि भू–स्वामी ही कर को वहन करने में सक्षम हैं। यदि कर कृषक व अन्य उद्योगपतियों पर लगाये गये तो इसका उन पर दुष्प्रभाव पड़ेगा। वे इसका भुगतान विनियोग को कम करके ही कर सकते हैं। अतः कर सिर्फ भू–स्वामी वर्ग से ही लेने चाहिए क्योंकि उन्हें ही वास्तव में शुद्ध उत्पत्ति प्राप्त होती है।

**डॉ० क्विजने** के अनुसार कर का भुगतान प्रसन्नता के साथ करना चाहिए क्योंकि यही राज्य की आय का मुख्य स्त्रोत है। उन्हीं के शब्दों में, ''सरकार को देश की समृद्धि के लिए आवश्यक कार्यों पर व्यय करने के कर्तव्य की तुलना में बचत करने के कार्य में कम सम्बन्धित होना चाहिए। जब देश धनाढ्य हो जाता है तो यह भारी व्यय समाप्त हो जाता है।''

कर की मात्रा क्या हो, इस सम्बन्ध में प्रकृतिवादी शुद्ध उत्पादन अथवा उपज मूल्य का 30 प्रतिशत कर निर्धारित करते है। प्रकृतिवादियों का मत था कि असमान वितरण के कारण मानव संकट उत्पन्न होता है। इसलिए प्रकृतिवादियों ने प्रत्यक्ष कर प्रणाली पर अत्यधिक बल दिया जिससे वितरण में समानता लायी जा सके ।

#### आलोचनाः

प्रकृतिवादियों की एकाकी कर प्रणाली ने राज्य की आय को बहुत सीमित कर दिया। जिस कारण राज्य अपने आवश्यक कार्य भी पूरे नहीं कर पायेगा। प्रकृतिवादियों के अनुसार राज्य को अपनी आय के अनुसार ही अवश्यकताएँ निर्धारित करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में **प्रो० जीड एंड रिस्ट** कहते हैं कि, ''परन्तु सबसे अधिक अभिरूचि की बात यह है कि प्रकृतिवादी यह सोचते थे कि राज्य को अपनी आय

के अनुसार ही अपनी आवश्यकताओं को निर्धारित करना चाहिए न कि इसके विपरीत।'' प्रकृतिवादियों की कर प्रणाली की आलोचना इसलिए भी की जाती है क्योंकि उनके द्वारा निर्धारित किया गया कर का अनुपात भी काल्पनिक था।

उपर्युक्त आलोचना के पश्चात यह कहा जा सकता है कि जो तर्क प्रकृतिवादियों ने कर प्रणाली के सन्दर्भ में दिये थे उसे स्वीकार नहीं किया गया। क्योंकि उनके कृषि में होने वाले वास्तविक उत्पादन के विचार को स्वीकार नहीं किया जा सकता। परन्तु इस सन्दर्भ में **प्रो० जीड एवं रिस्ट** का यह कथन महत्वपूर्ण है, ''यह याद रखने योग्य है कि प्रकृतिवादियों ने अपनी कर प्रणाली को ऐसे वातावरण में विकसित किया जिसमें भूमिपति वर्ग या अन्य उच्च आय वाले वर्गों की अपेक्षा किसानों से ही कर लिए जाते थे ।'' यद्यपि यह प्रणाली दोषपूर्ण है फिर भी इसने कुछ सिद्धान्तों के प्रतिपादन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रत्यक्ष करों को प्राथमिकता प्रदान करने का विचार इसी सिद्धान्त की देन है।

### 1.4.4.2 विदेशी व्यापारः

प्रकृतिवादियों ने वणिकवादियों द्वारा व्यापार पर लगाए गए प्रतिबन्धों को समाप्त करने पर बल दिया। उनके अनुसार स्वतंत्र व्यापार की नीति का पालन करना चाहिए जिससे कई लाभ होंगे। प्रथम तो इस नीति के द्वारा प्राकृतिक व्यवस्था के मुख्य स्वरूप ''प्रत्येक आर्थिक संस्थाओं को स्वतन्त्र रखना'' की पूर्ति होगी। स्वतन्त्र व्यापार के माध्यम से उपभोक्ताओं को सस्ते दामों पर वस्तुएँ प्राप्त होंगी। खाद्यान्न व कच्चा माल की मांग बढ़ने से कृषि व्यवसाय उन्नत होगा। इन लाभों के लिए ही प्रकृतिवादी स्वतन्त्र व्यापार के पक्ष में थे। इसीलिये उन्होंने ''रोको मत जाने दो'' (Laissez - Faire) की नीति का समर्थन किया। प्रकृतिवादियों ने वणिकवादियों द्वारा लगाये गये अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिबन्धों का विरोध किया क्योंकि इससे कृषि व्यापार को अधिक हानि हो रही थी। वे स्वतन्त्र व्यापार के पक्ष में थे, वरन व्यापार ही नहीं वे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की स्वतन्त्रता के पक्षपाती थे। **क्विजने** के शब्दों में, ''व्यापार की पूर्ण स्वतन्त्रता की रक्षा होनी चाहिए। मुक्त प्रतियोगिता ही आन्तरिक और विदेशी व्यापार के नियन्त्रण का सर्वश्रेष्ठ उपाय है।''

प्रकृतिवादी व्यापार में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करते थे। उन्होंने बहुत से निर्यात व आयात कर समाप्त किये। लेकिन प्रकृतिवादी व्यापार को अनुत्पादक भी मानते थे। उनके अनुसार व्यापार में विनिमय के माध्यम से केवल लाभ होता है उत्पादन नहीं होता। **रिवियरे** के अनुसार, ''आईने के समान व्यापारी भी वस्तुओं को बहुगुणित करके बताते हैं। लेकिन वे केवल बाह्य रूप को छलकाते हैं।'' **ली ट्रान्जे** ने भी यही कहा है, ''विनिमय समानता का समझौता है जिसमें समान मूल्य के लिए समान मूल्य दिया जाता है। फलतः यह सम्पत्ति–वृद्धि का साधन नहीं है।'' अतः यह केवल विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने का साधन मात्र है।

**आलोचनाः**

इस सिद्धान्त की आलोचना के सन्दर्भ में इतना कहा जा सकता है कि प्रकृतिवादियों ने व्यापार को अनुत्पादक बताकर तुष्टिगुण के महत्व को भुला दिया। **प्रो० गलियानी** के मतानुसार, ''आर्थिक सिद्धान्तों को लागू करने से पूर्व समय, स्थान और परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए।''

### 1.4.4.3 व्यक्तिगत सम्पत्तिः

प्रकृतिवादियों ने व्यक्तिगत सम्पत्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया। क्विजने का कथन है कि सामाजिक व्यवस्था का आधार व्यक्तिगत सम्पत्ति है जिससे देश को लाभ होता है। भूमि भी व्यक्तिगत सम्पत्ति है। भूमि एक कुँए के समान है जिसके स्वामी उसे किसानों को पानी खींचने के लिए दे देते हैं तथा अनुत्पादक वर्ग कुछ दूरी पर पानी की प्रतीक्षा में खड़ा रहता है। उनके अनुसार, ''भूमि और अन्य प्रकार की सम्पति पर व्यक्तिगत अधिकार की रक्षा होनी चाहिए, क्योंकि व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार समाज की अर्थव्यवस्था का असली आधार है। इसके बिना भूमि पर खेती समाप्त हो जाएगी न मालिक भूमि पर अधिक धन लगायेंगे और न किसान खेती कर पायेंगे।''

**आलोचनाः**

आज का समाजवादी युग व्यक्तिगत सम्पत्ति का विरोध करता है। उनके अनुसार व्यक्तिगत सम्पत्ति पूँजीपति को निर्धन वर्ग का शोषण करने के लिए प्रोत्साहित करती है ।

### 1.4.4.4 मूल्य सम्बन्धी विचारः

प्रकृतिवादियों द्वारा सारा ध्यान, 'उत्पादन' पर केन्द्रित करने के कारण 'मूल्य सिद्धान्त' को अनदेखा किया गया। प्रकृतिवादी तुष्टिगुण और मूल्य के बीच तथा उपयोग मूल्य (Value in use) और विनिमय–मूल्य (Value in Exchange) के बीच अन्तर करते थे। मूल्य व कीमत को वे एक ही मानते थे। **डॉ० क्विजने** के शब्दों में, ''विनिमय–योग्य वस्तुओं का मूल्य उसके उत्पादन में संलग्न श्रम द्वारा निर्धारित नहीं होता, अपितु उस वस्तु की मांग और बाजार के विस्तार द्वारा निर्धारित होता है।''

### 1.4.4..5 मजदूरी, ब्याज एवं जनसंख्या सम्बन्धी विचारः

मजदूरी के सम्बन्ध में इनका कोई विशेष योगदान नहीं रहा। उनके अनुसार श्रमिक को मजदूरी उतनी मिलनी चाहिए जितनी उसके जीवन–यापन के लिए आवश्यक है परन्तु यह कितनी होनी चाहिए, इस सम्बन्ध में वे मौन रहे। **टरगॉट (Turgot)** के अनुसार, ''मजदूरी' श्रमिकों के जीवन–निर्वाह व्यय के बराबर होनी चाहिए।'' जनसंख्या के सम्बन्ध में भी उनका योगदान नगण्य रहा। वे अत्यधिक जनसंख्या से डरते थे। केवल उतनी ही जनसंख्या को उचित समझते थे जितनी जनसंख्या को जीविका के साधन आसानी से मिल सकें। **रिवियरे** के अनुसार, ''यदि मनुष्य अपनी वृद्धि करते है, तो उसके साथ उनको खेती के साधनों की वृद्धि भी करनी चाहिए, अन्यथा ये उन्हीं तक सीमित रहेंगे।''

प्रकृतिवादियों ने मुद्रा व पूँजी को बचत का परिणाम बताया। उनके अनुसार व्याज इसीलिए दिया जाता है क्योंकि पूँजी का विनियोग भूमि में किया जा सकता है तथा ब्याज की दर में परिवर्तन वास्तविक उत्पादन की मात्रा एवं अनाज के मूल्य पर निर्भर करता है। **डॉ० क्विजने** के शब्दों में जिस प्रकार भूमि से प्राप्त होने वाली आय प्राकृतिक नियम के अधीन होती है। प्रकृतिवादियों ने ब्याज की उत्पादकता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया यद्यपि उन्होंने उसे विकसित नहीं किया।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रकृतिवादियों के सिद्धान्त वणिकवाद पर एक सुधार है। अतः आर्थिक विश्लेषण के क्षेत्र में इनका योगदान अतुलनीय है। इनके इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर एरिक रोल एवं जीड एवं रिस्ट आदि विद्वानों ने इन्हें अर्थशास्त्र का प्रवर्तक स्वीकार किया है।

## 1.5 प्रकृतिवाद का महत्व एवं प्रभाव

आर्थिक विचारों के इतिहास में प्रकृतिवादियों का स्थान काफी महत्वपूर्ण है। यद्यपि प्रकृतिवादियों की आलोचना की गई है परन्तु फिर भी इसके महत्व को हम नकार नहीं सकते। वे प्रकृतिवादी ही थे जिन्होंने अर्थशास्त्रियों के प्रथम सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व किया। **जीड एवं रिस्ट** ने प्रकृतिवादियों को अर्थशास्त्र के विज्ञान का वास्तविक नींव डालने वाला माना है। **एलैक्जेण्डर ग्रे** के अनुसार, ''क्विजने को आधुनिक अर्थ में अर्थशास्त्र की नींव डालने वाला कहलाने का अधिकार है।'' प्रकृतिवादियों ने ही प्रत्यक्ष कर का समर्थन किया जिससे समाज को लाभ मिल सके तथा विषमता को दूर किया जा सके। प्रकृतिवादियों का दृष्टिकोण वणिकवादियों के दृष्टिकोण से बहुत व्यापक है। वणिकवादियोंने सिर्फ अपने ही देश का हित ध्यान में रखा जबकि प्रकृतिवादी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के समर्थक थे। इन्होंने अहस्तक्षेप की नीति' का समर्थन किया। वे प्रकृतिवादी ही थे जिन्होंने पूर्ण प्रतियोगिता का विचार प्रतिपादित किया।

प्रकृतिवादियों ने कृषि को अत्यधिक महत्व दिया और कृषक को ही उत्पादक वर्ग माना। यद्यपि इसकी आलोचना की गई है परन्तु आज भी हम कृषि के महत्व को नकार नहीं सकते। आज भी किसी देश की राष्ट्रीय आय में सबसे बड़ा योगदान कृषि का ही है। उन्होंने धन के परिभ्रमण सिद्धान्त के आधार पर यह बताने का प्रयास किया कि सभी व्यक्तियों का एक दूसरे से पारस्परिक सम्बन्ध है। प्रकृतिवादियों की स्वतन्त्र व्यापार की नीति आज भी कई देशों में लागू है।

प्रकृतिवादियों के महत्व को स्पष्ट करते हुए **प्रो० जे. एफ. वेल** ने कहा है कि, ''प्रकृतिवादियों ने बिखरे हुए विचारों के एकत्रित कर एक क्रम में प्रस्तुत किया, पूर्ण प्रतियोगिता के सिद्धान्त का विकास किया तथा अर्थव्यवस्था के तत्वों की परस्पर निर्भरता सिद्ध की उनके ये विचार चिरस्थायी थे।'' प्रकृतिवादियों के महत्व को स्वीकार करते हुए **एडम स्मिथ** ने भी कहा है कि ''अपनी समस्त अपूर्णता के बावजूद भी यह प्रणाली राजनीतिक अर्थविज्ञान के विषय पर अब तक प्रकाशित होने वाले विचारों में शायद सत्य के सबसे अधिक समीप है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रकृतिवादियों ने ही सर्वप्रथम अर्थशास्त्र की नींव रखी तथा समाज में सामान्य साम्य का प्रतिपादन किया।

### 1.6 प्रकृतिवाद तथा वणिकवाद एक तुलनात्मक अध्ययन

प्रकृतिवाद का उदय वणिकवाद के पश्चात हुआ। यह वणिकवाद के पतन के साथ ही उजागर हुआ । प्रकृतिवादी सिद्धान्तों का उदय उस समय फ्रांस में फैली वणिकवादी नीतियों के विरोध में हुआ। इस कारण दोनों के विचारों में मूलभूत अन्तर थे जो निम्नलिखित हैः

1. वणिकवादियों ने सोने–चाँदी को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया। उनका नारा था, ''अधिक स्वर्ण, अधिक सम्पत्ति, अधिक शक्ति'' अर्थात जिस देश के पास अधिक स्वर्ण व सम्पत्ति है वही शक्तिशाली है। इसके विपरीत प्रकृतिवादियों ने कल्याण व समृद्धि का स्त्रोत शुद्ध उत्पादन को माना।

2. वणिकवादियों ने विदेशी व्यापार को अधिक महत्व दिया क्योंकि इसकी सहायता से स्वर्ण–रजत अपने देश में आएगा। जबकि प्रकृतिवादियों ने कृषि को शुद्ध उत्पादन का स्त्रोत माना तथा व्यापार को अनुत्पादक बताया।

3. वणिकवादियों ने 'अनुकूल–व्यापार सन्तुलन' की नीति अपनायी जबकि प्रकृतिवादियों ने 'सन्तुलित–व्यापार' की नीति का समर्थन किया। उनके अनुसार विदेशी व्यापार को स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिए।

4. वणिकवादियों ने विदेशी व्यापार–सन्तुलन को अपने पक्ष में रखने के लिए अनेक प्रकार के औद्योगिक व व्यापारिक प्रतिबन्ध लगाये। जबकि प्रकृतिवादी विचारधारा स्वतन्त्र व्यापार पर आधारित थी अर्थात विदेशी व्यापार को मुक्त छोड़ दो।

5. वणिकवाद भौतिकवादी दृष्टिकोण पर आधारित है। जबकि प्रकृतिवाद एक दार्शनिक सिद्धान्त पर आधारित है।

6 वणिकवादियों ने उत्पत्ति के दो साधन स्वीकार किये हैं भूमि व श्रम। जबकि प्रकृतिवाद ने केवल भूमि को ही उत्पत्ति का साधन माना है।

7. वणिकवादियों के अनुसार प्रत्येक मनुष्य से उतना ही कर वसूल करना चाहिए, जितनी उसे राज्य से सुविधायें उपलब्ध हो। प्रकृतिवादियों के अनुसार कर केवल भू–स्वामीयों से ही वसूल करना चाहिए।

8. वणिकवादियों ने एक शक्तिशाली केन्द्रित सत्ता की कल्पना की। प्रकृतिवादियों के अनुसार, मनुष्य अपना हित स्वयं जानता है। अतः वे ''रोको मत जाने दो'' की नीति के समर्थक थे।

9. वणिकवादियों ने घन के वितरण पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया । प्रकृतिवादी विचारक डॉ० क्विजने ने अपनी 'आर्थिक सारणी' द्वारा धन के परिभ्रमण पर अपने विचार प्रकट किए।

### 1.7 प्रकृतिवाद का पतन

प्रकृतिवादी विचारधारा वणिकवाद के विरोध के रूप में सामने आयी थी। सन् 1767 में यह अपनी चरम सीमा पर थी। परन्तु इसके पश्चात इसका पतन प्रारम्भ हो गया। क्योंकि उत्पादकता से सम्बन्धित इसके विचार अव्यवहारिक थे। गलियानी, कॉण्डीलेक, ग्रेसलीन, मेब्ली, वाल्टायर और रूसों आदि प्रमुख विचारकों ने भी इस विचारधारा की कटु आलोचना की। सन् 1776 में एडम स्मिथ की प्रसिद्ध पुस्तक

“Wealth of Nations” प्रकाशित हुई, जिसने इस विचारधारा का पूर्णतया अन्त कर दिया। प्रकृतिवाद के पतन के प्रमुख कारण निम्नलिखित है :

(i) कृषि को अत्यधिक महत्व दिये जाने के कारण व्यापारियों और उद्योगपतियों ने इसका विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। उनका मानना था कि केवल कृषि के द्वारा ही देश को समृद्ध नहीं बनाया जा सकता।

(ii) विदेशों से अनाज के स्वतन्त्र व्यापार होने के साथ मौसम की खराबी के कारण फसल खराब हो गई जिससे अनाज के दाम ऊँचे हो गये। परन्तु लोगों ने यह समझा कि यह अनाज के स्वतन्त्र व्यापार के कारण हुआ है। अतः इस नीति का विरोध होना आरम्भ हो गया।

(iii) प्रकृतिवाद क्रमहीन विचार तथा परस्पर विरोधी सिद्धान्तों का मिश्रण ही था। वे व्यापार को अनुत्पादक मानते थे। प्रो० हैने के शब्दों में, ''संक्षेप में, उनके अर्थशास्त्र में एक मौलिक त्रुटि है, जिसको उनके दर्शन की दो अन्य त्रुटियों ने बल प्रदान किया था। उनके अर्थशास्त्र में सबसे बड़ी कमी यह थी कि उन्होंने उत्पादकता का सही अर्थ नहीं समझा था और वे उत्पादन का अर्थ उपयोगिता उत्पत्ति से नहीं लगा पाये थे। परिणामतः निर्माण उद्योगों को उत्पादक व्यवसाय स्वीकार नहीं किया, यद्यपि वे उपयोगिता उत्पन्न करते हैं। इसके अतिरिक्त उनके व्यक्तिवादी दर्शन, जो स्वभाव में नकारात्मक था, ने सामाजिक कार्यवाही की आवश्यकता को अकारण ही न्यून कर दिया था और अन्त में उन्हें प्रकृतिवादी दर्शन में इतना अटूट विश्वास था कि वे अपनी विचारों को हर समय और हर स्थान पर लागू करना चाहते थे।''

### 1.9 सारांश

अठाराहवीं रूताब्दी में जो आर्थिक विचार फ्रांस में प्रचचलित थे उन्हें सामूहिक रूप से प्रकृतिवाद के नाम से पुकारा जाता है। प्रकृतिवाद के अधिकांश आर्थिक विचार वणिकवाद के एकदम से विपरीत थे। उदाहरण के लिए, वणिकवादी जहाँ सोने चाँदी और अन्य कीमती धातुओं को राष्ट्र की मजबूती का प्रतिक मानते थे वहीं प्रकृतिवादी खाद्यानों के भंडार को महत्व देते थे। इसी प्रकार वणिकवादी जहाँ व्यापार को उत्पादक मानते थे वहीं प्रकृतिवादी कृषि को उत्पादक मानते थे। वणिकवादी सरकार के हस्तक्षेप को स्वीकारते थे वहीं प्रकृतवादी अहस्तक्षेप की नीति के समर्थक थे।

क्विजने ने तालिका द्वारा धन के परिभ्रमण को मानव शरीर में रक्त संचार से तुलना करते हुए स्पष्ट किया था जिसे प्रकृतिवाद का सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक विचार माना जाता है। इसमें उन्होंने कुल उत्पादन और शुद्ध उत्पादन को भी स्पष्ट किया था। हालांकि प्रकृतिवादियों के बहुत से विचार आपस में विरोधाभाषी और भ्रामक भी थे परन्तु वे अपने समय के अनुरूप ही थे। बाद में आधुनिक अर्थशास्त्र के जनक एडम स्मिथ ने भी प्रकृतिवादियों के आर्थिक विचारों को आगे बढ़ाया था।

### 1.10 अभ्यास के प्रश्न

1. प्रकृतिवाद से आप क्या समझाते हैं?
2. प्रकृतिवादियों का प्राकृतिक व्यवस्था से क्या तात्पर्य था?
3. प्रकृतिवाद को वणिकवाद के खिलाफ विद्रोह क्यों कहा जाता है?
4. क्विजने द्वारा धन के परिभ्रमण को तालिका द्वारा स्पष्ट करें।
5. प्रकृतिवादियों के वर्ग विभाजन को सपष्ट करें।
6. प्रकृतिवादियों के उत्पादन सम्बंधी विचारों को स्पष्ट करें।
7. प्रकृतिवादियों के व्यापार सम्बंधी विचारों का वर्णन करें।
8. प्रकृतवादियों के करारोपण सम्बंधी विचारों का वर्णन करें।
9. प्रकृतिवादियों के जनसंख्या सम्बंधी विचारों का वर्णन करें।
10. प्रकृतिवाद के प्रारम्भ के कारणो ंका वर्णन करें।
11. प्राकृतिवाद के पतन के कारणों का वर्णन करें।
12. प्रकृतिवाद का मूल्यांकन करें।

## 1.11 उपयोगी पुस्तकें

**एम सी वैश्य** (). आर्थिक विचारों का इतिहास. सप्तम संस्करण, प्रकाशक– मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर।

Eric Roll (1986). A History of Economic Thought. Forth Edition. Calcutta Oxford University Press (India)

टी एन हजेला (2002). आर्थिक विचारों का इतिहास. नौवाँ संस्करण, कोणार्क पब्लिशर्स प्रा. लि., नयी दिल्ली 110092।

फ्रैंक थिली (2018). पश्चात दर्शन का इतिहास (अनुवादक– एन. ए. खान 'शाहिद'), अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली– 110002।

बी. एस. यादव, नन्दिनी शर्मा एवं उपासना शर्मा (2011). आर्थिक विचारों का इतिहास. प्रकाशक– यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नयी दिल्ली।

शिव नारायण गुप्त (2005). आर्थिक विचारों का इतिहास. प्रथम संस्करण, मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन वाराणसी।

# इकाई–4

## पैटी, लॉक तथा ह्युम के आर्थिक विचार

**इकाई की रूपरेखा**

**1.1 उद्देश्य**

**1.2 सर विलियम पैटी (Sir William Petty) का परिचय**

**1.2.1 सर विलियम पैटी (Sir William Petty) की प्रमुख रचनाएँ**

**1.2.2 सर विलियम पैटी (Sir William Petty) के प्रमुख आर्थिक विचार**

**1.3 जॉन लॉक (John Locke) का परिचय**

**1.3.1 जॉन लॉक (John Locke) की प्रमुख रचनाएँ**

**1.3.2 जॉन लॉक (John Locke) के प्रमुख आर्थिक विचार**

**1.4 डेविड ह्यूम (David Hume) का परिचय**

**1.4.1 डेविड ह्यूम की प्रमुख रचनाएँ**

**1.4.2 डेविड ह्यूम के प्रमुख आर्थिक विचार**

**1.5 सारांश**
**1.6 अभ्यास के प्रश्न**
**1.7 उपयोगी पुस्तकें**

### 1.0 उद्देश्य

वर्तमान इकाई का मुख्य उद्देश्य नित्नलिखित हैं–

- जॉन लॉक (John Locke) के आर्थिक विचारों से अवगत कराना
- सर विलियम पैटी (Sir William Petty) के आर्थिक विचारों से अवगत कराना
- डेविड ह्यूम (David Hume) के आर्थिक विचारों से अवगत कराना

### 1.1 परिचयः

सर विलियम पैटी (Sir William Petty), जॉन लॉक (John Locke) तथा डेविड ह्यूम (David Hume) तीनों 17 वीं और 18 वीं सदी के अंग्रेज दार्शनिक/विचारक थे। इनके विचार जीवन के हर क्षेत्र सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक में महत्वपूर्ण हैं। प्राचीन आर्थिक विचारों को एकत्रित करने के लिए उस समय के दार्शनिकों/विचारकों के लेखों/पुस्तकों का अध्ययन करना आवश्यक है। प्राचीन काल में विषयों का स्पष्ट विभाजन न होने के कारण विद्वान जन हर विषय से सम्बंधित अपने अनुभव को एक साथ ही व्यक्त करते थे। हांलाकि उनके विचारों के विस्तृत समह में से आर्थिक विचारों का संकलन एक कठिन कार्य है फिर भी मानवता के हित के लिए ऐसा करना जरूरी भी है।

### 1.2 सर विलियम पैटी (Sir William Petty) का परिचयः

**सर विलियम पेटी** का जन्म वर्ष 1623 में इंगलैंउ के रोम्सी में निम्न मध्यम परिवार में हुआ था। वे अंग्रेज अर्थशास्त्री, वैज्ञानिक और दार्शनिक विचारक थे। उनका चार्ल्स द्वितीय और जेम्स द्वितीय के दौर में महत्वपूर्ण स्थान माना जाता था। वे इंग्लैंउ के संसद और रॉयल सोसायटी, लंदन के चार्टर सदस्य भी रहे थे। वे सबसे ज्यादा अपने अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों और पोलिटिकल अर्थमेटिक की प्रविधियों के कारण स्मरणीय हैं। इनको प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के समूह का सदस्य माना जाता है। उन्होंने भूमि की सटीक माप एवं सर्वेक्षण की विधि विकसित की थी।

पेटी के जीवन में उत्तर पुर्नजागरण की ण्लक मिलती है जिसने विज्ञान, प्रोद्योगिकी, राजनीति और उद्यमिता के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन किए। एक चिकित्सक होने के कारण वे सामाजिक – आर्थिक समस्याओं को चिकित्सा विज्ञान के सिद्धान्तों से भी जोड़ते थे। वे एक व्यापारी भी थे। उनको 1661 में नाइट की उपाधि प्रदान की गयी थी।

इनके प्रमुख आर्थिक विचारों में श्रम विभाजन, वित्तीय/राजकोषीय सिद्धाान्त, मौद्रिक सिद्धान्त, राश्ट्रीय आय की गणना, आर्थिक सांख्यिकी आदि हैं।

#### 1.2.1 सर विलियम पैटी (Sir William Petty) की प्रमुख रचनाएँः

स्र विलियम पैटी द्वारा रचित प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

| Year | Publications |
|---|---|
| 1647 | The Advice to Hartlib |
| 1648 | A Declaration Concerning the newly invented Art of Double Writing |
| 1659 | Proceedings between Sankey and Petty |
| 1660 | Reflection Upon Ireland |
| 1662 | A Treatise of Taxes and Contributions |
| 1690 | Political Arithmetic Posthum |
| 1691 | Political Anatomy of Ireland Posthum |
| 1691 | Verbum Sapienti psthum |
| 1682 | An Assay Concerning the Multiplication of Mankind |
| 1695 | Quantulumcunque Concerning Money |

#### 1.2.2 सर विलियम पैटी (Sir William Petty) के प्रमुख आर्थिक विचारः

सर विलियम पैटी (1623–1687ई.) प्रमुख सिद्धान्तवादी अर्थशास्त्री थे। कुछ लोगों के मतानुसार सर विलियम पैटी Political Economy के संस्थापक थे। उनके सभी लेखों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि वे अपने समय के महान विचारक थे। उनकी (Discourses on Political Arithmetic 1690); A Treatise of Taxes and Contributions (1662ई.); The Political Anatomy of

Ireland (1672ई.) तथा Quantulumcunque Concerning Money (1682ई.) चार पुस्तकें उनकी महानता को सिद्ध करती है। उन्होंने कराधान के सिद्धान्तों का वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण किया था तथा राष्ट्रीय धन के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था।

थॉमस मन के समान वे भी करों को आवश्यक समझते थे। अपनी पुस्तक A Treatise of Taxes and Contributions में उन्होंने पूँजी के महत्व, जनसंख्या, लगान, मूल्य, मुद्रा तथा उत्पादन आदि महत्वपूर्ण विषयों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। उनके मतानुसार यद्यपि श्रम तथा भूमि धन का स्रोत थे परन्तु उन्होंने श्रम को भूमि की अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया है। उनका कहना था कि सभी वस्तुओं का मूल्य उन वस्तुओं में लगे श्रम तथा भूमि में हुए व्यय के द्वारा निर्धारित होता है। अन्य वणिकवादी लेखकों के समान वे भी मजबूरी को जीवन निर्वाह स्तर पर निर्धारित करने के पक्ष में थे। वे अधिक जनसंख्या के पक्ष में थे। उनके मतानुसार जिस राज्य में अधिक जनसंख्या होती है वह राज्य कम जनसंख्या वाले राज्य की अपेक्षाकृत अधिक धनी तथा शक्तिशाली होता है। वे ब्याज के विरोध में नहीं थे। वे मुद्रा को व्यापार तथा उद्योग को सुविधा प्रदान करने का एक साधन समझते थे। उनके मतानुसार राज्य का कर्तव्य मुद्रा के मूल्य को स्थिर बनाए रखना था। पैटी के मतानुसार, राष्ट्र को उन वस्तुओं का अधिक उत्पादन करना चाहिये जिनका निर्यात करके इसे विदेशों से धन की प्राप्ति हो सके।

## 1.3 जॉन लॉक (John Locke) का परिचय

**जॉन लॉक (1632–1704ई.)** जॉन लॉक का जन्म 29 अगस्त 1632 ईसवी में तथा मुत्यु 28 अक्टूवर 174 ईसवी में हुआ था वे एक अंग्रेज लेखक/विचारक तथा चिचकित्सक थे। जिन्होंने 17 वीं सदी के उतरार्द्ध में आर्थिक विचारों को आगे बढ़ाने में प्रमुख भूमिका निभायी थी। वे अपने समय के एक महान विचारक तथा दार्शनिक थे। उनको संयुक्त रूप से उदारवाद का जनक भी माना जाता है। उनका स्थान प्रमुख वणिकवादियों में आता है। इन्हे विलियम पेटी के अनुमायी मना जाता है।

उनहोंने अपने अध्ययनों से ज्ञान पद्धति शास्त्र तथा राजनीतिक दर्शन शास्त्र के क्षेत्र में काफी योगदान दिया था। उनके लेखन कार्यों ने वोलटेयर **(Voltaire)** और जीन जैक्यूस रूसो **(Jean-jacquece Rousseau)** को काफी प्रभावित किया था। उनका प्रसिद्ध विचार था कि मनुष्य बिना किसी आवश्यक ज्ञान के पैदा होता है परन्तु वह अपने संवेदी अनुभूतियों के द्वारा अनन्त जानकारियों को अपने आप में समाहित कर लेता ह`ै

उनके प्रतिष्ठित गणतंत्रवादऔर उदारवाद की झलक संयुक्त राज्य अमेरिका की स्वतंत्रता–घोषणा पत्र में दिखती है। सीमित प्रतिनिधित्व वाली सरकार के सिद्धान्त और व्यवहार तथा आधारभूत अधिकारों की सुरक्षा और नियम–कानून के अंतर्गत स्वतंत्रता की व्यवस्था इनके विचारों की उपज मानी जा सकती है। उनका राजनीतिक सिद्धान्त नागरिकों के सामाजिक समझोतों पर आधारित था। वे धर्मिक मसमलों में सहिष्णुता को महत्वपूर्ण मानते थे।

### 1.3.1 जॉन लॉक (John Locke) की रचनाएँ:

जॉन लॉक द्वारा रचित प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

| Year | Publications |
|---|---|
| 1664 | Essay on the Law of nature |
| 1690 | Two treatises Concerning Government |
| 1691 | Some Consideration of the Consequencesof the Lowering of Interest and Raising the Value of Money |

| | |
|---|---|
| 1693 | Some Thoughts Concerning Education |
| 1695 | The Reasonableness of Christionity |

### 1.3.1 जॉन लॉक (John Locke) के आर्थिक विचारः

उनको मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त का ज्ञान प्राप्त था। उन्होंने मुद्रा के सापेक्ष मूल्य पर प्रकाश डाला था। उन्होंने मुद्रा के वेग के विचार को भी स्पष्ट किया था तथा यह व्यक्ति किया था कि मुद्रा की मात्रा मुद्रा के वेग के द्वारा प्रभावित होती है। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त का भी सर्वप्रथम निर्माण किया था। एंजल (J.W. Angell) ने उनके इस सिद्धान्त का निर्माण करने के कारण अपनी पुस्तक The Theory of International Prices में उनकी प्रशंसा की है। अन्य वणिकवादी लेखकों के समान लॉक भी अनुकूल व्यापार शेष के पक्षधर थे तथा प्रतिकूल व्यापार शेष को राष्ट्रीय बर्बादी का प्रतीक समझते थे। 1690 ई. में प्रकाशित अपनी An Essay Concerning Human Understanding शीर्षक पुस्तक में जॉन लॉक ने सुलभ सुखवाद, जो एडम स्मिथ के संस्थापित अर्थशास्त्र का मनोवैज्ञानिक आधार था, की व्याख्या की थी।

### 1.4 डेविड ह्यूम (David Hume) का परिचय

**डेविड ह्यूम का जन्म 07 मई, 1711 ईसवी मे यूना**इटेट किंगडम के एडिनबर्ध में हुआ था तथा उनकी मृत्यु 15 अगस्त 1776 में हुआ था। इनकी माता का नाम कैथरीन फाल्कोनर तथा पिता का नाम जोसेफ ह्यूम था। वे एक दार्शनिक,इतिहासकार, अर्थशास्त्री और निबंधकार थे, जो विशेष रूप से अपने अनुभववाद और संदेहवाद **(Skepticism)** के लिए जाने जाते हैं। संदेहवादी सीधे अनुभव की सामग्री से परे किसी भी ज्ञान की सम्भावना पर संदेह करते थे और ज्ञान/सत्य की खोज में लगे रहते थे।

वे 18 वीं सदी के महान दार्शनिक/विचारक थे। उनका विचार था कि मनुष्य के ज्ञान की एक सीमा है। वह सबकुछ नहीं जान सकता है ज। उदाहरण के लिए ग्रुत्वाकर्षण क्यों उत्पन्न होता है? आत्मा क्या/कैसी है? आदि प्रश्नों के कोई सामान्य उत्तर नहीं प्राप्त किए जा सकते हैं।

### 1.4.1 डेविड ह्यूम (David Hume) की रचनाएँ

डेविड ह्यूम द्वारा रचित प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

| Year | Publications |
|---|---|
| **1739** | **A Treatise of Human Nature** |
| **1748** | **An Enquiry Concerning Human Understanding** |
| **1751** | **An Enquiry Concerning the Principles of Morals** |
| 1752 | Political Discources |
| 1757 | Dissertation on the Passion |
| 1779 | Dialogues Concerning Ntural Religion |

## 1.4 डेविड ह्यूम (David Hume) के आर्थिक विचार

डेविड ह्यूम (1711–1776ई.) एक दार्शनिक थे। यद्यपि उन्होंने अर्थशास्त्र के विषय में बहुत नहीं लिखा है परन्तु उनके विचार अर्थशास्त्र के लिए महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने अर्थशास्त्र के विषय में जो लेख लिखे हैं वे निबन्ध के रूप में हमें उनकी पुस्तक Political Discourses में मिलते हैं। ह्यूम ने जिन आर्थिक विषयों के बारे में लिखा है उनमें प्रमुख विषय मुद्रा, विदेशी व्यापार, व्यापार सन्तुलन इत्यादि थे। उन्होंने लिखा है कि ''उद्योग, कला तथा व्यापार राजा की शक्ति को बढ़ाते हैं तथा साथ ही साथ प्रजा की खुशहाली को भी बढ़ाते हैं।'' वे श्रम को महत्वपूर्ण मानते थे। उनका विचार था कि दुनिया की प्रत्येक वस्तु श्रम से खरीदी जाती है। उन्होंने सभी लोगों की प्रगति की बात कही है।

ह्यूम ने मुक्त व्यापार के गुणों की चर्चा की थी। उनका कहना था कि व्यापार सन्तुलन स्वयं साम्य की अवस्था में आ जाता है तथा इसलिए नियंत्रण की जरूरत नहीं थी। उन्होंने चेतावनी स्वरूप कहा था कि प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन में आयातकर्ताओं को हानि और निर्यातकर्ताओं को लाभ मिलता है। उन्होंने वणिकवादियों के असमान सोने–चाँदी को एकत्र करने पर बहुत अधिक बल नहीं दिया था। वे सोने–चाँदी को जो देश में आता है उसके अन्य उपयोग पर महत्व देते थे, जिससे कीन्स के स्फीतिक लाभ के विचार को बल मिला था। उनका कहना था कि यदि देश में नई मुद्रा (सोना–चाँदी) आती है तो इसके कारण मूल्यों और लागतों में अस्थायी रूप से अन्तर हो जाता है। ऐसा होने से कीमतें पहले बढ़ती है जिसका तुरन्त यह प्रभाव होता है कि लाभ की मात्रा बढ़ जाती है। अधिक लाभ से उद्योग और उत्पादन दोनों को ही प्रोत्साहन मिलता है। ह्यूम ने उत्पादक और अनुत्पादक श्रम में अनतर को स्पष्ट किया था वकील, डॉक्टर आदि को वे अनुत्पादक श्रम समझते थे, परन्तु व्यापारियों को उन्होंने उत्पादक श्रम माना है। उन्होंने अत्यधिक मुद्रा को भी अच्छा नहीं माना था क्योंकि इससे कीमतें बढ़ती है। लेकिन वे यह मानते थे कि अधिक मुद्रा युद्ध लड़ने के लिए शक्ति तथा विदेशी नीति को मजबूत करने में बढ़ावा मिलता है।

## 1.5 सारांश

सर विलियम पैटी (Sir William Petty), जॉन लॉक (John Locke) तथा डेविड ह्यूम (David Hume) तीनों 17 वीं और 18 वीं सदी के अंग्रेज विद्वान दार्शनिक एवं विचारक थे। उनके विचार जीवन के हर क्षेत्र में महत्वपूर्ण हैं। प्राचीन काल में विषयों का स्पष्ट विभाजन न होने के कारण उनके विचारों में आर्थिक विचार भी शामिल होते थे। उनके लेखों/पुस्तकों में विखरे आर्थिक विचारों को एकत्रित करके आर्थिक विचारों के इतिहास को समृद्ध करने का प्रयास किया गया है।

## 1.6 अभ्यास के प्रश्न

1. सर विलियम पेटी का सामान्य परिचय दें।
2. सर विलियम पेटी के प्रमुख आर्थिक विचारों का उल्लेख करें।
3. जॉन लॉक का सामान्य परिचय दें।
4. जॉन लॉक के प्रमुख आर्थिक विचारों का उल्लेख करें।
5. डेविड ह्यम का सामान्य परिचय दें।
6. डेविड ह्यूम के प्रमुख आर्थिक विचारों का उल्लेख करें।

## 1.7 उपयोगी पुस्तकें

**एम सी वैश्य ().** आर्थिक विचारों का इतिहास. सप्तम संस्करण, प्रकाशक– मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर।

Eric Roll (1986). A History of Economic Thought. Forth Edition. Calcutta Oxford University Press (India)

टी एन हजेला (2002). आर्थिक विचारों का इतिहास. नौवाँ संस्करण, कोणार्क पब्लिशर्स प्रा. लि., नयी दिल्ली 110092।

फ्रैंक थिली (2018). पश्चात दर्शन का इतिहास (अनुवादक– एन. ए. खान 'शाहिद'), अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली– 110002।

बी. एस. यादव, नन्दिनी शर्मा एवं उपासना शर्मा (2011). आर्थिक विचारों का इतिहास. प्रकाशक– यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नयी दिल्ली।

शिव नारायण गुप्त (2005). आर्थिक विचारों का इतिहास. प्रथम संस्करण, मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन वाराणसी।

## इकाई–5

## एडम स्मिथ–श्रम विभाजन

### इकाई की रूपरेखा

**1.1 उद्देश्य**

**1.2 परिचय**

**1.3 एडम सिमिथ को प्रभावित करने वाले विचारक**

**1.4 एडम सिमिथ के आर्थिक विचार**

**1.4.1 प्रकृतिक व्यवस्था एवं आशावाद**

**1.4.2 श्रम विभाजन**

**1.4.3 स्वतंत्र व्यापार**

**1.4.4 मूल्य के सिद्धान्त**

**1.4.5 वितरण का सिद्धान्त**

**1.4.6 राजस्व सम्बन्धी विचार**

**1.4.7 पूँजी एवं विनियोग**

**1.4.8 मुद्रा सम्बन्धी विचार**

**1.4.9 आर्थिक विकास का सिद्धान्त**

**1.5 आर्थिक विचारों के इतिहास में एडम स्मिथ का योगदान**

**1.6 एडम स्मिथ के विचारों की आलोचनाएँ**

**1.7 सारांश**

**1.8 अभ्यास के प्रश्न**

**1.9 उपयोगी पुस्तकें**

### 1.1 उद्देश्य

वर्तमान इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

- आधुनिक अर्थशास्त्र के जनक प्रोफेसर एडम स्मिथ का परिचय कराना
- उनके आर्थिक विचारों से जानना
- अर्थशास्त्र्त्र में उनके योगदानों का मूल्यांकन करना
- उनके विचारों की आलोचनात्मक अध्ययन करना

### 1.2 परिचय

**एडम स्मिथ (Adam Smith: 1723-1790)** को प्रतिष्ठित सम्प्रदाय का नेता तथा आधुनिक अर्थशास्त्र का पिता माना जाता है। इस विचारधारा का उदय एडम स्मिथ की प्रसिद्ध पुस्तक ‘Wealth of

Nations' के प्रकाशन के साथ हुआ, जो 6 मार्च 1776 को प्रकाशित हुई। इस पुस्तक का पूरा नाम 'An Inquiry into the Nature and Causes of the Wealth of Nations' था।

यह विचारधारा दीर्घकाल तक प्रचलित रही। इनके विचारों को चुनौती देने वाला दूर–दूर तक कोई नहीं था। जिसने भी एडम स्मिथ के विचारों का अध्ययन किया, वही उनका अनुयायी बन गया। आर्थिक विचारों के इतिहास के इस युग को स्वर्णिम युग (Golden Age) भी कहा जा सकता है। इस सम्प्रदाय के प्रमुख लेखक एवं अर्थशास्त्री **एडम स्मिथ, रिकार्डो, माल्थस, मिल तथा सीनियर** आदि माने जाते हैं। प्रकृतिवादियों द्वारा दिये गये आर्थिक विचार अपूर्ण व अवैज्ञानिक थे। एडम स्मिथ ने उन्हें एकत्रित कर स्पष्ट, पूर्ण एवं वैज्ञानिक बनाया। यही कारण है कि स्मिथ को प्रतिष्ठित सम्प्रदाय का सबसे बड़ा प्रतिनिधि माना जाता है। इस सम्बन्ध में **जीड एवं रिस्ट** ने अपने विचार व्यक्त किये हैं, ''प्रकृतिवादियों की मौलिकता व क्षमता के बावजूद भी उन्हें नये विज्ञान का केवल अग्रदूत हो कहा जा सकता है। अब एक स्वर से स्वीकार किया जाने लगा है कि एडम स्मिथ ही इस विज्ञान के वास्तविक संस्थापक थे।'' प्रतिष्ठित विचारधारा की परम्परा अभी भी समाप्त नहीं हुई है। नव–प्रतिष्ठित (Neo-classical) के नाम से यह अभी भी लोकप्रिय है।

**एडम स्मिथ संक्षिप्त जीवन परिचय :** एडम स्मिथ का जन्म 5 जून 1723 को स्कॉटलैण्ड के किरकैल्डी (Kirckaldy) नामक स्थान पर एक न्यायाधीश के घर में हुआ था। परन्तु एडम स्मिथ के जन्म के तीन माह पूर्व ही उनके पिता का निधन हो गया और उनका पालन–पोषण उनकी माता द्वारा किया गया। प्रारम्भिक शिक्षा इन्होंने अपनी माता से ही ग्रहण की उसके पश्चात ग्लासगो विश्वविद्यालय (Glasgow University) में 1737 से 1740 तक शिक्षा प्राप्त की। यहाँ उनका परिचय प्रो० हचेसन (जो नीतिशास्त्र के अध्यापक थे) से हुआ। 1740 से 1746 तक स्मिथ ने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की। इनके प्रमुख विषय दर्शन, नीतिशास्त्र तथा न्यायशास्त्र थे। 1751 से 1764 तक वे ग्लासगो विश्वविद्यालय में नीतिशास्त्र के प्रध्यापक के पद पर कार्यरत रहे। सन् 1759 में इनकी प्रथम पुस्तक ''Theory of Moral Sentiments'' प्रकाशित हुई जिसे लोगों द्वारा सराहा गया। इन 13 वर्षों के अन्तराल में उन्होंने विभिन्न देशों की यात्राएँ की। फ्रांस यात्रा के दौरान उनकी भेंट वाल्टेयर (Voltaire) और टरगोट (Turgot) आदि प्रकृतिवादी विचारकों से हुई। जिनके प्रकृतिवादी विचार स्मिथ को प्राप्त हुए। स्कॉटलैण्ड वापस आकर सन् 1776 ई० में उन्होंने अपनो अद्वितीय पुस्तक ''Wealth of Nations'' प्रकाशित की। सन् 1778 में वे कस्टम कमिश्नर नियुक्त हुए तथा 17 जुलाई, 1790 को स्मिथ की मृत्यु हो गयी। वे उस समय 67 वर्ष के थे।

### 1.3 एडम स्मिथ को प्रभावित करने वाले विचारक

यह कहना अनुचित न होगा कि एडम स्मिथ ने अपने पूर्ववर्ती विचारों को ही सुन्दर एवं परिष्कृत ढंग से प्रस्तुत किया। **प्रो० हैने** के शब्दों में, ''एडम स्मिथ वणिकवादियों, 17वीं तथा 18वीं शताब्दी के दार्शनिकों और प्रकृतिवादियों के लेखन से परिचित थे तथा उनकी नींव पर ही स्मिथ ने अपने भवन का निर्माण किया।'' स्मिथ को प्रभावित करने वाले प्रमुख विचारक निम्नलिखित हैः

**प्रो० फ्रांसिस ह्चेसन** स्मिथ के नीतिशास्त्र के अध्यापक थे। स्मिथ इनसे बहुत प्रभावित थे। सन् 1755 में हचेसन की पुस्तक System of Moral Philosophy प्रकाशित हुई। हचेसन से ही स्मिथ ने आशावाद का सिद्धान्त ग्रहण किया तथा इनके श्रम विभाजन, मूल्य परिवर्तन, मुक्त व्यापार मुद्रा व कर सम्बन्धी सिद्धान्त की स्पष्ट छाप स्मिथ के सिद्धान्तों में देखा जा सकता है।

**डेविड ह्यूम (David Hume)** अपने समय का एक प्रसिद्ध दार्शनिक और इतिहासकार था। वह तथा स्मिथ अच्छे मित्र थे। डेविड ह्यूम की प्रशंसा स्मिथ ने इस प्रकार की है, "By far the most illustrious philosopher and historian of the present age." डेविड ह्यूम ने विदेशी व्यापार, द्रव्य और ब्याज की दर पर महत्वपूर्ण लेख लिखे। इन लेखों का स्मिथ पर गहरा प्रभाव पड़ा। **प्रो० ग्रे** के अनुसार, ''स्मिथ का कोई भी लेखा जोखा उस समय तक उचित एवं आनुपातिक होने का दावा नहीं कर सकता जब तक कि उसकी पृष्ठभूमि में ह्यूम का उल्लेख नहीं किया जाता।'' डेविड ह्यूम के निबन्धों के विषय में प्रो० हैने का मत है कि, ''यदि उन्होंने 1752 में, जब उनके निबन्ध प्रकाशित हुए, एक क्रमवद्ध पुस्तक लिखी होती तो पूर्ण संभावना के साथ 'Wealth of Nations' को वह अद्वितीय स्थान न प्राप्त होता जो अब उसे प्राप्त

है।'' अतः डेविड ह्यूम का स्मिथ के विचारों पर गहरा प्रभाव पड़ा। स्मिथ, ह्यूम की पुस्तक 'A Treatise of Human Nature' से भी प्रभावित हुए ।

**डॉ० बर्नार्ड मैण्डेविल (Bernard de Mandeville)** एक दार्शनिक अभिरूचि रखने वाले चिकित्सक थे। सन् 1704 में इन्होंने ''The Fable of The Bees or, Private Vices Public Benefits'' नामक कविता प्रकाशित की। जिसका तत्कालीन समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। इस कविता का आशय यह था कि सभ्यता मानव जाति के गुणों का नहीं वरन् बुराईयों का परिणाम है तथा श्रम विभाजन को समाज की उन्नति का कारण बताया। स्मिथ ने ''Theory of Moral Sentiment'' में इनके विचारों की आलोचना की परन्तु बाद में उसका अर्थ समझ में आने पर 'Wealth of Nations' में उनके विचारों का समर्थन किया। **जीड एवं रिस्ट** के अनुसार, ''मैण्डेविल की उन्होंने आलोचना भले ही की हो परन्तु उनका यह विचार स्मिथ के मन में घर कर गया कि व्यक्तिगत हित के सम्पादन से ही समाज का कल्याण होता है।''

**अन्य विचारक :** उपरोक्त विचारकों के अतिरिक्त **पैटी, चाइल्ड, कैण्टीलोन, डडले नार्थ, लॉक, फर्गुसन** आदि का प्रभाव भी स्मिथ की पुस्तक में देखा जा सकता है। सन् 1757 में हैरिस (Harris) का 'मुद्रा' (Coins) नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ जिसका प्रभाव स्मिथ पर पड़ा ।

**वणिकवादी विचारधारा का प्रभावः** एडम स्मिथ वणिकवादियों के समर्थकों की अपेक्षा उनके विरोधियों से अधिक प्रभावित हुए। क्योंकि वे नियन्त्रित व्यापार की अपेक्षा स्वतन्त्र व्यापार के पक्षपाती थे तथा इन्होंने इंग्लैण्ड में प्रचलित संरक्षण की नोति की कटु आलोचना की। इनसे प्रभावित होकर ही स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'Wealth of Nations' में स्वतन्त्र व्यापार के पक्ष में अनेक तर्क दिये हैं।

**प्रकृतिवादी विचारधारा का प्रभावः** स्मिथ की पुस्तक में प्रकृतिवादी विचारधारा का प्रभाव भी देखने को मिलता है। फ्रांस की यात्रा के दौरान उनके कुछ प्रसिद्ध प्रकृतिवादी विचारकों से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गये थे जिनमें **क्विजने तथा टरगोट (Turgot)** प्रमुख थे। **जीड एवं रिस्ट** ने तो यहाँ तक कहा है कि, ''यदि क्विजने की मृत्यु 1774 में अर्थात् राष्ट्रों की सम्पत्ति (Wealth of Nations) के प्रकाशन के दो वर्ष पूर्व न हो गयी होती तो स्मिथ अपने ग्रन्थ को उन्हें ही समर्पित करते। स्मिथ का आर्थिक स्वतन्त्रता तथा वितरण सम्बन्धी विचार प्रकृतिवादियों की ही देन था।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि स्मिथ अपने पूर्ववर्ती विचारकों से काफी हद तक प्रभावित थे। **प्रो० हैने** के अनुसार, ''एडम स्मिथ, वणिकवादियों, 17वीं तथा 18वीं शताब्दी के दार्शनिकों एवं प्रकृत्तिवादियों के लेखों से परिचित था और वह उनके कन्धों पर खड़ा थ।''

### 1.4 एडम स्मिथ के आर्थिक विचार

एडम स्मिथ के आर्थिक विचारों का ज्ञान उसकी प्रसिद्ध पुस्तक 'Wealth of Nations' से होता है। उनके प्रमुख आर्थिक विचारः

1. प्रकृतिवाद तथा आशावाद, 2. श्रम विभाजन, 3. स्वतन्त्र व्यापार, 4. मूल्य का सिद्धान्त, 5. वितरण का सिद्धान्त, 6. राजस्व सम्बन्धी विचार, 7. पूँजी एवं विनियोग, 8. मुद्रा सम्बन्धी विचार और 9. आर्थिक विकास का सिद्धान्त है।

### 1.4.1 प्रकृतिवाद तथा आशावाद

एडम स्मिथ के सिद्धान्तों में प्रकृतिवाद तथा आशावाद की छाप स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। प्रकृतिवाद का सम्बन्ध आर्थिक संस्थाओं के उदय तथा तथा आशावाद का सम्बन्ध इनके लाभ से है। प्रकृतिवाद तथा आशावाद एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। यह एडम स्मिथ के दो महम्वपूर्ण सिद्धान्तों में से हैं। **प्रो० जीड एवं रिस्ट** के अनुसार, ''श्रम विभाजन द्वारा निर्मित एक बड़े प्राकृतिक समुदाय के रूप में आर्थिक विश्व की धारणा के अतिरिक्त एडम स्मिथ के कार्य को दो अन्य मौलिक विचारों में विभाजित कर सकते हैं जिसके चारों ओर उसके मुख्य सिद्धान्त स्वयं संगठित है। इनमें से प्रथम तो आर्थिक संस्थाओं की स्वाभाविक उत्पत्ति का विचार है और द्वितीय इनकी लाभदायक प्रकृति का विचार है अर्थात् स्मिथ का प्रकृतिवाद और आशावाद।'' स्मिथ के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये विनिमय करता है। जिससे आदान–प्रदान प्रारम्भ होता है तथा श्रम विभाजन को बल मिलता है। स्मिथ

ने व्यक्तिगत हित को महत्वपूर्ण माना है। **जीड एवं रिस्ट** के अनुसार, ''आर्थिक विश्व का वर्तमान पक्ष लाखों लोगों की स्वैच्छिक क्रिया का परिणाम है जिनमें से प्रत्येक, बिना दूसरों का ध्यान किये हुए अपनी ही इच्छा का अनुगमन करता है परन्तु अन्तिम परिणाम के बारे में उसे कोई सन्देह नहीं होता।'' प्रकृतिकवादी विचारक यह मानते थे कि प्रकृति जो भी करती हे सही करती है और वही मनुष्य के लिए लाभदायक भी होता है। स्मिथ ने 'Wealth of Nations' में यह स्वीकार भी किया है कि जो वस्तु प्राकृतिक होगी वह मनुष्य के लिये स्वाभावित रूप से हितकर ही होगी । स्मिथ ने आशावाद का अर्थ उचित, हितकर अथवा लाभदायक बताया। इस प्रकार प्रकृतिकवाद और आशावाद का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा इन्हें अलग नहीं किया जा सकता। अतः प्रकृतिवाद तथा आशावाद का अर्थ प्रथम आर्थिक संस्थाओं का स्वतः अभ्युदय तथा द्वितीय उनकी परोपकारी प्रकृति है।

**प्रकृतिवाद से आशयः** स्मिथ के अनुसार प्रकृतिवाद से आशय समाज का स्वभाविक गति से विकास होने से है। स्मिथ के अनुसार सभी आर्थिक संस्थाओं जैसे श्रम विभाजन, मांग, मुद्रा, पूँजी आदि का विकास प्राकृतिक रूप से हुआ है अर्थात् किसी नियोजन के अन्तर्गत नहीं हुआ। **स्मिथ के अनुसार मनुष्य द्वारा किया गया प्रत्येक कार्य स्वहित की भावना से प्रेरित होता है** और इन्हीं से प्रेरित होकर वह आर्थिक क्रियायें करता है जिससे आर्थिक संस्थाओं का जन्म एवं विकास होता है। **प्रो० जीड एवं रिस्ट** के शब्दों में, ''आर्थिक जगत का वर्तमान पक्ष लाखों व्यक्तियों की स्वतः क्रियाओं का परिणाम है, जिनमें से प्रत्येक दूसरों की चिन्ता किए बिना अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करता है। किन्तु कभी भी उसे अन्तिम परिणाम के बारे में सन्देह नहीं होता।'' स्वयं **एडम स्मिथ** के अनुसार, ''कसाई, शराब बाला अथवा नानबाई की उदारता से हमें भोजन नहीं मिलता वरन उनके निजी स्वार्थ से ऐसा होता है।'' एडम स्मिथ की पुस्तक 'Wealth of Nations' में प्रकृतिवाद के कुछ उदाहरण निम्नलिखित है :

**(i) श्रम–विभाजनः** श्रम–विभाजन किसी निश्चित योजना का परिणाम नहीं है वरन् यह तो प्रकृति द्वारा सहज रूप से विकसित होता है। एडम स्मिथ के अनुसार, ''श्रम–विभाजन का उद्गम किसी भी योजना का परिणाम नहीं है वरन् समाज की स्वार्थपूर्ण प्रवृत्ति के कारण स्वतः हुआ है। श्रम–विभाजन की प्रक्रिया सब व्यक्तियों की वस्तु–विनिमय की सामान्य प्रवृत्ति का परिणाम है और यह प्रवृत्ति भी स्वयं व्यक्तिगत स्वार्थ के प्रभाव में प्राकृतिक रूप से विकसित हुई है।'' अतः मनुष्य प्रत्येक कार्य स्वहित की भावना से प्रेरित होकर करता है। कोई भी व्यक्ति अपनी सभी आवश्यकताओं को पूर्ति स्वयं अकेले नहीं कर सकता इसीलिये वह वस्तु विनिमय करता है जिससे बाजारों का विस्तार होता है जिसें कारण स्वभाविक रूप से श्रम–विभाजन प्रणाली विकसित हुई ।

**(ii) मुद्राः** अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य वस्तु विनिमय करता था। धीरे–धीरे वस्तु–विनिमय में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अतः विनिमय को सरल बनाने के लिए मुद्रा का स्वतः ही उदय हुआ। मुद्रा का आविष्कार किसी राजकीय आज्ञा या देश के निर्णय के द्वारा नहीं हुआ है यह तो स्वाभाविक रूप से मनुष्य की सामूहिक क्रिया का परिणाम है। **प्रो० जीड एवं रिस्ट** के अनुसार, ''यह किसी लोक सत्ता का कार्य नहीं था, न ही यह किसी राष्ट्र का बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय था, यह तो केवल सामूहिक कार्यों का परिणाम था।''

**(iii) पूँजीः** पूँजी संचय से बनती है और संचय मनुष्य अपने हित को ध्यान में रखकर ही करता है। पूंजी का अर्थ उत्पादकता में वृद्धि करना है। पूंजी में वृद्धि होने से उद्योगों में एवं राष्ट्र के कल्याण में वृद्धि होती है। स्मिथ के अनुसार पूंजी का उदय भी प्राकृतिक है। यह किसी दूरदर्शिता का परिणाम नहीं वरन् मनुष्य द्वारा अपनी स्थिति सुधारने के लिये की गयी क्रिया है। स्वयं **स्मिथ** के अनुसार, ''मनुष्य अपनी स्थिति को सुधारना चाहता है और इसीलिए वह संचय करता है।'' यही भावना उसे आय को बचाने एवं उत्पादने में उसका विनियोग करनें के लिए प्रोत्साहित करती है। **स्मिथ** के ही शब्दों में, ''अपनी स्थिति में सुधार करने को यह शान्त इच्छा जो मनुष्य को बचत करने के लिए प्रेरित करती है हमारे गर्भ स्थान से आती है तथा कब्र में जाने के समय तक हमारा कभी पीछा नहीं छोड़ती है।''

**(iv) आर्थिक सन्तुलनः** हर क्षेत्र में आर्थिक संतुलन के लिए उन्होंने मांग और पूर्ति को शक्तियों को महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार विभिन्न क्षेत्र में आर्थिक संतुलन को निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त किया गय है–

**(a) मांग एवं पूर्ति**: स्मिथ के अनुसार मांग एवं पूर्ति सन्तुलन स्वतः ही स्थापित होता है। पूर्ति को अपेक्षा मांग के अधिक होने पर मूल्य बढ़ जाता है और मांग के कम होने पर मूल्य घट जाता है। दोनों ही परिस्थितियों में मांग व पूर्ति में सन्तुलन स्थापित हो जाता है। स्मिथ के अनुसार, ''प्रत्येक वस्तु की पूर्ति का कुछ समय पश्चात उस वस्तु की मांग के साथ समायोजन हो जाता है।''

**(b) जनसंख्या एवं मजदूरीः** एडम स्मिथ के अनुसार वस्तु की मांग व पूर्ति की भांति जनसंख्या व मजदूरी भी समायोजन स्वतः ही हो जाता है। यदि देश की जनसंख्या प्राकृतिक साधनों से अधिक है तो फलस्वरूप मजदूरी की दर घट जाएगी तथा यदि जनसंख्या देश के प्राकृतिक साधनों से कम है तो उनकी मजदूरी बढ़ जाएगी। अतः जनसंख व मजदूरी के बीच भी मांग व पूर्ति के द्वारा साम्य स्थापित हो जाता है।

**(c) मुद्रा की मांग एवं पूर्तिः** स्मिथ के अनुसार मुद्रा की मांग मुद्रा की पूर्ति से अधिक होने पर विदेशों से बहुमूल्य धातुओं का आयात बढ़ जाता है। इसके विपरीत स्थिति होने पर बहुमूल्य धातुओं का देश से निर्यात होता है। यह प्रक्रिया भी स्वतः ही होती है।

**आशावाद से आशयः**

एडम स्मिथ का विश्वास था कि, ''जो वस्तु अथवा संस्था प्राकृतिक, आकस्मिक अथवा स्वाभाविक रूप से जन्मी तथा विकसित हुई है। वह लोक हितकारी, कल्याणकारी एवं न्यायपूर्ण है।'' अर्थात् जो सहज है वह मंगलकारी है। स्मिथ के अनुसार, ''श्रम–विभाजन मुद्रा का आविष्कार तथा पूँजी का संचय अनेक ऐसे प्राकृतिक सामाजिक तथ्य हैं जो धन की वृद्धि करते हैं। मांग और पूर्ति का सन्तुलन, विनिमय के माध्यम की आवश्यकता के अनुरूप मुद्रा का वितरण, जनसंख्या का मांग के अनुसार समायोजन ऐसे अनेक प्राकृतिक तत्व हैं जो कि आर्थिक समाज के कुशल कार्यकरण की सुरक्षा का आश्वासन देते हैं।'' आशावाद की पुष्टि के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं–

**(i) श्रम–विभाजनः** उत्पादन वृद्धि, रोजगार में वृद्धि, लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार, उपभोग स्तर में वृद्धि।

**(ii) मुद्राः** वस्तु–विनिमय की कठिनाई मुद्रा द्वारा समाप्त की गई। जिससे बाजार में विस्तार पूँजी संचय के द्वारा देश के उद्योगों का विकास होता है और मानव जीवन सुखमय होता है।

**(iii) मूल्य का निर्धारणः** मांग व पूर्ति के सन्तुलन द्वारा मूल्य का निर्धारण होता है। जिससे उपभोक्ता तथा उत्पादक को लाभ तथा समाज में स्थायित्व आता है।

**(iv) जनसंख्याः** जनसंख्या प्राकृतिक संसाधनों के अनुरूप स्वतः सन्तुलित होती रहती है। जिससे उचित मजदूरी अथवा वेतन मिलता है तथा जीवन सुखमय होता है।

**प्रकृतिवाद एवं आशावाद की आलोचना**

एडम स्मिथ के प्रकृतिवाद एवं आशावाद की आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं:

**(i) अन्य प्रेरणाओं का अभावः** एडम स्मिथ ने मनुष्य को अधिक स्वार्थी बताया है तथा उनकी अन्य भावनाओं को कोई महत्व नहीं दिया। जैसे देश–प्रेम, सहानुभूति तथा क्षमा आदि कल्याणार्थ भावनाएँ भी मनुष्य में होती है।

**(ii) स्वत विकास की दोषपूर्ण धारणाः** वर्तमान समय में आर्थिक संस्थाओं का विकास निश्चित योजनाएँ बनाकर किया गया है। जिससे निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके। **जीड एवं रिस्ट** के अनुसार, ''यद्यपि आर्थिक संस्थाओं की प्रकृतिवादी धारणा न्यायपूर्ण और लाभप्रद दिखाई देती है, परन्तु उनकी लाभप्रद प्रकृति का विवेचन अपूर्ण और सन्देहजनक दिखाई पड़ता है।''

**(iii) स्वहित की भावना में हित परस्पर टकराते हैं :** स्वहित की भावना में हित परस्पर टकराते हैं। वास्तविक स्थिति में उद्योगपति अपने लाभ को अधिक करने के लिए मजदूरों की मजदूरी में कटौती करतें हैं तथा उपभोक्ता से वस्तु की अधिक कीमत वसूल करते हैं। इस प्रकार लोगों के हित आपस में

टकराते हैं। **स्मिथ** स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि, ''लगान और लाभ मजदूरी को खा जाते हैं तथा लोगों की दोनों उच्च श्रेणियाँ निम्न श्रेणी को सताती है।''

**(iv) स्वतः विकास सदैव लाभकारी नहीं होताः** स्वतः विकसित प्रत्येक संस्था के कुछ दोष भी होते हैं जैसे श्रम विभाजन जैसी लाभकारी व्यवस्था भी श्रम की गतिशीलता में बाधक वर्ग संघर्ष, तथा धन के असमान वितरण का कारण होती है।

अतः स्पष्ट है कि आलोचनाओं के बावजूद भी यह निर्विवाद है स्मिथ का प्रकृतिवाद तथा आशावाद आर्थिक विचारों के क्षेत्र में अमर हो गए हैं तथा यही सिद्धान्त उनके मुक्त अर्थव्यवस्था सम्बन्धी विचार का आधार है।

### 1.4.2 श्रम–विभाजन

एडम स्मिथ से पूर्व भी अनेक विचारकों ने अपने विचार श्रम–विभाजन पर दिये परन्तु उनके विचार अपूर्ण, अस्पष्ट थे जिन्हें स्मिथ ने पर्याप्त, स्पष्ट व सन्तोषजनक बनाया। स्मिथ के अनुसार, ''श्रम–विभाजन सामाजिक सहयोग की एक प्रणाली है जिससे उत्पादन कार्य सम्पन्न होता है।'' स्मिथ ने श्रम विभाजन को धन में वृद्धि का कारण कहा। साधारण शब्दों में श्रम–विभाजन से तात्पर्य किसी एक कार्य को छोटे–छोटे भागों में बांटने से है तथा इसमें प्रत्येक कार्य एक अलग व्यक्ति को सौंप दिया जाता है जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपने निश्चित छोटे से कार्य में पूर्णतया दक्षता हासिल कर लेता है। स्मिथ के अनुसार, श्रम–विभाजन एक विशिष्ट प्रकार के सामाजिक सहयोग का स्वाभाविक रूप है। मनुष्य स्वभाव से ही उस कार्य को करना पसन्द करता है जिसके लिये वह सबसे अधिक उपयुक्त है। **जीड एवं रिस्ट** के विचार भी इसी प्रकार हैं, ''श्रम–विभाजन विशिष्ट प्रकार के सामूहिक सहयोग का स्वाभाविक प्रतिफल है।''

उदाहरण के लिए उन्होने पिन बनाने वाले एक कारखाने का उल्लेख करते हुए लिखा है कि जब सभी श्रमिकों को एक विशिष्ट कार्य पर लगाया गया तो सभी अपने काम में विशेषज्ञता प्राप्त कर ली और पिन का उत्पादन 240 गुणा बढ़ गया था।

**श्रम–विभाजन के लाभः** वर्तमान समय में श्रम–विभाजन द्वारा उत्पादन में वृद्धि, उत्पादन व्यय में कमी, श्रमिकों की कार्य कुशलता में वृद्धि, समय की बचत आदि सम्भव है। इसके प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैंः

**(i) उत्पादन में वृद्धिः** श्रम–विभाजन द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य में दक्ष हो जाता है जिससे समय की बचत होती है और उत्पादन में वृद्धि होती है।

**(ii) उत्पादन–व्यय/लागत में कमीः** श्रम–विभाजन द्वारा समय की बचत होती है जिससे एक व्यक्ति द्वारा कम समय में अधिक वस्तुएं उत्पादित की जाती है। जिससे उत्पादन व्यय/लागत में कमी आती है।

**(iii) श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धिः** स्मिथ के अनुसार, निरन्तर किसी कार्य को करते रहने से व्यक्ति अपने कार्य से अच्छी प्रकार से परिचित हो जाता है। जिससे वह उसे अधिक कुशलता के साथ सम्पूर्ण करता है।

**(iv) समय की बचतः** श्रम विभाजन द्वारा समय की बचत सम्भव होती है। औजारों का उठाने, वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की समस्या श्रम–विभाजन द्वारा समाप्त हो गयी जिससे समय की बचत होती है।

**(v) आविष्कार एवं सुधारः** श्रम–विभाजन में कार्य यान्त्रिक हो जाता है। कार्य करते–करते कोई भी व्यक्ति उसमें दक्ष हो जाता है तथा उस कार्य में विशिष्टता प्राप्त करने के उपरान्त वह व्यक्ति उसमें सुधार कर सकता है, तथा नये यन्त्रों का आविष्कार कर सकता है।

**श्रम–विभाजन से हानियाँः**

श्रम–विभाजन के दो महत्वपूर्ण दोष निम्नलिखित हैंः

**(i) मानसिक नीरसताः** लगातार एक ही कार्य को करते रहने से वह कार्य नीरस हो जाता है तथा उसो कार्य को बार–बार करने से व्यक्ति की मानसिक जड़ता बढ़ जाती है। स्मिथ ने स्वयं इसे स्वीकार किया है, ''परन्तु मनुष्य जिसका सम्पूर्ण जीवन कुछ सरल क्रियाओं के करने में बीत जाता है जिससे परिणाम भी वही या करीब–करीब वही होते हैं, को अपनी बुद्धि को प्रकट करने का मौका नहीं मिलता.... इसलिए वह इस प्रकार के प्रयत्न करने की आदत स्वाभाविक रूप से छोड़ देता है और बहुधा सुस्त और अनभिज्ञ हो जाता है जैसा कि एक मानव प्राणी के लिए हो जाना स्वाभाविक है।''

**(ii) श्रम की गतिशीलता में बाधाः** एक ही कार्य को निरन्तर करते रहने के कारण यह उस कार्य में तो कुशल हो जाता है परन्तु किसी दूसरे कार्य को करने से हिचकता है। जिससे वह अन्य कार्यों में अकुशल रहता है। अतः श्रम की गतिशीलता में बाधा पड़ती है।

**श्रम–विभाजन की सीमाएँः**

श्रम का विभाजन इच्छानुसार नहीं किया जा सकता। इसकी दो सीमाएँ हैं जो इसके विस्तार की नियन्त्रित कर देती हैः

**(i) पूंजी की उपलब्ध मात्राः** किसी देश का उत्पादन उस देश में उपलब्ध पूंजी की मात्रा पर निर्भर करता है। यदि पूंजी कम है तो उत्पादन कम होगा। फलस्वरूप श्रम विभाजन कम होगा। इसी प्रकार पूंजी अधिक होने पर उत्पादन व श्रम विभाजन बढ़ते हैं।

**(ii) बाजार का विस्तारः** बाजार की सीमा श्रम विभाजन को सीमित कर देता है। स्मिथ के शब्दों में, ''जव बाजार बहुत छोटा रहता है तो किसी भी व्यक्ति को अपने आपको पूर्ण रूप से केवल एक ही व्यवसाय के प्रति समर्पित करने की प्रेरणा नहीं मिलती।'' अतः स्पष्ट है श्रम विभाजन की सीमा वस्तु की मांग पर निर्भर करती है।

अतः स्पष्ट है कि श्रम–विभाजन का विचार अर्थशास्त्र को एडम स्मिथ की एक बड़ी देन है परन्तु यह उनकी मौलिक रचना नहीं है। कई वर्षों पूर्व **प्लेटो तथा जेनोफन** ने इसका वर्णन किया था। **कैनन** के अनुसार, ''श्रम विभाजन पूंजी की मात्रा पर निर्भर न होकर पूंजी की बचत का एक साधन है। **प्रो० जीड** के अनुसार, ''स्मिथ के इस विचार से हम इतना अधिक परिचित हैं कि इसके महत्व को अनुभव नहीं करते और इसलिए उसकी मौलिका की प्रशंसा नहीं कर पाते।''

### 1.4.3 स्वतंत्र व्यापार

एडम स्मिथ स्वतंत्र वयापार के पक्षपाती थे। वह आन्तरिक ही नहीं वरन् अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को भी सरकारी हस्तक्षेप से बचाना चाहते थे। वह स्वतन्त्र व्यापार को राष्ट्रीय नीति बनाना चाहते थे।

**स्वतंत्र व्यापार के पक्ष में उनके तर्कः**

स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पक्ष के सम्बन्ध में एडम स्मिथ ने तीन तर्क प्रस्तुत किये हैं :

**(i) मितव्ययीतापूर्ण विनियोगः** स्वतन्त्र व्यापार से उद्योगों में पूंजी का विनियोग होने से औद्योगिक विकास की प्रेरणा मिलेगी जबकि सरकारी हस्तक्षेप के कारण पूंजी मनचाहे स्थान की ओर ले जाई जाती है। जिससे कुशल उद्योग दम तोड़ने लगते है। अतः मुक्त अर्थव्यवस्था में विनियोग जितना अधिक मितव्ययीतापूर्ण होता है, उतना नियन्त्रित अर्थव्यवस्था में नहीं हो सकता।

**(ii) आर्थिक कल्याण में वृद्धिः** स्मिथ सम्पूर्ण विश्व के आर्थिक कल्याण में वृद्धि करने वाली व्यवस्था स्थापित करना चाहते थे। उसके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था होने के कारण उत्पादन के क्षेत्र में श्रम विभाजन के अत्यधिक लाभों को प्राप्त कर सकते हैं। श्रम–विभाजन जितना सूक्ष्म होगा लाभ उतना ही बढ़ता जायेगा। अर्थात् प्रत्येक देश केवल उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करेगा जो उसकी भौगोलिक परिस्थिति के अनुकूल हो और दूसरी वस्तुओं के मुकाबले में कम लागत पर उत्पन्न कर सके। इस प्रकार एक देश मुक्त व्यापार की दशा में वस्तु को उस देश से खरीदता है जहाँ

वह सस्ती मिलती है। अतः व्यापार का प्रवाह सस्ते बाजार से मंहगे बाजार की ओर होता है। इसे हम निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं :

| उत्पादन | देश (क) | देश (ख) |
|---|---|---|
| गेहूँ | 30 मन | 15 मन |
| कपड़ा | 15 मीटर | 20 मीटर |

इस उदाहरण में श्रम की निश्चित इकाईयों से देश (क) गेंहू का 30 मन तथा कपड़े का 15 मीटर उत्पादन करता है। वहीं देश (ख) गेंहू का 15 मन व कपड़े 20 मीटर उत्पादन करता है। अतः देश (क) केवल गेंहू का उत्पादन व निर्यात करेगा तथा कपड़े का आयात करेगा। वहीं देश (ख) केवल कपड़े का उत्पादन व निर्यात करेगा जबकि गेंहू का आयात करेगा। **स्मिथ के अनुसार,** ''परिवार के बुद्धिमान मुखिया का यह नियम होता है कि वह उस चीज को नहीं बनाता जिसे वह सस्ते दाम पर बाहर से क्रय कर सकता है। परिवार के लिये जो बुद्धिमानी का आचरण है, वह एक देश के लिए मूर्खतापूर्ण नहीं हो सकता है।''

**(iii) आर्थिक विकासः** मुक्त व्यापार से प्रतियोगिता में उद्योग–धन्धों का विकास होगा जिसके परिणामस्वरूप उपभोक्ताओं को बढ़िया किस्म का माल कम मूल्य पर ही प्राप्त हो सकेगा। स्मिथ के अनुसार, ''समस्त उत्पादक का एकमात्र लक्ष्य और उद्देश्य उपभोग ही है। परन्तु वणिकवादी व्यवस्था में उपभोक्ता का हित उत्पादकता के हित पर बलिदान कर दिया जाता है।'' अतः मुक्त व्यापार ही उपभोक्ताओं को सस्ती वस्तुएँ सुलभ करा सकता है।

**स्वतन्त्र व्यापार के विपक्ष में तर्कः**

एडम स्मिथ स्वतंत्र व्यापार के पक्ष में थे, वणिकवादी योजनाबद्ध विदेशी व्यापार के पक्ष में थे तथा प्रकृतिवादी मुक्त व्यापार के पक्ष में थे। स्मिथ ने मुक्त व्यापार का सिद्धान्त बनाया और उस पर किसी भी प्रकार के नियन्त्रण का विरोध किया।

परन्तु फिर भी स्मिथ ने कुछ परिस्थितियों में संरक्षण की नीति अपनाने का सुझाव दिया। इस संबंध में **स्मिथ** का महत्वपूर्ण वाक्य है, ''Defence is more important than opulence''. अर्थात् ''सुरक्षा सम्पन्नता की अपेक्षा ज्यादा महत्वपूर्ण है।'' **स्मिथ के अनुसार**, ऐसे उद्योगों का विकास जिनसे देश की सुरक्षा हो। उन्होंने इस सम्बन्ध में नौपरिवहन कानून का समर्थन किया। उन्होंने निम्नलिखित परिस्थितियों में सरकारी नियन्त्रण को स्वीकार किया हैः

(a) सुरक्षा घन से अधिक महत्वपूर्ण वस्तु है। जहाजों का प्रयोग सुरक्षा के लिए होता है। अतः इस उद्योग पर सरकारी नियन्त्रण होना आवश्यक है।

(b) जहाजरानी के लिए राष्ट्रीय जहाजों का प्रयोग हो न कि विदेशी जहाजों का ।

(c) यदि कोई देश विदेशी आयात पर शुल्क लगाता है तो दूसरे देश को भी आयात माल पर शुल्क लगाना उचित होगा जिससे स्पर्धा न्यायपूर्ण हो ।

(d) यदि देश का रोजगार संरक्षण की सहायता से बढ़ सकता हो तो ऐसे देश को संरक्षण की नीति अपनानी चाहिए।

(c) निर्यात कर उन वस्तुओं पर लगाना चाहिए जिनका उपभोग देश के लिए आवश्यक हो।

आर्थिक विचारों का इतिहास उपर्युक्त विवरण के उपरान्त भी हमें **जीड एवं रिस्ट** के इस विचार से सहमत होना पड़ेगा, ''स्मिथ के लिए अहस्तक्षेप एक सामान्य सिद्धान्त था न कि एक निरपेक्ष नियम।''

### 1.4.4 मूल्य का सिद्धान्त

स्मिथ के अनुसार मूल्य दो प्रकार का होता है :

(i) प्रयोग मूल्य (Value- in-use) और (ii) विनिमय मूल्य (Value-in-Exchange)

**(i) प्रयोग मूल्य या उपयोग मूल्यः** प्रयोग मूल्य का तात्पर्य किसी वस्तु के तुष्टि–गुण से होता है। अर्थात् प्रयोग मूल्य वस्तु की उपयोगिता के आधार पर निधारित होता है। जैसे पानी तथा हवा का उपयोग मूल्य बहुत अधिक होता है। इस प्रकार उपयोगिता जितनी अधिक होगी उस वस्तु का प्रयोग–मूल्य भी उतना ही अधिक होगा और उपयोगिता जितनी कम होगी उस वस्तु का प्रयोग मूल्य भी उतना ही कम होगा। स्मिथ के अनुसार, ''प्रयोग मूल्य का बाजार की कीमत पर किसी प्रकार का भी प्रभाव नहीं पड़ता है।''

**(ii) विनिमय मूल्य अर्थात् बाजार मूल्य या सामान्य मूल्यः** विनिमय मूल्य वस्तु की मांग व पूर्ति पर निर्भर करता है। यह परिवर्तनशील मूल्य कहलाता है अर्थात् यह कभी स्थिर नहीं रहता। दूसरे शब्दों में विनिमय मूल्य से तात्पर्य वस्तु की क्रय शक्ति से होता है। यही वास्तविक कीमत होती है। यदि वस्तु का क्रेता मोल भाव करने में चतुर है तो विनिमय मूल्य अर्थात् बाजार मूल्य कम होगा। इसके विपरीत स्थिति होने पर विनिमय मूल्य अधिक होगा। अतः यह वस्तु की मांग व पूर्ति पर निर्भर करता है। एडम स्मिथ के अनुसार, ''जिन वस्तुओं का प्रयोग मूल्य बहुत अधिक होता है, उनका विनिमय मूल्य प्रायः बहुत कम अर्थात् नहीं के बराबर होता है। इसके विपरीत जिन वस्तुओं का विनिमय मूल्य सबसे अधिक होता है, उनका प्रयोग मूल्य बहुत कम अर्थात् नहीं के बराबर होता है।'' इस तथ्य को हम उदाहरण द्वारा स्वष्ट कर सकते हैं।

**उदाहरणः** हवा व पानी का विनिमय मूल्य बहुत कम या नहीं के बराबर होता है जबकि उपयोग मूल्य बहुत अधिक होता है। इसके विपरीत सोने व हीरे आदि का विनिमय मूल्य बहुत अधिक होता है परन्तु प्रयोग मूल्य बहुत कम होता है।

विनिमय मूल्य दो प्रकार का हो सकता ह :

**(a) प्राकृतिक मूल्य (Natural Value):** वस्तु के निर्माण में लगी श्रम की मात्रा ही वास्तविक अर्थात् प्राकृतिक मूल्य निर्धारित करती है। उदाहरणार्थः यदि 'क' वस्तु के निर्माण में 10 घण्टे श्रम लगता है और 'ख' वस्तु के निर्माण में 5 घण्टे तो 2 ख वस्तु के बदले में एक क वस्तु का विनिमय प्राकृतिक होगा। अर्थात् 'क' वस्तु का मूल्य 'ख' वस्तु के मूल्य से दो गुना होगा। एडम स्मिथ के अनुसार, ''सभी वस्तुओं के विनिमय मूल्य का वास्तविक माप श्रम है।''

**(b) लागत मूल्य (Cost Value):** इस सिद्धान्त के अनुसार वस्तु का मूल्य उसकी उत्पादन लागत के आधार पर निर्धारित होता है। जैसे :

वस्तु का वास्तविक मूल्य = वस्तु की उत्पादन लागत

उत्पादन लागत = लगान + मजदूरी + व्याज

**अथवा, PC = R + W + I**

स्मिथ के अनुसार, ''प्रत्येक समाज में प्रत्येक वस्तु का मूल्य अन्तिम रूप से इन किसी एक या दूसरे अथवा तीनों से निश्चित होता है, किन्तु प्रत्येक विकसित समाज में अधिकांश वस्तुओं के मूल्य इन तीनों से ही मिलकर बनते हैं''। परन्तु **जीड एवं रिस्ट** ने ठीक ही लिखा है, ''स्वयं स्मिथ उनमें से किसी का चुनाव करने का साहस न कर पाये यह विरोधाभास उनके ग्रन्थ में है जिसका समन्वय करना व्यर्थ है।'' जहाँ तक बाजार मूल्य का सम्बन्ध है वह मांग व पूर्ति के प्रभाव में प्राकृतिक मूल्य से कम या अधिक हो सकता है।

स्वयं स्मिथ के अनुसार, बाजार मूल्य में प्राकृतिक मूल्य के बराबर रहने की प्रवृत्ति पाई जाती है। बाजार मूल्य प्राकृतिक मूल्य से अधिक होने पर लाभ के कारण उत्पादक अपना उत्पादन बढ़ा देते हैं जिससे

पूर्ति ज्यादा होने से बाजार मूल्य कम होकर प्राकृतिक मूल्य के बराबर हो जाता है। इसके विपरीत बाजार मूल्य कम होने पर हानि के कारण उत्पादक अपना उत्पादन घटा देते हैं। फलतः पूर्ति कम होने के कारण बाजार मूल्य बढ़कर, पुनः प्राकृतिक मूल्य के समान हो जाता है ।

**आलोचनाः**

इस सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं:

**(i) एक पक्षीय दृष्टिकोणः** एडम स्मिथ ने श्रम का मूल्य सिद्धान्त अथवा प्राकृतिक मूल्य के सिद्धान्त में एक पक्षीय दृष्टिकोण अपनाया जिससे यह सिद्धान्त दोषपूर्ण है। स्वयं **स्मिथ** के ही शब्दों में, ''यद्यपि श्रम सभी वस्तुओं के विनिमय मूल्य का वास्तविक माप है किन्तु सामान्यतया उसके मूल्य श्रम के द्वारा अनुमानित नहीं किये जाते हैं।'' अतः प्रत्येक प्रकार का श्रम एक समान नहीं होता। इस प्रकार स्मिथ ने प्राकृतिक मूल्य में केवल श्रम को ही आधार बनाया। अन्य तत्वों को महत्व नहीं दिया। इसी प्रकार लागत मूल्य में भी केवल पूर्ति पक्ष को ही महत्व दिया।

**(ii) परस्पर विरोधाभास**: एडम स्मिथ के विभिन्न मूल्य सिद्धान्तों में कोई समन्वय नहीं है तथा वे स्वयं ही परस्पर विरोधी हैं।

**(iii) सिद्धान्त की अपूर्ण व्याख्याः** स्मिथ सिद्धान्त की पूर्ण रूप से व्याख्या नहीं कर पाये। वे विभिन्न साधनों (मजदूरी, ब्याज तथा लगान) के पारितोषिक को निर्धारित करने में असफल रहे हैं।

**(iv) माँग एवं पूर्ति का अपूर्ण विशलेषण**: माँग और पूर्ति के द्वारा मूल्य कैसे और किस बिन्दु पर निर्धारित होता है। यह भी स्मिथ नहीं समझा सके।

उपरोक्त विवरण के बावजूद भी हम यह कह सकते है कि आर्थिक विचारों के इतिहास में इस सिद्धान्त का एक अपना विशेष महत्व है। क्योंकि स्मिथ के 'उत्पादन लागत सिद्धान्त' ने आधुनिक अर्थशास्त्रियों की 'मूल्य निर्धारण सिद्धान्त' के विकास में सहायता की है।

### 1.4.5 वितरण का सिद्धान्त

एडम स्मिथ का वितरण सिद्धान्त उनके मूल्य सिद्धान्त का ही विस्तार है। उत्पत्ति के तीन प्रमुख साधन माने गये श्रम, पूँजी और भूमि। इन तीनों का पारितोषिक किस प्रकार निर्धारित किया जाये, यही वितरण की समस्या है।

उन्होंने उत्पादन लागत में भूमि का लगान, पूँजी का व्याज तथा श्रम की मजदूरी को सम्मिलित किया।

**(i) मजदूरी (Wages) :** Wealth of Nations के आठवें अध्याय में स्मिथ ने मजदूरी की विवेचना की है। यह बड़ी विचित्र वात है कि एडम स्मिथ ने मजदूरी निर्धारण कर कोई भी सिद्धान्त प्रदिपादित नहीं किया। उन्होंने इस सम्बन्ध में विभिन्न विचार प्रस्तुत किए हैं। जिनसे बाद में प्रतिपादित किये जाने वाले मजदूरी के सिद्धान्तों की झलक मिलती है। प्रो० ग्रे का मत है कि यह स्मिथ की सफलता और कमजोरी का श्रेष्ठ उदाहरण है। क्योंकि स्मिथ के पश्चात रिकार्डो, माल्थस तथा मिल ने उसके विचारों की सहायता से मजदूरी–निर्धारण के अनेक सिद्धान्तों की रचना कर डाली। मजदूरी की दृष्टि से स्मिथ ने जीवन–निर्वाह सिद्धान्त तथा मजदूरी कोष सिद्धान्त प्रस्तुत किये जो इस प्रकार हैं:

**(a) मजदूरी का जीवन–निर्वाह सिद्धान्त (Theory of Subsistence):** इस सिद्धान्त के अनुसार श्रमिक को अपने पालन–पोषण तथा परिवार के लिये जितने धन व भत्ते की आवश्यकता होती है, उसी के बराबर उसे मजदूरी मिलनी चाहिए। प्रो० एरिक रोल के अनुसार, ''वह श्रम के वास्तविक मूल्य को, श्रमिक के पालन–पोषण के लिए आवश्यक धन तथा उसके परिवार के भरण–पोषण तथा श्रम की पूर्ति बनाये रखने की दृष्टि से आवश्यक भत्ते पर निर्धारित, स्वीकार करता है।'' अतः मजदूरी कम से कम इतनी अवश्य होनी चाहिए कि मजदूर तथा उसे परिवार का भरण–पोषण ठीक प्रकार से हो सके। यदि मजदूरी जीवन–निर्वाह के स्तर से कम होगी तो उनकी पूर्ति घट जायेगी और यदि इस स्तर से मजदूरी अधिक हुई तो पूर्ति में वृद्धि हो जाएगी।

**(b) मजदूरी कोष सिद्धान्त (Wages Fund Theory):** इस सिद्धान्त के अनुसार, उन लोगों की मांग जो मजदूरी के सहारे रहते हैं, मजदूरी के भुगतान के कोषों के अनुपात से अधिक नहीं हो सकती। अतः मजदूरी का निर्धारण उसके भुगतान के लिए निर्मित किये गये मजदूरी कोष के आधार पर होता है। मजदूरी का सम्बन्ध राष्ट्रीय सम्पत्ति की अधिकता से नहीं वरन् इसकी निरन्तर वृद्धि से है। अतः समृद्धि करते हुए देशों में मजदूरी अधिकतम होती है। **स्मिथ** के अनुसार, ''श्रमजीवी व्यक्तियों की सेवा की मांग उस निधि की मात्रा पर निर्भर है जो मजदूरी देने के लिए प्रयुक्त होती हैं। यह मांग इस निधि के अनुपात में ही बढ़ सकती है।'' अतः स्मिथ ने मजदूरी को पूंजी तथा मजदूरों की संख्या का अनुपात माना है। अर्थात् पूंजी में वृद्धि करने अथवा श्रमिकों की पूर्ति में कमी करने से ही मजदूरी बढ़ सकती है।

**(ii) व्याज तथा लाभः** स्मिथ ने व्यवस्थापक और पूंजीपति को उत्पत्ति का अलग–अलग साधन नहीं माना है। इसीलिए उन्होंने लाभ एवं ब्याज से भी अन्तर नहीं किया। उसके अनुसार जो व्यक्ति पूंजी लगाता है उसे ब्याज और लाभ दोनों प्राप्त होते हैं। स्मिथ के अनुसार, किसी वस्तु के मूल्य में से श्रमिकों को मजदूरी देने के बाद जो हिस्सा पूंजीपति के पास बना रहता है, वह उसका लाभ होता है। उन्होंने लाभ को दो भांगों में बाँटा है, कुल लाभ तथा शुद्ध लाभ। किन्तु वे इनमें अन्तर स्पष्ट नहीं कर पाये। स्मिथ के अनुसार, लाभ और मजदूरी विरोधी पुरस्कार हैं अर्थात् एक के बढ़ने से दूसरा घटता है। स्मिथ के अनुसार, ''यदि समाज में पूँजी बढ़ती है तो उससे मजदूरी बढ़ती है और लाभ कम होता है। जब धनी व्यापारी अपनी पूंजी को एक ही धन्धे में लगाते हैं, तो स्पर्धा बढ़ने से लाभ घट जाता है।''

स्मिथ के व्याज सम्बन्धी विचार स्पष्ट नहीं हैं। उनके अनुसार, व्याज लाभ की मात्रा से अत्यधिक प्रभावित होता है। लाभ की दर अधिक होने पर व्याज की दर बढ़ जाती है तथा लाभ की दर कम होने पर ब्याज की दर कम हो जाती है। व्याज की न्यूनतम दर उससे अधिक होनी चाहिए जिनते की पूँजी उधार देने की आकस्मिक जोखिम की क्षतिपूर्ति के लिए आवश्यक है।

अतः वे पूंजी के लाभ को ब्याज मानते हैं। स्मिथ के अनुसार, ''जब कोई पूँजीपति अपनी पूंजी का निवेश नहीं करता, वरन, उसे ऋण के रूप में देता है, तो उसे पूँजी के लिए जो लाभांश मिलता है, वह ब्याज कहलाता है।''

इस प्रकार ब्याज एवं लाभ दोनों के निर्धारण की दृष्टि से एडम स्मिथ के विचार अस्पष्ट हैं।

**(ii) लगान सम्बंधी विचारः** लगान के सम्बन्ध में भी स्मिथ के विचार एक पक्षीय व अस्पष्ट हैं। स्मिथ के अनुसार, लगान वह अधिकतम कीमत है जिसका भुगतान एक आसामी, भूमिपति को कर सकता है। अर्थात् लगान एक प्रकार से एकाधिकार की कीमत है जो भू–स्वामी को भूमि उपयोग के बदले उपहार–स्वरूप प्रदान की जाती है और यह भूमि की उर्वरा शक्ति व स्थिति पर निर्भर करती है। स्मिथ के अनुसार, ''भूमि के उपयोग के लिए लगान के रूप में जो मूल्य दिया जाता है, वह एकाधिकारी मूल्य ही है।'' दूसरे स्थान पर स्मिथ ने लगान को बचत भी माना है। ''लगभग किसी भी परिस्थिति में भूमि जितना खाद्य पदार्थ उत्पादन में लगे मजदूरों के लिए आवश्यक है उससे अधिक खाद्य उत्पन्न करती है। अतः भूमि के स्वामी के लिए सदैव कुछ न कुछ बचता ही है।''

लगान के सम्बन्ध में स्मिथ के विचार कभी तो आधुनिक विचारों के समीप दिखाई देते है और कभी प्रकृतिवादियों के विचारों के समीप।

**लगान के सम्बन्ध में स्मिथ के विचार परस्पर विरोधी हैः**

**(a) लगान एकाधिकारी मूल्य हैः** स्मिथ के अनुसार, लगान एकाधिकारी मूल्य है जो कि भू–स्वामियों को भूमि के प्रयोग के बदले प्राप्त होता है।

**(b) लगान प्रकृति का उपहार हैः** स्मिथ के अनुसार, भूमि का लगान उसकी उर्वरा शक्ति तथा स्थिति के अनुसार बदलता रहता है। इस सम्बन्ध में स्मिथ का मत है, ''लगान भूमि की उन शक्तियों के कारण उत्पन्न होता है जिन्हें भू–स्वामी उपयोग के लिए कृषक को देता है।''

इस प्रकार लगान के सम्बन्ध में स्मिथ का दूसरा विचार पहले विचार से बिल्कुल मेल नहीं खाता।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम कह सकते हैं कि एडम स्मिथ के वितरण सम्बन्धी विचारों पर निर्वाधवादियों विशेषकर **कैण्टीलोन (Cantillon)** का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। फिर भी हम यह कह सकते हैं कि स्मिथ के वितरण सम्बन्धी विचार बाद के अर्थशास्त्रियों के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण न होगा कि यदि स्मिथ वितरण की व्याख्या न करता तो आज वितरण का सिद्धान्त इतना विकसित नहीं हो पाता।

### 1.4.6 राजस्व सम्बन्धी विचार

स्मिथ ने 'Wealth of Nations' की पांचवें अध्याय में राजस्व पर अपने विचार व्यक्त किये है। स्मिथ के अनुसार, शासन की आय दो स्रोतों द्वारा प्राप्त होती है (a) राज्य की सम्पत्ति, भूमि तथा पूंजी द्वारा होने वाली आय, तथा (b) कर से प्राप्त आय । स्मिथ ने करारोपण के चार प्रमुख सिद्धान्तों का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार हैं:

**(i) समानता का सिद्धान्त (Maxim of Equality):** इस सिद्धान्त के अनुसार सभी व्यक्तियों पर कर का बोझ समान रूप से पड़ना चाहिए। अतः नागरिकों को सरकार की सहायता के लिए प्रायः अपनी योग्यता के अनुपात में योगदान करना चाहिए।

**(ii) निश्चितता का सिद्धान्त (Maxim of Certainty):** प्रत्येक व्यक्ति की कर की मात्रा निश्चित होनी चाहिए।

**(ii) सुविधा का सिद्धान्त (Maxim of Convenience):** कर की वसूली सुविधाजनक होनी चाहिए। अर्थात् कर के भुगतान का समय तथा विधि करदाताओं की सुविधा के अनुसार होनी चाहिए। एडम स्मिथ के अनुसार, ''प्रत्येक कर ऐसे समय पर तथा इस प्रकार लगाया जाना चाहिए कि उसका भुगतान करना करदाता के लिए अधिक से अधिक सुविधाजनक हो।''

**(iv) मितव्ययिता का सिद्धान्त (Maxim of Economy) :** इस सिद्धान्त के अनुसार कर वसूल करने में कम से कम व्यय होना चाहिए। एडम स्मिथ के अनुसार, ''प्रत्येक कर इस प्रकार लगाया जाना चाहिए कि लोगों की जेब से सरकारी खजाने में जाने वाली रकम के अतिरिक्त कम से कम राशि निकाली जाए।''

**डा० डाल्टन** ने भी लिखा है, ''सर्वोत्तम कर प्रणाली वह है जिसके अन्तर्गत कर वसूल करने की लागत

### 1.4.7 पूँजी एवं विनियोग

अपनी पुस्तक 'Wealth of Nations' के द्वितीय खण्ड में उन्होंने पूंजी, बचत तथा विनियोग का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। अतः स्मिथ के अनुसार, बचत का केवल वह भाग जो किसी उत्पादक कार्य में विनियोजित कर दिया जाता है, पूँजी कहलाता है। इस प्रकार पूँजी धन के संचय पर निर्भर करती है, यह दो प्रकार की होती है (i) चल पूँजी, तथा (ii) अचल पूंजी।

**(i) चल पूँजी (Circulating Capital):** चल पूंजी से अभिप्राय उस पूंजी से है जिसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर हस्तान्तरित किया जा सकता है। जैसे कच्चा माल, द्रव्य।

**(ii) अचल पूँजी (Fixed Capital):** अचल पूंजी से अभिप्राय उस पूंजी से है जिसे एक स्थान से दूसरे स्थान को हस्तान्तरित नहीं किया जा सकता। जैसे मकान, कृषि, भूमि आदि। स्मिथ के अनुसार उत्पादक श्रम की क्रियाशीलता के लिए पूंजी की आवश्यकता होती है। अर्थात् अधिक पूँजी अधिक उत्पादक श्रम की नियुक्ति → अधिक उत्पादन → अधिक बचत → अधिक पूँजी की मात्रा में वृद्धि। इसे हम निम्न प्रकार भी स्पष्ट कर सकते हैं:

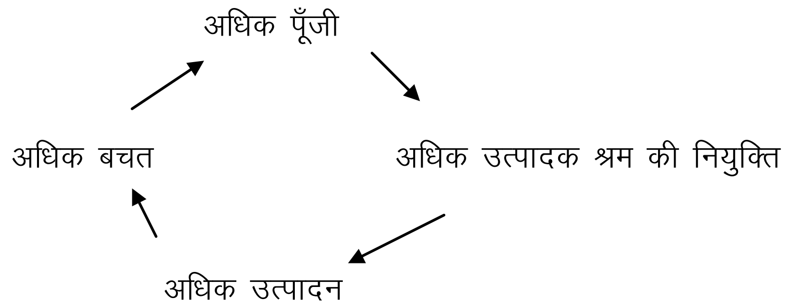


इस प्रकार पूंजी का संचय देश के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण निर्धारक घटक है। मनुष्य स्वहित की भावना से प्रेरित होकर ही बचत करता है। अधिक पूंजी से उत्पादक श्रम अधिक काम पर लगता है जिससे उत्पादन अधिक मात्रा में होता है। जिसके फलस्वरूप बचत अधिक संभव होती है तथा अंततः पूंजी की मात्रा में भी वृद्धि होती है।

स्मिथ ने पूंजी का उपयोग तीन प्रकार से माना है:

**(i) कृषि क्षेत्रः** कच्चे माल का उत्पादन करने के लिए।

**(ii) उद्योग क्षेत्रः** उपभोग हेतु कच्चे माल से पक्का माल बनाने में।

**(iii) व्यापार क्षेत्रः** कच्चे माल या निर्मित माल के परिवहन करने में।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पूंजी का प्रयोग कृषि, उद्योग व व्यापार क्षेत्र में किया जाता है। पूंजी विनियोग के सम्बन्ध में स्मिथ ने यह कहकर कृषि को प्राथमिकता दी है कि, ''निर्माण उद्योगों की तुलना में कृषि में लगी हुई पूंजी समाज को अधिक लाभ प्रदान करती है....... तथा किसान की पूंजी की तुलना में कोई और पूंजी की उतनी ही मात्रा अधिक मात्रा में उत्पादक श्रम को काम पर नहीं लगा सकती।''

**आलोचना :** सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं:

**(i) अपूर्ण एवं अवैज्ञानिकः** इस सिद्धान्त का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है तथा यह विचार अपने आप में पूर्ण नहीं है।

**(ii) अस्पष्ट एवं भ्रामकः** स्मिथ चल तथा अचल पूंजी में अन्तर स्पष्ट नहीं कर सके।

**(iii) कृषि को अत्यधिक महत्वः** पूंजी निर्माण के क्षेत्र में स्मिथ ने कृषि को अधिक उत्पादक माना तथा उद्योग व व्यापार क्षेत्र को अनदेखा किया जो सही नहीं है।

अंत में **कैनन** के शब्दों से यह स्पष्ट हो जाता है कि, ''स्मिथ ने पूंजी सम्बन्धी समस्त विचार को, अत्यन्त असन्तोषजनक स्थिति में छोड़ा।''

### 1.4.8 मुद्रा सम्बन्धी विचार

मुद्रा का जन्म किसी राज्याधिकारी की आज्ञा से नहीं वरन् विनिमय के माध्यम में आने वाली कठिनाईयों के फलस्वरूप हुआ है। अतः मुद्रा का जन्म मनुष्य की सामूहिक क्रिया का परिणाम है। वणिकवादियों ने मुद्रा को ही सम्पत्ति का प्रमुख रूप कहा है। सोने व चांदी की अधिकता ही राष्ट्रीय सम्पत्ति की द्योतक है। परन्तु स्मिथ ने वणिकवादियों के विचारों का खंडन कर मुद्रा को एक वस्तु माना है। उनके अनुसार सम्पत्ति सोने चांदी में नहीं वरन् मुद्रा की क्रय–शक्ति में निहित होती है। **एडम स्मिथ** के शब्दों में, ''गंभीरतापूर्वक यह सिद्ध करना मात्र उपहासपूर्ण ही होगा कि संम्पत्ति, मुद्रा अथवा स्वर्ण और चांदी में निहित नहीं होती, परन्तु मुद्रा की क्रय–शक्ति में निहित रहती है और केवल क्रय करने के लिए ही मूल्यवान होती है।''

अतः स्मिथ के अनुसार मुद्रा की आवश्यकता केवल वस्तुओं के क्रय–विक्रय के लिए होती है। मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त का भी स्मिथ को स्पष्ट ज्ञान था।

### 1.4.9 आर्थिक विकास का सिद्धान्त

एडम स्मिथ प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने आर्थिक विचारों को वैज्ञानिक रूप प्रदान किया तथा 1776 में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'An enquiry into the Nature and Causes of Wealth of Nations' प्रकाशित की। जिसमें उन्होंने आर्थिक विकास से सम्बन्धित विचार प्रस्तुत किये। **लेकाचमान (Lekachman)** के अनुसार, ''ऐसा लगता है कि स्मिथ का अधिकांश कार्य आज के अर्द्ध–विकसित देशों को ध्यान में रखकर ही लिखा गया हो।''

एडम स्मिथ के अनुसार, आर्थिक विकास के प्रमुख निर्धारक तत्व निम्नलिखित हैं:

**(i) प्रकृतिवाद या अहस्तक्षेप नीतिः** एडम स्मिथ प्रकृतिवाद के समर्थक थे जो सरकारी हस्तक्षेप के विरोधी थे। उनके अनुसार प्राकृतिक नियम ही सर्वश्रेष्ठ होते हैं जिनके आधार पर स्वतः विकास की क्रिया होती है। स्वतः विकास आत्महित के कारण होता है। उसके अनुसार, ''जब प्रत्येक व्यक्ति को अपनी दशा सुधारने की पूरी स्वतन्त्रता और सुरक्षा होती है तब उसकी स्वाभाविक क्रिया इतनी शक्तिशाली होती है कि बिना किसी अन्य शक्ति की सहायता के समाज को सम्पन्न और समृद्ध बना सकने में समर्थ होती है और उन सैकड़ों बाधाओं को भी पार कर जाती है जो मूर्खतापूर्ण मानवीय नियमों द्वारा उत्पन्न होती है।''

**(ii) श्रम विभाजनः** एडम स्मिथ ने श्रम को धन का प्रमुख उत्पादक बताया। श्रम विभाजन से तात्पर्य किसी एक कार्य को छोटे–छोटे भागों में बाँटने से है तथा जिसमें प्रत्येक कार्य एक अलग व्यक्ति को सौंप दिया जाता है। जिससे श्रमिक की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है समय व साधनों की बचत नये–नये आविष्कारों को प्रोत्साहन → फलस्वरूप उत्पादकता में वृद्धि होती है।

**(iii) सन्तुलित विकास का सिद्धान्त (The Theory of Balanced Growth):** एडम स्मिथ सन्तुलित विकास नीति के समर्थक थे तथा कृषि व उद्योग दोनों का ही समान रूप से विकास करना चाहते थे। उनका प्राथमिक क्रम इस प्रकार थाः कृषि, उद्योग–धन्धे तथा व्यापार। वे उद्योग धन्थों में लघु तथा कुटीर उद्योगों को विशेष महत्व देते थे।

**(iv) विकास के दूत (Agents of Growth):** स्मिथ ने कृषक, व्यापारी तथा उत्पादक को विकास के दूत माना है। इन्हीं तीनों के कारण ही आर्थिक विकास सम्भव होता है। इन तीनों के कार्य परस्पर सम्बन्धित होते हैं। यदि कृषि का विकास किया जाए तो उद्योग तथा व्यापार का स्वयं ही विकास होने लगता है तथा उत्पादन भी बढ़ता है।

**(vi) बाह्य मितव्ययितायें (External Economies):** स्मिथ के अनुसार अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्र एक दूसरे पर निर्भर करते हैं तथा एक दूसरे के पूरक होते हैं। जिससे बाहरी बचतें प्राप्त होती हैं। इसके साथ ही सन्तुलित विकास नीति अपनाना भी बाह्य मितव्ययिताओं का कारण होता है।

**(vi) आर्थिक विकास (Economic Development):** स्मिथ के अनुसार, आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जो धीरे–धीरे घटित होती है। इसका प्रभाव संचयी होता है। जब अर्थव्यवस्था में कृषि, उद्योग एवं व्यापार का विस्तार होता है पूँजी संचय में वृद्धि श्रम विभाजन का उदय उत्पादकता स्तर में वृद्धि राष्ट्रीय आय में वृद्धि जनसंख्या में वृद्धि प्रभावी मांग में वृद्धि आय व बचत में वृद्धि होती है। इस प्रकार विकास प्रक्रिया आरम्भ होकर एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में फैलती चली जाती है और सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में फैल जाती है। परन्तु सदैव ऐसा नहीं होता क्योंकि पूंजी संचय बढ़ने से मजदूरी दर बढ़ती है तथा लाभ की दर कम होती है जिससे पूंजी विनियोजन घटने लगता है औन इसका अन्तिम परिणाम होता है, स्थिर अवस्था। इस प्रकार अर्थव्यवस्था गतिहीनता की स्थिति में पहुँच जाती है।

### 1.5 आर्थिक विचारों के इतिहास में एडम स्मिथ का योगदान

आर्थिक विचारों के इतिहास में एडम स्मिथ का योगदान निम्न प्रकार हैं :

**(i) श्रम–विभाजन का विस्तारः** एडम स्मिथ का श्रम–विभाजन का विचार प्रस्तुत करना वास्तव में उनका एक मौलिक योगदान था। **एडम स्मिथ** के अनुसार, श्रम विभाजन प्राकृतिक गुणों की भिन्नता के कारण

नहीं वरन् मनुष्यों की विनिमय करने की प्रवृत्ति के कारण उत्पन्न होता है जिसकी सीमा बाजार के विस्तार से निर्धारित होती है।

**(ii) करारोपण सम्बन्धी विचारः** एडम स्मिय के करारोपण सम्बन्धी विचारों से उसके बाद के अर्थशास्कि को बहुत मदद मिली। स्मिथ ने करारोपण से प्राप्त आय को राज्य की आय का प्रमुख साधन माना है।

**(iii) मूल्य निर्धारण का सिद्धान्तः** स्मिथ के अनुसार श्रम मूल्य की आदर्श माप है और निश्चित परिस्थितियो में मूल्य मांग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है परन्तु प्रतियोगिता के प्रभाव में यह उत्पादन लागत के बराबर होने को निरन्तर कोशिश करता है। स्मिथ के इसी सिद्धान्त के आधार पर कार्ल मार्क्स के प्रसिद्ध श्रम सिद्धान्त की स्थापना हुई तथा आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने मांग और पूर्ति के सिद्धान्त की स्थापना की।

**(iv) मजदूरी सम्बन्धी विचारः** स्मिथ के मजदूरी सम्बन्धी विचारों के आधार पर मजदूरी का जीवन–निर्वाह सिद्धान्त तथा मजदूरी कोष सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया।

**(v) लगानः** स्मिथ ने लगान को मूल्य पर आधारित बताया है इस प्रकार उन्होंने आधुनिक सिद्धान्तों की ओर संकेत किया था।

**(vi) लाभ एवं मजदूरी में अन्तरः** एडम स्मिथ के अनुसार, श्रम और पूंजी की प्रतियोगिता के कारण लाभ व मजदूरी में विपरित सम्बंध पाया जाता है।

### 1.6 एडम स्मिथ के विचारों की आलोचनाएँ

यद्यपि स्मिथ के सिद्धान्तों का अपना अलग ही महत्व है परन्तु फिर भी उनके सिद्धान्तों को दोषमुक्त नहीं कहा जा सकता। अतः स्मिथ के विचारों के विरुद्ध जो आलोचनाएँ की गयी है वह निम्नलिखित हैं:

**(i) व्यक्तिगत हित को आवश्यकता से अधिक महत्व देनाः** स्मिथ के अनुसार, असंबद्ध व्यक्तियों का समूह केवल निजी हितों की पूर्ति के लिए ही अन्तक्रियाएँ करता है। स्मिथ का व्यक्ति स्वहित की भावना से प्रेरित आर्थिक मनुष्य है। **प्रो० हैने** के अनुसार, ''उनका व्यक्ति एक अवास्तविक है जिसमें आर्थिक व्यक्ति की ही प्रधानता है जो आत्म–प्रेम से प्रभावित है।''

**(ii) आदर्शवाद का अभाव**: स्मिथ के विश्लेषण में आदर्शवाद का अभाव है तथा वह भौतिकवाद से पूर्ण है। **प्रो० इंग्राम** के शब्दों में, ''स्मिथ ने हमारी जाति के नैतिक गन्तव्य को ध्यान में नहीं रखा है और न ही धन को जीवन के उच्चतर उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन माना है और इस प्रकार वे भौतिकवाद के दोषी हैं जो सर्वथा अनुचित नहीं है।'' परन्तु **प्रो० ग्रे** ने उसका पक्ष लेते हुए कहा है कि, ''वे आदर्श की बात करने से इसलिए कतराते हैं ताकि वे मूर्ख न लगने लगें।''

**(iii) परस्पर विरोधी सिद्धान्त**: स्मिथ के 'Wealth of Nations' में परस्पर विरोधी सिद्धान्तों की अधिकता है। स्मिथ का ग्रन्थ गहन चिन्तन को दर्शाता है परन्तु उसमें निश्चय का अभाव है।

**(iv) अर्थव्यवस्था में सदैव साम्य की स्थिति की मान्यताः** स्मिथ ने अर्थव्यवस्था में सदैव साम्य की स्थिति को स्वीकार किया है तथा वे 'असन्तुलनों की समस्या पर विचार न कर सके ।

**(v) अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित**: स्मिथ ने अपने सिद्धान्तों में कुछ अवास्तविक मान्यताओं की कल्पना की है। जैसे– पूर्ण प्रतियोगिता, स्थिर अर्थव्यवस्था आदि।

**(vi) क्रमबद्धता का अभावः** स्मिथ के विचारों में क्रमबद्धता का अभाव है। वह बहुत ही अस्त–व्यस्त ढंग से प्रस्तुत किया गया है। **जे० बी० से०** के शब्दों में, ''उनका ग्रन्थ सही विचारों का बिखरा हुआ संकलन है जिनको कुछ सत्यों के साथ लापरवाही से फेंक दिया गया है।''

**(vii) अहस्तक्षेप की नीतिः** स्मिथ ने अहस्तक्षेप की नीति का समर्थन किया तथा सरकारी कार्यों को सीमित करने का पक्ष लिया। उस समय यह नीति सरकार द्वारा व्यापार में लगाये गये नियन्त्रणों का

परिणाम थी। परन्तु आज राज्य के कार्यक्षेत्र में वृद्धि हो चुकी है और स्मिथ की अहस्तक्षेप की नीति विश्वास खो चुकी है।

### 1.7 सारांश

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद भी स्मिथ ने आर्थिक विचारों के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया तथा अद्वितीय सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। प्रो० ग्रे के शब्दों में, ''एडम स्मिथ के पहले बहुत आर्थिक विवेचन हो चुका था स्मिथ के साथ हम अर्थशास्त्र की विवेचना की अवस्था में प्रवेश करते हैं।''

स्मिथ के Wealth of Nations में उसके गहन चिन्तन के दर्शन होते है। उन्होंने अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र का इतना क्रमबद्ध व वैज्ञानिक अध्ययन किया है कि आर्थिक विज्ञान का ढांचा दृढ़ता के साथ स्थापित किया गया। स्मिथ का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने से पहले यह ज्ञात होना आवश्यक है कि उस समय औद्योगिक पूंजीवाद की स्थापना तो हो चुकी थी परन्तु उद्योगों का पूर्ण रूप से विकास नहीं हुआ था। स्मिथ की दूरदर्शिता की प्रशंसा करते हुये प्रो० अलैक्जेन्डर ग्रे ने कहा है, ''स्मिथ के पास सब मनुष्यों एवं सब कारणों के लिए कुछ है– यह इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है कि अपने चारों ओर उपस्थित अर्थशास्त्रियों की तुलना में वे असाधारण थे।''

### 1.8 अभ्यास के प्रश्न

1. एडम स्मिथ का सामान्य परिचय दें।
2. एडम स्मिथ को प्रभावित करने वाले विचारकों को उल्लेख करें।
3. उनके आशावाद और प्रकृतिक व्यवस्था की संकल्पना को स्पष्ट करें।
4. उनके श्रम विभाजन के विचार को स्पष्ट करें।
5. उनके व्यापार सिद्धान्त का वर्णन करें।
6. उनके मूल्य ाििद्वान्त का वर्णन करें।
7. उनके वितरण सम्बंधी विचारों को प्रस्तुत करे।
8. उनके राजस्व सम्बंधी विचारों को स्पष्ट करें।
9. उनके पूंजी सम्बंधी विचार का उल्लेख करें।
10. उनके विनियोग सम्बंधी विचार को स्पष्ट करें।
11. उनके मुद्रा सम्बंधी विचार को स्पष्ट करें।
12. उनके आर्थिक विकास की अवधारणा का वर्णन करें।
13. एडम स्मिथ के आर्थिक विचारों की आलोचनात्मक मूल्यांकन करें।

### 1.9 उपयोगी पुस्तकें

**एम सी वैश्य,** आर्थिक विचारों का इतिहास. सप्तम संस्करण, प्रकाशक– मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर।

Eric Roll (1986). A History of Economic Thought. Forth Edition. Calcutta Oxford University Press (India)

टी एन हजेला (2002). आर्थिक विचारों का इतिहास. नौवाँ संस्करण, कोणार्क पब्लिशर्स प्रा. लि., नयी दिल्ली 110092।

फ्रैंक थिली (2018). पश्चात दर्शन का इतिहास (अनुवादक– एन. ए. खान 'शाहिद'), अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लिमिटेड, नर्द दिल्ली– 110002।

बी. एस. यादव, नन्दिनी शर्मा एवं उपासना शर्मा (2011). आर्थिक विचारों का इतिहास. प्रकाशक– यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नयी दिल्ली।

शिव नारायण गुप्त (2005). आर्थिक विचारों का इतिहास. प्रथम संस्करण, मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन वाराणसी।

# इकाई–6

## वितरण का सिद्धान्त, व्यापार से सम्बंधित विचारधारा, आर्थिक प्रगति

इकाई की रूपरेखा

1.1उद्देश्य

1.2 परिचय

1.3 वितरण के सिद्धान्त
- 1.3.1 लगान का सिद्धान्त
- 1.3.2 मजदूरी का सिद्धान्त
- 1.3.3 ब्याज का सिद्धान्त
- 1.3.4 लाभ का सिद्धान्त

1.4 व्यापार का सिद्धानतः
- 1.4.1 वणिकवादियों का विचार
- 1.4.2 प्रकृतिवादियों का विचार
- 1.4.3 एडम स्मिथ क विचार
- 1.4.4 रिकार्डो का विचार
- 1.4.5 हेक्शर तथा ओहलिन का विचार
- 1.4.6 एजवर्थ और माशर्ल का विचार

1.5 आर्थिक संवृद्धि एवं विकास**:**
- 1.51 प्रारम्भिक विचार
- 1.5.2 एडम स्मिथ के विचारः
- 1.5.3 माल्थस के विचारः
- 1.5.4 कार्ल मार्क्स का विचारः
- 1.5.5 डब्लू डब्लू रोस्टो के विचार
- 1.5.6 कींस का विचार

1.6 सारांश

1.8 उपयोगी पुस्तकें

## 1.1 उद्देश्य

वर्तमान इकाई का उद्देश्य निमनलिखित है–

- वितरण के प्राचीन सिद्धान्तों को जानना
- व्यापार के प्राचीन सिद्धान्तों को जानना
- आर्थिक प्रगति के प्राचीन सिद्धान्तों को जानना

## 1.2 परिचय

वितरण, व्यापार और प्रगति अर्थशास्त्र के महत्वपूर्ण विषयवस्तु हैं। अर्थशास्त्र में वितरण से तात्पर्य उत्पादन के मूल्य को उत्पादन के साधनों के बीच वितरित करने से है। वर्तमान में उत्पादन के चार साधन माने जाते हैः भूमि, श्रम, पूंजी और साहसी। उत्पादन के मूल्य में से भूमि को मिलने वाले हिस्से को लगाान, श्रम के हिस्से को मजदूरी, पूंजी के हिस्से को ब्याज तथा साहसी के हिस्से को लाभ के नाम से जाना जाता है।

व्यापार का सामान्य अर्थ किसी वस्तु को एक जगह से खरीदकर या उत्पादित करके दूसरी जगहों पर बेचने से है। व्यापार देश के अन्दर भी होता है और देश से बाहर भी। जब दूसरे देशों से कोई वस्तु/सेवा खरीदी जाती है तो उसे आयात कहते हैं। जब कोई वस्तु/सेवा दूसरे देशों में बेची जाती है तो उसे निर्यात कहते हैं। विदेशाी व्यापार में दूसरे देशों के नियम कानून भी लागू होते हैं तथा इसका भुगतान विदेशी मुद्राओं में किया जाता है। दो देशों के बीच व्यापार की मात्रा के आधार पर ही विदेशी मुद्रा विनिमय दर का निर्धारण होता है। प्रत्येक देश विदेशी बिलों के भुगतान के लिए अपने पास विदेशी मुद्रा का कोश भी रखते हैं।

सभी आर्थिक क्रियाओं का अंतिम लक्ष्य आर्थिक प्रगति ही होता है। इसको आर्थिक संवृद्धि और आर्थिक विकास के नाम से भी जाना जाता है। प्रारम्भ में आर्थिक प्रगति की माप उत्पादन की मात्रा में वृद्धि से की जाती थी परन्तु वर्तातान में इसके विस्तृत आयाम हैं। इसके अन्तर्गत उत्पादन की मात्रा के साथ साथ जनसंख्या के आकार, आय का वितरण, तथा पर्यावरण के मानक भी जुड़ जाते हैं। वर्तमान में सतत् विकास की अवधारणा को प्रमुखता दी जा रही है।

### 1.3 वितरण के सिद्धान्त (Theory of Distribution):

अर्थशास्त्र में वितरण से तात्पर्य उत्पदान के साधनों के बीच उत्पादन को वितरित करने से है। प्राचीन काल में उत्पादन के दो ही साधन भूमि और श्रम को माना जाता था। कालान्तर में मशीनों के बढ़ते प्रयोग के कारण पूंजी को भी उत्पादन का महत्वपूर्ण साधन माना जाने लगा था। वर्तमान में बड़े पैमाने पर उद्योगों को स्थापित करने में उद्यमियों की प्रमुख भूमिका को देखते हुए उद्ययमियों अथवा साहसियों को भी उत्पादन का साधन माना जाता है। इस तरह से आधुनिक युग में उत्पादन के चार प्रमुख साधनः भूमि, श्रम, पूंजी और साहसी हैं। उत्पदन को इन्हीं चार साधनों के बीच वितरित करने के लिए विभिन्न अर्थशाि्रयों ने अपने अपने विचार दिए हैं जिनको वितरण के सिद्धान्त के रूप में जाना जाता है।

- **उत्पादन में भूमि के भाग को लगान के नाम से जाना जाता है।**
- **उत्पादन में श्रम के भाग को मजदूरी कहा जाता है।**
- **उत्पादन में पूंजी के भाग को ब्याज कहा जाता है।**
- **उत्पादन में साहसी या उद्यमियों के भाग को लाभ कहा जाता है।**

वितरण के सिद्धान्त की शुरूआत प्रकृतिवाद के प्रमुख विचारक **क्विजने (Quesnay) के आर्थिक तालिका** में मिलता है। उन्होंने शुद्ध उत्पादन के कृषक, भूस्वामी और उद्योगिक वर्ग के बीच के परिभ्रमण का खाका प्रस्तुत किया था। हालांकि उनका शुद्ध उत्पादन के परिभ्रमण का विचार अस्पष्ट और एकांगी भी था। वे केवल कृषक वर्ग को ही उत्पादक मानते थे। बाद के अर्थशास्त्रियों ने लगान, मजदूरी, ब्याज

और लाभ के कई सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। उनमें से कुछ प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन निम्नलिखित है–

### 1.3.1 लगान का सिद्धान्त (Theory Rent)

उत्पादन में भूमि के भाग को लगान के नाम से जाना जाता है और यह भूस्वामियों को प्राप्त होता है। लगान के कुछ प्रारम्भिक विचार निम्नलिखित हैं–

**प्रकृतिवादियों का मतः**

प्रकृतवादी भूमि और श्रम को ही उत्पादन के साधन मानते थे। उनके अनुसार किसानों द्वारा शुद्ध उत्पादन (कुल उत्पादन में से उत्पादन की लागत घटा देन पर शेष अतिरेक) में से अपने जीवन यापन के लिए जरूरी वस्तुओं और सेवाओं को उद्योगपतियों से खरीदने के बाद शेष बचा भाग भूस्वामियों को लगान के रूप में प्राप्त होता है। भूस्वामी अपनी आय से सरकार को कर चुकाते हैं और अपने जीवन यापन के लिय किसानों से खद्यान्न और उद्योगपतियों से वस्तुएँ और सेवाएँ खरीदते हैं। भूस्वामी अपनी बचत को भूमि की ऊर्वरता, सुरक्षा, सिंचाई एवं अन्य सुविधाओं के लिए निवेश करते हैं। इस प्रकार देखा जाए तो भूमि की ऊर्वरा शक्ति और उस पर किए गए निवेश के लिए भूस्वामियों को लगान प्राप्त होता है।

**एडम स्मिथ का विचारः**

विदित है कि एडम स्मिथ को अर्थशास्त्र का जनक कहा जाता है। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Wealth of Nation में लगान के बारे में विचार दिया है। लगान के सम्बंध में एडम स्मिथ का विचार संकुचित एवं विरोधाभाषी थे। एक ओर वे मानते थे कि भूमि पर एकाधिकार के अंश के कारण लगान उत्पन्न होता है। यदि भूमि की उपलब्धता असिमित हो तो लगान शून्य होगा। इस तरह से एडम स्मिथ ने लगान का एकाधिकार सिद्धान्त प्रस्तुत किया था। दूसरी ओर वे मानते थे कि लगान प्रकृति का उपहार है। अर्थात भूमि में प्रकृति प्रदत उपजाऊ क्षमता के कारण भूमि के मालिकों को लगान प्रदान किया जाता है।

**रिकार्डो का विचारः**

लगान के सम्बंध मे ंसबसे सपष्ट और तार्किक विचार रिकार्डो का ही माना जाता है। उनका मानना था कि लगान में वृद्धि के कारण मूल्य में वृद्धि नहीं होती है बल्कि मुल्य में वृद्धि के कारण लगान में वृद्धि होती है। इस बात को उन्होंने अपने विभेदात्मक लागत के सिद्धान्त में साबित भी किया है। उनका मानना था कि ''भूमि की मौलिक एवं अविनाशी उपजाऊ शक्तियों के प्रयोग के बदले में उनके स्वामियों को जो कुछ भी भुगतान किया जाता है वही लगान है।

रिकार्डो ने अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए एक निर्जन द्वीप का उदाहरण दिया है। वे कहते हैं कि जब कुछ लोग इस द्वीप पर पहली बार आते हैं तो वहाँ उनके लिए असिमित उपजाऊ भूमि उपलब्ध होता है। ऐसी स्थिति में लगान नहीं उत्पन्न होता है।

जैसे जैसे द्वीप पर आबादी बढ़ती है जिसके कारण खाद्यान्नों की मांग और कीमत में वृद्धि होती है तब लोग अपेक्षाकृत कम उपजाऊ भूमि पर खेती करने लगते हैं। जिसके चलते अधिक उपजाऊ भूमि पर लगान उत्पन्न होता है।

उन्होंने अपनी बातों को साबित करने के लिए सीमांत भूमि की अवधारणा दी है। जिस भूमि पर खेती करने से उत्पादन का मूल्य और उत्पादन की लाागत समान होती है उसे उन्होंने सीमांत भूमि की संज्ञा दी है। इस तरह से सीमांत भूमि पर लगान शून्य होता है।

सीमांत भूमि से अधिक उपजाऊ भूमि पर लगान उत्पन्न होता है जिसकी गणना निम्नलिखित सूत्र के द्वारा की जाती है–

प्रति इकाई भूमि पर लगान की मात्रा = प्रति इकाई भूमि पर उत्पादन का मूल्य – प्रति इकाई सीमांत भूमि पर उत्पादन का मूल्य

रिकार्डो के विभेदात्मक लगान सिद्धान्त को निम्नलिखित उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया गया है–

मान लिया कि सबसे उपजाऊ भूमि को ग्रेड A से, मध्यम उपजाऊ भूमि को ग्रेड B से तथा निम्न या सीमांत भूमि को ग्रेड C से सूचित करते हैं। यहाँ भूमि C सीमांत भूमि है। अर्थात इसपर उत्पादन का मूल्य और लागत एक समान है। पुनः मान लिया कि प्रति एकड़ ग्रेड A से प्राप्त उत्पादन का मूल्य 10000 रूपया है, प्रति एकड़ भूमि ग्रेड B से प्राप्त उत्पादन का मूल्य 8000 रूपया तथा प्रति एकड़ सीमांत भूमि, ग्रेड C से प्राप्त उत्पादन मूल्य 5000 रूपया है।

**लगाान की गणना–**

प्रति एकड़ ग्रेड A के लिए लगाान = प्रति एकड़ ग्रेड A से प्राप्त उत्पादन का मूल्य – प्रति एकड़ ग्रेड C से प्राप्त उत्पादन का मूल्य

= 10000 रूपया – 5000 रूपया = 5000 रूपया।

प्रति एकड़ ग्रेड B के लिए लगाान = प्रति एकड़ ग्रेड B से प्राप्त उत्पादन का मूल्य – प्रति एकड़ ग्रेड C से प्राप्त उत्पादन का मूल्य

= 8000 रूपया – 5000 रूपया = 3000 रूपया।

प्रति एकड़ ग्रेड C के लिए लगाान = प्रति एकड़ ग्रेड C से प्राप्त उत्पादन का मूल्य – प्रति एकड़ ग्रेड C से प्राप्त उत्पादन का मूल्य

= 5000 रूपया – 5000 रूपया = 00 रूपया।

नोटः सीमांत भूमि पर उत्पादन का मूल्य और लागत बराबर होने के कारण लगान शुन्य होता है।

इस तरह से जब बढ़ती जनसंख्या और खाद्यान्नों की मांग के कारण खाद्याान्नों की कीमतों में वृद्धि होती है तब अपेक्षाकृत कम उपजाऊ भूमि पर भी खेती किया जाता है जिसके कारण उपजाऊ भूमि के लिए लगान की दर में वृद्धि होती है।

### 1.3.2 मजदूरी का सिद्धान्त (Theory of Wages)

एडम स्मिथ से पूर्व के विचारकों ने मजदूरी की दर के निर्धारण के लिए कोई विशेष प्रयास नहीं किया था। वणिकवादियों और प्रकृतिवादियों ने उचित मजदूरी  की बात की थी। परन्तु उचित मजदूरी की दर कितनी होगी यह तय करने का कोई आधार नहीं दिया था। जिसके कारण मजदूरी का निर्धारण अलग अलग सामाजिक स्तर के अनुसार होता था।

**एडम स्मिथ** पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होंने मजदूरी के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। उन्होंने मजदूरी के जीवन निवार्ह सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। जिसके अनुसार मजदूरी की दर मजदूरों के जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक खर्चों को पूरा करने के लिए पर्याप्त होना चाहिए। उनका मत था कि राष्ट्र की समृद्धि/प्रगति के साथ साथ मजदूरों के जीवन स्तर में भी सुधार होता है और उनके जीवन निर्वाह व्यय में भी वृद्धि होती है।

स्मिथ का मानना था कि उत्पादन के साधनों में पूंजीपति संगठित होते हैं और असंगठित मजदूरों को कम से कम भुगतान करना चाहते हैं। इस तरह से पूंजीपतियों द्वारा श्रमिकों का शोषण किया जाता है। परन्तु आर्थिक प्रगति के कारण मजदूरों की मांग और उत्पादकता में वृद्धि के कारण मजदूरी की दर में भी वृद्धि होती है।

रिकार्डो ने भी मजदूरी के जीवन निर्वाह सिद्धान्त का समर्थन किया था तथा उसको आगे बढ़ाया था। उन्होंने मजदूरी के दो भेद बताये: स्वाभाविक मजदूरी **(Natural Wage)** तथा बाजार मजदूरी **(Market Wage).** स्वाभाविक मजदूरी से उनका अभिप्राय ''उस मूल्य से था जो श्रमिकों को जीवित रखने तथा अपनी समूह को बिना किसी कमी अथवा वृद्धि के साथ सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक होती है।'' यह सिद्धान्त मजदूरों के लिए काफी जड़ एवं कठोर था। बाद में रिकार्डों ने जीवन निर्वाह शब्द की जगह सामाजिक जीवन निर्वाह शब्द का प्रयोग किया था। यह सिद्धान्त माल्थस के जनसंख्या सिद्धात पर आधारित था।

**मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त** को आधुनिक युग में सबसे उपयुक्त माना जाता है। इसका प्रतिपादन और विकास में कई अथशास्त्रियों का येगदान है। जिसमें से **लॉगफिल्ड और वॉन थ्यूनन** प्रारथिक अर्थशास्त्री थे। **वॉन थ्यूनन** ने **(1826)**, में इसकी विस्तृत व्याख्या की थी। परन्तु 18 वीं सदी के अंतिम चतुर्थांश से पहले इसकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया। मजदूरी के सीमांत उत्पादकता सिद्धान्त की सबसे सुन्दर व्याख्या **जे. बी. क्लार्क** ने दी है। इसके अनुसार उत्पादन के सभी साधनों का उनके सीमांत उत्पादन के बराबर भुगतान किया जाना चाहिए।

### 1.3.3 ब्याज का सिद्धान्त (Theory of Interest)

प्रचीन काल में ब्याज से सम्बंधित नैतिक विचार ही प्रचलित थे। सभी धर्मों में ब्याज वसूलने वालों को बुरी नजर से देखा जाता था और ब्याज वसूलना पाप कर्म माना जाता था। **प्लेटो तथा अरस्तू** ने भी ब्याज का को सही नहीं माना था इसके पीछे उनका तर्क था कि मुद्रा ऊसर है और स्वयं कुछ भी उत्पन्न नहीं कर सकती।

ब्याज के आर्थिक पहलुओं की ओर अर्थशास्त्रियों का ध्यान 17 वीं सदी के उतरार्द्ध में गया। **चाईल्ड** ने अपनी पुस्तक में बताया कि किसी भी देश में धन ब्याज की नीची दर के कारण ही उत्पन्न होता है। ऐसा ही विचार **सर टामस कल्पेरर** ने अपनी पुस्तक में व्यक्त किया था।

**विलियम पैटी, नार्थ तथा जॉन लॉक** आदि विचारकों ने एक नये सिद्धान्त को विकसित किया था जिसके अनुसार ब्याज की नीची दर धन का परिणाम होती है न कि उसका कारण। **जॉन लॉक** ने बताया कि मुद्रा के औसत परिमाण में वृद्धि होने के साथ साथ ब्याज की दर में कमी आती है। इनहोंने यह भी कहा था कि ब्याज उधार ली गयी मुद्रा का मूल्य है। उसने लाभ की दर और ब्याज की दर में सीधा सम्बंध बताया था। अर्थात लाभ की दर अधिक होने पर ब्याज की दर भी अधिक होती है तथा इसके विपरित लाभ की दर नीची होने पर ब्याज की दर भी नीची होती है।

**पैटी** का मानना था कि ब्याज की दर मुद्रा के परिणाम द्वारा निर्धारित होती है और मुद्रा के परिमाण को संसद नियंत्रित नहीं कर सकती। उसने यह भी कहा कि ब्याज एक प्रकार का प्रिमियम है जो ऋणदाता को मुद्रा का हस्तांतरण करने तथा असुविधा सहन करने के बदले में दिया जाता है क्योंकि वह एक निश्चित समय तक अपनी मुद्रा को वापस नहीं मांग सकता है।

प्रतिष्ठित अर्थशस्त्रियों द्वारा पूंजीपतियों को ही उद्योगपति मान लेने के कारण ब्याज और लाभ में अंतर समाप्त कर दिया गया। इन्होंने यह स्वीकार किया कि ब्याज का अपना कोई अस्तित्व नहीं होता।

**सिनियर** ने सर्वप्रथम ब्याज का त्याग अथवा प्रतीक्षा सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। उसके अनुसार बचत करने में लोगों को कछ कष्ट या त्याग करना पड़ता है और ब्याज इसी कष्ट या त्याग का पुरस्कार है।

**कींस** के अनुसार, व्यक्तियों को इस बात के लिए तैयार करने के लिए कि वे अपनी तरलता को एक निश्चित काल के लिए त्याग कर दें जो कुछ भुगतान किया जाता है उसे ब्याज कहते हैं। इसिलिए **कींस** के ब्याज सिद्धान्त को **तरलता पसंदगी का सिद्धान्त** कहा जाता है। उनके अनुसार व्यक्ति तथा संस्थान अपने पास तीन कररणों से तरल मुद्रा रखते हैं–

**लेनदेन के उद्देश्य के लिए**: लेनदेन के लिए रखी जाने वाली मुद्रा व्यक्ति या संस्था की आय पर निर्भर करती है। जिनकी आय अधिक होती है वे अपने पास ज्यादा नकद मुद्रा इस उद्देश्य के लिए रखते हैं।

**आकस्मिक खर्चों के लिए:** आकस्मिक खर्चों के लिए रखी जाने वाली मुद्रा की मात्रा भी व्यक्ति या संस्था की आय पर निर्भर करती है। जिनकी आय अधिक होती है वे अपने पास ज्यादा नकद मुद्रा इस उद्देश्य के लिए रखते हैं।

**सट्टा उद्देश्य के लिए:** शेयर, प्रतिभूतियों एवं ऋणपत्रों के मूल्यों में होने वाले उतार चढ़ाव से लाभ कमाने के लिए भी लोग या संस्थाएँ अपने पास नकद मुद्रा रखते हैं। सट्टा उद्देश्य के लिए रखी जाने वाली नकद मुद्रा की मात्रा ब्याज की दर पर निर्भर करती है। जब ब्याज की दर ज्यादा होती है तब लोग इस उद्देश्य से अपने पास कम मुद्रा रखते हैं। इसके विपरीत जब ब्याज की दर कम होती है तब लोग इस उद्देश्य से अपने पास ज्यादा नकद मुद्रा रखते हैं। अर्थात ब्याज की दर और सट्टा उद्देश्य के लिए नकद मुद्रा की मांग के बीच विपरित सम्बंध पाया जाता है।

कींस के अनुसार ब्याज की दर कर निर्धारण मुद्रा की मांग और पूर्ति के द्वारा होती है। मुद्रा की पूति केन्द्रीय बैंक द्वारा तय की जाती है जो अल्पकाल में स्थिर रहती है। इसलिए ब्याज की दर तरलता पसंदगी की स्थिति पर निर्भर करती है। मौद्रिक आय का वह भाग जिसे लोग अपने पास नकदी या तरल रूप में रखना चाहते हैं वह तरलता पसंदगी का सूचक है। किसी अर्थव्यवस्था में तरलता पसंदगी की तीव्रता उसमें बैंकिंग प्रणाली की अवस्था पर भी निर्भर करती है। विकसित बैंकिंग प्रणाली वाली अर्थव्यवस्थाओं में लोगों की तरलता पसंदगी की तीव्रता कम होती है।

### 1.3.4 लाभ का सिद्धान्त (Theory of Profit)

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों से पूर्व के विचारक तथा अधिकांश प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री भी ब्याज और लाभ में अंतर नहीं कर सके थे। एडम स्मिथ ने सबसे पहले यह बताया था कि पूंजी से प्राप्त होने वाले आय को लाभ कहते हैं। **जे. बी. से** ने स्मिथ के विचारों को आगे बढ़ाते हुए साहसी की मजदूरी तथा विनियोगकर्ता के रूप में प्राप्त होने वाली आय के भेद को स्पष्ट किया था। उन्होंने स्पष्ट किया कि साहसी के परिश्रम और निर्देशन के लिए मजदूरी तथा जोखिम उठाने के बदले में लाभ प्राप्त होता है। रिकार्डो ने लाभ को अवशेष के रूप में परिभाषित किया था जो आय/उत्पादन में से लगान और मजदूरी का हिस्सा निकाल देने के बाद बचता है। मिल तथा रिकार्डो का मत था कि जनसंख्या की वृद्धि के परिणामस्वरूप लाभ की दरें शून्य हो जाएगी। इसके विपरीत सभ्यता के विकास और आविष्कारों के विस्तार के प्रभाव में लाभ की दरें ऊँची होंगी।

आधुनिक अथशास्त्रियों जिनमें **हॉले, नाइट, तथा डॉब** प्रमुख हैं, ने सर्वसम्मति से लाभ को जोखिम वहन करने का पुरस्कार माना है। **नाइट** ने जोखिम के दो भेद किए हैं–

1. ऐसे जोखिम जिनका बीमा किया जा सकता है, तथा
2. ऐसे जोखिम जिनका बीमा नहीं किया जा सकता है

बीमा न किए जा सकने वाले जोखिम दो कारणों से उत्पन्न होते हैं–

1. व्यापारिक वातावरण की अनिश्चितताओं के कारण, तथा
2. व्यवसायिक योग्यता की विभिन्नताओं के कारण

**प्रोफेसर शुम्पीटर** ने लाभ का नवप्रवर्तन का सिद्धान्त दिया था। उनके अनुसार उद्यमियों को व्यवसाय में नये नये प्रयोग और आविष्कारों के बदले में लाभ प्राप्त होता है।

### 1.4 व्यापार का सिद्धान्त (Theory of Trade):

व्यापार का सामान्य अर्थ किसी वस्तु को एक जगह से ले जाकर दूसरी जगह में बेचना। इस तरह से व्यापार की क्रिया देश के अंदर भी होती है और देश के बाहर भी। जब देश में उत्पादित वस्तुओं को दूसरे देशों में बेचा जाता है तो उसे विदेशी अथवा अंतरराष्ट्रीय व्यापार कहते हैं। आंतरिक और विदेशी व्यापार में खास अंतर यह होता है कि विदेशी व्यापार अपने देश की सीमाओं के बाहर होता है और इसपर दूसरे देशों के नियम कानून भी लागू होते हैं। दूसरे देशों से किए गए आयात का भुगतान प्रायः विदेशी मुद्रा में करना होता है। इसके लिए सभी देश अपने पास विदेशी मुद्रा का कोश भी रखते हैं। विदेशी व्यापार में आयात और निर्यात की मात्रा का निर्धारण करने में विदेशी मुद्रा विनिमय दरों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

विदेशी व्यापार की शुरूआत कब हुयी इसका सही सही अनुमान लगाना बहुत कठिन है परन्तु इसका प्रमाण ईसा से पूर्व में भी मिलता हैं। प्राचीन काल में वस्तु विनिमय प्रणाली के अंतर्गत विदेशी व्यापार होते थे। कहा जाता है कि प्राचीन काल में भारत के कारीगर काफी कुशल थे। भारत से हस्त निर्मित वस्तुओं खासकर कपड़ा, सजावटी वस्तुएँ खिलौने, मसाले एवं अन्य कृषि उपजों को निर्यात किया जाता था तथा बाहर से घोड़े, सोना, चाँदी एवं अन्य कीमती धातुओं का आयात किया जाता था।

आर्थिक विचारों के इतिहास में वणिकवादी विदेशी व्यापार को काफी महत्व देते थे। हालांकि उनका विचार एकांगी था और वे केवल निर्यात पर बल देते थे। उनका मत था कि दूसरे देशों में निर्यात के द्वारा अपने देश में कीमती धातुओं का संग्रह बढ़ता है जिससे देश मजबूत होता है। एक मजबूत देश बड़ी सेना रख सकता है जिससे उसकी सुरक्षा सुनिश्चित होती है।

प्रकृतिवादियों ने वणिकवादियों की अपेक्षा उदार सोच का परिचय देते हुए व्यापार के दोनों पक्षों; आयात और निर्यात को महत्वपूर्ण माना। उन्होंने यह साबित किया कि देश को आयात करने से भी लाभ होता है। कोई भी देश अपने नागरिकों के लिए सभी उपयोगी वस्तुओं का निर्माण अपने यहाँ नहीं कर सकता है। खासकर संकट की स्थिति में दूसरे देशों से आयात के कारण काफी मदद मिलती है।

प्रकृतिवादियों की बातों को आगे बढाते हुए आधुनिक अर्थशास्त्र के जनक **प्रोफेसर एडम स्मिथ** ने स्वतंत्र अंतरराष्ट्रीय व्यापार की खुलकर वकालत की तथा साबित किया कि स्वतंत्र अंतरराष्ट्रीय व्यापार से सभी को लाभ होता है। उन्होंने अपने शुद्ध लागत लाभ के सिद्धान्त के द्वारा यह बताया कि जो वस्तु अपने देश में कम लागत में बनायी जा सकती है उसको अपने यहाँ उत्पादित करके दूसरे देशों में बेचना चाहिए तथा जो वस्तु दूसरे देशों में कम लागत में बनायी जा सकती है उसको दूसरे देशों से खरीद लेनी चाहिए। इस प्रक्रिया में शामिल सभी देशों को लाभ प्राप्त होता है तथा विश्व का कल्याण भी बढ़ता है।

अंतरराष्ट्रीय व्यापार का सबसे उत्कृट सिद्धान्त प्रमुख प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों में गिने जाने वाले **डेविड रिकार्डो** ने दिया था जिसको तुलनात्मक लागत लाभ के सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। इन्होंने एडम स्मिथ के शुद्ध लागत लाभ में संशोधन करते हुए साबित किया कि यदि किसी देश को किसी भी वस्तु के उत्पादन में शुद्ध लागत लाभ नहीं प्राप्त हो तो भी उसको उस वस्तु का उत्पादन करना चाहिए जिसमें उसको तुलनात्मक लागत लाभ प्राप्त हो रहा हो। ऐसा करने से सभी देशों को लाभ होगा तथा विश्व का कल्याण भी अधिकतम होगा।

अंतरराष्ट्रीय व्यापार के सिद़्धान्त को आगे बढ़ाते हुए **इ. एफ. हैक्शर तथा बी. ओहलिन** ने अंतरराष्ट्रीय व्यापार के साधन प्रचुरता सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसके अनुसार किसी देश को उन वस्तुओं का उत्पादन और निर्यात करना चाहिए जिसके उत्पादन के लिए  साधन की प्रचुरता हो। अर्थात श्रम की बहुलता वाले देश को श्रम गहन वस्तुओं का उत्पादन करना चाहिए तथा पूंजी की प्रचुरता वाले देशों को पूंजी गहन वस्तुओं का उत्पादन तथा निर्यात करना चाहिए।

इसके अलावा समय और परिस्थितियों के अनुसार अंतरराष्ट्रीय व्यापार के अन्य कई सिद्धान्त व्यवहार में आते रहे हैं।

### 1.4.1 वणिकवादियों का विचार

आर्थिक विचारों के इतिहास में वणिकवादी विदेशी व्यापार को काफी महत्व देते थे। हालांकि उनका विचार एकांगी था और वे केवल निर्यात पर बल देते थे। उनका मत था कि दूसरे देशों में निर्यात के द्वारा अपने देश में कीमती धातुओं का संग्रह बढ़ता है जिससे देश मजबूत होता है। एक मजबूत देश बड़ी सेना रख सकता है जिससे उसकी सुरक्षा निश्चित होती है। वणिकवादियों ने नियंत्रित व्यापार का विचार दिया था। उनके लिए यह कहना ज्यादा उपयुक्त होगा कि वणिकवादी अंतरराष्ट्रीय व्यापार की जगह भुगतान संतुलन पर ज्यादा जोर देते थे। ऐसे में विदेशी व्यापार का ज्यादा फलना फूलना सम्भव नहीं था। इनके व्यापार सम्बंधी विचार निम्नलिखित कथनों से स्पष्ट होते हैं–

प्रमुख वणिकवादी **थॉमस मन (Thomas Mun)** के अनुसार, ''वे सभी देश जिनके पास अपने ,खानें/खदानें नहीं हैं वे व्यापार द्वारा विदेशों से स्वर्ण और चाँदी प्राप्त करके धनवान बन सकते हैं''। इसी तरह एक दूसरे वणिकवादी चाईल्ड का कहा था कि ''यदि आयात की अपेक्षा निर्यात अधिक होते हैं तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राष्ट्र अपने व्यापार से बहुमूल्य धातुओं का आयात करेगा और इस तरह राज्य शासन के कोषों में वृद्धि होगी। राष्ट्र के धन का प्रमाण स्वर्ण और चाँदी ही हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि हालांकि वणिकवादियों ने आर्थिक विचारों के इतिहास में व्यापार की भी बातें की थी लेकिन इनका ध्यान केवल निर्यात बढ़ाने पर केन्द्रित था जो कि दीर्धकाल में सम्भव नहीं था। यदि सभी देश केवल निर्यात बढ़ाने की सोचेंगे और कोई आयात ही नहीं करेगा तो व्यापार कैसे होगा? ऐसा तभी सम्भव था जब कोई देश दूसरे के अधिन हो जैसा कि भारत ब्रिटेन के अधिन था और मजबूरी में ब्रिटेन से आयात करना पड़ता था।

### 1.4.2 प्रकृतिवादियों का विचार

प्रकृतिवादियों ने वणिकवादियों की अपेक्षा उदार सोच का परिचय देते हुए व्यापार के दोनों पक्षों; आयात और निर्यात को महत्वपूर्ण माना। उन्होंने यह साबित किया कि देश को आयात करने से भी लाभ होता है। कोई भी देश अपने नागरिकों के लिए सभी उपयोगी वस्तुओं का निर्माण अपने यहाँ नहीं कर सकता है। खासकर संकट की स्थिति में दूसरे देशों से आयात के कारण काफी मदद मिलती है।

वणिकवादीयों की मजबूत राष्ट्र की अवधारणा के विपरित प्रकृतिवादियो ने मजबूत विश्व की संकल्पना की थी। उनका विश्वास विश्व वंधुत्व में था। वे विश्व के सभी नगरिकों के कल्याण के लिए स्वतंत्र अंतरराष्ट्रीय व्यापार की नीति को महत्वपूर्ण मानते थे। वे सोना, चाँदी और अन्य कीमती धातुओं को भी एक सामान्य वस्तु की तरह मानते थे। उनका ध्यान कीमती धातुओं से राज्य का कोश भरने की बजाए लोगों के उपभोग स्तर में वृद्धि करने पर था। उनका मत था कि विशेष परिस्थितियों; युद्ध, महामारी आदि को छोड़कर सामान्य दिनों में व्यापार पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाना चाहिए।

प्रकृतिवादियों के वयापार सम्बधी विचारों को उनके निम्नलिखित कथनों से स्पष्ट किया जा सकता है– प्रमुख वणिकवादी **कैन/क्विजने (Quesnay)** का विचार था कि सम्पूर्ण मानव जाति एक समुदाय है, जिसके सदस्य न्याय के आधार पर अपने उपयोग से बचे वस्तुओं का विनिमय/व्यापार करते हैं जिसके कारण उनका कोई नुकसान नहीं होता है बल्कि कोई दूसरा इनका उपयोग करके उपयोगिता प्राप्त करता है। इस प्रकार प्रकृतिवादियों को स्वतंत्र व्यापार के प्रथम प्रवर्तक माना जा सकता है।

### 1.4.3 एडम स्मिथ क विचार

प्राकृतिवादियों की बातों को आगे बढाते हुए आधुनिक अर्थशास्त्र के जनक **प्रोफेसर एडम स्मिथ** ने स्वतंत्र अंतरराष्ट्रीय व्यापार की खुलकर वकालत की तथा साबित किया कि स्वतंत्र अंतरराष्ट्रीय व्यापार से सभी को लाभ होता है। उन्होंने अपने शुद्ध लागत लाभ के सिद्धान्त के द्वारा यह बताया कि जो वस्तु अपने देश में कम लागत में बनायी जा सकती है उसको अपने यहाँ उत्पादित करके दूसरे देशों में बेचना चाहिए तथा जो वस्तु दूसरे देशों में कम लागत में बनायी जा सकती है उसको दूसरे देशों से खरीद लेनी चाहिए। इस प्रक्रिया में शामिल सभी देशों को लाभ प्राप्त होता है तथा विश्व का कल्याण भी बढ़ता है। उनका मत था कि एक दर्जी अपने लिए जूता नहीं बनाता है बल्कि मोची से अदला

बदली कर लेता है। ऐसे करने से दर्जी और मोची दोनों को लाभ होता है। इसी तरह आपस में व्यापार करने वाले दोनों देशों को लाभ होता है।

एडम स्मिथ ने अंतरराष्ट्रीय व्यापार के अपने सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित तालिका का प्रयोग किया था–

| | **उत्पादन की लागत (श्रम घंटे में)** | |
|---|---|---|
| | **वस्तु A (प्रति इकाई लागत)** | **वस्तु B (प्रति इकाई लागत)** |
| **देश –1** | **10** | **20** |
| **देश –2** | **20** | **10** |

उपरोक्त तालिका के अनुसार यदि दोनों देश आपस में व्यापार नहीं करते हैं तो देश –1 में वस्तु B की एक इकाई के बदले में वस्तु A की दो इकाइयों का लेनदेन होता है जबकि देश –2 में वस्तु B की दो इकाइयों के बदले में वस्तु **A** की एक इकाई का लेनदेन होता है। अर्थात देश -1 में वस्तु B की कीमत वस्तु A की कीमत से दुगनी है। इसी तरह देश -2 में वस्तु A की कीमत वस्तु B की कीमत से दुगनी है।

जब दोनों देश आपस में व्यापार करना प्रारम्भ करते हैं तब देश -1 केवल वस्तु A का तथा **देश** -2 केवल वस्तु B का उत्पादन करते हैं और दोनों देशों में वसतु A की एक इकाई के बदले वस्तु B की एक इकाई का लेनदेन होता है। अर्थात दोनों देशों में दोनों वस्तुएँ सस्ती हो जाती है। इससे उपभेक्ताओं को लाभ होता है। दूसरी ओर एक वस्तु के उत्पादन में विशिष्टता का लाभ भी उत्पादकों को मिलता है।

### 1.4.4 रिकार्डो का विचार

अंतरराष्ट्रीय व्यापार का सबसे उत्कृट सिद्धान्त प्रमुख प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों में गिने जाने वाले **डेविड रिकार्डो** ने दिया था जिसको तुलनात्मक लागत लाभ के सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। इन्होंने एडम स्मिथ के शुद्ध लागत लाभ में संशोधन करते हुए साबित किया कि यदि किसी देश को किसी भी वस्तु के उत्पादन में शाुद्ध लागत लाभ नहीं प्राप्त हो तो भी उसको उस वस्तु का उत्पादन करना चाहिए जिसमें उसको तुलनात्मक लागत लाभ प्राप्त हो रहा हो। ऐसा करने से सभी देशों को लाभ होगा तथा विश्व का कल्याण भी अधिकतम होगा।

रिकार्डों के तुलनात्मक लागत लाभ के सिद्धान्त को अर्थशास्त्र में काफी सम्मान दिया जाता है क्योंकि यह सदियों से अपरिवर्तनीय बना हुआ है।

रिकार्डो ने अंतरराष्ट्रीय व्यापार के अपने सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित तालिका का प्रयोग किया था–

| | **उत्पादन की लागत (श्रम घंटे में)** | |
|---|---|---|
| | **वस्तु A (प्रति इकाई लागत)** | **वस्तु B (प्रति इकाई लागत)** |
| **देश –1** | **80** | **90** |
| **देश –2** | **120** | **100** |

उपरोक्त तालिका के अनुसार देश –1 को दोनों वस्तुओं के उत्पादन में शुद्ध लागत लाभ प्राप्त हो रहा है क्योंकि यहाँ दोनों वस्तुओं की श्रम लागत देश –2 की अपेक्षा कम है। फिर भी देश –1 को वस्तु – A का तथा देश –2 को वस्तु– B का उत्पादन और निर्यात करने से दोनों देशों को लाभ होता है। ऐसा इसलिए होता है कि देश –1 को वस्तु– A के उत्पादन में तथा देश–2 को वस्तु– B के उत्पादन में तुलनातमक लागत लाभ प्राप्त हो रहा है।

### 1.4.5 हेक्शर तथा ओहलिन का विचार

अंतरराष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त को आगे बढ़ाते हुए **इ. एफ. हैक्शर तथा बी. ओहलिन** ने अंतरराष्ट्रीय व्यापार के साधन प्रचुरता सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसके अनुसार किसी देश को उन वस्तुओं का उत्पादन और निर्यात करना चाहिए जिसके उत्पादन के लिए साधन की प्रचुरता हो। अर्थात श्रम की बहुलता वाले देश को श्रम गहन वस्तुओं का उत्पादन करना चाहिए तथा पूंजी की प्रचुरता वाले देशों को पूंजी गहन वस्तुओं का उत्पादन तथा निर्यात करना चाहिए। इनके अनुसार भारत जैसे श्रम की प्रचुरता वाले देशों के श्रम गहन यानि कृषि वस्तुओं का तथा अमेरिका जैसे पूंजी प्रचुरता वाले देशों को पुंजी गहन यानि तकनीकी वस्तुओं का उत्पादन और निर्यात करना चाहिए।

रिकार्डो ने अपने तुलनात्मक लागत लाभ के सिद्धान्त की व्याख्या उत्पादन के एकमात्र साधन श्रम को मानते हुए किया था जबकि हैक्शर और ओहलिन ने उसका विस्तार उत्पादन के दो साधनों श्रम और पूंजी के साथ किया है। इसका दो से अधिक साधनों के लिए भी सामान्यीकाण किया जा सकता है। अतः यह ज्यादा वास्तविक है। इनके अनुसार दो देशों में व्यापार इसलिए सम्भव होता है कि दोनों देशों में अलग अलग साधन की प्रचुरता होती है।

**साधन प्रचुरता को दो तरीको से सपष्ट किया जा सकता है–**

1.साधनों की प्रचचुरता को उनके भौतिक उपलब्धता के अनुसार परिभाषित किया जा सकता है। इसके अनुसार, दोनों देशों में दोनों साधनों की भौतिक मात्राओं के अनुपात के आधार पर उनकी प्रचुरता तय कर जाती है। उदाहरण के लिए, यदि देश –1 में श्रम की प्रचुरता है और देश –2 में पूंजी की प्रचुरता है तो निम्नलिखित शर्तें लागू होती है–

$$\frac{L_1}{C_1} > \frac{L_2}{C_2}$$

जहाँ,

$L_1$ = देश–1 में श्रम की मात्रा

$L_2$ = देश–2 में श्रम की मात्रा

$C_1$ = देश–1 में पूंजी की मात्रा

$C_2$ = देश–2 में पूंजी की मात्रा

2. साधनों की प्रचुरता को उनके कीमतों के आधार पर भी परिभाषित किया जाता है। जिस देश में जाजो साणन अपेक्षाकृत सस्ती होती है उसकी प्रचुरता मानी जाती है। उदाहरण के लिए, यदि देश –1 में श्रम की प्रचुरता है और देश –2 में पूंजी की प्रचुरता है तो निम्नलिखित शर्तें लागू होती है–

$$\frac{P_{c1}}{P_{L1}} > \frac{P_{c2}}{P_{L2}}$$

जहाँ,

$P_{c1}$= देश –1 में पूंजी की कीमत

$P_{c2}$ = देश –2 में पूंजी की कीमत

$P_{L1}$ = देश –1 में श्रम की कीमत

$P_{L2}$ = देश –2 में श्रम की कीमत

हेक्शर और ओहलिन ने अपने सिद्धान्त की व्याख्या द्वारा यह स्पष्ट किया है कि स्वतंत्र व्यापार की दशा में दोनों देशों में वस्तुओं और साधनों की कीमते समान होने की ओर प्रवृत होती हैं।

### 1.4.6 एजवर्थ और माशर्ल का विचार

**एजवर्थ और माशर्ल** ने अंतरराष्ट्रीय व्यापार के अपने सिद्धान्त में प्रस्ताव वक्रों (Offer Curves) का प्रयोग किया है। इन दोनों ने प्रस्ताव वक्रों का प्रयोग करके व्यापार के लाभों को स्पष्ट किया है। हालांकि इन प्रस्ताव वक्रों की व्यूत्पत्ति आसान नहीं है। इसमें विभिन्न वस्तुओं के आंतरिक और वाह्य कीमत अनुपातों के आधार पर वस्तुओं के आयात या निर्यात का निर्णय लिया जाता है। जो वस्तु अपने देश में अपेक्षाकृत महंगी होती है उसका दूसरे देशों से कम कीमत पर आयात किया जाता है तथा इसके विपरित जो वस्तु अपने देश में अपेक्षाकृत सस्ती होती है उसका दूसरे देशों को अधिक कीमत पर निर्यात किया जाता है।

## 1.5 आर्थिक संवृद्धि एवं विकास (Economic Growth and Development):

समस्त आर्थिक क्रियाओं का अंतिम लक्ष्य लोगों के जीवन स्तर में सुधार करना होता है जिसकी माप आर्थिक प्रगति के रूप में किया जाता है। किसी देश की आर्थिक प्रगति का निर्धारण उसके उत्पादन की मात्रा, वितरण की समानता और जनसंख्या के आकार द्वारा निर्धारित होता है।

### 1.5.1 प्रारम्भिक विचार

**वणिकवादियों** ने सोने चाँदी और अन्य कीमती धातुओं के भंडार को ही राष्ट्र की मजबूती का पैमाना मान लिया था अतः उनके लिए कीमती घातुओं की मात्रा में वृद्धि की आर्थिक प्रगती के सूचक थे। इसके विपरीत **प्रकृतिवादियों** ने उपभोग के स्तर को कल्याण का मापक माना था। उपभोग के स्तर में वृद्धि के लिए उत्पादन में वृद्धि आवश्यक है। प्रकृतिवादियों ने उत्पादन में वृद्धि को ही आर्थिक प्रगति का सूचचक माना था। हालांकि उत्पादन के बारे में उनका विचार भी संकुचित था। वे केवल कृषि क्षेत्र को ही उत्पादक मानते थे। वे उद्योग और व्यापार को अनुत्पादक मानते थे।

### 1.5.2 एडम स्मिथ के विचारः

**एडम स्मिथ, रिकार्डो, माल्थस, मिल, मार्क्स** आदि प्रतिष्ठित अथशास्त्रियों की श्रेणी में आते हैं। एडम स्मिथ को इस सम्प्रदाय का नेता माना जाता है। उन्होंने उत्पादन में वृद्धि को ही आर्थिक प्रगति का सूचक माना है। एडम स्मिथ पूंजी को उत्पादन में काफी महत्वपूर्ण मानते थे। उनका मानना था कि पूंजी के संचय के द्वारा नयी नयी तकनीकों का आविष्कार होता है तथा श्रम विभाजन का लाभ मिलता है। उन्होंने आर्थिक प्रगति का कोई मॉडल नहीं दिया है परन्तु राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि के लिए निम्नलिख्ति कारकों को मत्वपूर्ण माना है–

**श्रम विभाजनः** उनका मानना था कि श्रम विभाजन के कारण विशिष्टता/विशेषज्ञता के कारण श्रमिकों की उत्पादकता में वृद्धि होती है।

**पूंजी का संचयः** एडम स्मिथ का मानना था कि पूंजी के संचय के द्वारा ही बड़े पैमाने पर उत्पादन सम्भव होता है जिसके चलते औसत लागत में कमी आती है।

**बाजार का विस्तारः** एडम स्मिथ ने बाजार के विस्तार को श्रम विभाजन के लिए आवश्यक शर्त माना है। मांग में वृद्धि के कारण ही बड़े पैमाने पर उत्पादन करना सम्भव होता है। उन्होंने बाजार के विस्तार के लिए स्वतंत्र व्यापार को भी महत्वपूर्ण माना है।

**अहस्तक्षेप की नीतिः** एडम स्मिथ का मानना था कि व्यक्ति अपने हित में सर्वश्रेष्ठ निर्णय लेता है इसलिए आर्थिक व्यवस्था में सरकार का हस्तक्षेप कम से कम होना चाहिए।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री टपकन सिद्धान्त (Tricle Down) की नीति में विश्वास करते थे जिसमें यह माना जाता है कि समृद्धि का लाभ ऊपर से नीचे की ओर रिसता है और अंततः सभी को लाभान्वित करता है। इसलिए इसके बीच में सरकार को नहीं आना चाहिए।

### 1.5.3 माल्थस के विचारः

**थॉमस माल्थस** का जन्म इंगलैंड के सरे में 1766 ईसवी में तथा मृत्यु 1834 ईसवी में हुआ था। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'An Essay on the Principle of Population (1798)'

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों में माल्थस को आर्थिक प्रगति के विषय में काफी निराशावादी माना जाता है। उनका मानना था कि जनसंख्या ज्यामितीय गति से बढ़ती है जबकि खाद्यानों का उत्पादन अंकगणितीय गति से बढ़ती है। ऐसा कृषि में उत्पादन ह्रास नियम के लागू होने के कारण होता है। जनसंख्या और खाद्यानों के असंतुलित वृद्धि के कारण प्रति व्यक्ति आय निम्न स्तर पर बना रहता है। माल्थस अर्थव्यवस्था की प्रगति के लिए जनसंख्या पर नियंत्रण के उपाय सुझाए हैं। इसके लिए आत्म संयम और विवाह को स्थगित करने का सुझाव देते हैं। उनका मानना था कि ऐसा नहीं करने पर प्राकृतिक आपदाओं (भूखमरी, महामारी, बाढ़, भूकम्प आदि) के कारण जनसंख्या नियंत्रित होती है।

**माल्थस** अपने विचारों में अति उत्पादकता की बात भी करते थे जिसको उस समय **जे. बी. से के बाजार के नियम** के आगे महत्व नहीं दिया गया था। बाद में **कींस** ने महान आर्थिक मंदी के अध्ययन के दौरान उनके अति उत्पादकता के सिद्धान्त को काफी महत्वपूण माना था।

### 1.5.4 कार्ल मार्क्स का विचारः

**कार्ल मार्क्स** का जन्म 1818 ईसवी में जर्मनी के ट्रालर स्थान पर हुआ था तथा मृत्यु इंगलैंड में 1848 ईसवी में हुआ था। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक दास कैपीटल का प्रथम खंड 1868 ईसवी में प्रकाशित हुयी थी। **कार्ल मार्क्स** को साम्यवाद कर प्रर्वतक माना जाता है। ये प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विचारों को आगे बढ़ाते हुए पूँजीवाद के खत्में की भविष्यवाणी करते हैं। इनका मानना था कि मुक्त पूंजीवाद में बढ़ती आपसी प्रतियोगिता के कारण अंततः लाभ की दर शून्य हो जाएगी। इस अवस्था में पूंजी का संकेन्द्रण चंद हाथों में हो जाएगा। जिसके कारण श्रमिकों का भयंकर शोषण होगा और श्रमिक पूंजीपतियों के खिलाफ संधर्ष शुरू कर देंगे। कम संख्या में होने के कारण पूंजीपतियों/शासक वर्ग की हार हो जाएगी और सत्ता श्रमिकों के हाथ में आ जाएगी।

**कार्ल मार्क्स** ने समाज का कालानुसार वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार किया था–

1. **आदिम साम्यवाद (Primitive Siciety)**: मार्क्स इसे सभ्यता का शुरूआती काल मानते हैं जहाँ निजी सम्पत्ति का उदय नहीं हुआ था। इस काल में उत्पादन के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व था। लोग जंगलों में प्राकृतिक आवासों में रहते थे और कंद–मूल, फल एवं मांस आदि खाकर जीते थे।

2. **प्राचीन अवस्था (Ancient Age)**: इस युग में उत्पादन प्रणाली का विकास हुआ। लोग पशुपालन और खेती करना शुरू कर चुके थे। यह कबिलाई समाज था जो आपस में युद्ध करता रहता था। इस काल में युद्धवंदियों को दास बनाकर काम लिया जाता था। इस तरह से इस काल में दो वर्ग उत्पन्न हुए दास और स्वामी।
3. **सामंतवादी व्यवस्था (Feudal Age)**: इस काल में सामंत वर्ग के अधिन भूमि का स्वामित्व था। उनके खेतों में काम करने वाले कृषि दास (Serfs) थे। इनकी स्थिति भी दासों जैसी ही थी। इस काल में हस्तशिल्प का उत्पादन और व्यापार होने लगा था। जिसके चलते नगरों का विकास भी हुआ था।
4. **पूंजीवादी व्यवस्था (Capitalist Age)**: इस काल में उत्पादन प्रणाली काफी विकसित हुयी और मशीनों को प्रयोग होने लगा। जिसके चलते उत्पादन में पूंजी का महत्व बढ़ गया और एक नया वर्ग पूंजीपतियों का उदय हुआ। व्यापारिक मार्गों की खोज के कारण व्यापार में वृद्धि और बाजार का विस्तार हुआ जिसके कारण बड़े पैमाने पर उत्पादन होने लगा। इस काल में भी समाज पूंतीपतियों और मजदूरों के दो वर्गों में विभाजित रहा।

### 1.5.5 डब्लू डब्लू रोस्टो (W. W. Rostow) के विचार

अमेरिकन अर्थशास्त्री **डब्लू डब्लू रोस्टो (W. W. Rostow)** ने विभिन्न देशों के आर्थिक प्रगति का अध्ययन करके आर्थिक प्रगति की सामान्य अवस्थाओं का निर्धारण किया है। 1960 में प्रकाशित उनकी किताब 'The Stages of Economic Growth' में किसी देश की प्रगति के क्रम मे निम्नलिखित पाँच अवस्थाओं का वर्णन आता है–

1. **परम्परावादी समाज (Traditional Society)**
2. **संक्रमणकाल (Transitional Period)**
3. **टेक ऑफ (Take off)**
4. **परिपक्वता की ओर बढ़ना (Drive to Maturity)**
5. **उच्च उपभोग का दौर (High Mass Consumption)**

इनके प्रगति की अवस्थाओं के वर्गीकरण को मार्क्स के सामाजिक वर्गीकरण का जवाब भी माना जाता है। यहाँ रोस्टो ने किसी देश की प्रगति को हवाई जहाज की उड़ान से तुलना की है। जिस तरह से शुरूआत में हवाई जहाज एक जगह पर खड़ी रहती है जो स्थिर परम्परागत समाज का प्रतिक है। इसे कबिलाई या आदिवासी समाज माना जा सकता है जो कृषि एवं पशुपालन आदि पारम्परिक व्यवसायों द्वारा जीवन यापन करती है।

संक्रमण काल में समाज में बदलाव के लक्षण दिखना शुरू होता है। इस काल में आय का कुछ हिस्सा लगभग 10 प्रतिशत आधारभूत संरचनाओं जैसे शिक्षा, सड़क, बिजली आदि के लिए निवेश किया जाने लगता है।

रोस्टों के अनुसार यह एक अल्पकालिक अवस्था है जिसमें अर्थव्यवस्था प्रगति की सारी बाधाओं को पार करके तीव्र विकास के पथ पर अग्रसर होती है। जिस तरह से हवाई जहाज आकाश में उड़ने के लिए रनवे को छोड देती है। इस काल में अर्थव्यवस्था में तीव्र उद्योगीकरण होता है। इसके लिए कुछ क्षेत्र नेतृत्व करते हैं।

परिपक्वता की अवधि में बड़े पैमाने पर आधुनिक तकनीकों के प्रयोग से बड़े पैमाने पर उत्पादन शुरू होता है तथा नये नये क्षेत्रों का उदय होता है। रोस्टो ने स्टील उद्योग के विस्तार को पपिक्वता काल

के प्रतिक के रूप में माना था। वर्तमान में कम्प्यूटर तकनीकी के विकास को इसका प्रतीक माना जा सकता है।

प्रगति के अंतिम चरण में समाज उच्च उपभोग के स्तर को प्राप्त कर लेता है जिसके बाद लम्बे समय तक उसको कायम रखने का प्रयास किया जाता है।

### 1.5.6 कींस (John Maynard Keynes) का विचार

जॉन मेनार्ड कींस का जन्म 5 जून 1883 तथा मृत्यु 21 अप्रील 1946 को हुयी थी। वे एक अंग्रेज अथशास्त्री थे। वे प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विचारों के घोर विरोधी थे। उन्होंने 1936 में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'The General Theory of Eployment Interest and Money' प्रकाशित की थी। उन्होंने महान आर्थिक मंदी (1929-33) का गहन अध्ययन करने के बाद मंदी का मुख्य कारण प्रभावपूर्ण मांग में कमी को बताया था। उन्होंने उपभेग मांग और निवेश मांग के योग को प्रभावपूर्ण मांग कहा था।

उनका मत था कि प्रतिकूल आर्थिक वातावरण में उद्योगपति/पूंजीपतियों द्वारा निवेश की मांग कम हो जाती है जिसके चलते उत्पादन और रोजगार की मात्रा में कमी आती है। उनहोंने मंदी को दूर करने के लिए सरकार को सक्रिय प्रयास करने का सुझाव दिया था। ऐसे समय में सरकारी व्यय बढ़ाकर प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि की जानी चाहिए। जिससे उत्पादन और रोजगार में भी वृद्धि होती है।

हालांकि कींस का सिद्धान्त विकसित देशों के लिए लागू होता है जहाँ उत्पादन क्षमता पहले से मौजूद होता है आजकल अविकसित देशों में भी सरकारी व्यय बढ़ाकर उत्पादन और रोजगार बढ़ाने की नीति अपनायी जा रही है।

## 1.5 सारांश

वर्तमान अध्याय में वितरण, व्यापार और आर्थिक प्रगति के बारे में प्राचीन अर्थशास्त्रियों के विचारों को प्रस्तुत किया गया है। प्राचीन अर्थशास्त्रियों में वणिकवादी, प्रकृतिवादी और प्रतिष्ठित अथशास्त्रियों को शामिल किया जाता है। वणिकवादियों में थॉमस मन, सर जोसिया चाईल्ड,जॉन लॉक, सर विलियम पैटी आदि प्रमुख थे। प्रकृतवादी अर्थशास्त्रियों में क्यूजने, दू पोंट डि नेमोर्स तथा टरगोट आदि प्रमुख थे। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों में एडम स्मिथ, रिकार्डो, माल्थस, कार्ल मार्क्स आदि प्रमुख थे।

## 1.6 अभ्यास के प्रश्न

1. अर्थशास्त्र में वितरण से आप क्या समझते हैं?
2. लगान के प्राकृतिादियों के विचारों को संक्षेप में प्रस्तुत करें।
3. लगान के रिकार्डो के सिद्धान्त का वर्णन करें।
4. मजदूरी के एडम स्मिथ के सिद्धान्तों को संक्षेप में प्रस्तुत करें।
5. वितरण के सीमांत उत्पादकता सिद्धान्त का वर्णन करें।
6. ब्याज के प्रारभिक विचारों को प्रस्तुत करें।
7. ब्याज के कींस के सिद्धान्त का वर्णन करें।
8. लाभ के प्रारम्भिक विचारों को संक्षेप में प्रस्तुत करें।
9. लाभ के नाइट के सिद्धान्त को संक्षेप में प्रस्तुत करें।
10. व्यापार से आप क्या समझाते हैं?
11. आंतरिक और विदेशी व्यापार में क्या भेद है?

12. विदेशी व्यापार के एडम स्मिथ के सिद्धान्त का संक्षेप में वर्णन करें।
13. विदेशी व्यापार के रिकार्डो के सिद्धान्त का संक्षेप में वर्णन करें।
14. विदेशी व्यापार के हेक्शर और ओहलिन के सिद्धान्त का संक्षेप में वर्णन करें।
15. विदेशाी व्यापार के लाभों पर प्रकाश डालें।
16. आथिक प्रगति के प्रारम्भिक विचारों को संक्षेप में प्रस्तुत करें।
17. आर्थिक प्रगति के एडम स्मिथ के विचारों का वर्णन करें।
18. आर्थिक प्रगति के कार्ल मार्क्स के विचारों को संक्षेप में प्रस्तुत करें।
19. आर्थिक प्रगति के रोस्टो की विभिन्न अवस्थाओं का संक्षिप्त वर्णन करें।

### 1.7 उपयोगी पुस्तकें

**एम सी वैश्य** (). आर्थिक विचारों का इतिहास. सप्तम संस्करण, प्रकाशक– मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर।

A. P. Thirlwall (2014). Economics of Development, Ninth Edition, Palgrave, Macmillan.

Bo Sodersten, (1984). International Economics. Second Editionn. Published by Macmillan Publishers Ltd. London.

Eric Roll (1986). A History of Economic Thought. Forth Edition. Calcutta Oxford University Press (India)

टी एन हजेला (2002). आर्थिक विचारों का इतिहास. नौवाँ संस्करण, कोणार्क पब्लिशर्स प्रा. लि., नयी दिल्ली 110092।

फ्रैंक थिली (2018). पश्चात दर्शन का इतिहास (अनुवादक– एन. ए. खान 'शाहिद'), अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लिमिटेड, नर्द दिल्ली– 110002।

बी. एस. यादव, नन्दिनी शर्मा एवं उपासना शर्मा (2011). आर्थिक विचारों का इतिहास. प्रकाशक– यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नयी दिल्ली।

शिव नारायण गुप्त (2005). आर्थिक विचारों का इतिहास. प्रथम संस्करण, मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन वाराणसी।

# इकाई–7

# मूल्य का सिद्धान्त, धन संचय

**इकाई की रूपरेखा**


**1.4 उद्देश्य**
**1.5 परिचय**
**1.6 पूर्व–परम्परावादी विचार**
**1.7 मूल्य सम्वन्धी परम्परावादी विचार**
**1.8 मार्शल के विचार**
**1.9 समाजवादियों के विचार**
**1.10 एकाधिकार तथा अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थितियों में मूल्य निर्धारण सम्बन्धी विचार**
**1.11 एकाधिकारी प्रतियोगिता सिद्धान्त**
**1.12 अपूर्ण प्रतियोगिता का सिद्धान्त**
**1.13 संचय का सिद्धान्त**
**1.14 सारांश**
**1.15 अभ्यास के प्रश्न**
**1.16 उपयोगी पुस्तकें**


## 1.1 उद्देश्य

वर्तमान इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

- मूल्य और कीमत के अंतर को समझना
- मूल्य के बारे में प्राचीन अर्थशास्त्रियों के विचारों को जानना
- कीमत निर्धारण के आधुनिक सिद्धान्तों को जानना
- पूंजी संचय के विचार एवं सिद्धान्तों को जानना

### 1.2 परिचय

आर्थिक सिद्धान्तों के क्षेत्र में मूल्य सिद्धान्त सबसे अधिक विवादग्रस्त विषय रहा है। मूल्य के अर्थ तथा मूल्य सिद्धान्त के क्षेत्र के विषय में आर्थिक विचारकों में काफी मतभेद रहा है। इस विषय का महत्त्व इस बात से और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है कि जब तक उत्पादन के बाद वस्तुओं का विनिमय नहीं होता उनका उपभोग सम्भव नहीं हो सकता। पिछली दो शताब्दियों में मूल्य सिद्धान्त का विकास दो उच्चतम सीमाओं अर्थात उत्पादन लागत तथा उपयोगिता के बीच हुआ है। दार्शनिक दृष्टिकोण से मूल्य निर्धारण सम्बन्धी वाद–विवाद आदर्श एवं भौतिक के पुरातन संघर्ष को दर्शाता है। आदर्शवादी अर्थ में मूल्य आत्मगत वस्तु है अर्थात वस्तु की वह शक्ति जो मानवीय आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करती है। भौतिक अर्थ में इसका आशय किसी वस्तु विशेष के उस परिमाण से है जो किसी अन्य वस्तु के विनिमय में प्राप्त होती है। मूल्य के आत्मगत पहलू के अध्ययन को विभिन्न समीकरणों की सहायता से अधिक से अधिक ठीक बनाने की चेष्टा की गयी हैं किन्तु इस सिद्धान्त का जो कुछ भी विकास अब तक हुआ है उससे स्थिति स्पष्ट नहीं हो पायी है।

**1.3 पूर्व–परम्परावादी विचार–** **प्लेटो**, मूल्य को वस्तु का निहित गुण मानता था जबकि **अरस्तू** का विचार था कि मूल्य उपयोगिता पर निर्भर करता है। **सेण्ट टामस एक्यूनास** ने पहली बार स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया था कि मूल्य की सही परिभाषा नहीं दी जा सकती है। उसने क्रिस्तानी पादरियों के **उचित मूल्य** सम्बन्धी विचार को ही स्वीकार किया था। 'उचित मूल्य' सम्बन्धी विचार के अनुसार मूल्य को श्रमिक के परिश्रम से पृथक नहीं किया जा सकता और इस दृष्टि से यह विचार किया जाने लगा कि वस्तु का मूल्य श्रम की उस मात्रा से निर्धारित होना चाहिए जो उसके उत्पादन के लिए आवश्यक होती है। कुछ समय तक यह दोनों ही विचार साथ–साथ चलते रहे किन्तु 13वीं तथा 14वीं शताब्दियों में उपयोगिता को मूल्य का मुख्य आधार माना जाने लगा। 17वीं शताब्दी में **निकोलस बार्बन** ने भी इसी को स्वीकार किया था। किन्तु साथ ही उसने कीमत अथवा 'वर्तमान मूल्य' को प्रभावित करने में पूर्ति के महत्त्व को भी स्वीकार किया था। दूसरे शब्दों में, **बार्बन** मूल्य तथा कीमत दोनों को समान मानता था। बाद में **विलियम पैटी** ने मूल्य निर्धारण के लिए श्रम तथा भूमि दोनों को ही महत्त्वपूर्ण बताया। एक अन्य ब्रिटिश अर्थशास्त्री **जॉन लॉक** ने दूसरी ओर यह घोषित किया कि मूल्य केवल श्रम द्वारा ही निर्धारित होता है क्योंकि भूमि बिना श्रम के परिश्रम के कुछ भी उत्पन्न नहीं कर सकती और पूँजी केवल संचित श्रम ही है। **लॉक** का विश्लेषण काफी आधुनिक था। उसने कीमत अथवा बाजार मूल्य पर माँग एवं पूर्ति के अल्पकालीन प्रभावों का विश्लेषण किया और बताया कि अल्पकाल में माँग एवं पूर्ति, मूल्य को प्रभावित करती हैं किन्तु दीर्घकाल में मूल्य केवल श्रम द्वारा ही निर्धारित होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि **लॉक** को लोचपूर्ण तथा लोचहीन माँग सम्बन्धी सिद्धान्तों की भी कुछ जानकारी थी। उसने कहा था, ''जीवन के लिए आवश्यक वस्तुएँ किसी भी प्रकार से प्राप्त की जानी चाहिए किन्तु सुविधा सम्बन्धी केवल वही वस्तुएँ प्राप्त की जायेंगी जो अन्य की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हैं। 17वीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में **जॉन लॉक** ने अपने विचार प्रकट करते हुए बताया कि किसी भी वस्तु का मूल्य उस परिमाण से निर्धारित होता है जो उसकी माँग की तुलना में उपलब्ध होता है। उसने हीरे तथा पानी के उदाहरण द्वारा इसको स्पष्ट करने का प्रयत्न किया था। उसके शब्दों में ''वस्तुओं का मूल्य उन उपयोगों से उत्पन्न होता है जिसमें वे लायी जाती हैं और उनका मूल्य उनके कम या अधिक मूल्यवान अथवा आवश्यक उपयोगों के कारण, उतना कम या अधिक नहीं होता जितना उनकी माँग की अपेक्षा उनके कम या अधिक परिमाण के कारण होता है।'' **फ्रांसीसी अर्थशास्त्री तुर्गो** ने सर्वप्रथम उपयोगिता पर आधारित मूल्य के विचार का क्रमबद्ध विश्लेषण प्रस्तुत किया था। उसके अनुसार विभिन्न व्यक्तियों के लिए किसी भी वस्तु के मूल्य का जो अनुमान होता है वह प्रत्येक व्यक्ति को विभिन्न समय तथा स्थान पर प्राप्त होने वाली उपयोगिता के अनुसार बदलता रहता है। बाजार मूल्य के सम्बन्ध में उसने माँग एवं पूर्ति के महत्व को स्वीकार किया और कहा कि इन दोनों के बीच किसी भी बिन्दु पर निर्धारित होता है। इसी प्रकार एक अन्य **फ्रांसीसी अर्थशास्त्री कौण्डीलैक** (Condillac) ने कहा था कि ''किसी भी वस्तु में मूल्य इसलिए नहीं होता क्योंकि उसको उत्पन्न करने में कुछ लागत आती है वरन् उसमें लागत इसलिए होती है कि उसमें मूल्य होता है।''

**1.4 मूल्य सम्वन्धी परम्परावादी विचार–** उत्पादन विधियों के परिवर्तनों तथा व्यापार एवं वाणिज्य के विस्तार के साथ–साथ मूल्य सम्बन्धी विचारों में भी परिवर्तन हुआ। अब उपयोगिता के स्थान पर उत्पादन लागत को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। परम्परावादी सम्प्रदाय के सभी अर्थशास्त्रियों के विचार में ऐसा देखने को मिलता है। सर्वप्रथम, यह विचार **कैण्टीलन** ने अपनी पुस्तक **Essay upon the Nature of Commerce in General** में प्रस्तुत किया था जो 1755 ई० में प्रकाशित हुई थी। किन्तु उसने यह भी बताया कि बाजार मूल्य माँग एवं पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है और क्रेताओं तथा विक्रेताओं के विचारों के अनुसार उसमें परिवर्तन होते रहते हैं। **कैण्टीलन** के मूल्य सम्बन्धी विचार स्वल्पता सम्बन्धी विचार पर आधारित थे अर्थात जो वस्तुएँ स्वल्प होती हैं उनकी कीमत भी ऊँची होती है और परिणामतः उनकी पूर्ति बढ़ेगी। **कैण्टीलन** के अनुसार वस्तु का आन्तरिक मूल्य उसके उत्पादन के लिए आवश्यक भूमि तथा श्रम की मात्रा द्वारा निर्धारित होता है किन्तु बाजार कीमत माँग और पूर्ति पर निर्भर होती है।

बाजार कीमत आन्तरिक मूल्य से भिन्न होती है और यह सदैव ही आन्तरिक मूल्य को नहीं दर्शाती। जो वस्तुएँ सामान्य उपभोग में आती हैं उनकी वाजार कीमत अधिकतर स्थिर तथा आन्तरिक मूल्य के काफी निकट रहती है। इसके विपरीत उन वस्तुओं का मूल्य, जिनकी माँग सामान्य नहीं होती, क्रेताओं तथा विक्रेताओं के विचारों के अनुसार बदलता रहता है।

**एडम स्मिथ** ने कैण्टीलन के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए उपभोग मूल्य तथा विनिमय मूल्य के भेद को स्पष्ट किया। उसने वताया कि विनिमय मूल्य वस्तु को उत्पन्न करने के लिए आवश्यक श्रम की मात्रा द्वारा निर्धारित होता है। इसलिए उसने कहा कि क्योंकि वस्तु को उत्पन्न करने में जितना श्रम लगता है या जितने श्रम की आवश्यकता होती है उसमें समय के साथ–साथ बहुत कम परिवर्तन होते हैं इसलिए श्रम मूल्य ही उसकी वास्तविक कीमत और मौद्रिक मूल्य उसकी प्रचलित कीमत होती है। उसको शब्दों में, ''प्रत्येक वस्तु की वास्तविक कीमत वह परिश्रम एवं कष्ट है जो उसको प्राप्त करने के लिए किया जाता है।'' स्मिथ ने यह भी बताया कि वस्तु का मूल्य उसकी उत्पादन लागत द्वारा निर्धारित होता है और उत्पादन लागत के अन्तर्गत वे सभी भुगतान सम्मिलित होते हैं जो भूमि, श्रम तथा पूँजी के लिए किये जाते हैं। दूसरे शब्दों में, लगान, मजदूरी तथा ब्याज मूल्य के तीन तत्त्व होते हैं। स्मिथ ने यह स्वीकार किया कि मूल्य के श्रम सिद्धान्त को लागू करने में अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ होती हैं और श्रम का परिमाणात्मक मूल्यांकन सम्भव नहीं है। इसीलिए उसने कहा था कि सामान्य मूल्य उत्पादन लागत द्वारा निर्धारित होता है और बाजार मूल्य उत्पादन लागत से कुछ ऊँचा या कुछ नीचा रहता है और अन्त में उसके बराबर हो जाता है। बाजार मूल्य क्रेताओं तथा विक्रेताओं के मोलभाव करने की शक्ति द्वारा निर्धारित होता है।

**रिकार्डो** ने मूल्य निर्धारण सम्बन्धी जो विवेचन प्रस्तुत किया वह एडम स्मिथ की अपेक्षा अधिक विस्तृत तथा क्रमबद्ध था। रिकार्डो ने केवल दीर्घकालीन मूल्य पर ही दृष्टि केन्द्रित की थी क्योंकि वह अल्पकालीन बाजार मूल्य को महत्त्वपूर्ण नहीं समझता था। उसका विश्वास था कि वस्तु का मूल्य उसकी स्वल्पता तथा उसको उत्पन्न करने में लगे हुए श्रम की मात्रा दोनों के द्वारा निर्धारित होता है। उसके अनुसार जिन वस्तुओं का उत्पादन पुनः नहीं किया जा सकता उनका मूल्य स्वल्पता के द्वारा निर्धारित होता है किन्तु ये वस्तुएँ इतनी कम होती हैं कि उनके मूल्य का निर्धारण सम्बन्धी विषय पर चर्चा करना व्यर्थ होगा। अन्त में, वह इसी निष्कर्म पर पहुँचा कि मूल्य का निर्धारण श्रम लागतों द्वारा होता है क्योंकि लगान केवल उत्तम भूमि के लिए दिया जाता है और पूँजी केवल संचित श्रम ही है। यद्यपि रिकार्डो ने बड़ी चतुरता और दृढ़ता से मूल्य के विशुद्ध श्रम सिद्धान्त को अपनाया था, उसे अपने विचारों में विश्वास नहीं था और न ही वह अपने विश्लेषण से सन्तुष्ट था जैसा स्वयं उसने मैककलॉ को एक पत्र में लिखा था कि ''मूल्य को नियमित करने वाले सिद्धान्तों की व्याख्या से मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ। मेरी इच्छा है कि इस कार्य को कोई अधिक योग्य व्यक्ति करे।''

**सीनियर** एक अन्य परम्परावादी अर्थशास्त्री था जिसने स्मिथ तथा रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत किये गये आधारों पर मूल्य सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। उसने रिकार्डो की अपेक्षा स्मिथ के विचारों को अधिक अपनाया। उसका विश्वास था कि यद्यपि मूल्य निर्धारण में स्वल्पता एक मौलिक तत्त्व है, मूल्य निर्धारण में उत्पादन लागत का भी महत्त्व होता है, जिसके अन्तर्गत पूँजी सम्बन्धी खर्चे तथा श्रम की लागत सम्मिलित रहते हैं। स्पष्ट है कि मूल्य के विभिन्न तत्त्वों का विश्लेषण करके सीनियर ने उस मूल्य सिद्धान्त की नींव रखी जिसको बाद में मार्शल ने विकसित किया। इस सम्बन्ध में **जॉन स्टुअर्ट मिल** के विचारों की चर्चा भी आवश्यक प्रतीत होती है। मिल के अनुसार जिन वस्तुओं की पूर्ति सीमित होती है, उनका मूल्य पूर्णतः माँग और पूर्ति पर निर्भर रहता है और जिन वस्तुओं की पूर्ति को अनिश्चित रूप से बढ़ाया जा सकता है उनका मूल्य उत्पादन लागत द्वारा निर्धारित होता है जिसके अन्तर्गत मजदूरी, सामान्य लाभ और कभी–कभी लगान भी सम्मिलित रहता है और माँग का केवल द्वितीय स्थान ही है। जिन वस्तुओं की पूर्ति केवल बढ़ी हुई लागत पर ही बढ़ायी जा सकती है उनका मूल्य पूर्णतः उत्पादन

द्वारा निर्धारित होता है। मिल अपने विश्लेषण से इतना सन्तुष्ट था कि उसके विचार में मूल्य सिद्धान्त की जो व्याख्या उसने दी थी वह पूर्ण थी और उसमें किसी भी लेखक के लिए कुछ अधिक जोड़ने की गुजाइश नहीं थी। किन्तु हम जानते ही हैं कि मिल का विश्लेषण पूर्ण नहीं था और उसमें बाद में काफी सुधार किये गये।

## 1.5 मार्शल के विचार

**मार्शल** ने परम्परावादियों के मूल्य सिद्धान्त की पुनर्व्याख्या ऐसे ढंग से की जो बदलती हुई परिस्थितियाँ के लिए अधिक उपयुक्त सिद्ध हुई। उसका मुख्य योगदान इस बात में था कि उसने उपयोगिता तथा उत्पादन लागत सम्बन्धी सिद्धान्तों का समन्वय किया। उपयोगिता तथा उत्पादन लागत के महत्त्व को दर्शाने के लिए उसने समय तत्त्व के महत्त्व को स्पष्ट किया। उसके अनुसार अल्पकाल में मूल्य, माँग अथवा उपयोगिता तथा दीर्घकाल में पूर्ति अथवा उत्पादन लागत द्वारा निर्धारित होता है। सामान्यतः मूल्य/कीमत का निर्धारण किसी वस्तु की मांग और पूर्ति की अुतःक्रिया द्वारा निर्धारित होती है। यहाँ मांग पक्ष का सम्बंध वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता से है जबकि पूर्ति पक्ष का सम्बंध वस्तु की उत्पादन लागत से है।

यद्यपि मार्शल ने परम्परावादी मूल्य सिद्धान्त को नया जीवन प्रदान किया था, कुछ अर्थशास्त्रियों ने इसकी निन्दा की और कहा कि परम्परावादियों ने मूल्य के आत्मगत पहलू की ओर कोई भी ध्यान नहीं दिया था। इन आलोचकों के अनुसार विनिमय मूल्य के निर्धारण के लिए उपयोगिता अधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में **गौसन** तथा उसके बाद **जैवन्स** तथा आस्ट्रियन सम्प्रदाय ने इस विचार को व्यक्त किया था। गौसन ने सांख्यिकीय समीकरणों तथा चित्रों द्वारा अपने विचारों को स्पष्ट किया। उसके अनुसार किसी भी वस्तु का मूल्य दो बातों पर निर्भर करता है अर्थात उपभोग से मिलने वाली सन्तुष्टि और उत्पादन लागत। एक ओर वस्तु का मूल्य सन्तुष्टि प्रदान करने की क्षमता पर निर्भर करता है जो उपभोग की जाने वाली इकाइयों की संख्या में वृद्धि होने के साथ–साथ कम होती जाती है। दूसरी ओर किसी भी वस्तु की विशेष इकाई की उत्पादन लागत उससे प्राप्त होने वाली सन्तुष्टि की सीमा निर्धारित कर देती है। इस प्रकार वस्तु का मूल्य एक ऐसे बिन्दु पर निर्धारित होता है जहाँ सीमान्त उपयोगिता तथा सीमान्त अनुपयोगिता बराबर होती है। दूसरे शब्दों में, मूल्य का प्रतिनिधित्व दो अज्ञात परिमाणों द्वारा होता है अर्थात सन्तुष्टि तथा वस्तु की उत्पादन लागत। **जैवन्स** ने गौसन के काम को आगे बढ़ाया। उसके अनुसार दो वस्तुओं का विनिमय मूल्य, कार्य की समाप्ति के बाद उपलब्ध होने वाले परिमाणों की उपयोगिता के अंश की तुलना द्वारा निर्धारित किया जा सकता है। उसने भी गौसन की भाँति समीकरणों तथा चित्रों का प्रयोग किया है। वह पहला व्यक्ति था जिसने कुल उपयोगिता जैसे शब्दों का प्रयोग किया था। **वालरस** ने बताया कि विनिमय मूल्य केवल पूर्ति पर निर्भर नहीं करता। उसके अनुसार किसी भी वस्तु का मूल्य दूसरी वस्तु के सम्बन्ध में उन सभी वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिता की तुलना से निर्धारित होगा जिससे कि उसका विनिमय किया जा सकता है। यद्यपि वालरस ने मूल्य के उत्पादन लागत तथा उपयोगिता सम्बन्धी सिद्धान्तों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया था तथापि मुख्य रूप से उसने आत्मगत पहलू पर ही ध्यान दिया था। आस्ट्रिया में **मैंजर, बीजर तथा बामबवाक** सभी जैवन्स के समकालीन थे। इन अर्थशास्त्रियों ने मूल्य को एक आत्मगत विलक्षण घटना माना था। **मैंजर** के अनुसार, मूल्य, वस्तु की उपयोगिता के अतिरिक्त और कुछ नहीं, और विनिमय एक ऐसी बाह्य क्रिया है जो वस्तु के स्वभाव और मस्तिष्क की परिस्थिति का प्रतिनिधित्व करती है। यद्यपि **बीजर** ने उत्पादन लागत के महत्त्व को स्वीकार किया तथापि उसे भी उसने उपयोगिता का एक अंश ही माना है। उसका विश्वास था कि उत्पादन लागत उस भुगतान से कहीं अधिक है जो उत्पादन साधनों को किसी भी वस्तु के उत्पादन के लिए आकर्षित करने के लिए आवश्यक होता है। उसने बताया कि यह वह भुगतान है जो उत्पत्ति के साधनों को एक उपयोग से निकालकर अधिक वांछनीय उपयोगों की ओर मोड़ने के लिए किया जाता है। इसलिए उपयोग मूल्य

लागत मूल्य से प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता। वास्तव में, उपयोग मूल्य, लागत मूल्य की सीमा निर्धारित करता है और इस प्रकार उत्पन्न की जाने वाली वस्तु की पूर्ति को सीमित करता है। **बामबवाक** का विश्वास था कि मूल्य, वस्तु की उपलब्ध पूर्ति द्वारा सन्तुष्टि की गयी न्यूनतम महत्त्व वाली आवश्यकता की शक्ति से निर्धारित होता है। इसलिए उसका विचार था कि वस्तु में आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने की शक्ति के कारण ही उसको विनिमय में अन्य वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। **बामबवाक** का विश्लेषण मार्शल के मूल्य सिद्धान्त के अधिक निकट प्रतीत होता है।

### 1.6 समाजवादियों के विचार

समाजवादियों ने **कार्ल मार्क्स** के नेतृत्व में मूल्य के ऐसे श्रम सिद्धान्त की रचना की जो रिकार्डो के विचारों पर आधारित था किन्तु जिसमें समाजवादी उद्देश्यों के सन्दर्भ में कुछ संशोधन कर दिये गये थे। **रिकार्डो** की भाँति **मार्क्स** भी मूल्य को वह आवश्यक श्रम समझता था जो औसत परिस्थितियों में किसी भी वस्तु के उत्पादन के लिए आवश्यक होता है और जिसमें समय विशेष में प्रचलित निपुणता एवं गहनता होती है। अतः स्पष्ट है कि मूल्य में जो भिन्नता पायी जाती है वह विशेषकर श्रमिकों की निपुणता के अन्तर के कारण उत्पन्न होती है, जो स्वयं श्रमिकों की प्रशिक्षण लागत की भिन्नताओं का परिणाम होती है। **मार्क्स का अतिरेक मूल्य सिद्धान्त** व्यावहारिक दृष्टिकोण से अधिक महत्त्वपूर्ण था। इस सिद्धान्त को रिकार्डो ने सोचा था परन्तु वह उसकी स्पष्ट व्याख्या नहीं कर पाया। इस सिद्धान्त के अनुसार श्रमिक अपने जीवन–निर्वाह व्यय से कहीं अधिक मूल्य की वस्तु का उत्पादन करता है और क्योंकि श्रमिक को उतनी ही मजदूरी दी जाती है जो उसके जीवन–निर्वाह व्यय के बराबर होती है, अतिरिक्त उत्पादन पूँजीपतियों द्वारा हड़प लिया जाता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जबकि परम्परावादी अर्थशास्त्रियों और समाजवादियों ने मूल्य सम्बन्धी विश्लेषण को उत्पादन लागत पर आधारित किया था, आस्ट्रियन सम्प्रदाय ने मूल्य निर्धारण में उपयोगिता के महत्त्व पर अधिक जोर दिया था। किन्तु उनका विश्लेषण केवल व्यक्तिगत वस्तुओं के मूल्य निर्धारण तक ही सीमित था।

बाद के अर्थशास्त्रियों ने विशेषकर **पैरेटो, हिक्स, एलन, जॉन रॉबिन्सन** इत्यादि ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि मनुष्य सदैव ही व्यक्तिगत वस्तुओं के विषय में नहीं सोचता वरन् विभिन्न समूह की बात करता है और इन वस्तुओं का या तो प्रतिस्थापन हो सकता है या वे एक–दूसरे से सम्बन्धित होते है। अतः किसी भी व्यक्ति की माँग अन्य वस्तुओं की अपेक्षा किसी विशेष वस्तु के लिए अभिरुचि के परिमाण (scale of preference) पर निर्भर करती है। इन लेखकों के अनुसार उपयोगिता का परिमाणात्मक परिमाप सम्भव नहीं होता। किन्तु एक निश्चित समय पर किसी भी व्यक्ति की दो या दो से अधिक वस्तुओं के लिए अभिरुचि के परिमाप का ज्ञान प्राप्त करके विभिन्न वस्तुओं की तुलनात्मक उपयोगिता की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। दूसरे शब्दों में, यह मालूम किया जा सकता है कि कोई भी व्यक्ति किस वस्तु की कितनी इकाइयों दूसरी वस्तुओं की कितनी इकाइयों के बदले में देने के लिए तैयार है। इन लेखकों ने इसीलिए **सीमान्त उपयोगिता के स्थान पर 'प्रतिस्थापन की सीमान्त दर'** शब्दों का प्रयोग किया है। प्रतिस्थापन की सीमान्त दर से उनका अभिप्राय उस दर से है जो किसी भी व्यक्ति की उस तत्परता का प्रतिस्थापन करती है जो वह किसी एक वस्तु की निश्चित इकाइयों का दूसरी वस्तुओं की निश्चित इकाइयों को प्राप्त करने हेतु त्याग करने के लिए तैयार होता है। **हिक्स** के अनुसार किसी भी व्यक्ति को अपने पास की वस्तु के परित्याग से जो क्षति होती है उसकी पूर्ति दूसरी वस्तुओं की एक निश्चित मात्रा से होती है। इन लेखकों ने इसीलिए अपने विश्लेषण में **उदासीनता वक्रों तथा उदासीनता मानचित्रों** का प्रयोग किया है। उदासीनता वक्र उन विभिन्न वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को दर्शाते हैं जिनमें व्यक्ति विशेष उदासीन रहता है और उदासीनता मानचित्र में विभिन्न संयोगों को दशनि वाले विभिन्न उदासीनता वक्र दिखाये जाते हैं। इन वक्रों की सहायता से प्रतिस्थापन की सीमान्त दर

को मालूम किया जा सकता है। संक्षेप में, उदासीनता वक्र विश्लेषण के अनुसार साम्य की स्थिति में किन्हीं दो वस्तुओं की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर उनके मूल्य के अनुपात के बराबर होती है।

### 1.7 एकाधिकार तथा अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थितियों में मूल्य निर्धारण सम्बन्धी विचार

हमने अभी तक पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में मूल्य निर्धारण सिद्धान्त के विकास पर दृष्टिपात किया है। कुछ अर्थशास्त्रियों ने, विशेष रूप से वर्तमान शताब्दी में, एक ऐसे सिद्धान्त की रचना की है जो एकाधिकार, एकाधिकारी प्रतियोगिता तथा पूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं में समान रूप से लागू होता है। यहाँ यह बता देना उचित होगा कि उत्पादन, वितरण, व्यापार तथा वाणिज्य की परिस्थितियों में परिवर्तन होने के कारण, व्यावहारिक दृष्टिकोण से, मूल्य निर्धारण की समस्या का अध्ययन करना अत्यावश्यक हो गया है। अपूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकारी प्रतियोगिता सम्बन्धी सिद्धान्तों ने इस कमी को पूरा किया है। सर्वप्रथम, **कूर्नो** ने एकाधिकारी परिस्थितियों में मूल्य निर्धारण की समस्या को विशेष महत्त्व प्रदान किया था। **मार्शल** ने इस विश्लेषण को आगे बढ़ाया किन्तु इस दिशा में **चौम्बरलिन तथा जॉन राबिन्सन** के कार्य अति सराहनीय हैं क्योंकि उन्होंने एकाधिकारी प्रतियोगिता तथा अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थितियों में मूल्य निर्धारण की समस्या का विश्लेषण प्रस्तुत करके मूल्य सिद्धान्त को वास्तविक परिस्थितियों के अनुकूल बनाया।

परम्परावादी अर्थशास्त्री एकाधिकार को एक अपवाद समझते थे, इसीलिए उन्होंने पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति का ही अध्ययन किया था। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपना सम्बन्ध मुख्य रूप से दीर्घकालीन प्रवृत्तियों तक ही सीमित रखा। उनके सिद्धान्त मुख्य रूप से इस धारणा पर आधारित थे कि मनुष्य स्वहित से प्रेरित होते हैं। वे पूर्ण प्रतियोगिता को एक आदर्श स्थिति समझते थे क्योंकि उनका विश्वास था कि इसी में उत्पादन तथा विनिमय सम्बन्धी क्रियाओं को अधिक से अधिक बढ़ावा मिलता है। 19वीं शताब्दी में अधिकांश अर्थशास्त्रियों ने यह महसूस करना आरम्भ कर दिया था कि व्यक्तिगत हितों में सामंजस्य के अभाव के कारण पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति कदापि भी उपस्थित नहीं होती और प्रतियोगिता अपूर्ण ही रहती है। समाजवादियों, संस्थानिकवादियों और इतिहासकारों ने पूर्ण प्रतियोगिता के सिद्धान्त पर आक्रमण करना आरम्भ किया।

**1.8 एकाधिकारी प्रतियोगिता सिद्धान्त– चेम्बरलिन** के कथनानुसार वास्तविक जीवन में न तो विशुद्ध एकाधिकार की और न विशुद्ध प्रतियोगिता की स्थिति पायी जाती है और अधिकांश स्थितियाँ ऐसी देखने को मिलती है जिनमें दोनों ही के अंश पाये जाते हैं। उसके अनुसार विशुद्ध प्रतियोगिता एक ऐसी स्थिति है जिसमें विभिन्न प्रतियोगी अपनी एकाधिकारी शक्ति को बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। अतः सैद्धान्तिक विवेचन की दृष्टि से वह एकाधिकार सम्बन्धी सिद्धान्त से आरम्भ करना अधिक उपयुक्त समझता है क्योंकि उसके विचार में इस विधि में प्रतियोगी तत्त्वों का अध्ययन भी सम्मिलित हो जाता है। इस दृष्टि से वह **कुर्नो** के समान था क्योंकि वह भी एकाधिकार को सभी सैद्धान्तिक विवेचन का आरम्भ–बिन्दु मानता था किन्तु दोनों में कुछ भिन्नता भी दी। जबकि कूर्नो यह मानता था कि प्रतियोगियों की संख्या में वृद्धि होने से एकाधिकार की स्थिति पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में बदलती जाती है, चेम्बरलिन का विचार था कि एकाधिकार वाली वस्तु की प्रतिस्थापित वस्तुओं की संख्या में वृद्धि होने से ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है। **चेम्बरलिन** का विश्वास है कि किसी भी विक्रेता को अपनी वस्तु के विक्रय में जो एकाधिकार प्राप्त होता है उसकी सीमा इस बात पर निर्भर करती है कि वह अन्य वस्तुओं से कितनी भिन्न है। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक उत्पादक को, यदि उसकी वस्तु अन्य उत्पादकों की वस्तुओं से भिन्न है, कुछ न कुछ एकाधिकार अवश्य ही प्राप्त होता है जिसकी सीमा इस बात पर निर्भर करती है कि बाजार में उस वस्तु की कितनी प्रतिस्थापित वस्तुएँ उपलब्ध हैं। इस दृष्टि से प्रत्येक उत्पादक को कुछ न कुछ एकाधिकार अवश्य ही प्राप्त होता है। जब बाजार में किसी वस्तु का केवल एक ही उत्पादक है तो ऐसी स्थिति को विशुद्ध एकाधिकार की स्थिति कहेंगे और यदि दो

उत्पादक हैं तो उसे द्वि–अधिकार की स्थिति कहेंगे। जब एक ही वस्तु के कई विक्रेता अथवा उत्पादक होते हैं तो उस स्थिति को अल्पाधिकार (oligopoly) को स्थिति कहेंगे। **चेम्बरलिन** के अनुसार पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति उसी समय उत्पन्न होती है जब विक्रय की जाने वाली वस्तु समरूप होती है। वास्तविक जीवन में जो परिस्थितियाँ देखने को मिलती हैं वे न तो विशुद्ध एकाधिकार की हैं और न विशुद्ध प्रतियोगिता की ही, वरन् एकाधिकारी प्रतियोगिता की परिस्थितियाँ हैं।

**चेम्बरलिन** ने इस प्रकार अपने विचार को वस्तु पर ही केन्द्रित किया है क्योंकि प्रत्येक विक्रेता को कुछ न कुछ एकाधिकार अवश्य ही प्राप्त रहता है, उसको बाजार में उपलब्ध होने वाली प्रतिस्थापित वस्तुओं से प्रतियोगिता सहन करनी पड़ती है। ये वस्तुएँ एक जैसी नहीं होतीं और इनका विक्रय अन्य फर्म करती हैं जिनको मूल्य नीतियाँ भिन्न होती हैं और जिनका बिक्री व्यय भी भिन्न होता है। इन्हीं के कारण किसी विशेष वस्तु के विक्रेता के एकाधिकार की सीमा कम हो जाती है। स्पष्ट है कि व्यक्तिगत विक्रेता की वस्तुओं की माँग वक्र प्रतिस्थापित वस्तुओं के विक्रेताओं की नीतियों से प्रभावित होता है और उसकी वस्तु की कुल विक्री प्रतिस्थापित वस्तुओं की कुल बिक्री से प्रभावित होती है। उसने तर्क करते हुए कहा कि विशुद्ध प्रतियोगिता की स्थिति में विक्रय व्यय तथा भेदात्मक लाभः जैसे लगान, को सभी प्रतियोगी उत्पादन लागतों का एक भाग मानेंगे, किन्तु एकाधिकारी प्रतियोगिता में ऐसा नहीं होता। चेम्बरलिन ने उन प्रभावों की भी चर्चा की है जो अपने प्रतियोगियों की नीतियों के कारण व्यक्तिगत विक्रेता के निर्णयों के सम्बन्ध में उत्पन्न होते हैं। उसने सम्भावित प्रतिशोध के प्रभावों और माँग वक्र पर विक्रय व्ययों से उत्पन्न होने वाले प्रभावों इत्यादि को भी सम्मिलित किया है। एकाधिकार तथा प्रतियोगिता के संयोग से तीन प्रकार की परिवर्तनशील स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं अर्थात् (क) मूल्य नीति, (ख) वस्तु का स्वभाव, और (ग) विक्रय सम्बन्धी व्यय।

सर्वप्रथम, उसने एकाकी फर्म को लेकर यह सिद्ध करने का प्रयल किया है कि जिस बिन्दु पर बिक्री वक्र तथा व्यय वक्र एक–दूसरे को काटते हैं उसी पर एकाधिकारी तथा प्रतियोगिता मूल्य दोनों का निर्धारण होता है। इसके अतिरिक्त एकाधिकारी उत्पत्ति तथा मूल्य का निर्धारण या तो सीमान्त आय–वक्र या औसत आय–वक्र के प्रयोग द्वारा किया जा सकता है। प्रथम स्थिति में ऊपर उठते हुए सीमान्त लागत–वक्र को काटकर और दूसरी स्थिति में मार्शल द्वारा बतायी गयी विधि की सहायता से। विक्रेताओं के समूह के सम्बन्ध में इन परिवर्तनशील वातों की विवेचना करते हुए **चेम्बरलिन** ने अपने विश्लेषण को सर्वप्रथम इस धारणा पर आधारित किया है कि सभी विक्रेताओं के लागत तथा माँग–वक्र एक समान होते हैं और उसके पश्चात परिस्थितियों की विभित्रता की ओर ध्यान दिया है। इन सब स्थितियों की विवेचना करने के पश्चात चेम्बरलिन ने यह निष्कर्ष निकाला कि एकाधिकार प्रतियोगिता की स्थिति में सन्तुलन मूल्य ऊँचा होगा और उत्पत्ति का आकार संकुचित होगा। यह आवश्यक नहीं कि व्यक्तिगत विक्रेता के शुद्ध लाभ सदैव ही विशुद्ध प्रतियोगिता की अपेक्षा ऊँचे हों। एकाधिकारी प्रतियोगिता की स्थिति में यह आवश्यक नहीं कि उद्योग विशेष में सीमान्त फर्म को ऊँचे लाभ प्राप्त हों, किन्तु अधिकांश फर्मों को सामान्य लाभ अवश्य प्राप्त होंगे।

**1.9 अपूर्ण प्रतियोगिता का सिद्धान्त– श्रीमती जोन रॉबिन्सन** ने एकाधिकार को पूर्ण प्रतियोगिता की विपरीत स्थिति समझकर बताया कि प्रत्येक विक्रेता को अपनी–अपनी वस्तुओं में एकाधिकार प्राप्त रहता है। उन्होंने पूर्ण प्रतियोगिता या पूर्ण एकाधिकार की स्थिति की धारणा पर आधारित मूल्य एवं वितरण सिद्धान्तों के दोषों को दर्शाया। उनका विश्लेषण इस धारणा पर आधारित है कि प्रत्येक उद्योग केवल एक ही वस्तु के उत्पादन से सम्बन्धित रहता है। उन्होंने अपने विवेचन को एकाकी फर्म से आरम्भ किया और बताया कि ऐसा उत्पादक अपने उत्पादन को माँग के अनुसार बदलने के लिए विभिन्न प्रयत्न करता है। उन्होंने सीमान्त आय वक्र पर अधिक बल दिया क्योंकि उनका विश्वास है कि सीमान्त आय वक्र को सीमान्त लागत वक्र के समान लाने की समस्या ही मुख्य है। उन्होंने व्यक्तिगत विक्रेता के माँग

वक्र को प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्त्वों का विश्लेषण किया है जैसे विभिन्न अंश वाला एकाधिकार तथा प्रतियोगिता, मूल्य नीतियों के प्रभाव, वस्तु अथवा सेवा के गुण इत्यादि। उन्होंने व्यक्तिगत उत्पादक के पूर्ति वक्र को प्रभावित करने वाले अनेक तत्त्वों का भी विश्लेषण किया है जैसे उत्पादन लागत सम्बन्धी नियम। उन्होंने विभेदात्मक मूल्यों, क्रेताओं एवं उपभोक्ताओं के एकाधिकार जैसी समस्याओं का भी अध्ययन किया है। उन्होंने अल्पाधिकार (oligopoly) तथा बिक्री–सम्बन्धी लागतों (selling cost) के विश्लेषण की ओर ध्यान नहीं दिया। **चेम्बरलिन तथा श्रीमती रॉबिन्सन** के पश्चात जर्मनी, फ्रांस, अमरीका और इंगलैण्ड में अपूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकारी प्रतियोगिता सम्बन्धी सिद्धान्तों को आगे बढ़ाने के अनेक प्रयत्न किये गये।

## 1.10 संचय का सिद्धान्त (Theory of Accumulation)

अर्थशास्त्र में संचय का तात्पर्य आय के कुछ भाग का बचत और उसका उत्पादक कार्यों में विनियोग करने से है। बचत और उसके विनियोग से पूंजी के कोश में वृद्धि होती है। पूंजी के कोश में वृद्धि द्वारा उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। जिसके कारण आर्थिक प्रगति और विकास सिलसिला आगे बढ़ता है।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का मत था कि भूस्वामी और पूंजीपति ही अपनी आय का कुछ भाग बचत कर पाते हैं क्योंकि श्रमिकों को मिलने वाला वेतन या मजदूरी उनके वर्तमान खर्चो को पूरा करने के लिए भी पर्याप्त नहीं होते हैं। **एडम स्मिथ** ने भी इसी मत का सर्मथन किया था। एडम स्मिथ ने अपने सिद्धान्तों में बचत और निवेश को काफी महत्व दिया है। उनका मानना था कि ''बचत करने वाले मितव्ययी लोग राष्ट्र के मित्र हैं तथा फिजूलखर्ची करने वाले राष्ट्र के शत्रु हैं।''

**कार्ल मार्क्स** ने विधिवत साबित किया था कि पूंजीपति श्रमिकों के श्रम से उत्पादित मूल्य में से अधिकांश भाग अपने पास रख लेते हैं। इस प्रकार श्रमिकों का शोषण किया जाता है। पूंजीपति श्रमकों का अधिक शोषण करने के लिए अधिक पूंजी गहन तकनीकों का प्रयोग बढ़ाते हैं इसके लिए बचत और विनियोग की मात्रा भी बढ़ाते हैं। इस तरह से पूंजी का संकेन्द्रण कुछ हाथों में सिमट जाता है।

प्रतिवर्ष उत्पादन के दौरान कुछ पूंजी का क्षय भी होता है जिसे मूल्यह्रास के नाम से जाना जाता है। अर्थात जब मूल्सह्रास के बराबर पूंजी का विनेश होता है तब देश में पूंजी का कोश स्थिर बना रहता है। इसके विपरित जब पूंजी निवेश की माखा मूल्यह्रास से अधिक होता है तब पूंजी के कोश में वृद्धि होती है।

आर्थिक संवृद्धि एवं विकास में बचत एवं निवेश की ही भूमिका प्रमुख होती है। आर्थिक संतुलन के लिए भी बचत और विनिवेश का बराबर होना आवश्यक होता है। इन दोनों में असमानता के कारण आर्थिक जगत में मंदी और तेजी की समस्या उत्पन्न हाती है।

## 1.11 सारांश

वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य का निर्धारण करना अर्थशास्त्र का एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न रहा है। प्राचचीन काल में बहुत दिनों तक यह एक पहेली की तरह बनी रही थी। प्रारम्भ में कुछ अर्थशास्त्री वस्तु की उपयोगिता को मूल्य का आधार मानते थे तो कुछ वस्तु की उत्पादन लागत को महत्वपूर्ण मानते थे। इसी क्रम में जल और हीरे के मूल्य निर्धारण के विरोधाभाष उत्पन्न हुआ जिसके अनुसार जल काफी उपयोगी है परन्तु इसकी कीमत काफी कम है जबकि हीरा अनुपयोगी है फिर भी यह कीमती है ऐसा क्यों?

उपरोक्त प्रश्न का हल माशर्ल ने मांग और पूर्ति द्वारा कीमत निर्धारण के अपने सिद्धान्त में ढूँढ निकाला। उन्होंने पाया कि केवल उपयोगिता अथवा लागत का विचार एक पक्षीय है। उपयोगिता का विचार मांग पक्ष को तथा लागत का विचार पूर्ति पक्ष को संतुयट करता है। कीमत के निर्धारण में मांग और पूर्ति दोनों का संतुलन आवश्यक है। उन्होंने हका कि जिस प्रकार से कपड़े को काटने के लिए

कैंची के दोनों फलकों का समान महत्व है उसी प्रकार वस्तुओं/सेवाओं की कीमतों के निर्धारण के लिए भी मांग और पूर्ति दोनां महत्वपूर्ण हैं।

## 1.12 अभ्यास के प्रश्न

1. कीमत और मूल्य के भेद को स्पष्ट करें।
2. मूल्य और कीमत के बारे में प्रचलित प्राचीन विचारों को संक्षेप में प्रस्तुत करें।
3. मूल्य और कीमत के बारे में परम्परावादियों के विचारों को संक्षेप में प्रस्तुत करें।
4. मूल्य और कीमत के बारे में समाजवादियों के विचारों को संक्षेप में प्रस्तुत करें।
5. एकाधिकार की स्थिति में कीमत निर्धारण की महत्वपूर्ण बातों को उल्लेख करें।
6. अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में कीमत निर्धारण की महत्वपूर्ण बातों को उल्लेख करें।
7. पूंजी को परिभाषित करें।
8. पूंजी संचय से आप क्या समझाते हैं?
9. अर्थव्यवस्था में पूंजी के महत्व को बताएँ।

### 1.13 उपयोगी पुस्तकें

**एम सी वैश्य** (). आर्थिक विचारों का इतिहास. सप्तम संस्करण, प्रकाशक– मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर।

Eric Roll (1986). A History of Economic Thought. Forth Edition. Calcutta Oxford University Press (India)

टी एन हजेला (2002). आर्थिक विचारों का इतिहास. नौवाँ संस्करण, कोणार्क पब्लिशर्स प्रा. लि., नयी दिल्ली 110092।

फ्रैंक थिली (2018). पश्चात दर्शन का इतिहास (अनुवादक– एन. ए. खान 'शाहिद'), अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लिमिटेड, नर्द दिल्ली– 110002।

बी. एस. यादव, नन्दिनी शर्मा एवं उपासना शर्मा (2011). आर्थिक विचारों का इतिहास. प्रकाशक– यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नयी दिल्ली।

शिव नारायण गुप्त (2005). आर्थिक विचारों का इतिहास. प्रथम संस्करण, मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन वाराणसी।

# खंड–2

# रिकार्डो, माल्थस एवं मिल

## इकाई –1

## डेविड रिकार्डो का लगान तथा मूल्य का सिद्धान्त

इकाई की रुपरेखा–

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 लगान का सिद्धांत

1.3 लगान के प्रकार

1.4 रिकार्डो का लगान सिद्धांत

1.5 रिकॉर्डों के लगान सिद्धांत की व्याख्या

1.6 रिकार्डो के लगान सिद्धांत की आलोचना

1.7 रिकार्डों के लगान सिद्धांत का महत्व

1.8 लगान का आधुनिक सिद्धांत

1.9 रिकॉर्डों के लगान तथा आधुनिक सिद्धांत में अंतर

1.10 लगान को प्रभावित करने वाले तत्व या आर्थिक प्रगति और लगान

1.11 आभास लगान या अर्ध लगान

1.12 योग्यता लगान

1.13 प्रश्नावली

1.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

**1.0 उद्देश्य –**

1–प्रस्तुत इकाई में हम रिकॉर्डों के लगान सिद्धांत की जानकारी प्राप्त करेंगे।

2–प्रस्तुत इकाई में लगान सिद्धांत के परिभाषाओं की जानकारी प्राप्त करेंगे।

3–प्रस्तुत इकाई में लगान के प्रकारों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

4–प्रस्तुत इकाई में रिकॉर्डों के लगान सिद्धांत की आलोचनाओं के बारे में जानेंगे।

5–प्रस्तुत इकाई में रिकॉर्डों के लगान तथा आधुनिक लगान सिद्धांत में अंतर के बारे में हम जान सकेंगे।

6–प्रस्तुत इकाई में हम लगान सिद्धांत के महत्व की जानकारी प्राप्त करेंगे।

7—इस इकाई में हम अल्फ्रेड मार्शल के आभास लगान की जानकारी प्राप्त करेंगे।

8—इस इकाई में दुर्लभता लगान सिद्धांत के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

### 1.1 लगान का सिद्धांत—

लगान का अर्थ आम बोल—चाल की भाषा में लगान से तात्पर्य है मकान, दुकान या खान या खेत आदि के प्रयोग के बदले में उसके स्वामी को दिए गए किराए से होता है परंतु अर्थशास्त्र में इसका प्रयोग भिन्न अर्थो में किया जाता है। लगान शब्द की परिभाषा का अध्ययन प्रतिष्ठित एवं आधुनिक अर्थशास्त्रियों के दृष्टिकोण से की जाती है प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की परिभाषा जिसमें विशेष कर रिकार्डों, मार्शल आदि ने लगान को भूमि और प्रकृति प्रदत्त उपहार के साथ जोड़ा है।

डेविड रिकार्डो —

डेविड रिकार्डो के शब्दों में लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भूमि स्वामी को भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों के प्रयोग के बदले दिया जाता है।

अल्फ्रेड मार्शल के अनुसार—

प्रकृति के निशुल्क उपहार से प्राप्त आय को लगान कहते हैं।

अर्थात इन परिभाषाओं अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि प्राचीन प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान सिर्फ भूमि से प्राप्त होने वाली आय थी क्योंकि भूमि प्रकृति का निशुल्क उपहार है लेकिन पूर्ति सीमित होने के कारण भूमि को लगान प्राप्त होता था।

### आधुनिक परिभाषा—

आधुनिक अर्थशास्त्री प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विचार से सहमत नहीं थे की लगान केवल भूमि को ही प्राप्त होती है आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने लगान शब्द को अधिक व्यापक बनाकर इसे उत्पादन के सभी साधनों के लिए प्रयोग किया था। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार सिमितता का गुण न केवल भूमि बल्कि प्रत्येक साधन में होता है। अल्पकाल में उत्पत्ति के सभी साधनों की पूर्ति भी सीमित होती है अर्थात में पूर्णतया लोचदार नहीं होती लगान एक साधन को वर्तमान व्यवसाय में बनाए रखने के लिए न्यूनतम पूर्ति मूल्य अर्थात अवसर लागत के ऊपर एक बचत है।

श्रीमती जॉन रॉबिंसन के अनुसार—

लगान वह बचत है जो की एक साधन में प्रयोग की गई उस न्यूनतम आय के ऊपर प्राप्त करती है जो की साधन को अपना कार्य करते रहने के लिए आवश्यक है जिससे यह स्पष्ट होता है की लगान उत्पादन के सभी साधनों को प्राप्त होता है जो वर्तमान आय और अवसर लागत के अंतर की रकम होती है।

### 1.3 लगान के प्रकार—

प्रायः लगान शब्द का प्रयोग तीन अर्थों कुल लगान, आर्थिक लगान तथा ठेका लगान पर किया जाता है।

### कुल लगान—

साधारण बोलचाल की भाषा में जब लगान शब्द का प्रयोग किया जाता है तो उसका तात्पर्य अर्थशास्त्र में कुल लगान से होता है जिसमें भूमि के लिए भुगतान अर्थात आर्थिक लगान भूमि के सुधार जैसे कुआं, पक्की नाली में लगाई गई पूंजी का ब्याज, भूस्वामी के जोखिम का पुरस्कार, भूमि की देख—रेख का पुरस्कार आदि है।

**आर्थिक लगान–**

आर्थिक लगान को शुद्ध लगान भी कहा जाता है यह कुल लगान का एक अवसर जो केवल भूमि के प्रयोग के लिए भुगतान की जाती है रिकॉर्ड का मानना है कि श्रेष्ठ भूमि की उपज और सीमांत भूमि की उपज अंतर ही आर्थिक लगान है किंतु आधुनिक अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि आर्थिक लगान सभी साधनों को प्राप्त होता है जो साधन को प्राप्त आय की अवसर लागत के ऊपर एक बचत है अर्थशास्त्र में आर्थिक लगान और लगान को पर्यायवाची अर्थ में प्रयोग किया जाता है।

**ठेका लगान–**

ठेका लगान या प्रसंविदा लगान वह लगान है जो भूस्वामी और काश्तकार में पारस्परिक अनुबंध अर्थात समझौते द्वारा तय किया जाता है इसका निर्धारण भूमि की मांग और पूर्ति द्वारा होता है यदि भूमि की मांग अधिक है और पूर्ति कम है तो ठेका लगान ऊंचा होगा और वह आर्थिक लगान से अधिक होगा इसके विपरीत यदि भूमि की पूर्ति अधिक और मांग कम है तो ठेका लगान नीचा होगा और आर्थिक लगान से कम होगा।

अर्थशास्त्र में लगान से अभिप्राय आर्थिक लगान से होता है कुल लगान व ठेका लगान का कोई सैद्धांतिक महत्व नहीं है लगान निर्धारण के सिद्धांत में केवल आर्थिक लगान के निर्धारण का अध्ययन किया जाता है लगान निर्धारण के दो सिद्धांत है।

रिकार्डो का लगान सिद्धांत या लगान का प्रतिष्ठित सिद्धांत

लगान का आधुनिक सिद्धांत

**1.4 रिकार्डो का लगान सिद्धांत–**

रिकार्डो का सिद्धांत 18 वीं शताब्दी में आया यद्यपि रिकार्डो से पहले के अर्थशास्त्री एडम स्मिथ, माल्थस, टोरेंट्स वेस्ट जैसे अर्थशास्त्रियों ने लगान के संबंध में अपने विचार प्रकट किया परन्तु लगान के सिद्धांत का यथाक्रम और वैज्ञानिक विश्लेषण सबसे पहले रिकॉर्डो ने किया रिकॉर्डो के द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत को लगान का प्रतिष्ठित सिद्धांत भी कहा जाता है।

**मान्यताएं–**

रिकॉर्डो के लगान सिद्धांत की व्याख्या करने की पूर्व उन मान्यताओं को जानना आवश्यक है जिनके आधार पर सिद्धांत विकसित किया गया।

समस्त समाज की दृष्टि से भूमि की पूर्ति स्थिर होती हैं।

बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है।

कृषि में उत्पत्ति हास् नियम क्रियाशील होता है।

लगान केवल भूमि को प्राप्त होता है अन्य साधनों को नहीं।

भूमि के अलग–अलग टुकड़ों की उर्वरता में अंतर पाया जाता है।

रिकॉर्डो के लगान सिद्धांत की व्याख्या–

रिकार्डो का लगान सिद्धांत तीन प्रश्नों के संदर्भ में व्याख्या करता है।

1– लगान किस साधन को प्राप्त होता है।

2– लगान किस कारण से प्राप्त होता है।

3– लगान का निर्धारण किस प्रकार होता है।

**•लगान किस साधन को प्राप्त होता है–**

रिकॉर्डों के अनुसार लगान केवल भूमि को प्राप्त होता है उत्पादन के अन्य साधनों को नहीं भूमि में कुछ ऐसी विशेषताएं होती है जो उत्पादन के अन्य साधनों में नहीं पाई जाती क्योंकि भूमि प्रकृति का निशुल्क उपहार है जिसको अस्तित्व में लाने के लिए किसी प्रकार का कोई लागत नहीं होती भूमि की कुल मात्रा सीमित होती है जिसे घटाया बढ़ाया नहीं जाता इसी कारण लगान केवल भूमि को प्राप्त होती है।

**•लगान किस कारण प्राप्त होती है**

इसको स्पष्ट करने के लिए रिकॉर्डों ने दो कारण बताएं पहला प्रकृति की कंजूसी दूसरा मौलिक व अविनाशी शक्ति, रिकार्डो का मानना है की लगान प्रकृति की उदारता के कारण नहीं बल्कि उसकी कृपणता या कंजूसी के कारण प्राप्त होता है प्रकृति ने उपजाऊ खेतों की मात्रा कम उपलब्ध कराया है जिससे मानव कम उपजाऊ भूमि पर खेती करने को बाधित हो जाते हैं। उपजाऊ और कम उपजाऊ दोनों खेतों पर सामान लागत लगाने पर एक पर अधिक और दूसरे पर कम पैदावार होती हैं उपजाऊ खेत पर कम उपजाऊ खेत से जो अधिक उत्पादन प्राप्त होता है वही लगान है।

लगान भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों के कारण उत्पन्न होता है ना कि अर्जित शक्ति के कारण भूमि में उर्वरा शक्ति दो प्रकार की होती है।

प्रथम मौलिक तथा अविनाशी द्वितीय अर्जित मौलिक एवं अविनाशी शक्ति प्रकृति प्रदत्त होती है जबकि अर्जित शक्ति मानवीय प्रयत्नों का फल होती है लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भूस्वामी को भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों के प्रयोग के बदले प्राप्त होती है।

**• लगान का निर्धारण किस प्रकार से होता है।**

रिकार्डो के अनुसार लगान एक भेदात्मक बचत है भूमि के सभी टुकड़े सामान उपजाऊ के नहीं होते हैं उनमें कुछ अधिक उपजाऊ तो कुछ कम उपजाऊ होते हैं इतना ही नहीं भूमि की स्थिति भी लगान को प्रभावित करती है बाजार के पास की भूमि बाजार से दूर की भूमि तुलना अधिक महत्वपूर्ण होती है इस अंतर भेद के कारण श्रेष्ठ कोटि की भूमि के टुकड़ों को निम्न कोटि की भूमि टुकड़ो की तुलना में लाभ या बचत प्राप्त होती है जिसे लगान कहते है।

रिकॉर्डों ने यह कहा की लगान वह बचत है जो श्रेष्ठ भूमि को घटिया भूमि के ऊपर प्राप्त होता है दूसरे शब्दों में लगान अधिसीमांत भूमि तथा सीमांत भूमि की उपज के अंतर के बराबर होती है इस भेदात्मक बचत की व्याख्या तीन भागों में विस्तृत खेती, गहन खेती, को भूमि की स्थिति में बांटकर कर सकते हैं।

**विस्तृत खेती–**

विस्तृत खेती को समझने के लिए रिकॉर्डों ने एक जनसंख्या रहित द्वीप का उदाहरण दिया जिसमें चार प्रकार की समान क्षेत्रफल वाली भूमि है ए प्रकार की भूमि सबसे उपजाऊ है बी प्रकार की भूमि उससे कम उपजाऊ है सी प्रकार की भूमि तो बी से भी कम उपजाऊ है और डी भूमि सबसे कम उपजाऊ है डी भूमि ऐसा है जिनका उत्पादन ठीक उतना ही है जितना उस पर आने वाला उत्पादन लागत दूसरे शब्दों में सीमांत भूमि है उससे कम उपजाऊ भूमि पर कोई भी खेती नहीं करेगा क्योंकि उस पर हानि होगी अब अगर उस द्वीप के बाहर लोग आकर बसे हैं तो सबसे पहले ए फिर बी फिर सी और डी भूमि पर खेती करेंगे ए, बी और सी श्रेष्ठ भूमि होंगी जिन्हें अधि–सीमांत भूमि कहा जाएगा और इन पर लगान उत्पन्न होगा।

### गहन खेती–

गहन खेती के अंतर्गत लगान रिकॉर्डों का लगान सिद्धांत केवल विस्तृत खेती एवं गहन खेती पर भी लागू होता है गहन खेती से आशय उस खेती से जिसमें भूमि के एक ही टुकड़े पर श्रम और पूंजी की अधिक मात्राओं को लगाकर उत्पादन में वृद्धि की जाती है जब श्रम और पूंजी के साधनों की मात्राओं में वृद्धि की जाती है तो उत्पत्ति हास् नियम क्रियाशीलता के कारण घटती हुई उपज प्राप्त होगी यहां पर सीमांत भूमि के स्थान पर सीमांत मात्रा का प्रयोग किया जाता है सीमांत मात्रा की लागत ठीक उसकी उत्पादकता के बराबर होगी इस सीमांत मात्रा पर कोई लगान प्राप्त नहीं होगा लेकिन इस सीमांत मात्रा से पूर्व की मात्राओं की उत्पादकता अधिक होने से लगान प्राप्त होगा।

### भूमि की स्थिति–

लगान पर भूमि की स्थिति का भी प्रभाव पड़ता है जो भूमि मंडी या बाजार के निकट होती है वह अच्छी स्थिति वाली भूमि मानी जाती है और उसकी उपज को बेचने के लिए बाजार तक जाने में यातायात लागत कम आती है इसके विपरीत जो भूमि बाजार से सबसे अधिक दूर स्थित होगी उसकी यातायात लागत बहुत अधिक होगी उसे सीमांत भूमि पर कोई लगान प्राप्त नहीं होगा सीमांत भूमि से पहले वाली अधिसीमांत भूमियों पर उनकी दूरी अर्थात यातायात लागत के अनुसार लगान प्राप्त होगा भले ही सभी भूमियों की उर्वरता और उत्पादन समान है।

### 1.5 रिकार्डो के लगान सिद्धांत की व्याख्या–

लगान केवल भूमि को प्राप्त होता है उत्पादन के अन्य साधनों को नहीं।

लगान प्रकृति की उदारता के कारण नहीं बल्कि कंजूसी अर्थात भूमि की सीमितता के कारण उत्पन्न होता है।

लगान भूमि की मौलिक व अविनाशी शक्तियों का परिणाम है ना कि अर्जित उर्वरता शक्ति का।

लगान की रकम सीमांत और अधिसीमांत भूमि की उपज में अंतर के बराबर होती है।

लगान एक भेदात्मक बचत है जो भूमि की उर्वरता में अंतर के कारण होता है।

### 1.6 रिकार्डो के लगान सिद्धांत की आलोचना–

### भूमि की मौलिक अविनाशी शक्तियां–

रिकॉर्डों के अनुसार लगान भूमि के मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों के कारण प्राप्त होता है आज के अणुयुग में किसी वस्तु का मौलिक तथा अनाशवान समझना भयंकर भूल होंगी अगर खाद न डालें तो भूमि की उर्वरता शक्ति क्षीर्ण होने लगेगी मानव दलदलों और रेगिस्तानों को परिश्रम करके खेती योग्य बना सकता है और इन्हीं क्रूर हाथों से परमाणु बम गिरा कर हरी भरी जमीन को रेगिस्तान बना सकता है जमीन में कुआ तालाब नहर आदि का निर्माण करके भूमि को उपजाऊ बनाया जा सकता है मनुष्य में दलदली जमीन को भी सुखाकर  कृषि योग्य बनाया है।

भूमि के अलावा अन्य उत्पादन के साधन– रिकार्डों के अनुसार लगान भूमि नामक साधन को प्राप्त हो सकता है अन्य साधन को नही  प्राप्त कर सकता है भूमि के हिस्सों को मालूम करने के लिए अलग सिद्धांत बनाने की आवश्यकता नहीं है सीमांत या बिना लगान भूमि रिकॉर्ड का लगान सिद्धांत एक लगान रहित भूमि की अवधारणा पर आधारित है व्यवहारिक जीवन में किसी देश में शायद ही कोई ऐसी भूमि हो जिन पर तनिक भी लगान ना दिया जाता हो।

### खेती का ऐतिहासिक क्रम–

रिकॉर्डों ने अपने सिद्धांत में यह ऐतिहासिक दलील पेश की सर्वप्रथम सबसे अधिक उपजाऊ तथा उसके बाद कम उपजाऊ और अंत में घटिया भूमि का प्रयोग किया जाता है कैरें एवं रोशर का कहना भूमि के

उपयोग कार्यक्रम ठीक नहीं यदि भूमि कम उपजाऊ है लेकिन सुविधाजनक अर्थात बाजार के निकट है तो पहले इस पर खेती की जाएगी हमारी दृष्टि से यह आलोचना बिल्कुल व्यर्थ है क्योंकि श्रेष्ठ भूमि से रिकॉर्डों का तात्पर्य और उर्वरता और स्थिति दोनों से श्रेष्ठ होने से था ।

**पूर्ण प्रतियोगिता–**

रिकॉर्डों ने लगान सिद्धांत की व्याख्या पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर किया पूर्ण प्रतियोगिता जबकि एक काल्पनिक अवस्था है और इस काल्पनिक अवस्था के आधार पर प्रतिपादित सिद्धांत वास्तविक जीवन में लागु नहीं हो सकता है।

**लगान और मूल्य–**

रिकार्डों के अनुसार उपज का मूल्य सीमांत भूमि के उत्पादन लागत के औसत द्वारा निर्धारित होता है जिसके कारण लगान मूल्य में शामिल नहीं होता है प्रोफेसर मिल एवं अन्य आधुनिक अर्थशास्त्री इस दृ ष्टिकोण की आलोचना करते हुए कहते हैं कि किसान द्वारा दिया गया लगान एक प्रकार की लागत है और वह मूल्य में जोड़ा जाना चाहिए।

**1.7 रिकार्डों के लगान सिद्धांत का महत्व–**

विभिन्न आलोचनाओं एवं दोषों के बावजूद यह सिद्धांत आर्थिक साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है रॉबर्टसन के शब्दों में लगान का रिकॉर्डों सिद्धांत शक्तिशाली एवं शिक्षाप्रद है इसके महत्व के बारे में निम्न तर्क दिए जाते हैं।

रिकार्डों का यह निष्कर्ष आज भी पूर्ण रूप से सत्य है की जनसँख्या बढ़ने पर मनुष्य घटिया भूमि पर भी खेती करने को विवश हो जायेगा।

कृषि विज्ञान और तकनीक भले ही कितनी उन्नति करले परन्तु रिकार्डों के लगान सिद्धांत की क्रियाशीलता को केवल स्थगित किया जा सकता है समाप्त नही किया जा सकता है।

समाजवादी विचारक के सिद्धांत के बड़े सम्मान की निगाह से देखते थे सर सिडनी वैब ने रिकॉर्डों के लगान सिद्धांत को समूहवादी अर्थशास्त्र के आधारशिला माना है।

**1.8 लगान का आधुनिक सिद्धांत –**

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने रिकॉर्डों की भांति लगान को केवल भूमि तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि उन्होंने उत्पादन के अन्य साधनों को भी लगान प्राप्त करने का अधिकारी समझा इसका कारण है की भूमि की सिमितिता का गुण उत्पादन के अन्य साधनों में भी पाया जाता है आधुनिक अर्थशास्त्री लगान उत्पन्न होने के कारण भूमि की उर्वरक शक्ति को नहीं बल्कि भूमि की सिमितिता को स्वीकार करते हैं यह भूमि कि सीमित होने का गुण उत्पत्ति की प्रत्येक साधन में पाया जाता है अतः भूमि श्रम पूंजी या साहस सभी लगान प्राप्त कर सकते हैं इस प्रकार लगान को आधुनिक सिद्धांत का सामान्य सिद्धांत कहा जाता है।

**लगान सिद्धांत का आधार–**

लगान के आधुनिक सिद्धांत का आधार साधनों की विशिष्टता है ऑस्ट्रियन अर्थशास्त्री वान वाइजर ने उत्पत्ति के साधनों को दो भागों में बांटा जाता है।

**विशिष्ट–**

विशिष्ट साधन वे है जिनका एक ही प्रयोग किया जा सकता है विशिष्ट साधनों को किसी अन्य कार्य में प्रयोग नहीं किया जा सकता और उनमें गतिशीलता नहीं पाई जाती है इस साधन की अवसर लागत शून्य होती है।

**अविशिष्ट–**

अविशिष्ट साधन वे हैं जिनको एक से अधिक प्रयोग में लाया जा सकता है और उनमें गतिशीलता होती है इसे विशेषतया दो मतों में विभाजित किया गया है पहला प्रायः कोई भी साधन न तो पूर्ण रूप से विशिष्ट होता है ना ही पूर्ण रूप से अविशिष्ट इसका तात्पर्य यह है कि साधन आंशिक रूप से विशिष्ट आंशिक रूप से अविशिष्ट होता है।

विशिष्टता समय पर निर्भर करती है जो साधन आज विशिष्ट है वह कल अवशिष्ट होगा उदाहरण के लिए आज एक भूमि के टुकड़े पर गेहूं का फसल लगाया गया है वह फसल काटने तक ही विशिष्ट रहेगा फसल काटने के बाद उसे पर मकान बन सकता है बगीचा लगाया था जा सकता है कोई दूसरी फसल बोई जा सकती वही भूमि का टुकड़ा अविशिष्ट हो जाएगा।

**लगान की परिभाषा–**

श्रीमती जॉन रॉबिंसन के शब्दों में लगान वह बचत है जो किसी साधन की इकाई उस न्यूनतम आय के ऊपर प्राप्त करती है जो की साधन को अपने वर्तमान कार्य को करते रहने के लिए आवश्यक है।

अतः इस परिभाषा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि लगान एक बचत है जो किसी भी साधन की इकाई को उसकी न्यूनतम पूर्ति कीमत अर्थात अवसर लागत के ऊपर प्राप्त होती है।

लगान = वास्तविक आय– अवसर लागत

**लगान उत्पन्न होने के कारण–**

जैसा की यह ज्ञात है कि लगान विशेषता के कारण उत्पन्न होता है जो साधन पूर्ण रूप से अविशिष्ट होते हैं उन्हें लगान प्राप्त नहीं होता दूसरे शब्दों में लगान तब उत्पन्न होता है जबकि साधन सीमित होता है हमें यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए की विशिष्टता, सिमितता, भूमि तत्व और दुर्लभता पर्यायवाची अर्थ में प्रयोग किए जाते हैं।

आधुनिक विद्वानों के अनुसार लगान साधन की पूर्ति या सिमितता पर निर्भर करता है साधन की पूर्ति तीन प्रकार की हो सकती है।

पूर्णतया लोचदार पूर्ति।

पूर्णतया बलोचदार पूर्ति।

आंशिक लोचदार पूर्ति और आंशिक बेलोचदार पूर्ति।

पूर्णतया लोचदार पूर्ति–

यदि साधन की पूर्ति पूर्णतया लोचदार है तो इसका अर्थ यह हुआ कि साधन पूर्णतया विशिष्ट है साधन की वर्तमान आय और वैकल्पिक आय अवसर लागत के बराबर होती है अतः कोई लगान प्राप्त नहीं होता है।

पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति–

साधन की पूर्ति बेलोचदार होने पर साधन पूर्णतया विशिष्ट होता है और समस्त आय लगान होगी।

आंशिक लोचदार एवं आंशिक बेलोचदार–

उपरोक्त दोनों स्थितियां अव्यवहारिक है व्यवहार में साधनों की पूर्ति न तो पूर्णतया लोचदार ना ही पूर्णतया बेलोचदार होती है सभी साधन आंशिक रूप से विशिष्ट तथा आंशिक रूप से अविशिष्ट होते हैं ऐसी दशा में साधन की कीमत का एक भाग लगान का होता है

लगान = कुल आय – कुल अवसर लागत

**आंशिक लगान के आधुनिक सिद्धांत का सार–**

उत्पत्ति के प्रत्येक साधन को लगान प्राप्त हो सकता है।

लगान उत्पन्न होने के कारण साधन की विशिष्टता अर्थात उसकी पूर्ति का सीमित या बेलोचदार होना है।

लगान की राशि वास्तविक आय में से अवसर लागत घटाने पर प्राप्त होती है।

साधन के अविशिष्ट अर्थात पूर्णतया बेलोचदार होने पर साधन को प्राप्त समस्त आय लगान के रूप में प्राप्त होगी।

साधन के अविशिष्ट अर्थात पूर्णतया लोचदार होने पर साधन को शून्य लगान प्राप्त होगा।

साधन के आंशिक रूप से विशिष्ट तथा आंशिक रूप से अविशिष्ट होने पर साधन की कीमत का एक भाग लगान होती है।

लगान शून्य हो सकता है परंतु कभी भी ऋणात्मक नहीं हो सकता क्योंकि अवसर लागत वास्तविक आय से अधिक नहीं हो सकती है।

लगान का आधुनिक सिद्धांत एक सामान्य सिद्धांत है जो उत्पत्ति के प्रत्येक साधन पर लागू होता है इसी कारण इसे डेविड रिकार्डो के सिद्धांत का सुधरा हुआ रूप मानते हुए उत्तम ठहराया जाता है।

**1.9 रिकॉर्डों के लगान तथा आधुनिक सिद्धांत में अंतर–**

**लगान का क्षेत्र–**

रिकॉर्डों के अनुसार लगान केवल भूमि पर प्राप्त होती है जबकि आधुनिक सिद्धांत के अनुसार लगान उत्पत्ति के सभी साधनों को प्राप्त होती है।

**उत्पत्ति के कारण–**

रिकॉर्डों के अनुसार लगान भूमि की उर्वरता और स्थिति में भिन्नता के कारण प्राप्त होती है जबकि आधुनिक सिद्धांत लगान उत्पन्न होने के कारण को भूमि की दुर्लभता या विशेषता मानता है।

**प्रमुख शक्तियां–**

रिकॉर्डों की विचार से लगान भूमि की मौलिक तथा अविनाशी शक्तियों का उपयोग करने के बदले प्राप्त होता है जबकि आधुनिक सिद्धांत में लगान साधन की मांग व पूर्ति शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है।

लगान की माप– रिकॉर्डों के अनुसार लगान एक भेदात्मक बचत है जबकि उसकी माप का सूत्र–

लगान = श्रेष्ठ भूमि की उपज – सीमांत भूमि की उपज है आधुनिक सिद्धांत के अनुसार लगान विशिष्टता का परिणाम है। जिनकी गणना का सूत्र –

लगान = वास्तविक आय – अवसर लागत।

**लगान और कीमत में संबंध–**

रिकॉर्डों के विचार से अनाज की कीमत इसलिए ऊंचा नहीं होता की लगान दिया जाता है बल्कि लगान इसलिए दिया जाता है क्योंकि अनाज का मूल्य ऊंचा होता है इस कथन से दो बातें स्पष्ट होती हैं लगान मूल्य को प्रभावित नहीं करता बल्कि मूल्य लगान को प्रभावित करता है रिकार्डों के अनुसार मूल्य सीमांत भूमि के अवसर लागत के बराबर प्राप्त होता है इसलिए सीमांत भूमि को कोई लगान प्राप्त नहीं होता और वह लगान रहित भूमि होती है लगान लागत में प्रवेश नहीं करता और लगान मूल्य को प्रभावित नहीं करता है।

**मूल्य लगान को प्रभावित करता है–**

रिकॉर्डों के लगान सिद्धांत के अनुसार लगान का उदय उस समय होता है जबकि श्रेष्ठ भूमि की अपेक्षा उससे कम अच्छी भूमि पर खेती की जाती है परंतु कम अच्छी भूमि पर खेती तभी प्रारंभ की जाएगी जबकि कृषि का उपज मूल्य इतना बढ़ जाए की इस कम अच्छी भूमि से भी उत्पादन लागत निकल आए। यदि मूल्य नहीं बढ़ता तो कम अच्छी भूमि को प्रयोग में नहीं लाया जाएगा ऐसी दशा में कम उपज भूमि के लगान का प्रश्न ही नहीं पैदा होगा अतः स्पष्ट है कि मूल्य में वृद्धि होने पर भी लगान उत्पन्न होता है जैसे–जैसे कृषि उपज का मूल्य बढ़ता है वैसे–वैसे कम उपज भूमि का प्रयोग होता जाता है और उसे भूमि से अच्छी भूमि का लगान क्रमशः बढ़ता जाता है।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि रिकॉर्डों के मत में लगान मूल्य को प्रभावित नहीं करता बल्कि मूल्य लगान को प्रभावित करता है मूल्य के घटने बढ़ने से लगान घटता बढ़ता है।

**आधुनिक अर्थशास्त्रियों के विचार–**

लगान और मूल्य के परस्पर संबंध के विषय में आधुनिक अर्थशास्त्री डेविड रिकार्डो के विचारों से सहमत नहीं थे यह अर्थशास्त्री यह नहीं मानते की लगान मूल्य को भी प्रभावित नहीं करता है उनके अनुसार लगान मूल्य को प्रभावित करता है या नहीं इस बात पर निर्भर करेगा कि हम लगान को अर्थव्यवस्था में किस भाग की दृष्टि से देखते हैं संपूर्ण समाज की दृष्टि से एक उद्योग की दृष्टि से अथवा एक व्यक्तिगत फर्म की दृष्टि से।

**संपूर्ण समाज की दृष्टि से–**

समाज के दृष्टिकोण से तो रिकॉर्डों के विचार ठीक प्रतीत होते हैं की लगान मूल्य को प्रभावित नहीं करता संपूर्ण समाज के लिए भूमि प्रकृति का निशुल्क उपहार होती है उसकी पूर्ति स्थिर होती है और उसकी हस्तांतरण आय शून्य होती है संपूर्ण समाज की दृष्टि से भूमि से होने वाली समस्त आय एक बचत अर्थात लागत है जो लागत में प्रवेश नहीं करता और मूल्य को प्रभावित नहीं करता है।

**एक उद्योग की दृष्टि से–**

भूमि के प्रयोग के लिए भुगतान को लगान कहते हैं लगान को हम दो भागों में बाँटते हैं अवसर लागत, अवसर लागत के ऊपर का अधिक्य एक उद्योग की दृष्टि से भूमि का अवसर लागत मूल्य को प्रभावित करता है परंतु अवसर लागत के ऊपर का आधिक्य स्वयं के मूल्य से प्रभावित होता हैद्य उदाहरण के रूप में यदि भूमि के टुकड़े को ₹100 लगान मिलता है उसमें अवसर लागत 80 और अवसर लागत के ऊपर आधिक्य 20 रुपए है इस दशा में ₹80 की रकम मूल्य को प्रभावित करेगा और ₹20 की रकम मूल्य से प्रभावित होगा संक्षेप में एक उद्योग की दृष्टि से लगान आंशिक रूप से मूल्य निर्धारक तथा आंशिक रूप से मूल्य द्वारा निर्धारित होता है।

**व्यक्तिगत फर्म की दृष्टि से–**

एक व्यक्तिगत फर्म या उत्पादक अन्य साधनों की तरह भूमि को प्रयोग करने के लिए मूल्य देता है यह मूल्य उसके लिए लागत है जो उत्पादित वस्तु के मूल्य को प्रभावित करेगा वह लगान की लागत को उत्पादित वस्तु के मूल्य से वसूल करना चाहेगा इस प्रकार व्यक्तिगत फर्म की दृष्टि से लगान जो की उत्पादन लागत का एक अंश है और कीमत को निश्चित रूप से प्रभावित करता है प्रो.सैम्युलसन ने टिप्पणी की लगान कभी मूल्य को निर्धारित करने वाला तत्व है तो कभी मूल्य द्वारा निर्धारित होने वाला तत्व है।

**लगान सिद्धांत का महत्व–**

लगान को केवल कृषि भूमि तक ही सीमित रखा परंतु सिद्धांत का क्षेत्र वास्तव में अधिक व्यापक है यह कृषि भूमि के अतिरिक्त मकान दुकान मत्स्य पालन खानू जैसे महत्वपूर्ण स्थान पर भी लागू होता है।

**मकान व दुकान बनवाने वाली भूमि का लगान–**

मकान एवं दुकान बनाने के लिए जिस भूमि का प्रयोग होता है उसकी उर्वरता का महत्व नहीं होता बल्कि स्थिति के आधार पर लगान होता है भूमि के टुकड़ों की स्थिति में भारी अंतर होता है भूमि के टुकड़े को जो शहर के बीचों बीच पर सड़क के किनारे स्थित है उन्हें इमारत है। दुकान के लिए अधि–सीमांत भूमि कहा जाएगा और इस भूमि का लगान सर्वाधिक होता है इसके विपरीत जो भूमि के टुकड़े शहर से दूरी स्थित होते हैं और सड़क के किनारे नहीं उन्हें सीमांत भूमि कहा जाता है ऐसी दशा में उन्हें प्राप्त आय की मात्रा लागत के बराबर होती है और लगान नहीं मिलता है अतः मकान व दुकान बनवाने की भूमिका लगान अधिक सीमांत भूमि तथा सीमांत भूमि के आय का अंतर होता है।

**मछली पकड़ने के स्थान का लगान–**

समुद्र में जब मछलियां पकड़ी जाती है तब भी वहां लगान का सिद्धांत क्रियाशीलता पाई जाती हैं इन मछली पकड़ने के स्थान को अधि–सीमांत स्थान कहा जाता है इसके विपरीत कुछ स्थान ऐसे हैं जहां पर मछलियों को पकड़ने की लागत और मछलियों की बिक्री से प्राप्त आय बराबर होती है इन मछली पकड़ने के स्थान को सीमांत स्थान कहते हैं मत्स्य पालन की दशा में भी अधि–सीमांत और सीमांत स्थान के आय का अंतर लगान है

**खानों का लगान–**

खेती करने वाली भूमि और खान में एक विशेष अंतर है भूमि की उर्वरा शक्ति में खेती करने पर धीरे–धीरे कमी आती है परंतु उर्वरा शक्ति समाप्त कभी नहीं होती जबकि खानों में से केवल खनिज के समाप्त हो जाने पर वह बेकार हो जाता है खानों में भी अधि–सीमांत तथा सीमांत खाने होती है कुछ खानों में पट्टेदारों को खान चलाने में लागत खर्च निकालने के बाद कुछ बचत प्राप्त होती है इन्हें अधि–सीमांत खान कहेंगे इसके विपरीत कुछ स्थानों में निकाले गए खनिज पदार्थ की कीमत उसके उत्पादन लागत के बराबर होती है इन्हें सीमांत खान कहते हैं इन्हीं अच्छी व घटिया खानों की उत्पत्ति का अंतर ही लगान कहलाता है।

**1.10 लगान को प्रभावित करने वाले तत्व या आर्थिक प्रगति और लगान–**

आर्थिक प्रगति से सीमांत भूमि का बिंदु बदल जाता है और विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक प्रगति का लगान की मात्रा पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है लगान को प्रभावित करने वाले तत्व निम्नलिखित हैं।

जनसंख्या में वृद्धि– जनसंख्या में वृद्धि होने पर कृषि पदार्थ की मांग बढ़ेगी जिसे पूरा करने के लिए निम्न श्रेणी की भूमि पर खेती की जाएगी इस प्रकार सीमांत भूमि और अधि–सीमांत भूमियों का लगान बढ़ जाएगा।

कृषि सुधार–

कृषि सुधार का अर्थ है कृषि क्षेत्र में नई उत्पादन विधियो, नवीन यंत्रों, उन्नत बीजों, उर्वरकों आदि का प्रयोग करके उत्पादकता बढ़ाना इस कृषि सुधार से संभावित प्रभाव लगान पर हो सकते हैं कृषि सुधार से अगर सभी भूमियों की उत्पादकता बढ़ती है तो पूर्ति बढ़ने से अनाज के कीमत में कमी आएगी सीमांत भूमियों पर उत्पादन नुकसान या हानि देगा और अधि–सीमांत भूमि धीरे–धीरे सीमांत होती जाएंगी परिणाम स्वरुप आधि–सीमांत और सीमांत भूमियों की लागत का अंतर कम होने से लगान घटता जाएगा।

कृषि सुधार का प्रभाव अगर केवल उपजाऊ भूमियों पर पड़ता है तो सीमांत और अधि–सीमांत भूमि के लागत में अंतर बढ़ने से लगान बढ़ेगा।

कृषि सुधार का प्रभाव केवल सीमांत भूमियों पर पड़ता है तो अच्छी और सीमांत भूमि की उत्पादकता का अंतर कम होने से लगान घटेगा।

**यातायात में उन्नति–**

यदि यातायात के साधन विकसित हो जाए तो इसका प्रभाव भूमि की स्थिति पर पड़ेगा यातायात की उन्नति के कारण कुछ भूमि के टुकड़े बाजार के समीप हो जाएंगे और इनका लगान बढ़ जाएगा भूमि की स्थिति सुधारने से स्वाभाविक रूप से लगान प्रभावित होता है।

**जीवन स्तर में वृद्धि–**

जीवन स्तर ऊंचा होने का अभिप्राय है कि उनकी आय का बढ़ना आय बढ़ने से अनाज की मांग बढ़ेगी इस मांग की पूर्ति करने के लिए घटिया भूमि के टुकड़ों पर भी खेती की जाएगी सीमांत भूमि का बिंदु आगे सरकने पर अधि–सीमांत भूमियों का लगान बढ़ेगा।

**क्या लगान ऋणात्मक हो सकता है–**

रिकॉर्डों और आधुनिक अर्थशास्त्रियों दोनों के अनुसार लगान एक बचत या आधिक्य हैं अतः सदैव धनात्मक या शून्य रहता है लगान की ऋणात्मक होने की संभावना नहीं है रिकॉर्डों के अनुसार लगान अधि–सीमांत और सीमांत भूमि की उपज का अंतर है सीमांत भूमि की उपज और लागत बराबर होती है जिसका लगान शून्य होता है किसी भी ऐसी भूमि जिसका लगान उसके मूल्य से कम होगा उस पर खेती की ही नहीं की जाती साथ ही अगर विभिन्न भूमियों की उत्पादकता सामान मान ली जाए तो भी लगान अधिक से अधिक शून्य हो सकता है।

परंतु ऋणात्मक नहीं अगर वास्तव में आधुनिक अर्थशास्त्रियों के लगान संबंधी विचार का अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि लगान उत्पादन के सभी साधनों को प्राप्त होता है इस दृष्टि से यदि किसी व्यक्ति की वास्तविक आय से अवसर लागत ज्यादा हो तो वह अधिक आय वाले अवसर लागत में कार्य करेगा परिणाम स्वरुप अवसर लगान ही वर्तमान आय हो जाएगी अवसर लागत व्यक्ति की वर्तमान आय से कम या अधिकतम बराबर हो सकता है उससे अधिक किसी भी हाल में नहीं इस कारण लगान शून्य तो हो सकता है परंतु ऋणात्मक नहीं हो सकता है।

कुल लगान, आर्थिक लगान व ठेका लगान के अतिरिक्त तीन अन्य अवधारणाओं को अर्थशास्त्र में विकसित किया है आभास लगान, दुर्लभता लगान एवं योग्यता लगान यदि किसी कारण से स्थान विशेष की मांग बहुत अधिक है तो भू–स्वामी उचित लगान की तुलना में बहुत अधिक लगान काश्तकारों से वसूल करते हैं उदाहरण के लिए खान–पान, रीति रिवाज, संस्कृति, भाषा, धर्म आदि के कारणों से लोग स्थान विशेष में रहना पसंद करते हैं इस दशा में वसूल किए जाने वाले लगान को अत्यधिक लगान कहते हैं।

**1.11 आभास लगान या अर्ध लगान–**

अल्फ्रेड मार्शल ने इसका प्रयोग सर्वप्रथम किया मार्शल ने आभास लगान का प्रयोग मानव निर्मित पूंजीगत वस्तुओं जिनकी पूर्ति अल्पकाल में स्थिर होती है से प्राप्त होने वाली आय के लिए किया है भूमि का लगान एक प्रकार की बचत है जो भूमि की बेलोचदार पूर्ति या निश्चितता के कारण उत्पन्न होती है भूमि तथा पूंजीगत वस्तुओं जैसे मशीन, यंत्र, प्लांट आदि में अंतर मात्र यह है की भूमि की पूर्ति अल्पकाल और दीर्घकाल दोनों में स्थिर होती है जबकि पूंजीगत वस्तुओं की पूर्ति अल्पकाल में तो स्थिर रहती है परंतु दीर्घ काल में लोचदार होती है अल्पकाल में भूमि और पूंजीगत वस्तुओं दोनों की पूर्ति स्थिर होती है भूमि स्थाई रूप से सीमित है इसलिए इसकी आय को लगन कहते हैं जबकि पूंजीगत वस्तुओं जो अस्थाई रूप से सीमित है इसलिए उनकी आय को आभास लगान कहते हैं।

मार्शल के अनुसार मशीन अर्थात पूंजीगत वस्तुओं की अल्पकालिक आय में से उनको चलाने की अल्पकालीन लागत को घटाने से जो प्राप्त बचत होती है उसे आभास लगान कहते हैं अतः इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि अल्पकाल में पूंजीगत वस्तुओं के कारण परिवर्तनशील लागत के अतिरिक्त जो आय प्राप्त होती है उसे ही आभास लगान कहते हैं।

आभास लगान= कुल आगम – परिवर्तनशील लागतें

**आभास लगान की विशेषताएं –**

उपरोक्त विवेचन से आभास लगान की निम्नलिखित विशेषताएं स्पष्ट होते हैं।

आभास लगान भी भूमि की लगान की भांति एक आधिक्य बचत है यह मानव निर्मित पूंजीगत वस्तुओं को उनके अल्पकाल में स्थित पूर्ति के कारण प्राप्त होता है दीर्घकाल में आभास लगान समाप्त हो जाता है पूंजीगत वस्तुओं की भांति श्रम और साहस भी अल्पकाल में आभास लगान अर्जित कर सकते हैं।

आभास लगान की रकम कुल आगम में से परिवर्तनशील लगान घटाने पर निकलता है आभास लगान शून्य हो सकता है परंतु ऋणात्मक नहीं हो सकता है।

**आभास लगान का निर्धारण–**

अल्पकाल में पूंजीगत वस्तुओं की परिवर्तिनशील लगान और कुल आगम के आधार पर ज्ञात की जाती है फर्म की अल्पकालिक को लागत में स्थिर और परिवर्तनशील दोनों लागते सम्मिलित रहती हैं स्थिर लागत उत्पादन के साथ घटती–बढ़ती नहीं है और उत्पादन बंद कर देने पर भी कम नहीं होतीद्य परिवर्तनशील लागत उत्पादन की मात्रा के साथ बदलती हैं अल्पकाल में उत्पादक को परिवर्तनशील लागत के ऊपर जो बचत प्राप्त होती है उसे आभास लगान कहते हैं समय बढ़ने के साथ दीर्घकाल में परिवर्तनशील लागत और कुल आगम के बराबर हो जाने पर आभास लगान समाप्त होकर शून्य होने की प्रवृत्ति रखता है आभास लगान की मात्रा ऋणात्मक इसलिए नहीं हो सकती है कि कोई उत्पादक परिवर्तनशील लागत के कुल मात्रा आगम से अधिक होने की संभावना होने पर उत्पादन को बंद कर देना ही अधिक उचित मानेगा।

**लगान तथा आभास लगान में तुलना–**

**समानताएं–**

आर्थिक लगान और आभास लगान में पाई जाने वाली प्रमुख समानताएं– लगान तथा आभास लगान दोनों का प्रमुख कारण मांग का बढ़ना है लगान कृषि उपज की मांग बढ़ने पर जबकि आभास लगान पूंजीगत वस्तुओं की मांग बढ़ने पर उत्पन्न होता लगान तथा आभास लगान दोनों पूर्ति की सीमित होने के कारण उत्पन्न होते हैं लगान और आभास लगान दोनों कीमत को प्रभावित नहीं करते बल्कि कीमत से प्रभावित होते हैं।

**असमानताएं–**

लगान की रकम प्राकृतिक उपहार के रूप में प्राप्त होती है जबकि आभास लगान मनुष्य द्वारा निर्मित पूंजीगत वस्तुओं जैसे मशीन यंत्र आदि को प्राप्त होता है लगान अल्पकाल और दीर्घकाल दोनों में प्राप्त होता है जबकि आभास लगान मात्र अल्पकाल में प्राप्त होता है लगान कृषि उपज की मांग बढ़ने पर जबकि आभास लगान पूंजीगत वस्तुओं की मांग बढ़ने पर उत्पन्न होता है लगान एक स्थाई अधिक्य है जबकि आभास लगान एक अस्थाई आधिक्य है लगान के दो प्रमुख सिद्धांत है रिकॉर्डो को लगान सिद्धांत का जन्मदाता माना जाता है जबकि आभास लगान के प्रतिपादक मार्शल महोदय की माना जाता है।

**दुर्लभता लगान–**

दुर्लभता लगान भूमि के प्रयोग के लिए दी गई कीमत है जबकि भूमि की पूर्ति उसकी मांग की तुलना में सीमित होती है यदि असीमित होती तो उसके लिए लगान कीमत देने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती परंतु वास्तव में भूमि की मांग बढ़ने पर उसकी पूर्ति को नहीं बढ़ाया जा सकता इस कारण भूमि के प्रयोग के लिए दी गई कीमत को दर लगता लगान कहते हैं।

इस्टोनियर और हेंग के अनुसार दुर्लभता लगान समरूप भूमि की दुर्लभता या सिमितिता के कारण उत्पन्न होती है।

## 1.12 योग्यता लगान–

अल्फ्रेड मार्शल ने आभास लगान के अतिरिक्त योग्यता के लगान अवधारणा का प्रतिपादन किया मार्शल के शब्दों में योग्यता का लगान किसी व्यक्ति की वह आय हैं जो अपने दुर्लभ तथा प्राकृतिक योग्यता के कारण उत्पन्न होती है इस परिभाषा से ज्ञात होता है की योग्यता का लगान भूमि का नहीं बल्कि व्यक्ति के प्रतिफल है जिस प्रकार भूमि की पूर्ति सीमित होती है इस प्रकार व्यक्तियों की योग्यता सीमित होती है जिसे इच्छा अनुसार घटाया बढ़ाया नहीं जा सकता योग्यता के लगान के दो आवश्यकता है।

प्रकृति प्रदत्त और दुर्लभ किसी व्यक्ति की योग्यता प्रकृति प्रदत्त ना होकर अर्जित योग्यता हो तो वह पूंजी के समान होगा उससे प्राप्त प्रतिफल मजदूरी कहलाएगा उदाहरण के रूप में प्रशिक्षण द्वारा जो योग्यता हासिल की जाती है उसे लगान नहीं मिलता प्राकृतिक योग्यता के कारण लगान मिलता है योग्यता के लगान के लिए दुर्लभता भी जरूरी है अगर असाधारण योग्यता वाले व्यक्तियों की बहुलता होती तो उन्हें अतिरिक्त आय नहीं मिलता व्यावहारिक जगत में विशिष्ट योग्यता वाले व्यक्ति दुर्लभ होते हैं अतः उन्हें योग्यता का लगान दिया जाता है यह अवधारणा स्पष्ट करता है कि मनुष्य की प्राकृतिक योग्यता एक प्रकार से भूमि के समान है जिसके लिए योग्यता का लगान प्राप्त होता है एक ही व्यवस्था में दो व्यक्तियों की आय में अंतर होता है क्योंकि प्राकृतिक योग्यता भिन्न–भिन्न होती है।

## 1.13 प्रश्नावली–

1–लगान सिद्धांत से आप क्या समझते हैं ?

2–रिकॉर्डो के लगान सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।

3–लगान सिद्धांत के प्रकारों का उल्लेख कीजिए।

4–रिकॉर्डो के लगान सिद्धांत की आलोचनाओं की व्याख्या कीजिए।

5–रिकॉर्डो के लगान सिद्धांत तथा आधुनिक लगान सिद्धांत में अंतर कीजिए।

6–लगान सिद्धांत के महत्व का उल्लेख कीजिए।

7–अल्फ्रेड मार्शल के लगान सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।

8–दुर्लभता लगान सिद्धांत से आप क्या समझते हैं?

## 1.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें–

1–आर्थिक विचारों का इतिहास : वी.सी. सिन्हा

2–आर्थिक विचारों का इतिहास : डा.सिंह, मित्तल

3–आर्थिक विचारों का इतिहास : डा. युद्धवीर सिंह

4–आर्थिक विचारों का इतिहास : राम कुवारें, डा. राजवीर सिंह

# इकाई –2

# अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धांत

## इकाई की रुपेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 अंतर्राष्ट्रीय सिद्धांत की परिभाषा

2.3 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त

2.4 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की गतिविधियों के वर्गीकरण

2.5 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांतों का इतिहास और विकास

2.6 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धांतों वणिकवाद सिद्धांत

2.7 एडम स्मिथ की पूर्ण लाभ सिद्धांत

2.8 डेविड रिकॉर्डों के तुलनात्मक लाभ सिद्धांत

2.9 हेक्शर ओहालिन के कारक अनुपात सिद्धांत

2.10 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत के आधुनिक सिद्धांतों

2.11 स्टीफन लैंडर का सामान्य सिद्धांत

2.12 रेमंड वर्नन के उत्पाद जीवन चक्र सिद्धांत

2.13 पालक्रूग मैंन के वैश्वीकरण नीति प्रतिद्वंदिता सिद्धांत

2.14 अंतरराष्ट्रीय व्यापार के महत्व

2.15 लिओनटीफ विरोधाभास

2.16 पोर्टर के राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मक लाभ सिद्धांत

2.17 प्रश्नावली

2.18 कुछ उपयोगी पुस्तकें

**2.0 उद्देश्य–**

प्रस्तुत इकाई में हम अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत के प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विचारों को जान सकेंगे।

प्रस्तुत इकाई में हम अंतरराष्ट्रीय व्यापार की गतिविधियों के वर्गीकरण को जान सकेंगे।

प्रस्तुत इकाई में अंतरराष्ट्रीय व्यापार सिद्धांतों का इतिहास और विकास के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

प्रस्तुत इकाई में अंतरराष्ट्रीय व्यापार के सिद्धांतों वणिकवाद सिद्धांत के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

प्रस्तुत इकाई में एडम स्मिथ की पूर्ण लाभ सिद्धांत की जानकारी प्राप्त करेंगे।

इस इकाई में डेविड रिकॉर्डों के तुलनात्मक लाभ सिद्धांत की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

इस इकाई में हेक्शर ओहालिन के कारक अनुपात सिद्धांत की जानकारी प्राप्त करेंगे।

इस इकाई में हम अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत के आधुनिक सिद्धांतों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

इस इकाई में स्टीफन लैंडर का सामान्य सिद्धांत की जानकारी प्राप्त करेंगे।

इस इकाई से हम रेमंड वर्नन के उत्पाद जीवन चक्र सिद्धांत की जानकारी प्राप्त करेंगे।

इस इकाई से पालक्रूग मैंन के वेश्वीकरण नीति प्रतिद्वंदिता सिद्धांत के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

इस इकाई में अंतरराष्ट्रीय व्यापार के महत्व की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

इस इकाई में हम लिओनटीफ विरोधाभास की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

इस इकाई में पोर्टर के राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मक लाभ सिद्धांत की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

**2.1 प्रस्तावना–**

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार वैश्विक आर्थिक गतिविधि में एक प्रमुख योगदान कारक के रूप में कार्य करता है और विकासशील तथा विकसित देशों में आर्थिक विकास का उत्प्रेरक है। संसाधनों की उपलब्धता, प्राकृतिक जलवायु परिस्थितियाँ, उत्पादन की लागत आदि जैसी विभिन्न स्थितियों में अंतर देशों के बीच व्यापार के पीछे की प्रेरणा के रूप में कार्य करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ने यह सब संभव बनाया है और उपभोक्ताओं के लिए कई वस्तुओं और सेवाओं के साथ–साथ बड़ी संख्या में रोजगार के अवसर प्रदान किए हैं। इतना ही नहीं, यह पूरी दुनिया में लोगों के बढ़ते जीवन स्तर का एक प्रमुख कारण रहा है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार बहुत लंबे समय से मानव सभ्यता का हिस्सा रहा हैय हालाँकि, पिछले कुछ दशकों में सीमा पार व्यापार में तेजी से विकास हुआ है। आयात और निर्यात ने सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि में बड़े पैमाने पर योगदान दिया है, और इसका श्रेय आयात और निर्यात को जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार विभिन्न देशों के बीच वस्तुओं और सेवाओं का आदान–प्रदान है। विनिमय शब्द में वस्तुओं और सेवाओं का आयात और निर्यात दोनों शामिल हैं।

**2.2 अंतर्राष्ट्रीय सिद्धांत की परिभाषा–**

वासरमैंन, हाल्टमैंन के अनुसार– अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को विभिन्न देशों के निवासियों के बीच लेन–देन के रूप में समझा जा सकता है।

सांख्यिकीविद् एडगेवर्थ के अनुसार  अंतर्राष्ट्रीय व्यापार शब्द को देशों के बीच व्यापार की घटना के रूप में परिभाषित किया। श्अंतर्राष्ट्रीय व्यापारश शब्द आर्थिक जुड़ाव का एक उदाहरण है और इसे देशों के बीच आर्थिक लेन–देन के रूप में संदर्भित किया जा सकता है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार देशों के बीच खुलेपन के एक महत्वपूर्ण निर्धारक के रूप में खड़ा है और आर्थिक विकास में एक उल्लेखनीय कारक रहा है। हाल के वर्षों में, विदेशी व्यापार राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए सबसे महत्वपूर्ण रणनीति बन गया है। हालाँकि, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्व केवल यहीं तक सीमित नहीं है, यह देशों के बीच सामाजिक और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को प्रोत्साहित करने में भी मदद करता है। बढ़े हुए विदेशी व्यापार ने वैश्वीकरण की प्रक्रिया को बढ़ाया है।

### 2.3 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धांत–

**प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार–**

प्रारंभ के वर्षों में, एडम स्मिथ और रिकार्डो जैसे राजनीतिक अर्थशास्त्री उन लोगों में से थे जिन्होंने अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के महत्व को स्वीकार किया, जिसे व्यावहारिक रूप से दृश्यमान वैश्विक विकास और आर्थिक विकास द्वारा पुष्टि की गई है। वैश्विक व्यापार उपभोक्ताओं को विभिन्न प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं का अनुभव करने और उनका आनंद लेने का अवसर देता है, जो किसी भी कारण से उनके देश में उपलब्ध नहीं हैं या जो दूसरों की तुलना में उनके देश में थोड़ी महंगी हो सकती हैं। विदेशी व्यापार भी, काफी हद तक, कच्चे माल के साथ–साथ तैयार उत्पादों के सुचारू प्रवाह की सुविधा प्रदान करके दुनिया भर में संसाधनों की अनियमित उपलब्धता और वितरण के मुद्दे पर अंकुश लगाता है। प्रचुर मात्रा में कच्चे माल का इष्टतम उपयोग वैश्विक स्तर पर व्यापार द्वारा त्वरित किया जाने वाला एक और लाभ है।

### 2.4 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार गतिविधियों का वर्गीकरण

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की गतिविधि को मोटे तौर पर 3 उपवर्गों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है, अर्थात् अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संचालन, रणनीतिक गठबंधन और प्रत्यक्ष विदेशी निवेश। इनकी चर्चा इस प्रकार की गई है।

**अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संचालन–**

इस वर्ग में विशेष रूप से आयात और निर्यात, आयात–निर्यात संयुक्त संचालन और पारगमन के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का गठन करने वाले संचालन शामिल हैं। हालाँकि, कई मामलों में, पार्टियों के अलग–अलग हित हो सकते हैं, आपसी लाभ प्राप्त करने के लिए, वे अपने मतभेदों को सामंजस्य बनाते हैं और लाभों को प्राथमिकता देकर आपसी सहमति पर पहुँचते हैं। इन अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संचालनों को कानूनी रूप से द्विपक्षीय अनुबंधों की श्रेणी में माना जाता है, जिसमें कानूनी साधन के रूप में अंतर्राष्ट्रीय बिक्री अनुबंध शामिल हैं। अधिकांश मामलों में, ये लेन–देन अल्पकालिक होते हैं, हालाँकि, पार्टियों के बीच संबंध उनकी पसंद के आधार पर दीर्घकालिक या अल्पकालिक हो सकते हैं।

**रणनीतिक गठबंधन–**

इस वर्ग में मुख्य रूप से फ्रेंचाइजिंग, उप–ठेका, संयुक्त उद्यम (निजी या सरकारी) आदि जैसी गतिविधियाँ शामिल हैं। यह वैश्विक स्तर पर प्रौद्योगिकियों के हस्तांतरण से संबंधित विभिन्न देशों के विभिन्न भागीदारों के बीच सहयोग से जुड़े संचालन को दर्शाता है।

**प्रत्यक्ष विदेशी निवेश–**

यह रणनीति भागीदारी, जोखिम और लाभ की श्रेणियों से काफी मिलती–जुलती है, जिनमें से प्रत्येक अपनी अधिकतम क्षमता पर है। यह वैश्विक बाजार में कदम रखने का एक विकल्प है। यह सीमा–पार निवेश की श्रेणी में आता है, जिसमें एक अर्थव्यवस्था के इच्छुक निवासी दूसरे देश में स्थित उद्यमों में महत्वपूर्ण रूप से निवेश करते हैं या प्रभावित करते हैं।

### 2.5 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांतों का इतिहास और विकास–

वैश्विक व्यापार मानव सभ्यता का एक बहुत ही महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है, और इसकी गतिशील प्रकृति के कारण, व्यापार से जुड़ी अवधारणाएँ भी काफी विकसित हुई हैं। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का एक लंबा इतिहास रहा है। विभिन्न देशों के बीच वस्तुओं और सेवाओं के आदान–प्रदान की सरल अवधारणा की विभिन्न दार्शनिकों और अर्थशास्त्रियों द्वारा कई तरीकों से व्याख्या की गई है। ये सिद्धांत जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की अवधारणा की अलग–अलग व्याख्याएँ और परिभाषाएँ प्रदान करते हैं, उन्हें अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत कहा जाता है। ये व्यापार सिद्धांत मूल रूप से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के बदलते पैटर्न, इसकी उत्पत्ति और इसके प्रभाव के साथ–साथ इसकी व्यावहारिकता का अध्ययन करते हैं।

प्राचीन यूनानियों से लेकर आज तक विभिन्न देशों की सरकारों, राजनीतिक अर्थशास्त्रियों और बुद्धिजीवियों तक अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का अध्ययन शोध का विषय रहा है। देशों के बीच व्यापार को प्रभावित करने वाले निर्धारक और कारक तथा इसके पक्ष और विपक्ष अध्ययन का विषय रहे हैं। शोध का सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न विभिन्न देशों के लिए उनकी स्थिति के अनुसार नीतियों का निर्धारण है, ताकि कुशल और सुचारू वैश्विक व्यापार हो सके।

प्रारंभिक काल में, सिद्धांतकारों और दार्शनिकों के पास व्यापार सिद्धांतों के अध्ययन के प्रति बहुत व्यवस्थित दृष्टिकोण नहीं था। उनके सिद्धांत नैतिक और राजनीतिक विचारों से थोड़े धुंधले थे। मध्य युग में व्यापार सिद्धांतों के विकास के चार सबसे उल्लेखनीय काल थेरू

- प्राचीन यूनानी विचार,
- शैक्षिक और ईसाई विचार,
- वणिकवाद और
- फिजियोक्रेसी.

इन व्यापार सिद्धांतों से संबंधित महत्वपूर्ण विचार प्लेटो, जेनोफोन और अरस्तू द्वारा ग्रीक काल में सामने रखे गए थे। उन्होंने श्रम विभाजन और वस्तुओं के आदान–प्रदान के लाभों पर जोर दिया और कहा कि उन्हें शहर की सीमाओं के भीतर सीमित न करना दोनों पक्षों के लिए परस्पर लाभकारी होगा। प्लेटो ने अपनी रचना, ष्द रिपब्लिकष में इस तथ्य के बारे में बात की कि किसी शहर के लिए वस्तुओं और सेवाओं के मामले में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना व्यावहारिक रूप से असंभव है, और श्रम विभाजन के लाभों और इसके परिणामस्वरूप उच्च उत्पादन और उत्पादकता कैसे होगी, इसकी व्याख्या की। जेनोफोन ने अपने विभिन्न अध्ययनों में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापार प्रणाली के विस्तार के लाभ के बारे में भी बात की है। हालाँकि, यूनानी दार्शनिकों द्वारा किए गए विभिन्न प्रयासों के बावजूद, यूनानी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के बहुत समर्थक नहीं थे। अरस्तू ने यह भी तर्क दिया कि कुशल शासन के एक हिस्से के रूप में, शासकों को यह तय करना चाहिए कि कौन से आयात और निर्यात आवश्यक हैं और, न केवल उन्हें ऐसा करना चाहिए, बल्कि उन्हें इन आदान–प्रदानों में निष्पक्षता भी बनाए रखनी चाहिए, संभवतः देशों के साथ कुछ संधियाँ बनाकर।

मुख्य रूप से अरस्तू के दर्शन, स्कोलास्टिक और ईसाई विचार के आधार के रूप में उभरे, जो 13 वी और 15 वी शताब्दी के आस पास आए। बौद्धिक विरासत के इस काल को नैतिकता की एक शाखा के रूप में आर्थिक विज्ञान के जन्म के रूप में जाना जाता है। इस अवधि के दार्शनिकों और धर्मशास्त्रियों का मानना था कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संभवतः नैतिक दर्शन के सिद्धांतों के अनुकूल हो सकता है। उन्होंने संसाधनों की उपलब्धता में अंतर की संभावना को स्वीकार किया और इस तथ्य को स्वीकार किया कि प्रकृति ने दुनिया के प्रत्येक क्षेत्र को हर संभव संसाधन प्रदान नहीं किया है और इसलिए, कम से कम एक निश्चित सीमा तक, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार आवश्यक और अपरिहार्य है। लेकिन वे इस तथ्य से बहुत अच्छी तरह वाकिफ थे कि इस अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य को नियंत्रित रखा जाना चाहिए और इसके प्रतिकूल नैतिक परिणाम हो सकते हैं। उन्होंने वैश्विक व्यापार की स्थिति में धोखाधड़ी और अन्य दुर्भावनापूर्ण प्रथाओं की संभावना को स्वीकार किया। हालांकि, समय के साथ विदेशी व्यापार के महत्व को व्यापक रूप से स्वीकार कर लिया गया और जल्द ही यह एक स्थापित तथ्य बन गया कि यह एक अविभाज्य अधिकार है जो किसी व्यक्ति को प्राप्त है, और इसे उससे नहीं छीना जाना चाहिए, हालांकि प्रतिकूल परिणामों से बचने के लिए सुरक्षा जांच अवश्य रखी जानी चाहिए।

समय बीतने और राष्ट्रीय राज्यों की उत्पत्ति के साथ, बढ़ते वाणिज्यिक संबंध विद्वानों और राजनेताओं दोनों के लिए प्रमुख महत्व के हो गए। हालाँकि, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की इस बढ़ती लोकप्रियता और स्वीकृति के साथ, व्यापारिकता का राष्ट्रीय आंदोलन फैल गया, जिसने कहा कि हर चीज से पहले, अपने राष्ट्र के कल्याण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए और देश अक्सर एक–दूसरे के साथ संघर्ष में रहते हैं, इसलिए, हमें पहले अपने राष्ट्र को विकसित करना चाहिए। इस प्रकार, यह लक्ष्य केवल अन्य देशों के कल्याण को हतोत्साहित करके और पहले खुद पर ध्यान केंद्रित करके ही प्राप्त किया जा

सकता है। यह लक्ष्य मुख्य रूप से सोने और चांदी को इकट्ठा करके देश के खजाने को इकट्ठा करके और बढ़ाकर हासिल किया गया था। निर्यात को बढ़ावा देना, आयात और निर्यात के बीच संतुलन और केवल आवश्यक कच्चे माल के आयात को प्राथमिकता देना, व्यापारिकता के आंदोलन के पीछे की कुछ मुख्य रणनीतियाँ थीं। हालाँकि, इस सिद्धांत ने धीरे–धीरे अपनी लोकप्रियता खो दी और उदारवादियों द्वारा इसकी कड़ी आलोचना की गई।

व्यापारिकता की विफलता के बाद, फिजियोक्रेट्स का सिद्धांत उभरा, जो व्यापार के उदारीकरण में विश्वास करते थे। उन्होंने सभी शाखाओं में मुक्त और समान रूप से मुक्त व्यापार के महत्व की वकालत की।

## 2.6 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के वणिकवाद सिद्धांत–

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत मुख्य रूप से दो श्रेणियों के अंतर्गत विकसित किए गए थे, अर्थात् शास्त्रीय या देश–आधारित सिद्धांत और आधुनिक या फर्म–आधारित सिद्धांत, दोनों को आगे विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है।

सोलहवीं शताब्दी में विकसित, मर्केंटिलिज्म आर्थिक सिद्धांत विकसित करने के शुरुआती प्रयासों में से एक था। इस सिद्धांत ने कहा कि किसी देश की संपत्ति उसके सोने और चांदी के भंडार की मात्रा से निर्धारित होती है। अपने सरलतम अर्थ में, मर्केंटिलिस्ट मानते थे कि किसी देश को निर्यात को बढ़ावा देकर और आयात को हतोत्साहित करके अपने सोने और चांदी के भंडार को बढ़ाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, यदि दूसरे देशों के लोग आपसे (निर्यात) जितना खरीदते हैं, उससे ज्यादा आपको बेचते हैं (आयात), तो उन्हें आपको सोने और चांदी में अंतर का भुगतान करना होगा। प्रत्येक देश का उद्देश्य व्यापार अधिशेष , या ऐसी स्थिति प्राप्त करना था, जहाँ निर्यात का मूल्य आयात के मूल्य से अधिक हो, और व्यापार घाटे , या ऐसी स्थिति से बचना था, जहाँ आयात का मूल्य निर्यात के मूल्य से अधिक हो।

1500 के दशक से लेकर 1800 के दशक के अंत तक के विश्व इतिहास पर करीब से नजर डालने से यह समझने में मदद मिलती है कि व्यापारिकता क्यों पनपी। 1500 के दशक में नए राष्ट्र–राज्यों का उदय हुआ, जिनके शासक बड़ी सेनाएँ और राष्ट्रीय संस्थाएँ बनाकर अपने राष्ट्रों को मजबूत बनाना चाहते थे। निर्यात और व्यापार बढ़ाकर, ये शासक अपने देशों के लिए ज्यादा सोना और धन इकट्ठा करने में सक्षम थे। इनमें से कई नए राष्ट्रों ने निर्यात को बढ़ावा देने का एक तरीका आयात पर प्रतिबंध लगाना था। इस रणनीति को संरक्षणवाद कहा जाता है और आज भी इसका इस्तेमाल किया जाता है।

राष्ट्रों ने अधिक व्यापार को नियंत्रित करने और अधिक धन इकट्ठा करने के प्रयास में दुनिया भर में अपने उपनिवेशों का उपयोग करके अपनी संपत्ति का विस्तार किया। ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य अधिक सफल उदाहरणों में से एक थाय इसने वर्तमान अमेरिका और भारत से लेकर कई स्थानों से कच्चे माल का उपयोग करके अपनी संपत्ति बढ़ाने की कोशिश की। फ्रांस, नीदरलैंड, पुर्तगाल और स्पेन भी बड़े औपनिवेशिक साम्राज्य बनाने में सफल रहे, जिन्होंने अपने शासक देशों के लिए व्यापक धन उत्पन्न किया।

यद्यपि व्यापारिकता सबसे पुराने व्यापार सिद्धांतों में से एक है, फिर भी यह आधुनिक सोच का हिस्सा बना हुआ है। जापान, चीन, सिंगापुर, ताइवान और यहाँ तक कि जर्मनी जैसे देश अभी भी निर्यात का पक्ष लेते हैं और नव–व्यापारवाद के एक रूप के माध्यम से आयात को हतोत्साहित करते हैं जिसमें देश संरक्षणवादी नीतियों और प्रतिबंधों और घरेलू–उद्योग सब्सिडी के संयोजन को बढ़ावा देते हैं। लगभग हर देश ने, किसी न किसी समय, अपनी अर्थव्यवस्था में प्रमुख उद्योगों की रक्षा के लिए किसी न किसी प्रकार की संरक्षणवादी नीति को लागू किया है। जबकि निर्यात–उन्मुख कंपनियाँ आमतौर पर संरक्षणवादी नीतियों का समर्थन करती हैं जो उनके उद्योगों या फर्मों के पक्ष में होती हैं, अन्य कंपनियों और उपभोक्ताओं को संरक्षणवाद से नुकसान होता है। करदाता उच्च करों के रूप में चुनिंदा निर्यातों की सरकारी सब्सिडी के लिए भुगतान करते हैं। आयात प्रतिबंधों से उपभोक्ताओं के लिए उच्च कीमतें होती हैं, जो विदेशी निर्मित वस्तुओं या सेवाओं के लिए अधिक भुगतान करते हैं। मुक्त–व्यापार के समर्थक इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि कैसे मुक्त व्यापार वैश्विक समुदाय के सभी सदस्यों को लाभ पहुँचाता

है, जबकि व्यापारिकता की संरक्षणवादी नीतियाँ केवल चुनिंदा उद्योगों को लाभ पहुँचाती हैं, जो उद्योग के भीतर और बाहर उपभोक्ताओं और अन्य कंपनियों दोनों की कीमत पर होती हैं।

मर्केंटीलिज्म सिद्धांत पहला शास्त्रीय देश–आधारित सिद्धांत है, जिसे 17–18वीं शताब्दी के आसपास प्रतिपादित किया गया था। यह सिद्धांत सबसे चर्चित और बहस वाले सिद्धांतों में से एक रहा है। देश ने इस आदर्श वाक्य पर ध्यान केंद्रित किया कि, प्राथमिकता के आधार पर, उसे अपने स्वयं के कल्याण का ध्यान रखना चाहिए और इसलिए, निर्यात का विस्तार करना चाहिए और आयात को हतोत्साहित करना चाहिए। इसने कहा कि यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया जाना चाहिए कि केवल आवश्यक कच्चे माल का आयात किया जाए और कुछ नहीं। सिद्धांत ने यह भी विचार प्रस्तुत किया कि पहली चीज जिस पर एक राष्ट्र को ध्यान केंद्रित करना चाहिए वह है सोने और चांदी के रूप में धन का संचय करना, इस प्रकार, राष्ट्र के खजाने को मजबूत करना।  सरल शब्दों में कहें तो यह कहा जा सकता है कि मर्केंटीलिज्म के सिद्धांत के पीछे शास्त्रीय अर्थशास्त्रियों का दृढ़ विश्वास था कि किसी देश की संपत्ति और वित्तीय स्थिति काफी हद तक उसके पास मौजूद सोने और चांदी की मात्रा से प्रदर्शित होती है। इसलिए, अर्थशास्त्रियों का मानना है कि अमीर स्थिति बनाए रखने के लिए कीमती धातुओं के भंडार को बढ़ाना सबसे अच्छा है। इस सिद्धांत के काम करने के लिए, पूरा किया जाने वाला उद्देश्य यह था कि किसी देश को इतनी बड़ी मात्रा में माल का उत्पादन करना चाहिए कि वह अधिक निर्यात करे और दूसरों से माल और अन्य सामग्री खरीदने पर कम निर्भर हो, जिससे निर्यात को दृढ़ता से बढ़ावा मिले और आयात को सख्ती से हतोत्साहित किया जा सके।

अतीत में बहुत से देशों ने मर्केंटीलिज़्म के सिद्धांत का सख्ती से पालन करके लाभ उठाया। इतिहास गवाह है कि इस सिद्धांत को लागू करके, बहुत से देशों ने मर्केंटीलिज़्म के सिद्धांत का सख्ती से पालन करके लाभ उठाया। अर्थशास्त्रियों द्वारा किए गए विभिन्न अध्ययनों से यह साबित होता है कि शुरुआती दौर में यह सिद्धांत क्यों फला–फूला। शुरुआती दौर में, यानी 1500 के आसपास, नए राष्ट्र और राज्य उभर रहे थे और शासक अपने देश को हर संभव तरीके से मजबूत करना चाहते थे, चाहे वह सेना हो, धन हो या अन्य विकास। शासकों ने देखा कि व्यापार बढ़ाकर वे अधिक धन संचय करने में सक्षम थे और इस प्रकार, कुछ देश अपने पास जमा धन की विशाल मात्रा के कारण बहुत मजबूत हो गए। शासकों का ध्यान निर्यात की संख्या को यथासंभव बढ़ाने और आयात को हतोत्साहित करने पर था। ब्रिटिश उपनिवेश इस सिद्धांत का आदर्श उदाहरण है। उन्होंने दूसरे देशों पर शासन करके उनके कच्चे माल का उपयोग किया और फिर उन वस्तुओं और अन्य संसाधनों को उच्च मूल्य पर निर्यात किया, जिससे उनके अपने देश के लिए बड़ी मात्रा में धन संचय हुआ।

इस सिद्धांत को अक्सर संरक्षणवादी सिद्धांत कहा जाता है क्योंकि यह मुख्य रूप से खुद को बचाने की रणनीति पर काम करता है। 21वीं सदी में भी , हम कुछ ऐसे देश पाते हैं जो अभी भी इस पद्धति पर विश्वास करते हैं और अपने निर्यात का विस्तार करते हुए सीमित आयात की अनुमति देते हैं। जापान, ताइवान, चीन आदि ऐसे देशों के सबसे अच्छे उदाहरण हैं। लगभग हर देश किसी न किसी समय संरक्षणवादी नीतियों के इस दृष्टिकोण का पालन करता है, और यह निश्चित रूप से महत्वपूर्ण है। लेकिन ऐसी संरक्षणवादी नीतियों का समर्थन करने की कीमत चुकानी पड़ती है, जैसे उच्च कर और ऐसे अन्य नुकसान।

### 2.7 एडम स्मिथ का पूर्ण लाभ का सिद्धान्त –

1776 में, अर्थशास्त्री एडम स्मिथ ने अपने प्रकाशन, ष्द वेल्थ ऑफ नेशंसष में व्यापारिकता के सिद्धांत की आलोचना की और पूर्ण लाभ के सिद्धांत को प्रतिपादित किया। स्मिथ का दृढ़ विश्वास था कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के संदर्भ में आर्थिक विकास विशेषज्ञता और श्रम विभाजन पर दृढ़ता से निर्भर करता है। विशेषज्ञता उच्च उत्पादकता सुनिश्चित करती है, जिससे देश के लोगों के जीवन स्तर में सुधार होता है। उन्होंने प्रस्ताव दिया कि छोटे बाजारों में श्रम का विभाजन विशेषज्ञता की पूर्ति नहीं करेगा, जो अन्यथा बड़े बाजारों के मामले में आसान हो जाएगा। आकार में इस वृद्धि ने अधिक परिष्कृत विशेषज्ञता को बढ़ावा दिया और इस प्रकार दुनिया भर में उत्पादकता में वृद्धि हुई।

एडम स्मिथ का सिद्धांत यह प्रस्तावित करता है कि सरकारों को देशों के बीच व्यापार को विनियमित करने का प्रयास नहीं करना चाहिए, न ही उन्हें वैश्विक व्यापार को प्रतिबंधित करना चाहिए। उनके सिद्धांत ने मुक्त व्यापार में सरकार की भागीदारी और संयम के परिणामों को भी समाहित किया। साथ ही, उनका दृढ़ विश्वास था कि यह किसी देश के निवासियों का जीवन स्तर है जो देश की संपत्ति और देश के खजाने में सोने और चांदी की मात्रा निर्धारित करता है। उनका कहना है कि व्यापार बाजार के कारकों पर निर्भर होना चाहिए न कि सरकार की इच्छा पर।

एडम स्मिथ व्यापारिक सिद्धांत के सख्त खिलाफ थे और उन्होंने तर्क दिया कि आयात को कम करना और केवल निर्यात पर ध्यान केंद्रित करना एक अच्छा विचार नहीं है और इसलिए वैश्विक व्यापार को प्रतिबंधित करना वह नहीं है जो करने की आवश्यकता है। उन्होंने प्रस्ताव दिया कि भले ही हम अपने देश के लोगों को अपना सामान खरीदने के लिए मजबूर करने में सफल हो सकते हैं, लेकिन हम विदेशियों के साथ ऐसा करने में सक्षम नहीं हो सकते हैं और इसलिए बेहतर है कि हम इसे दो–तरफा व्यापार बनाएं और केवल निर्यात पर ध्यान केंद्रित करें।

आयात पर लगाए गए प्रतिबंधों के संबंध में स्मिथ ने कहा कि भले ही व्यापक रूप से देखा जाए तो आयात पर प्रतिबंध से कुछ घरेलू उद्योगों और व्यापारियों को लाभ हो सकता है, लेकिन इससे प्रतिस्पर्धा में कमी आएगी। साथ ही, इससे बाजार में कुछ व्यापारियों और कंपनियों का एकाधिकार बढ़ेगा। दूसरा नुकसान यह है कि एकाधिकार बढ़ने से बाजार में अकुशलता और कुप्रबंधन पैदा होगा।

एडम स्मिथ ने सरकार द्वारा व्यापार को बढ़ावा देने और मुक्त व्यापार पर प्रतिबंधों को पूरी तरह से नकार दिया। उन्होंने दोहराया कि यह देश के लिए बेकार और हानिकारक है। उन्होंने प्रस्ताव दिया कि मुक्त व्यापार व्यापार के लिए सबसे अच्छी नीति है, जब तक कि अन्यथा कुछ दुर्भाग्यपूर्ण या अनिश्चित परिस्थितियाँ उत्पन्न न हों।

## 2.8 डेविड रिकार्डो का तुलनात्मक लाभ का सिद्धांत –

तुलनात्मक लाभ का सिद्धांत 19वीं शताब्दी डेविड रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित किया गया। इस सिद्धांत ने व्यापार की प्रकृति की समझ को मजबूत किया और इसके लाभों को स्वीकार किया। सिद्धांत बताता है कि यह बेहतर है कि कोई देश उन वस्तुओं का निर्यात करे जिनमें अन्य देशों की तुलना में उसका सापेक्ष लागत लाभ उसके पूर्ण लागत लाभ से अधिक हो। उदाहरण के तौर पर, मलेशिया और इंडोनेशिया को लिया जाये माना कि इंडोनेशिया, मलेशिया की तुलना में बिजली के उपकरणों और रबर उत्पादों दोनों का अधिक कुशलता से उत्पादन कर सकता है। बिजली के उपकरणों का उत्पादन मलेशिया की तुलना में दोगुना है और रबर उत्पादों के लिए यह मलेशिया की तुलना में पाँच गुना अधिक है। ऐसी स्थिति में, इंडोनेशिया के पास दोनों वस्तुओं में पूर्ण उत्पादक लाभ है लेकिन रबर उत्पादों के मामले में सापेक्ष लाभ है। ऐसी स्थिति में, यह अधिक पारस्परिक रूप से लाभकारी होगा यदि इंडोनेशिया मलेशिया को रबर उत्पाद निर्यात करे और उनसे बिजली के उपकरण आयात करे, भले ही इंडोनेशिया बिजली के उपकरणों का भी कुशलतापूर्वक उत्पादन कर सके।

रिकार्डो ने प्रस्ताव दिया कि भले ही कोई देश किसी वस्तु का कुशलता से उत्पादन कर सकता है, फिर भी वह उन्हें दूसरे देश से आयात कर सकता है यदि उसमें सापेक्ष लाभ है। निर्यात के मामले में भी यही स्थिति है, भले ही कोई देश दूसरे देशों से कुछ वस्तुओं के मामले में बहुत कुशल न हो, फिर भी वह उस उत्पाद को दूसरे देशों को निर्यात कर सकता है। यह सिद्धांत मूल रूप से ऐसे व्यापार को प्रोत्साहित करता है जो पारस्परिक रूप से लाभकारी हो।

## 2.9 हेक्शर ओह्लिन के कारक अनुपात सिद्धांत–

हेंक्श्चर–ओहलिन सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का एक आधुनिकसिद्धान्त है। अन्तर्राष्टीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अंतर्गत दो देशों के बीच होने वाले व्यापार के लिए दोनों देशों के बीच श्रेष्ठता अर्थात लागतो में अन्तर को उत्तरदायी कारक माना गया। परन्तु लागतों में अन्तर क्यों होता है इस पर प्रकाश नहीं डाला गया।

हेंक्श्चर–ओहलिन सिद्धान्त इसी अधूरे कार्य कों पूर्णता प्रदान करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धान्त को और विकसित स्वरुप प्रदान करता है। इस सिद्धान्त के माध्यम से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि दों देशों के बीचहोने वाले व्यापार का वास्तविक कारण दोनों देशों के बीच साधन सम्पन्नता अर्थात् साधन प्रचुरता तथा उपलब्धता में अन्तर होता है क्योकि इसी अन्तर के कारण ही दो देशों के बीच श्रेष्ठता अर्थात् लागतों में अन्तर की स्थिति उत्पन्न होती है। इसीलिए इस सिद्धान्त कों साधन सम्पन्नता सिद्धान्त अथवा साधन अनुपात सिद्धान्त नाम से भी जाना जाता है। सिद्धान्त की उत्पत्ति अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित एवं नवप प्रतिष्ठित सिद्धान्तों के अंतर्गत दो देशों के बीच व्यापार के प्रक्रिया के विश्लेषण में वस्तुओं की कीमतों को शामिल किया गया परन्तु साधना के कीमतो कों शामिल नहीं किया गया।

इसीलिए इन सिद्धातों अंतर्गत व्यापार का वस्तुओं की कीमतों पर उत्पन्न होने वाले प्रभाव तो स्पष्ट होते हैं परन्तु साधनों के कीमतों पर उत्पन्न होने वाले प्रभाव के बारे में कोंई जानकारी प्राप्त नही होती है।

इस सन्दर्भ में स्वीडिश अर्थशास्त्री हेंक्श्चर का यह मानना था कि दो देशों के बीच व्यापार होने से केवल वस्तुओं की कीमते ही नहीं बल्कि साधनों की कीमते भी प्रभावित हों सकती है। हेंक्श्चर ने अपने मत को 1919 में प्रकाशित एक शोध पत्र द इफेक्ट ऑफ फॉरेन ट्रेड ऑन द डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ इनकम के माध्यम से प्रस्तुत किया। हेंक्श्चर का यही मत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त की रुपरेखा को व्यक्त करता है। हेंक्श्चर के मत को उन्हीं के अनुयायी बर्टिन ओहलिन ने 1933 में एक पुस्तक इन्टर रीजनल एण्ड इन्टरनेशनल ट्रेड के माध्यम से और विकसित स्वरुप प्रदान किया।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विश्लेषण के सन्दर्भ इन दोनों अर्थशास्त्रि द्वारा विकसित किये गये सिद्धान्त को ही हेंक्श्चर– ओंहलिन सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है वस्तुतः ओहलिन ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विश्लेषण में वस्तुओं की कीमतो एवं साधनों की कीमतो के साथ–साथ इनको निर्धारित करने वाले कारको कों भी शामिल किया। ऽ ऽ इस प्रकार ओहलिन ने एक सामान्य सन्तुलन ना होगा। हेंक्श्चर–ओहलिन सिद्धान्त की मान्यताओं को आगे स्पष्ट किया जा रहा हैः– हेंक्श्चर–ओहलिन सिद्धान्त की मान्यताओं ऽ व्यापार की प्रक्रिया में दों देश शामिल है तथा दोनों देश दों वस्तुओं का दों साधनों का प्रयोग करके उत्पादन करते है और इन्ही दो वस्तुओं का उपभोग करते हैं। इसी लिए इस सिद्धान्त को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त का 2ग2ग2 प्रारुप कहा जाता है। ऽ किसी एक वस्तु का उत्पादन फलन दोनों देशों में एक समान है। अर्थात् किसी एक वस्तु की उत्पादन तकनीकी दोनों देशों में एक समान है । इसका अभिप्राय यह है कि यदि एक वस्तु का उत्पादन किसी एक देश में पुंजी–गहन तकनीक के आधार पर होता है तो दूसरे देश में भी उस वस्तु का उत्पादन पूंजी–गहन तकनीक के आधार पर ही होता है। ठीक इसी प्रकार यदि एक वस्तु का उत्पादन किसी एक देश में श्रम– गहन तकनीक के आधार पर होता है तो दसरे देश में भी उस वस्तु का उत्पादन श्रम–गहन तकनीक के आधार पर ही होता है। किसी एक देश में वस्तुओं का उत्पादन फलन भिन्न होता है। इसका अभिप्राय यह है कि यदि किसी एक देश में एक वस्तु का उत्पादन पुंजी –गहन तकनीक के आधार पर होता है तो दूसरे वस्तु का उत्पादन श्रम– गहन तकनीक के आधार पर होता है । ऽ दोनों देशों में उत्पादन की प्रक्रीया स्थिर पैमाने के प्रतिफल के नियम के अनुसार हो रहा है। दोनों देशों में किसी एक वस्तु के लिए मागं की दशाएं समान है। ऽ वस्तु बाजार तथा साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति विद्यमान है। दोनों देशों में पूर्ण रोजगार की स्थिति है। ऽ एक देश के भीतर तो साधन पूर्णतया गतिशील है परन्तु दो देंशों के बीच साधन अगतिशील हैं। सिद्धान्त की मान्यताओं के निहितार्थ ऽ सिद्धान्त की मान्यताओं के आधार पर ही सिद्धान्त के प्रमुख निष्कर्ष दो देशों के बीच होने वाले व्यापार का वास्तविक कारण दोनों देशों के बीच साधन सम्पन्नता अर्थात् साधन प्रचुरता में अन्तर होता है जिसको निम्नलिख्ति रुप में स्पष्ट किया जा सकता है दोनों देशों में किसी एक वस्तु के उत्पादन तकनीकी एवं मागं की दशाएं समान होने की मान्यता के कारण वस्तु के कीमत निर्धारण में केवल साधन सम्पन्नता कारक ही प्रभावी हो जाता है। जिस देश में जो साधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होंगी उस साधन की कीमत कम होंगी और जो साधन सीमित मात्रा में उपलब्ध होगी उस साधन की कीमत अधिक होंगी। इसका अभिप्राय यह होगा कि एक पूॅजी प्रचुर देश में पूंजी सस्ती होगी और श्रम महगा होगा। इसी प्रकार एक श्रम प्रचुर देंश में श्रम सस्ता होंगा और पूंजी महंगी होंगी। ऽ साधनों कीमतो में उपरोक्त अन्तर होने के कारण एक पूंजी प्रचुर देश में वे वस्तुएं सस्ती होंगी जिनके उत्पादन में पूंजी का गहनता से प्रयोग होता है तथा वे वस्तुएँ महंगी होंगी जिनके उत्पादन में श्रम का गहनता से प्रयोग

होता है । ऽ ठीक इसी प्रकार एक श्रम प्रचुर देशों में वे वस्तुएं सस्ती होंगी जिनके उत्पादन में श्रम का गहनता से प्रयोग होता है तथा वे वस्तुएं महंगी होंगी जिनके उत्पादन में पूंजी का गहनता से प्रयोग होता है ।

एडम स्मिथ और रिकार्डो द्वारा स्थापित सिद्धांत देशों के लिए पर्याप्त रूप से कुशल नहीं थे, क्योंकि वे देशों को यह निर्धारित करने में मदद नहीं कर सकते थे कि कौन से उत्पाद देश के लिए लाभकारी होंगे। निरपेक्ष लाभ और तुलनात्मक लाभ के सिद्धांत ने इस विचार का समर्थन किया कि कैसे एक मुक्त और खुला बाजार देशों को यह निर्धारित करने में मदद करेगा कि देश द्वारा कौन से उत्पाद कुशलतापूर्वक उत्पादित किए जा सकते हैं। हालाँकि, हेक्शर और ओहलिन द्वारा प्रस्तावित सिद्धांत तुलनात्मक लाभ की अवधारणा से संबंधित था जिसे कोई देश उन उत्पादों का उत्पादन करके प्राप्त कर सकता है जो देश में प्रचुर मात्रा में मौजूद कारकों का उपयोग करते हैं। उनके सिद्धांत का मुख्य आधार देश के उत्पादन कारकों जैसे भूमि, श्रम, पूंजी आदि पर है। उन्होंने प्रस्तावित किया कि संसाधन के किसी भी कारक की अनुमानित लागत सीधे उसकी मांग और आपूर्ति से संबंधित है। मांग की तुलना में प्रचुर मात्रा में मौजूद कारक सस्ती कीमत पर उपलब्ध होंगे, और जिन कारकों की बहुत अधिक मांग है और उपलब्धता कम है वे महंगे होंगे। उन्होंने प्रस्तावित किया कि देश उन वस्तुओं का उत्पादन करते हैं और उनका निर्यात करते हैं जिनके उत्पादन में आवश्यक संसाधन बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध हैं। इसके विपरीत, देश उन वस्तुओं का आयात करेंगे जिनके कच्चे माल की आपूर्ति उनके अपने देश में उस देश की तुलना में कम है जहां से वे आयात कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, भारत में मजदूरों की संख्या बहुत ज्यादा है, इसलिए विदेशी देश भारत में ऐसे उद्योग स्थापित करते हैं जो मजदूरों पर आधारित होते हैं। ऐसे उद्योगों के उदाहरण हैं परिधान और कपड़ा उद्योग।

## 2.10 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त के आधुनिक सिद्धांत

आधुनिक या फर्म–आधारित सिद्धांतों का उदय द्वितीय विश्व युद्ध की अवधि के बाद हुआ। इन सिद्धांतों के संस्थापक मुख्य रूप से बिजनेस स्कूलों के प्रोफेसर थे, न कि अर्थशास्त्री। ये सिद्धांत मुख्य रूप से बहुराष्ट्रीय कंपनियों की बढ़ती लोकप्रियता के बाद सामने आए। देश आधारित शास्त्रीय सिद्धांत मुख्य रूप से देश पर केंद्रित थे, हालांकि, आधुनिक या फर्म–आधारित सिद्धांत कंपनियों की जरूरतों को संबोधित करते हैं। विभिन्न बिजनेस स्कूल के प्रोफेसरों द्वारा प्रतिपादित आधुनिक या फर्म आधारित सिद्धांत निम्नलिखित हैंरू

## 2.11 स्टीफन लैंडर का समानता सिद्धांत–

स्वीडिश अर्थशास्त्री स्टीफन लिंडर इस सिद्धांत के संस्थापक थे। इस सिद्धांत ने वर्ष 1961 में उद्योग व्यापार की अवधारणा को समझाया । लिंडर ने सुझाव दिया कि जो देश विकास के समान चरण में हैं, उनकी प्राथमिकताएँ संभवतः समान होंगी। लिंडर द्वारा प्रस्तावित सुझाव यह था कि कंपनियाँ पहले अपने घरेलू उपभोग के लिए सामान बनाती हैं और बाद में उत्पादन का विस्तार करती हैं, जिससे उन उत्पादों को अन्य देशों में निर्यात किया जाता है जहाँ ग्राहकों की प्राथमिकताएँ समान होती हैं। लिंडर ने सुझाव दिया कि अधिकांश परिस्थितियों में निर्मित वस्तुओं का अधिकांश व्यापार समान प्रति व्यक्ति आय वाले देशों के बीच होगा और इस प्रकार इन उद्योग व्यापार उनके बीच होगा। यह सिद्धांत आम तौर पर व्यापार को समझने में अधिक लागू होता है जहाँ खरीदार मुख्य रूप से ब्रांड नाम और उत्पाद की प्रतिष्ठा के आधार पर निर्णय लेते हैं।

## 2.12 रेमंड वर्नोन का उत्पाद जीवन चक्र सिद्धांत–

इस सिद्धांत को हार्वर्ड बिजनेस स्कूल के एक बिजनेस प्रोफेसर रेमंड वर्नोन ने 1960 के दशक में प्रतिपादित किया था। मार्केटिंग के क्षेत्र में उत्पन्न हुए इस सिद्धांत ने प्रस्तावित किया कि एक उत्पाद जीवन चक्र के तीन चरण होते हैं, अर्थात् नया उत्पाद, परिपक्व उत्पाद और मानकीकृत उत्पाद। इस सिद्धांत में यह अनुमान लगाया गया है कि किसी नए उत्पाद का उत्पादन पूरी तरह से उस देश में होगा जहाँ उसका आविष्कार किया गया था। यह सिद्धांत, काफी हद तक, विनिर्माण में संयुक्त राज्य अमेरिका के अचानक उदय और प्रभुत्व को समझाने में मदद करता है। इस सिद्धांत ने कंप्यूटर के चरणों को भी समझाया, 1970 के दशक में नए उत्पाद चरण से लेकर 1980 और 1990 के दशक में

अपने परिपक्व चरण में प्रवेश करने तक आज के परिदृश्य में, कंप्यूटर एक मानकीकृत चरण में हैं और ज्यादातर एशिया के कम लागत वाले देशों में निर्मित होते हैं। हालाँकि, यह सिद्धांत वर्तमान व्यापार पैटर्न की व्याख्या करने में सक्षम नहीं है जहाँ दुनिया के लगभग सभी हिस्सों में उत्पादों का आविष्कार और निर्माण किया जा रहा है।

## 2.13 पॉल क्रुगमैन के वैश्विकरण नीति प्रतिद्वांदिता सिद्धांत–

पॉल क्रुगमैन और केल्विन लैंकेस्टर इस सिद्धांत के संस्थापक थे। यह सिद्धांत 1980 के दशक के आसपास उभरा। यह सिद्धांत मुख्य रूप से बहुराष्ट्रीय कंपनियों और उनकी रणनीतियों और उनके उद्योग में अन्य समान वैश्विक फर्मों पर तुलनात्मक लाभ प्राप्त करने के प्रयासों पर केंद्रित था। यह सिद्धांत इस तथ्य को स्वीकार करता है कि फर्म वैश्विक प्रतिस्पर्धा का सामना करेंगी और अपनी श्रेष्ठता साबित करेंगी। उन्हें निश्चित रूप से एक दूसरे पर प्रतिस्पर्धात्मक लाभ विकसित करना होगा। जिन तरीकों से फर्म प्रतिस्पर्धात्मक लाभ प्राप्त कर सकती हैं, उन्हें उस विशेष उद्योग के लिए प्रवेश में बाधाएँ कहा जाता है। ये बाधाएँ मूल रूप से वे बाधाएँ हैं जिनका सामना एक फर्म को वैश्विक स्तर पर तब करना पड़ता है जब वे बाजार में प्रवेश करती हैं। कंपनियाँ और फर्म जिन बाधाओं को दूर करने का प्रयास कर सकती हैं, वे हैं

- मुख्य रूप से अनुसंधान और विकास,
- बौद्धिक संपदा अधिकारों का स्वामित्व,
- पैमाने की अर्थव्यवस्थाएं,
- अद्वितीय व्यावसायिक प्रक्रियाएँ या विधियाँ,
- उद्योग में व्यापक अनुभव, और
- संसाधनों पर नियंत्रण या कच्चे माल तक अनुकूल पहुंच।

यह सिद्धांत 1990 के दशक में राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मक लाभ की अवधारणा सिद्धांत का प्रस्ताव है कि किसी राष्ट्र की प्रतिस्पर्धात्मकता मुख्य रूप से उद्योग की नवाचारों और उन्नयन के साथ आने की क्षमता पर निर्भर करती है। इस सिद्धांत ने कुछ देशों की दूसरों की तुलना में अत्यधिक प्रतिस्पर्धात्मकता के पीछे के कारण को समझाने का प्रयास किया। इस सिद्धांत में प्रस्तावित मुख्य निर्धारक स्थानीय बाजार संसाधन और क्षमताएं, स्थानीय बाजार मांग की स्थिति, स्थानीय आपूर्तिकर्ता और पूरक उद्योग और स्थानीय फर्म विशेषताएं थीं। सिद्धांत ने उद्योग के प्रतिस्पर्धात्मक लाभ के निर्माण में सरकार की महत्वपूर्ण भूमिका का भी उल्लेख किया। वर्षों से,अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से संबंधित सिद्धांत गहन शोध और बहस का विषय रहे हैं। बढ़ते अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के अपने फायदे और नुकसान हैं। विभिन्न सिद्धांतों के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रणाली के विश्लेषण ने बेहतर समझ के लिए एक व्यवस्थित रूपरेखा को सक्षम किया है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार किसी देश के आर्थिक विकास में योगदान देता है, जिससे उसके लोगों के जीवन स्तर में वृद्धि होती है, रोजगार के अवसर पैदा होते हैं, उपभोक्ताओं के लिए विकल्पों की अधिक विविधता होती है, आदि। व्यापार सिद्धांतों के विकास ने मुक्त व्यापार को प्रतिबंधित करने के दृष्टिकोण से एक बड़ा बदलाव देखा है जैसा कि व्यापारिकता के सिद्धांत में कहा गया है, विभिन्न आधुनिक सिद्धांतों ने बढ़ते लाभों के साथ सुचारू अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की सुविधा के लिए बेहतर समझ प्रदान की है।

## 2.14 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत का महत्व–

इन सिद्धांतों का अध्ययन व्यापार करते समय ध्यान में रखने योग्य कमियों और कमियों, क्या करें और क्या न करें, को समझाकर सुचारू और कुशल व्यापार को बढ़ावा देता है। ऐसे महत्वपूर्ण विषय पर अस्पष्ट या गुमराह दृष्टिकोण किसी देश की वित्तीय स्थिति और दुनिया में उसकी स्थिति को प्रभावित

कर सकता है। इसलिए, पूरे देश के लाभ के लिए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से संबंधित सिद्धांतों को ठीक से समझना महत्वपूर्ण है।

**वणिकवाद का सिद्धांत लोकप्रियता कम होने का कारण–**

वणिकवाद का सिद्धांत लोकप्रियता कम होने का कारण बहुत सरल है क्योंकि हम किसी देश को अपने निर्यात किए गए उत्पादों को खरीदने के लिए मजबूर नहीं कर सकते। साथ ही, सापेक्ष लाभ के अभाव में कोई भी देश ऐसे देशों से उत्पाद स्वीकार नहीं करेगा जो खुद मुक्त व्यापार की अवधारणा को स्वीकार नहीं कर रहे हैं।

**लोकप्रिय अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत–**

पिछले कुछ वर्षों में व्यापार के बदलते पैटर्न को समझने में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत एक बड़ी मदद के रूप में उभरे हैं। भले ही हर सिद्धांत हर देश और हर स्थिति पर लागू न हो, फिर भी उनमें से हर एक का अपना महत्व है। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि ऐसा कोई विशेष सिद्धांत नहीं है जो अन्य सभी सिद्धांतों से सबसे लोकप्रिय था। इसके बजाय, हर एक सिद्धांत ने किसी न किसी तरह से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की रणनीति को बेहतर बनाने में मदद की है।

**अंतर्राष्ट्रीय व्यापार –**

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को समझाने के लिए बस अलग–अलग सिद्धांत हैं। व्यापार दो लोगों या संस्थाओं के बीच वस्तुओं और सेवाओं के आदान–प्रदान की अवधारणा है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार दो अलग–अलग देशों के लोगों या संस्थाओं के बीच इस आदान–प्रदान की अवधारणा है।

लोग या संस्थाएँ व्यापार इसलिए करती हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि विनिमय से उन्हें लाभ होता है। उन्हें वस्तुओं या सेवाओं की आवश्यकता हो सकती है या वे चाहते हैं। जबकि सतह पर, यह बहुत सरल लगता है, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में बहुत सारे सिद्धांत, नीति और व्यावसायिक रणनीति शामिल होती है।

इस खंड में, आप पिछली शताब्दी में विकसित हुए विभिन्न व्यापार सिद्धांतों के बारे में जानेंगे और जो आज सबसे अधिक प्रासंगिक हैं। इसके अतिरिक्त, आप उन कारकों का पता लगाएंगे जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रभावित करते हैं और कैसे व्यवसाय और सरकारें अपने हितों को बढ़ावा देने के लिए इन कारकों का अपने–अपने लाभ के लिए उपयोग करती हैं।

**अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के विभिन्न सिद्धांत क्या हैं?**

"करीब 5,200 साल पहले, दक्षिणी मेसोपोटामिया में उरुक, संभवतः दुनिया का पहला शहर था, जिसकी छह मील की दीवार के भीतर 50,000 से ज़्यादा लोग रहते थे। उरुक, जिसकी कृषि को परिष्कृत सिंचाई नहरों ने समृद्ध बनाया, बिचौलियों, व्यापार मध्यस्थों के पहले वर्ग का घर था... एक सहकारी व्यापार नेटवर्क... ने एक ऐसा पैटर्न तय किया जो अगले 6,000 सालों तक कायम रहेगा

हाल की शताब्दियों में, अर्थशास्त्रियों ने इन व्यापार पैटर्न को समझने और समझाने की कोशिश पर ध्यान केंद्रित किया है। आधुनिक वैश्विक व्यापार किस तरह विकसित हुआ है, इसे बेहतर ढंग से समझने के लिए, यह समझना महत्वपूर्ण है कि देश ऐतिहासिक रूप से एक दूसरे के साथ कैसे व्यापार करते थे। समय के साथ, अर्थशास्त्रियों ने वैश्विक व्यापार के तंत्र को समझाने के लिए सिद्धांत विकसित किए हैं। मुख्य ऐतिहासिक सिद्धांतों को शास्त्रीय कहा जाता है और ये किसी देश के दृष्टिकोण से या देश–आधारित होते हैं। बीसवीं सदी के मध्य तक, सिद्धांत देश के बजाय फर्म के दृष्टिकोण से व्यापार की व्याख्या करने के लिए बदलने लगे। इन सिद्धांतों को आधुनिक कहा जाता है और ये फर्म–आधारित या कंपनी–आधारित होते हैं। इन दोनों श्रेणियों, शास्त्रीय और आधुनिक, में कई अंतर्राष्ट्रीय सिद्धांत शामिल हैं।

## शास्त्रीय या देश–आधारित व्यापार सिद्धांत–

### वणिकवाद–

सोलहवीं शताब्दी में विकसित, मर्कैंटिलिज्म आर्थिक सिद्धांत विकसित करने के शुरुआती प्रयासों में से एक था। इस सिद्धांत ने कहा कि किसी देश की संपत्ति उसके सोने और चांदी के भंडार की मात्रा से निर्धारित होती है। अपने सरलतम अर्थ में, मर्कैंटिलिस्ट मानते थे कि किसी देश को निर्यात को बढ़ावा देकर और आयात को हतोत्साहित करके अपने सोने और चांदी के भंडार को बढ़ाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, यदि दूसरे देशों के लोग आपसे (निर्यात) जितना खरीदते हैं, उससे ज्यादा आपको बेचते हैं (आयात), तो उन्हें आपको सोने और चांदी में अंतर का भुगतान करना होगा। प्रत्येक देश का उद्देश्य व्यापार अधिशेष , या ऐसी स्थिति प्राप्त करना था, जहाँ निर्यात का मूल्य आयात के मूल्य से अधिक हो, और व्यापार घाटे , या ऐसी स्थिति से बचना था, जहाँ आयात का मूल्य निर्यात के मूल्य से अधिक हो।

1500 के दशक से लेकर 1800 के दशक के अंत तक के विश्व इतिहास पर करीब से नजर डालने से यह समझने में मदद मिलती है कि व्यापारिकता क्यों पनपी। 1500 के दशक में नए राष्ट्र–राज्यों का उदय हुआ, जिनके शासक बड़ी सेनाएँ और राष्ट्रीय संस्थाएँ बनाकर अपने राष्ट्रों को मजबूत बनाना चाहते थे। निर्यात और व्यापार बढ़ाकर, ये शासक अपने देशों के लिए ज्यादा सोना और धन इकट्ठा करने में सक्षम थे। इनमें से कई नए राष्ट्रों ने निर्यात को बढ़ावा देने का एक तरीका आयात पर प्रतिबंध लगाना था। इस रणनीति को संरक्षणवाद कहा जाता है और आज भी इसका इस्तेमाल किया जाता है।

राष्ट्रों ने अधिक व्यापार को नियंत्रित करने और अधिक धन इकट्ठा करने के प्रयास में दुनिया भर में अपने उपनिवेशों का उपयोग करके अपनी संपत्ति का विस्तार किया। ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य अधिक सफल उदाहरणों में से एक थाय इसने वर्तमान अमेरिका और भारत से लेकर कई स्थानों से कच्चे माल का उपयोग करके अपनी संपत्ति बढ़ाने की कोशिश की। फ्रांस, नीदरलैंड, पुर्तगाल और स्पेन भी बड़े औपनिवेशिक साम्राज्य बनाने में सफल रहे, जिन्होंने अपने शासक देशों के लिए व्यापक धन उत्पन्न किया।

यद्यपि व्यापारिकता सबसे पुराने व्यापार सिद्धांतों में से एक है, फिर भी यह आधुनिक सोच का हिस्सा बना हुआ है। जापान, चीन, सिंगापुर, ताइवान और यहाँ तक कि जर्मनी जैसे देश अभी भी निर्यात का पक्ष लेते हैं और नव–व्यापारवाद के एक रूप के माध्यम से आयात को हतोत्साहित करते हैं जिसमें देश संरक्षणवादी नीतियों और प्रतिबंधों और घरेलू–उद्योग सब्सिडी के संयोजन को बढ़ावा देते हैं। लगभग हर देश ने, किसी न किसी समय, अपनी अर्थव्यवस्था में प्रमुख उद्योगों की रक्षा के लिए किसी न किसी प्रकार की संरक्षणवादी नीति को लागू किया है। जबकि निर्यात–उन्मुख कंपनियाँ आमतौर पर संरक्षणवादी नीतियों का समर्थन करती हैं जो उनके उद्योगों या फर्मों के पक्ष में होती हैं, अन्य कंपनियों और उपभोक्ताओं को संरक्षणवाद से नुकसान होता है। करदाता उच्च करों के रूप में चुनिंदा निर्यातों की सरकारी सब्सिडी के लिए भुगतान करते हैं। आयात प्रतिबंधों से उपभोक्ताओं के लिए उच्च कीमतें होती हैं, जो विदेशी निर्मित वस्तुओं या सेवाओं के लिए अधिक भुगतान करते हैं। मुक्त–व्यापार के समर्थक इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि कैसे मुक्त व्यापार वैश्विक समुदाय के सभी सदस्यों को लाभ पहुँचाता है, जबकि व्यापारिकता की संरक्षणवादी नीतियाँ केवल चुनिंदा उद्योगों को लाभ पहुँचाती हैं, जो उद्योग के भीतर और बाहर उपभोक्ताओं और अन्य कंपनियों दोनों की कीमत पर होती हैं।

### पूर्ण लाभ

1776 में, एडम स्मिथ ने द वेल्थ ऑफ नेशंस में उस समय के प्रमुख व्यापारिक सिद्धांत पर सवाल उठाया। एडम स्मिथ , एन इंक्वायरी इनटू द नेचर एंड कॉजेज ऑफ द वेल्थ ऑफ नेशंस (लंदनरू डब्ल्यू. स्ट्रैहान एंड टी. कैडेल, 1776)। हाल के संस्करणों को विद्वानों और अर्थशास्त्रियों द्वारा संपादित किया गया है। स्मिथ ने निरपेक्ष लाभ नामक एक नया व्यापार सिद्धांत पेश किया , जो एक देश की दूसरे देश की तुलना में अधिक कुशलता से एक अच्छा उत्पादन करने की क्षमता पर केंद्रित था। स्मिथ ने तर्क दिया कि देशों के बीच व्यापार को सरकारी नीति या हस्तक्षेप द्वारा विनियमित या प्रतिबंधित नहीं किया जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि व्यापार को बाजार की शक्तियों के अनुसार स्वाभाविक रूप से प्रवाहित होना चाहिए। एक काल्पनिक दो देश की दुनिया में, यदि देश । देश ठ की तुलना में कोई

अच्छा सस्ता या तेज (या दोनों) उत्पादन कर सकता है, उत्पादन भी अधिक कुशल हो जाएगा, क्योंकि विशेषज्ञता बढ़ाने के लिए तीव्र और बेहतर उत्पादन पद्धतियां बनाने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा।

स्मिथ के सिद्धांत का तर्क था कि दक्षता में वृद्धि से दोनों देशों के लोगों को लाभ होगा और व्यापार को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। उनके सिद्धांत में कहा गया था कि किसी देश की संपत्ति का आकलन इस बात से नहीं किया जाना चाहिए कि उसके पास कितना सोना और चांदी है, बल्कि उसके लोगों के जीवन स्तर से किया जाना चाहिए।

**तुलनात्मक लाभ–**

पूर्ण लाभ सिद्धांत के लिए चुनौती यह थी कि कुछ देश दोनों वस्तुओं के उत्पादन में बेहतर हो सकते हैं और इसलिए, कई क्षेत्रों में लाभ उठा सकते हैं। इसके विपरीत, किसी अन्य देश के पास कोई उपयोगी पूर्ण लाभ नहीं हो सकता है। इस चुनौती का जवाब देने के लिए, एक अंग्रेजी अर्थशास्त्री डेविड रिकार्डो ने 1817 में तुलनात्मक लाभ का सिद्धांत पेश किया। रिकार्डो ने तर्क दिया कि भले ही देश । के पास दोनों उत्पादों के उत्पादन में पूर्ण लाभ हो , फिर भी दो देशों के बीच विशेषज्ञता और व्यापार हो सकता है।

तुलनात्मक लाभ तब होता है जब कोई देश किसी उत्पाद को दूसरे देश की तुलना में अधिक कुशलता से उत्पादित नहीं कर सकता हैय हालाँकि, वह उस उत्पाद को अन्य वस्तुओं की तुलना में बेहतर और अधिक कुशलता से उत्पादित कर सकता है । इन दोनों सिद्धांतों के बीच का अंतर सूक्ष्म है। तुलनात्मक लाभ सापेक्ष उत्पादकता अंतर पर ध्यान केंद्रित करता है, जबकि पूर्ण लाभ पूर्ण उत्पादकता को देखता है।

सिद्धांतों के बीच सूक्ष्म अंतर को स्पष्ट करने के लिए एक सरलीकृत काल्पनिक उदाहरण देखें। मिरांडा एक वॉल स्ट्रीट वकील है जो अपनी कानूनी सेवाओं के लिए प्रति घंटे +500 का शुल्क लेती है। यह पता चला है कि मिरांडा अपने कार्यालय में प्रशासनिक सहायकों की तुलना में भी तेजी से टाइप कर सकती है, जिन्हें प्रति घंटे +40 का भुगतान किया जाता है। भले ही मिरांडा को दोनों कौशल सेटों में स्पष्ट रूप से पूर्ण लाभ है, लेकिन क्या उसे दोनों काम करने चाहिए? नहीं। मिरांडा कानूनी काम करने के बजाय टाइप करने का फैसला करती है, तो हर घंटे वह +460 की आय छोड़ देगी। उसकी उत्पादकता और आय सबसे अधिक होगी यदि वह उच्च–भुगतान वाली कानूनी सेवाओं में विशेषज्ञता हासिल करती है और सबसे योग्य प्रशासनिक सहायक को काम पर रखती है, जो तेजी से टाइप कर सकता है, हालांकि मिरांडा की तुलना में थोड़ा धीमा है। मिरांडा और उसके सहायक दोनों को अपने–अपने कार्यों पर ध्यान केंद्रित करने से, एक टीम के रूप में उनकी समग्र उत्पादकता अधिक होती है। यह तुलनात्मक लाभ है। एक व्यक्ति या देश अपेक्षाकृत बेहतर तरीके से वह करने में विशेषज्ञता हासिल करेगा जो वह करता है। वास्तव में, विश्व अर्थव्यवस्था अधिक जटिल है और इसमें दो से अधिक देश और उत्पाद शामिल हैं। व्यापार में बाधाएँ मौजूद हो सकती हैं, और माल का परिवहन, भंडारण और वितरण किया जाना चाहिए। हालाँकि, यह सरल उदाहरण तुलनात्मक लाभ सिद्धांत के आधार को प्रदर्शित करता है।

**हेक्शर–ओहलिन सिद्धांत (कारक अनुपात सिद्धांत)–**

स्मिथ और रिकार्डो के सिद्धांतों ने देशों को यह निर्धारित करने में मदद नहीं की कि कौन से उत्पाद किसी देश को लाभ देंगे। दोनों सिद्धांतों ने माना कि मुक्त और खुले बाजार देशों और उत्पादकों को यह निर्धारित करने में मदद करेंगे कि वे किस सामान का अधिक कुशलता से उत्पादन कर सकते हैं। 1900 के दशक की शुरुआत में, दो स्वीडिश अर्थशास्त्रियों, एली हेक्सचर और बर्टिल ओहलिन ने अपना ध्यान इस बात पर केंद्रित किया कि कैसे कोई देश उन उत्पादों का उत्पादन करके तुलनात्मक लाभ प्राप्त कर सकता है जो देश में प्रचुर मात्रा में मौजूद कारकों का उपयोग करते हैं। उनका सिद्धांत देश के उत्पादन कारकों–भूमि, श्रम और पूंजी पर आधारित है, जो संयंत्रों और उपकरणों में निवेश के लिए धन प्रदान करते हैं। उन्होंने निर्धारित किया कि किसी भी कारक या संसाधन की लागत आपूर्ति और मांग का एक कार्य है। मांग के सापेक्ष अधिक आपूर्ति वाले कारक सस्ते होंगेय आपूर्ति के सापेक्ष अधिक मांग वाले कारक अधिक महंगे होंगे। उनके सिद्धांत, जिसे कारक अनुपात सिद्धांत भी कहा जाता है , ने

कहा कि देश उन वस्तुओं का उत्पादन और निर्यात करेंगे जिनके लिए संसाधनों या कारकों की आवश्यकता होती है जो बहुत अधिक आपूर्ति में होते हैं और इसलिए, सस्ते उत्पादन कारक होते हैं। इसके विपरीत, देश उन वस्तुओं का आयात करेंगे जिनके लिए संसाधनों की आवश्यकता होती है जिनकी आपूर्ति कम होती है, लेकिन मांग अधिक होती है।

उदाहरण के लिए, चीन और भारत में सस्ते और बड़े पैमाने पर श्रम उपलब्ध है। इसलिए ये देश कपड़ा और परिधान जैसे श्रम–प्रधान उद्योगों के लिए सबसे उपयुक्त स्थान बन गए हैं।

**2.15 लियोन्टीफ विरोधाभास–**

1950 के दशक की शुरुआत में, रूसी मूल के अमेरिकी अर्थशास्त्री वासिली डब्ल्यू. लियोन्टीफ ने अमेरिकी अर्थव्यवस्था का बारीकी से अध्ययन किया और पाया कि संयुक्त राज्य अमेरिका में पूंजी प्रचुर मात्रा में थी और इसलिए, उसे अधिक पूंजी–गहन वस्तुओं का निर्यात करना चाहिए। हालाँकि, वास्तविक डेटा का उपयोग करके उनके शोध ने इसके विपरीत दिखायारू संयुक्त राज्य अमेरिका अधिक पूंजी–गहन वस्तुओं का आयात कर रहा था। कारक अनुपात सिद्धांत के अनुसार, संयुक्त राज्य अमेरिका को श्रम–गहन वस्तुओं का आयात करना चाहिए था, लेकिन इसके बजाय वह वास्तव में उनका निर्यात कर रहा था। उनके विश्लेषण को लियोन्टीफ विरोधाभास के रूप में जाना जाता है क्योंकि यह कारक अनुपात सिद्धांत द्वारा अपेक्षित के विपरीत था। बाद के वर्षों में, अर्थशास्त्रियों ने ऐतिहासिक रूप से उस समय पर ध्यान दिया है, संयुक्त राज्य अमेरिका में श्रम स्थिर आपूर्ति में उपलब्ध था और कई अन्य देशों की तुलना में अधिक उत्पादक थाय इसलिए श्रम–गहन वस्तुओं का निर्यात करना समझ में आता था। दशकों से, कई अर्थशास्त्रियों ने विरोधाभास के प्रभाव को समझाने और कम करने के लिए सिद्धांतों और डेटा का उपयोग किया है। हालाँकि, जो स्पष्ट है वह यह है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार जटिल है और कई और अक्सर बदलते कारकों से प्रभावित होता है। व्यापार को किसी एक सिद्धांत द्वारा स्पष्ट रूप से नहीं समझाया जा सकता है, और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांतों के बारे में हमारी समझ निरंतर विकसित होती रहती है।

**आधुनिक या फर्म–आधारित व्यापार सिद्धांत–**

शास्त्रीय, देश–आधारित व्यापार सिद्धांतों के विपरीत, आधुनिक, फर्म–आधारित सिद्धांतों की श्रेणी द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उभरी और इसे बड़े पैमाने पर बिजनेस स्कूल के प्रोफेसरों द्वारा विकसित किया गया, न कि अर्थशास्त्रियों द्वारा। फर्म–आधारित सिद्धांत बहुराष्ट्रीय कंपनी (डछब्) के विकास के साथ विकसित हुए। देश–आधारित सिद्धांत डछब् या इंट्राइंडस्ट्री ट्रेड के विस्तार को पर्याप्त रूप से संबोधित नहीं कर सके , जो एक ही उद्योग में उत्पादित वस्तुओं के दो देशों के बीच व्यापार को संदर्भित करता है। उदाहरण के लिए, जापान जर्मनी को टोयोटा वाहन निर्यात करता है और जर्मनी से मर्सिडीज–बेंज ऑटोमोबाइल आयात करता है।

देश–आधारित सिद्धांतों के विपरीत, फर्म–आधारित सिद्धांत व्यापार प्रवाह की समझ में ब्रांड और ग्राहक वफादारी, प्रौद्योगिकी और गुणवत्ता सहित अन्य उत्पाद और सेवा कारकों को शामिल करते हैं।

**देश समानता सिद्धांत–**

स्वीडिश अर्थशास्त्री स्टीफन लिंडर ने 1961 में देश समानता सिद्धांत विकसित किया , क्योंकि उन्होंने अंतर–उद्योग व्यापार की अवधारणा को समझाने की कोशिश की थी। लिंडर के सिद्धांत ने प्रस्तावित किया कि विकास के समान या समान चरण में रहने वाले देशों में उपभोक्ताओं की प्राथमिकताएँ समान होंगी। इस फर्म–आधारित सिद्धांत में, लिंडर ने सुझाव दिया कि कंपनियाँ पहले घरेलू खपत के लिए उत्पादन करें। जब वे निर्यात की संभावना तलाशते हैं, तो कंपनियाँ अक्सर पाती हैं कि ग्राहक प्राथमिकताओं के मामले में उनके घरेलू बाजार के समान दिखने वाले बाजार सफलता की सबसे अधिक संभावना प्रदान करते हैं। लिंडर के देश समानता सिद्धांत में कहा गया है कि निर्मित वस्तुओं का अधिकांश व्यापार समान प्रति व्यक्ति आय वाले देशों के बीच होगा, और अंतर–उद्योग व्यापार आम होगा। यह सिद्धांत अक्सर उन वस्तुओं के व्यापार को समझने में सबसे उपयोगी होता है जहाँ ब्रांड नाम और उत्पाद प्रतिष्ठा खरीदारों के निर्णय लेने और खरीद प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण कारक होते हैं।

### उत्पाद जीवन चक्र सिद्धांत–

हार्वर्ड बिजनेस स्कूल के प्रोफेसर रेमंड वर्नन ने 1960 के दशक में उत्पाद जीवन चक्र सिद्धांत विकसित किया था। मार्केटिंग के क्षेत्र में उत्पन्न इस सिद्धांत ने कहा कि उत्पाद जीवन चक्र के तीन अलग–अलग चरण होते हैंरू (1) नया उत्पाद, (2) परिपक्व उत्पाद, और (3) मानकीकृत उत्पाद। सिद्धांत ने माना कि नए उत्पाद का उत्पादन पूरी तरह से उसके नवाचार के मूल देश में होगा। 1960 के दशक में यह संयुक्त राज्य अमेरिका की विनिर्माण सफलता को समझाने के लिए एक उपयोगी सिद्धांत था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद कई उद्योगों में अमेरिकी विनिर्माण वैश्विक रूप से प्रमुख उत्पादक था।

इसका उपयोग यह बताने के लिए भी किया गया है कि पर्सनल कंप्यूटर (पीसी) अपने उत्पाद चक्र से कैसे गुजरा। 1970 के दशक में पीसी एक नया उत्पाद था और 1980 और 1990 के दशक के दौरान एक परिपक्व उत्पाद के रूप में विकसित हुआ। आज, पीसी मानकीकृत उत्पाद चरण में है, और अधिकांश विनिर्माण और उत्पादन प्रक्रिया एशिया और मैक्सिको के कम लागत वाले देशों में की जाती है।

उत्पाद जीवन चक्र सिद्धांत वर्तमान व्यापार पैटर्न को समझाने में कम सक्षम रहा है, जहाँ नवाचार और विनिर्माण दुनिया भर में होते हैं। उदाहरण के लिए, वैश्विक कंपनियाँ विकासशील बाजारों में भी अनुसंधान और विकास करती हैं जहाँ अत्यधिक कुशल श्रम और सुविधाएँ आमतौर पर सस्ती होती हैं। हालाँकि अनुसंधान और विकास आमतौर पर पहले या नए उत्पाद चरण से जुड़ा होता है और इसलिए इसे अपने देश में ही पूरा किया जाता है, लेकिन भारत और चीन जैसे विकासशील या उभरते बाजार वाले देश वैश्विक फर्मों के लिए पर्याप्त लागत लाभ पर अत्यधिक कुशल श्रम और नई अनुसंधान सुविधाएँ दोनों प्रदान करते हैं।

### वैश्विक सामरिक प्रतिद्वंद्विता सिद्धांत–

वैश्विक रणनीतिक प्रतिद्वंद्विता सिद्धांत 1980 के दशक में उभरा और यह अर्थशास्त्री पॉल क्रुगमैन और केल्विन लैंकेस्टर के काम पर आधारित था। उनका सिद्धांत बहुराष्ट्रीय कंपनियों और उनके उद्योग में अन्य वैश्विक फर्मों के खिलाफ प्रतिस्पर्धात्मक लाभ प्राप्त करने के उनके प्रयासों पर केंद्रित था। फर्मों को अपने उद्योगों में वैश्विक प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ेगा और समृद्ध होने के लिए, उन्हें प्रतिस्पर्धी लाभ विकसित करना होगा। महत्वपूर्ण तरीके जिनसे फर्म एक स्थायी प्रतिस्पर्धी लाभ प्राप्त कर सकती हैं, उन्हें उस उद्योग के लिए प्रवेश की बाधाएं कहा जाता है। प्रवेश की बाधाएं उन बाधाओं को संदर्भित करती हैं जिनका सामना एक नई फर्म को किसी उद्योग या नए बाजार में प्रवेश करने की कोशिश करते समय करना पड़ सकता है। प्रवेश की बाधाएं जिन्हें निगम अनुकूलित करना चाह सकते हैं उनमें शामिल हैं।

- अनुसंधान और विकास,
- बौद्धिक संपदा अधिकारों का स्वामित्व,
- पैमाने की अर्थव्यवस्थाएं,
- अद्वितीय व्यावसायिक प्रक्रियाएँ या विधियाँ तथा साथ ही उद्योग में व्यापक अनुभव, और
- संसाधनों पर नियंत्रण या कच्चे माल तक अनुकूल पहुंच।

### 2.16 पोर्टर का राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मक लाभ सिद्धांत–

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांतों के निरंतर विकास में, हार्वर्ड बिजनेस स्कूल के माइकल पोर्टर ने 1990 में राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धी लाभ को समझाने के लिए एक नया मॉडल विकसित किया। पोर्टर के सिद्धांत ने कहा कि किसी उद्योग में किसी राष्ट्र की प्रतिस्पर्धात्मकता उद्योग की नवाचार और उन्नयन की क्षमता पर निर्भर करती है। उनका सिद्धांत यह समझाने पर केंद्रित था कि कुछ राष्ट्र कुछ उद्योगों में अधिक

प्रतिस्पर्धी क्यों हैं। अपने सिद्धांत को समझाने के लिए, पोर्टर ने चार निर्धारकों की पहचान की जिन्हें उन्होंने एक साथ जोड़ा। चार निर्धारक हैं (1) स्थानीय बाजार संसाधन और क्षमताएँ, (2) स्थानीय बाजार मांग की स्थितियाँ, (3) स्थानीय आपूर्तिकर्ता और पूरक उद्योग, और (4) स्थानीय फर्म विशेषताएँ।

• स्थानीय बाजार संसाधन और क्षमताएं (कारक स्थितियां)। पोर्टर ने कारक अनुपात सिद्धांत के महत्व को पहचाना, जो किसी देश के संसाधनों (जैसे, प्राकृतिक संसाधन और उपलब्ध श्रम) को यह निर्धारित करने में महत्वपूर्ण कारक मानता है कि कोई देश किन उत्पादों का आयात या निर्यात करेगा। पोर्टर ने इन बुनियादी कारकों में उन्नत कारकों की एक नई सूची जोड़ी, जिसे उन्होंने कुशल श्रम, शिक्षा, प्रौद्योगिकी और बुनियादी ढांचे में निवेश के रूप में परिभाषित किया। उन्होंने इन उन्नत कारकों को एक देश को एक स्थायी प्रतिस्पर्धी लाभ प्रदान करने के रूप में माना।

• स्थानीय बाजार की मांग की स्थिति। पोर्टर का मानना था कि निरंतर नवाचार सुनिश्चित करने के लिए एक परिष्कृत घरेलू बाजार महत्वपूर्ण है, जिससे एक स्थायी प्रतिस्पर्धी लाभ पैदा होता है। जिन कंपनियों के घरेलू बाजार परिष्कृत, ट्रेंडसेटिंग और मांग वाले हैं, वे निरंतर नवाचार और नए उत्पादों और प्रौद्योगिकियों के विकास को मजबूर करते हैं। कई स्रोत मांग करने वाले अमेरिकी उपभोक्ता को अमेरिकी सॉफ्टवेयर कंपनियों को लगातार नवाचार करने के लिए मजबूर करने का श्रेय देते हैं, इस प्रकार सॉफ्टवेयर उत्पादों और सेवाओं में एक स्थायी प्रतिस्पर्धी लाभ बनाते हैं।

• स्थानीय आपूर्तिकर्ता और पूरक उद्योग। प्रतिस्पर्धी बने रहने के लिए, बड़ी वैश्विक फर्मों को उद्योग द्वारा आवश्यक इनपुट प्रदान करने के लिए मजबूत, कुशल सहायक और संबंधित उद्योगों का लाभ मिलता है। कुछ उद्योग भौगोलिक रूप से समूहबद्ध होते हैं, जो दक्षता और उत्पादकता प्रदान करते हैं।

• स्थानीय फर्म की विशेषताएँ। स्थानीय फर्म की विशेषताओं में फर्म की रणनीति, उद्योग संरचना और उद्योग प्रतिद्वंद्विता शामिल हैं। स्थानीय रणनीति फर्म की प्रतिस्पर्धात्मकता को प्रभावित करती है। स्थानीय फर्मों के बीच प्रतिद्वंद्विता का एक स्वस्थ स्तर नवाचार और प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देगा।

हीरे के चार निर्धारकों के अलावा, पोर्टर ने यह भी कहा कि सरकार और मौका उद्योगों की राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता में भूमिका निभाते हैं। सरकारें अपने कार्यों और नीतियों के जरिए फर्मों और कभी–कभी पूरे उद्योगों की प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ा सकती हैं।

पोर्टर का सिद्धांत, अन्य आधुनिक, फर्म–आधारित सिद्धांतों के साथ, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार प्रवृत्तियों की एक दिलचस्प व्याख्या प्रस्तुत करता है। फिर भी, वे अपेक्षाकृत नए और न्यूनतम रूप से परखे गए सिद्धांत बने हुए हैं।

**2.17 प्रश्नावली–**

1–अंतरराष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत से आप क्या समझते हैं?

2–अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की परिभाषाएं लिखिए।

3– अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत के इतिहास और विकास की व्याख्या कीजिए।

4–अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के वणिकवाद सिद्धांत से आप क्या समझते हैं?

5–अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के एडम स्मिथ की पूर्ण लाभ सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।

6–डेविड रिकार्डो के तुलनात्मक लाभ सिद्धांत को समझाइए।

7–हेक्सर ओहालिन सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।

8–अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धांतों स्टीफन लैंडर, रेमंड वर्नन के सिद्धांतों की व्याख्या कीजिए।

9–अंतरराष्ट्रीय व्यापार के पाल क्रूगमैंन के वैश्वीकरण नीति प्रतिद्वंद्विता सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।

10–अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के महत्व का उल्लेख कीजिए।

11–लियोंटीफ विरोधाभास से आप क्या समझते हैं?

12–पोर्टर के राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मक लाभ सिद्धांत का उल्लेख कीजिए।

**2.18 कुछ उपयोगी पुस्तकें–**

1–आर्थिक विचारों का इतिहास : वी.सी. सिन्हा

2–आर्थिक विचारों का इतिहास : डा.सिंह, मित्तल

3–आर्थिक विचारों का इतिहास : डा. युद्धवीर सिंह

4–आर्थिक विचारों का इतिहास : राम कुवारें, डा. राजवीर सिंह

# इकाई– 3

# माल्थस का जनसँख्या सिद्धांत एवं अति उत्पादन का सिद्धांत

इकाई की रुपरेखा–

**3.0 उद्देश्य**

**3.1 प्रस्तावना**

**3.2 माल्थस का जनसँख्या सिद्धांत**

**3.3 माल्थस जनसँख्या सिद्धांत की आलोचना**

**3.4 माल्थस के सिद्धांत की उपयुक्तता**

**3.5 अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धांत**

**3.6 अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की परिभाषाएं**

**3.7 अनुकूलतम सिद्धान्त की व्याख्या**

**3.8 अनुकूलतम जनसंख्या के संदर्भ में डाल्टन एवं रॉबिंसन के विचार**

**3.9 अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की विशेषताएं**

**3.10 अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की प्रमुख आलोचना**

**3.11 अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत तथा माल्थस के सिद्धांत में अंतर**

**3.12 बोध प्रश्न**

**3.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें**

## 3.0 उद्देश्य–

प्रस्तुत अध्याय में हम माल्थस की जनसंख्या सिद्धांत के बारे में जान सकेंगे।

प्रस्तुत अध्याय में हम माल्थस जनसंख्या सिद्धांत की आलोचना के बारे में जान सकेंगे।

प्रस्तुत अध्याय में हम माल्थस जनसंख्या सिद्धांत उपयुक्तता के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

प्रस्तुत अध्याय में अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

प्रस्तुत अध्याय में हम अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की परिभाषा की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

प्रस्तुत अध्याय में हम अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की व्याख्या के बारे में जानेंगे।

इस अध्याय में हम अनुकूलतम जनसंख्या के संदर्भ में डाल्टन एवं रॉबिंसन के विचारों को जान सकेंगे।

इस अध्याय में हम अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

इस अध्याय में हम अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की प्रमुख आलोचनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

इस अध्याय में हम अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत तथा माल्थस के सिद्धांत में अंतर के बारे में जान सकेंगे।

### 3.1 प्रस्तावना

माल्थस के अनुसार गरीबों का कारण गरीब स्वयं है यह बहुत सत्य है क्योंकि इन देशों में गरीब तबका जनसंख्या वृद्धि का बहुत बड़ा कारण है इस प्रकार माल्थस का सिद्धांत पूर्णतया अल्पविकसित देशों में लागू होता है, जहां तक भारत की बात है माल्थस का सिद्धांत यहां भी लागू होता है यद्यपि भारत खाद्य संकट से बाहर आ गया है भारत में जन्म दर ऊंची तथा मृत्यु दर नीची है जो की जनसंख्या वृद्धि और अति जनसंख्या का कारण है भारत में अधिक जनसंख्या वृद्धि दर को नियंत्रित करने के लिए परिवार नियोजन तथा परिवार कल्याण कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं जिसका मुख्य उद्देश्य गरीबी निवारण व बेरोजगारी को दूर करना है। अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत का मानना ही अनुचित है क्योंकि यह सिद्धांत कार्य वा परिणाम के संबंधों में समुचित प्रकाश नहीं डालता है यह इस संदर्भ में मौन है की जनसंख्या किस प्रकार और क्यों बढ़ती है अथवा उसके बढ़ने का क्या नियम है इस सिद्धांत के निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि कारण एवं परिणाम में संबंध हो यह सिद्धांत वस्तुतः जनसंख्या विवेचन में अनुकूलतम के प्रत्यय का प्रयोग मात्र है।

यह सिद्धांत आय के वितरण पक्ष पर ध्यान नहीं देता इस सिद्धांत की इस बात पर भी आलोचना की जाती है कि यह राष्ट्रीय आय के वितरण पक्ष पर ध्यान न देकर उसकी अपेक्षा करता है केवल उत्पादन पक्ष पर ही ध्यान देता है प्रति व्यक्ति अधिकतम औसत आय का तब तक कोई महत्व नहीं जब तक राष्ट्रीय आय का सामान वितरण नहीं होता यदि कुल राष्ट्रीय आय कुछ गिने–चुने धनी व्यक्तियों के हाथों में केंद्रित हो जाए तो आर्थिक कल्याण में वृद्धि नहीं हो सकती है।

### 3.2 माल्थस का जनसंख्या सिद्धांत–

माल्थस ने जनसंख्या के संबंध में अपने विचार अपनी पुस्तक "ऐसे ऑन प्रिंसिपल ऑफ पॉपुलेशन एण्ड ईट इफेक्ट्स ऑफ दि फ्यूचर इंप्रूव्डमेंट ऑफ दि सोसायटी" में प्रस्तुत किया जिसमें कहा की धरती पर प्रकृति ने सीमित लोगों के लिए भोजन की थाली सजा रखी है जों मेहमान बिन बुलाए आयेंगे उन्हें भूखा रहना पड़ेगां माल्थस के अनुसार यदि जनसंख्या में वृद्धि से खाद्यान्नों पर दबाव बढ़ती है जिससे यदि प्रकृति खाद्यान्न आवश्यकता की पूर्ति करने में असमर्थ रहती है तो नैसर्गिक अवरोध जैसे– बाढ़, सुखा, महामारी, युद्ध एवं प्राकृतिक आपदाएं उत्पन्न होंगे।

माल्थस का जनसंख्या सिद्धांत तीन मान्यताओं पर आधारित था जो की निम्नलिखित हैं।

- भोजन या खाद्यान्न मानव अस्तित्व के लिए आवश्यक है।
- मानव विपरीत लिंग में तीव्र उत्कंठा या आकर्षण होता है और यह अपने वर्तमान स्थिति में बना रहता है।

• कृषि में उत्पादन हास नियम क्रियाशील होता है।

इन मान्यताओं के आधार पर उन्होंने कहा कि जनसंख्या की शक्ति मानव अस्तित्व के लिए पृथ्वी की उत्पादन शक्ति से निश्चित रूप से अधिक रहती है और यदि जनसंख्या में वृद्धि निवारक अवरोध द्वारा नहीं रोका गया तो यह कष्ट अथवा परेशानी का कारण बनेगा उनके अनुसार मानव में प्राकृतिक रूप से संभोग की तीव्र इच्छा होती है। जिससे जनसंख्या ज्यामितीय रूप से बढ़ती है। यदि कोई रोक–टोक ना हो तो यह प्रत्येक 25 वर्षो में अपने वर्तमान स्थिति से दोगुनी हो जाएगी अर्थात प्रत्येक 25 वर्ष में 2, 4, 8, 16, 32, 64, 118, 256.............. इसी क्रम में बढ़ती जाएगी।

जबकि दूसरी ओर खाद्यान्न पूर्ति गणितीय विधि से बढ़ती हुई होती है क्योंकि उत्पादन हास नियम परिकल्पना पर आधारित थी, क्योंकि भूमि की पूर्ति स्थिर है अतः खाद्यान्न पूर्ति में वृद्धि 25 वर्ष के प्रत्येक समान अवधि में 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9 ............ होगी। माल्थस के अनुसार प्रत्येक जीवित प्राणी में यह निश्चित प्रवृत्ति होती है क्योंकि खाद्यान्नों की वृद्धि मानव जीवन के पोषण के लिए जनसंख्या साधनों से अधिक आवश्यक होती है।

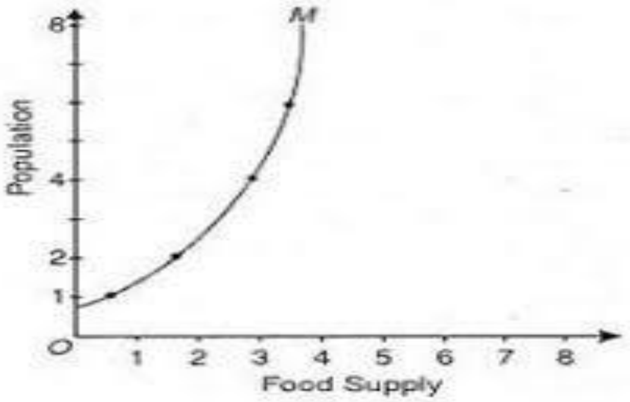


खाद्यान्न पूर्ति क्षैतिज अक्ष पर जबकि जनसंख्या उर्ध्वाधर अक्ष पर मापा गया है यह वक्र माल्थस का जनसंख्या वक्र कहलाता है जो जनसंख्या वृद्धि और खाद्यान्न पूर्ति के मध्य संबंध को दर्शाता है यह ऊपर उठता हुआ अर्थात जैसे–जैसे जनसंख्या में वृद्धि होगी, प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता कम होती जाएगी इसे यदि माल्थस के शब्दों में व्यक्त किया जाए तो 'प्रकृति की मेज सीमित अतिथियों के लिए सजी है, जो बिना निमंत्रण के आएगा वह निश्चित रूप से भूखा रहेगा'।

माल्थस ने अतिजनसंख्या को रोकने के दो उपाय दिए थें

प्रथम– मानवीय अवरोध / निवारक अवरोध

द्वितीय– प्राकृतिक अवरोध / नैसर्गिक अवरोध

**मानवीय अवरोध / निवारक अवरोध–**

निवारक अवरोध से उनका तात्पर्य जन्म दर नियंत्रण से था जिसके उपाय निम्नवत है।

ब्रह्मचर्य,

देर से शादी,

संयम,

दूरदर्शिता आदि।

**प्राकृतिक अवरोध / नैसर्गिक अवरोध–**

युद्ध,

बाढ़,

अकाल,

महामारी आदि।

माल्थस एक पादरी थे, जनसंख्या नियंत्रण के कृत्रिम उपायों पर इनका विश्वास नहीं था यदि लोग निवारक अवरोध द्वारा जनसंख्या नियंत्रण में असफल हो जाते हैं तो नैसर्गिक अवरोध की शक्ति उत्पन्न होती हैं जो कष्ट, युद्ध, बाढ़, अकाल, महामारी आदि के रूप में आती है जो जनसंख्या में कमी करके खाद्यान्न पूर्ति के साथ संतुलन स्थापित करती हैं। माल्थस मानते थें मनुष्य अपने दुख का स्वयं कारण है, क्योंकि मनुष्य निवारक अवरोध अपनाने में असफल रहता है इसी को आधार मानकर उन्हें निराशावादी कह कर आलोचित किया जाता है।

**3.3 माल्थस जनसख्या सिद्धान्त की आलोचना–**

माल्थस के जनसंख्या सिद्धांत की 19 वीं शताब्दी और 20 वीं शताब्दी में आलोचना की गई जो निम्नलिखित है।

माल्थस के अनुसार खाद्यान्न अंकगणतीय रूप से बढ़ता है जबकि जनसंख्या ज्यामितिय रूप से बढ़ती है। 25 वर्षो में अनुभवजन्य अध्ययन द्वारा सिद्ध नहीं हुई है माल्थस का दृष्टिकोण अतिसंकुचित था। माल्थस केवल इंग्लैंड के स्थापित दशाओं से प्रभावित हुए जो ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका, अर्जेंटीना जैसे देशों में नए क्षेत्रों के प्रारम्भ को नहीं देख सके जहां नई तकनीक द्वारा भूमि पर व्यापक रूप से खेती होती थी जिससे खाद्यान्न उत्पादन में व्यापक रूप से वृद्धि हुई है जिसके परिणाम स्वरूप यूरोपीय महाद्वीप के इंग्लैंड जैसे देश भारी मात्रा में लाभान्वित हुए अर्थात उन्हें खाद्यान्न सस्ते उपलब्ध हुए जो की यातायात के साधनों में तीव्र सुधारो का परिणाम था जिसको माल्थस ने पूर्ण रूप से अनदेखा कर दिया था।

माल्थस का यह मानना कि खाद्यान्न अंकगणितीय रूप से बढ़ता है इस मान्यता पर आधारित है कि यह एक स्थैतिक आर्थिक नियम है जो एक निश्चित समय बिंदु पर है अर्थात उत्पादन ह्रास नियम लागू होता है माल्थस वैज्ञानिक ज्ञान में वृद्धि और नए कृषि आविष्कारों को जो की एक समय अवधि में हो सकते थे उसको नहीं समझ सके जिससे खाद्यान्न अंकगंणतीय रूप से काफी तीव्र रूप से बढ़ता गया।

माल्थस विकसित देशों और विकासशील देशों में आए परिवर्तन जैसे भारत में 1966 से हरित क्रांति से गलत सिद्ध हुए माल्थस अपने सिद्धांत में जनसंख्या वृद्धि के परिणाम स्वरुप होने वाली श्रम शक्ति में होने वाली वृद्धि को नजर अंदाज कर दिया माल्थस ने जनसंख्या व खाद्यान्न पूर्ति में संबंध स्थापित किया परंतु सही संबंध किसी देश की जनसंख्या व उसके पास कुल संपत्ति से है।

माल्थस ने केवल खाद्यान्न को जीवन के लिए महत्वपूर्ण माना परंतु जीवित रहने की खाद्यान्न ही काफी नहीं है लोग अंडे, मांस, मछली आदि पर भी निर्भर रहते हैं।

किसी देश के विकास से सर्वप्रथम स्वास्थ्य सुविधाओं पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है जबकि दूसरी अवस्था में मृत्यु दर गिरती है तथा जन्म दर सापेक्षिक रूप से स्थिर रहती है अतः उस समय जनसंख्या बढ़ाने

के लिए उत्तरदाई मृत्यु दर होती है जबकि माल्थस्थ जनसंख्या बढ़ाने के लिए उत्तरदाई जन्म दर को मानते थे।

प्राकृतिक आपदा केवल उन्ही देशों में नहीं आती जिनमें जनसंख्या अधिक होती है बल्कि उन देशों में भी आती है जिनमें जनसंख्या कम होती है।

माल्थस संभोग की इच्छा और संतान उत्पत्ति की इच्छा में अंतर नहीं कर पाए उनका मानना सभी में संभोग की इच्छा समान होती है, गलत है यह व्यक्तियों में भिन्न–भिन्न आयु और स्वस्थ मानसिकता पर आधारित होती है।

माल्थस नैसर्गिक नियंत्रण को नहीं माना जबकि व्यावहारिक रूप में विभिन्न देशों में महिलाओं एवं पुरुषों द्वारा गर्भनिरोधकों का प्रयोग होता है।

कुछ देशों में जनसंख्या अत्यंत कम है अर्थात श्रम शक्ति का अभाव है वह देश अपनी जनसंख्या बढ़ाने के लिए प्रयासरत है अर्थात सभी प्रकार की जनसंख्या वृद्धि बूरी नहीं होती है।

### 3.4 माल्थस के सिद्धांत की उपयुक्तता–

यद्यपि माल्थस के सिद्धांत में कई कमियां है परंतु काफी हद तक इसमें सत्यता भी है माल्थस का सिद्धांत यद्यपि पश्चिमी यूरोप इंग्लैंड में सही नहीं दिखता परंतु उनके सिद्धांत की मूलभूत बातें इन देशों के लोगों ने अपनाई अर्थात पश्चिमी यूरोप और इंग्लैंड में अतिजनसंख्या की स्थिति इसलिए नहीं आई क्योंकि माल्थस द्वारा इन देशों को अधिक सतर्क कर दिया गया। माल्थस की जनसंख्या सिद्धांत के व्यावहारिकता को संपूर्ण पृथ्वी के दो तिहाई हिस्से में जो अल्पविकसित देशों द्वारा स्थापित है देखा जा सकता है इन अल्प विकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि खाद्यान्न पूर्ति की अपेक्षा तेजी से बढ़ रही है इन देशों में भूख द्वारा मृत्यु की खबरों तथा अन्य प्राकृतिक आपदाएं बाढ़, युद्ध, सुखा, भूकंप आदि से लाखों लोगों की मृत्यु होती है।

माल्थस के अनुसार गरीबों का कारण गरीब स्वयं है यह बहुत सत्य है क्योंकि इन देशों में गरीब तबका जनसंख्या वृद्धि का बहुत बड़ा कारण है इस प्रकार माल्थस का सिद्धांत पूर्णतया अल्पविकसित देशों में लागू होता है, जहां तक भारत की बात है माल्थस का सिद्धांत यहां भी लागू होता है यद्यपि भारत खाद्य संकट से बाहर आ गया है भारत में जन्म दर ऊंची तथा मृत्यु दर नीची है जो की जनसंख्या वृद्धि और अति जनसंख्या का कारण है भारत में अधिक जनसंख्या वृद्धि दर को नियंत्रित करने के लिए परिवार नियोजन तथा परिवार कल्याण कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं जिसका मुख्य उद्देश्य गरीबी निवारण व बेरोजगारी को दूर करना है।

### 3.5 अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धांत–

इसको सर्वप्रथम 1815 ई0 में सर एडवर्ड वेस्ट द्वारा स्पष्ट किया गया जिसे सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत प्रोफेसर हेनरी सिजिविक को करने का श्रेय जाता है तथा अनुकूलतम शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम एडमिन कैनन ने किया जिसका समर्थन आगे चलकर आधुनिक अर्थशास्त्रियों प्रोफेसर रॉबिंसन, डाल्टन तथा कार सांडर्स द्वारा किया गया जिसकी मान्यताएं निम्नलिखित है।

जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ कुल जनसंख्या में कार्यशील जनसंख्या का अनुपात समान रहता है अर्थात जब जनसंख्या बढ़ती है तो कार्यशील जनसंख्या भी उसी अनुपात में बढ़ती है।

एक दी हुई समयाअवधि में अर्थव्यवस्था में प्राकृतिक साधन तकनीकी ज्ञान तथा पूंजी आदि में कोई परिवर्तन नहीं होता है इसका अर्थ यह है की जनसंख्या के बढ़ने पर शुरू में उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है लेकिन एक सीमा के बाद उत्पत्ति हास नियम क्रियाशील हो जाता है।

### 3.6 अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की परिभाषाएं–

अनुकूलतम जनसंख्या से संबंधित कुछ अर्थशास्त्रियों ने निम्नलिखित परिभाषाएं दी है।

**प्रोफेसर डाल्टन** – प्रोफेसर डाल्टन के अनुसार अनुकूलतम जनसंख्या व है जो अधिकतम प्रति व्यक्ति आय प्रदान करती है।

**प्रोफेसर हिक्स**– प्रोफेसर हिक्स के अनुसार अनुकूलतम जनसंख्या वह है जिस पर प्रति व्यक्ति उत्पादन अधिकतम होता है।

**रॉबिंसन के अनुसार**– अनुकूलतम जनसंख्या वह है जिसमें अधिकतम उत्पादन संभव होता है।

**प्रोफेसर बोंल्डिंग के अनुसार**– वह जनसंख्या जिस पर जीवन स्तर अधिकतम होता है अनुकूलतम जनसंख्या कहलाती है।

**कार सांडर्स के अनुसार**– अनुकूलतम जनसंख्या वह जनसंख्या है जो अधिकतम आर्थिक कल्याण उत्पन्न करती है अधिकतम कल्याण आवश्यक रूप से वही नहीं है जो प्रति व्यक्ति अधिकतम आय प्रदान करता है परंतु प्रयोगात्मक उद्देश्य के लिए इसे उसके बराबर समझा जा सकता है।

**प्रोफेसर सेलिंगमैंन**– प्रोफेसर सेलिंगमैंन का विचार था की जनसंख्या की समस्या केवल जनसंख्या के आकार की समस्या नहीं है वरन यह कुशलता तथा न्याय पूर्ण वितरण की समस्या है।

**सिजविक के अनुसार**– अनुकूलतम जनसंख्या जनसंख्या का वह स्तर होता है जहां पर औसत सुख अधिकतम हो।

**प्रोफेसर एरिक राल के अनुसार**– अनुकूलतम जनसंख्या किसी देश की वह जनसंख्या है जो अन्य साधनों की दी हुई मात्रा के सहयोग से अधिकतम उत्पादन कर सके।

इस नवीन दृष्टिकोण के आधार पर अनुकूलतम जनसंख्या का प्रतिपादन किया गया यह सिद्धांत किसी देश के राष्ट्रीय आय तथा जनसंख्या को संबंधित कर पता लगाने का प्रयास करता है कि अधिकतम आय या उत्पादन की दृष्टि से जनसंख्या का आकार अनुकूलतम है अथवा नहीं यह सिद्धांत जनसंख्या में वृद्धि की दर या कमी पर प्रकाश नहीं डालता बल्कि जानने का प्रयास करता है की उत्पत्ति के साधनों तथा जनसंख्या का अनुपात अनुकूलतम या सर्वोत्तम है अथवा नहीं, इस प्रकार माल्थस का सिद्धांत एक सामान्य सिद्धांत है जो हर देश पर समान रूप से लागू होता है जबकि अनुकूलतम सिद्धांत एक विशिष्ट सिद्धांत है जो किसी देश की आर्थिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उसकी जनसंख्या संबंधी समस्या का अध्ययन करता है इस प्रकार माल्थस के जनसंख्या संबंधित समस्या का अध्ययन करता है इस प्रकार माल्थस की जनसंख्या सिद्धांत की अपेक्षा अनुकूलतम सिद्धांत अधिक यथार्थपरक है।

### 3.7 अनुकूलतम सिद्धान्त की व्याख्या–

सर्वप्रथम एडवर्ड वेस्ट ने सन 1815 ईस्वी में अपने लेख "ऐसे ऑन द एप्लीकेशन आन कैपिटल ऑफ लैंड" नामक लेख में विचार व्यक्त किया की जनसंख्या के बढ़ने के साथ–साथ श्रम में विशिष्टता आ जाती है जिससे उत्पादन में वृद्धि होती है इस विचार को इस सिद्धांत का मात्र संकेत ही समझा जाना

चाहिए इसके उपरांत 19 वीं शताब्दी के अंत में सिजविक ने अनुकूलतम जनसंख्या के विचार की नींव रखी उन्होंने बताया कि एक उचित अनुपात में यदि सब साधनों को लगाया जाए तो एक ऐसा बिंदु प्राप्त होता है जिसमें उत्पादन अधिकतम होता है यद्यपि उन्होंने अनुकूलतम शब्द का प्रयोग नहीं किया लेकिन उनका संकेत इसी तरफ था इसी कथन का सहारा लेकर एडविन कैनन ने सन 1924 ईस्वी में प्रकाशित अपनी पुस्तक "वेल्थ" में सर्वप्रथम अनुकूलतम शब्द का प्रयोग कर अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धांत की स्थापना की जिसे आगे चलकर राबिंसन, डाल्टन तथा कर सांडर्स ने इस सिद्धांत को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

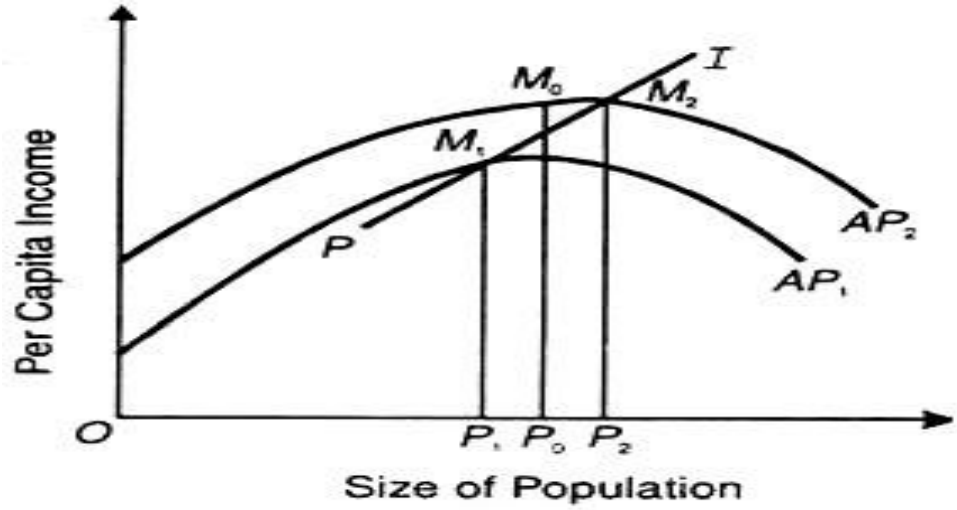


अनुकूलतम जनसंख्या का बिंदु स्थिर न होकर गतिशील होता है अनुकूलतम जनसंख्या का बिंदु गतिशील होता है जिन बिंदुओं को दिया हुआ मान लिया जाता है उसमें से किसी में भी परिवर्तन होने पर अनुकूलतम बिंदु या स्तर बदल जाता है उदाहरण के तौर पर देश में वैज्ञानिक प्रगति, तकनीकी विकास, प्राकृतिक साधनों की खोज, उत्पादन की नई विधियों के अनुसंधान से प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि होगी और अनुकूलतम बिंदु ऊपर की ओर खिसक जाएगा अर्थात अनुकूलतम बिंदु परिवर्तित हो जाएगा चित्र से स्पष्ट होता है कि अनुकूलतम जनसंख्या का बिंदु गतिशील होता है अर्थात उत्पादन की तकनीक और वैज्ञानिक विकास की एक दी हुई स्थिति यदि AP1 औसत उत्पाद वक्र अथवा प्रति व्यक्ति आय वक्र है जिस पर अनुकूलतम जनसंख्या स्तर OM है यदि उत्पादन की विधियों में सुधार तथा अनुसंधान के फलस्वरूप उत्पादन में वृद्धि होती है और प्रति व्यक्ति आय AP1 से बढ़कर APo हो जाती है जबकि यदि पुनः उत्पादन विधियों में सुधार या अनुसंधान होता है तो अनुकूलतम जनसंख्या Mo स्तर हो जाता है और प्रति व्यक्ति आय बढ़कर AP2 हो जाती है जब भी उत्पादन की विधियों में सुधार या अनुसंधान होता है तो पहले वाली अनुकूलतम जनसंख्या अल्प जनसंख्या हो जाती है जिसमें चित्र से स्पष्ट होता है एवं M2 जनसंख्या के प्रभावित स्वरूप को प्रकट करता है।

**मान्यताएं–**

एक निश्चित एवं दिए हुए समय के लिए अर्थव्यवस्था में पूंजी तकनीक तथा प्राकृतिक साधनों में कोई परिवर्तन नहीं होता अर्थात जनसंख्या में वृद्धि होने पर प्रारंभ में उत्पत्ति वृद्धि नियम कार्यशील होता है लेकिन एक सीमा बाद उत्पत्ति हास नियम क्रियाशील होने लगता है।

जनसंख्या में वृद्धि के साथ–साथ कार्यशील जनसंख्या भी उसी अनुपात में बढ़ती है।

लोगों की आदत तथा पसंद नहीं बदलता है।

श्रम के कार्य करने के घंटे समान रहते अर्थात बदलते नहीं है।

**अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त–**

अनुकूलतम जनसंख्या का अर्थ उस जनसंख्या से है जो किसी देश में एक निश्चित समय पर दिए हुए साधनों का अधिकतम उपयोग तथा उत्पादन के लिए आवश्यक है जब देश की जनसंख्या का आकार आदर्श रहता है तो प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होती है इस प्रकार एक समय विशेष तथा परिस्थितियों में वही जनसंख्या सर्वोत्तम होती है जिसमें प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होती है।

अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत लॉ ऑफ रिटर्न अर्थात पैमाने के प्रतिफल पर आधारित है जिसमें जनसंख्या में वृद्धि तथा कार्यकारी जनसंख्या के मध्य फलनात्मक संबंध को प्रदर्शित करता है किसी देश के प्राकृतिक साधनों का समुचित ढंग से विदोहन करने के लिए यह आवश्यक है कि जनशक्ति का अन्य उत्पादन के साधनों से संबंध निश्चित अनुपात में बना रहे यदि किसी देश की जनसंख्या कम है तो कार्यशील जनसंख्या भी कम होगी अतः देश के अन्य उत्पादन के साधनों का प्रयोग समुचित रूप से ना हो सकेगा जिससे प्रति व्यक्ति औसत उत्पादन और प्रति व्यक्ति आय कम होगी।

जब जनसंख्या बढ़ती है और इसके फलस्वरुप कार्यशील जनसंख्या बढ़ती है तो इससे श्रम विभाजन बढ़ता है तथा देश के साधनों का अच्छी तरह से प्रयोग होता है और प्रति व्यक्ति आय बढ़ने लगती है अन्य शब्दों में प्रारंभ में जनसंख्या वृद्धि के साथ श्रम की सीमांत उत्पादकता और औसत उत्पादकता बढ़ेगी अर्थात उत्पादन वृद्धि नियम लागू होता है उसके बाद एक बिंदु प्राप्त होता है जिस पर जनसंख्या का उत्पत्ति के अन्य साधनों के साथ इष्टतम या अनुकूलतम संबंध स्थापित हो जाता है जहां प्रति व्यक्ति औसत उत्पादन अर्थात प्रतिव्यक्ति आय अधिकतम होती है यह अनुकूलतम जनसंख्या का बिंदु होगा यह स्थिर प्रत्यय नियम अर्थात स्थिर प्रतिफल के नियम की अवस्था है।

यदि जनसंख्या में इसके बाद भी वृद्धि होती है तो अनुकूलतम संयोग या संतुलन भंग हो जाता है जिसके फल स्वरुप जनसंख्या की प्रत्येक वृद्धि के साथ श्रम का सीमांत उत्पादन तथा औसत उत्पादन घटता जाएगा अर्थात पैमाने का हासमान प्रतिफल क्रियाशील होगा तथा प्रतिव्यक्ति आय भी घटने लगेगी इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि अनुकूलतम जनसंख्या का स्तर या बिंदु वह है जहां प्रति व्यक्ति औसत आय अधिकतम होगी यदि जनसंख्या का आकर इस स्तर से कम है तो इस न्यून जनसंख्या कहा जाएगा और जनसंख्या का आकार इस बिंदु से अधिक है तो यहां पर अति जनसंख्या की स्थिति उत्पन्न होगी।

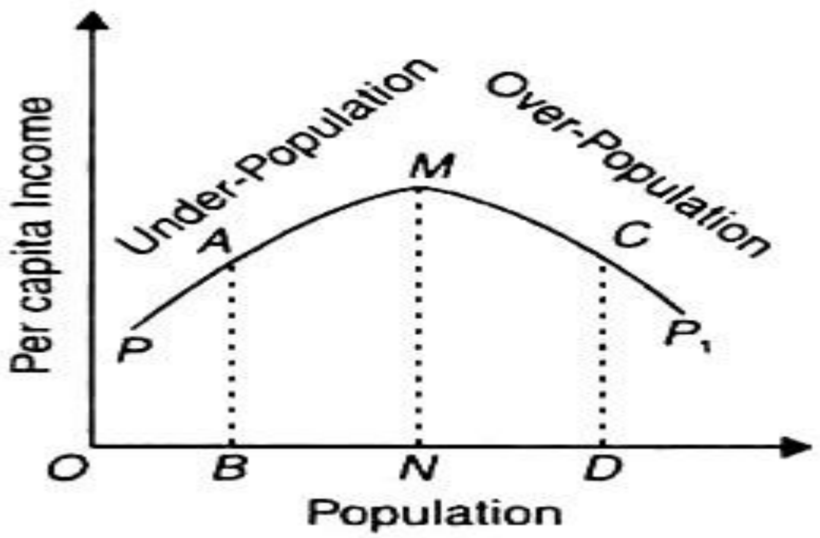

डाल्टन के अनुकूलतम आकार में जनसंख्या की न्यूनता या अधिकता मापने के लिए प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डाल्टन ने एक सूत्र को बनाया जो निम्नलिखित है।

$M = A - O / O$

M = समायोजन अभाव की मात्रा / असंतुलन की मात्रा

A = वास्तविक जनसंख्या

O = अनुकूलतम जनसँख्या

समायोजन अभाव से अभिप्राय है कि वास्तविक जनसंख्या अनुकूलतम जनसंख्या से कितनी कम या अधिक है।

यदि M धनात्मक है तो जनाधिक्य को बतायेगा

यदि M ऋणात्मक है तो जनसंख्या न्यूनता को बताएगा

यदि M शून्य के बराबर है तो वास्तविक रूप से अनुकूलतम जनसंख्या बराबर होगी।

### 3.8 अनुकूलतम जनसंख्या के संदर्भ में डाल्टन एवं रॉबिंसन के विचार–

डाल्टन ने अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धांत को प्रति व्यक्ति आय से सम्बद्ध किया उनके अनुसार अनुकूलतम जनसंख्या वह है जो अधिकतम प्रति व्यक्ति आय प्रदान करती है इन शब्दों से स्पष्ट होता है कि उन्होंने जनसंख्या का अध्ययन अधिकतम प्रति व्यक्ति आय प्रदान करने के दृष्टिकोण से किया और अपने अध्ययन में प्रति व्यक्ति आय तथा आय दोनों को ही महत्व प्रदान किया है डाल्टन के अनुसार अधिकतम औसत आय तभी प्राप्त होगी जबकि उत्पादन के साधनों का समायोजन अनुकूलतम अनुपात में हो इस अनुकूलतम अनुपात में किसी दशा में विचलन औसत आय में कमी ला देगा इसमें अर्थात डाल्टन के सिद्धांत में कल्याण के रूप की अप्रत्यक्ष रूप से बात की गई है क्योंकि यह आय वितरण से संबंधित है इन्होंने उपभोग की बात की है।

रॉबिंसन ने अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धांत के प्रतिपादन में डाल्टन से भिन्न दृष्टिकोण अपनाया है उनके अनुसार अनुकूलतम जनसंख्या वह है जिससे अधिकतम उत्पादन संभव होता है इस तरह रॉबिंसन ने प्रति व्यक्ति आय के स्थान पर अपने विश्लेषण में अधिकतम कुल उत्पादन को विशेष महत्व दिया है रॉबिंसन के अनुसार अनुकूलतम जनसंख्या तभी होगी जब प्रत्येक व्यक्ति को जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त आय प्राप्त हो रॉबिंसन का विचार है कि जब तक देश का प्रत्येक व्यक्ति लाभदायक रोजगार में नहीं लगा हुआ है अर्थात जब तक कोई व्यक्ति समाज को इतना उत्पादन करने में सहायता देता है जितना कि समाज को व्यक्ति के भरण पोषण पर वह करना पड़ता है तब तक देश में जनसंख्या वृद्धि का कोई भय नहीं है।

### 3.9 अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की विशेषताएं–

यह सिद्धांत उत्पत्ति हास नियम पर आधारित है उत्पादन के साधनों में आदर्श की स्थिति में ही उत्पादन को अधिकतम किया जा सकता है अतः जिस बिंदु पर श्रम शक्ति के प्रयोग द्वारा औसत उत्पादन अधिकतम होता है वास्तव में वह बिंदु ही अनुकूलतम जनसंख्या का बिंदु होता है।

अनुकूलतम जनसंख्या परिमाणात्मक ही नहीं गुणात्मक विचार भी है कुछ आधुनिक अर्थशास्त्रियों जिनमें बोंल्डिंग, पेनरोज प्रमुख है की धारणा है कि अनुकूलतम जनसंख्या पर परिमाणात्मक विचार ही नहीं बल्कि गुणात्मक विचार भी है यही कारण है की बोंल्डिंग प्रति व्यक्ति आय के स्थान पर जीवन स्तर शब्द का प्रयोग करते हैं स्वभावतः जब उत्पादन या आय बढ़ती है तो लोगों के आर्थिक कल्याण में भी वृद्धि होती है जिसमें उनका जीवन स्तर भी ऊंचा उठने लगता है परंतु जीवन स्तर, स्वास्थ्य आदि गुणात्मक बातों को सम्मिलित करने से किसी समय पर एक देश के लिए सही रूप से अनुकूलतम जनसंख्या को ज्ञात करना अत्यंत कठिन हो जाता है।

### 3.10 अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की प्रमुख आलोचना–

अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की प्रमुख आलोचना निम्नवत हैं।

अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत का मानना ही अनुचित है क्योंकि यह सिद्धांत कार्य वा परिणाम के संबंधों में समुचित प्रकाश नहीं डालता है यह इस संदर्भ में मौन है की जनसंख्या किस प्रकार और क्यों बढ़ती है अथवा उसके बढ़ने का क्या नियम है इस सिद्धांत के निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि कारण एवं परिणाम में संबंध हो यह सिद्धांत वस्तुतः जनसंख्या विवेचन में अनुकूलतम के प्रत्यय का प्रयोग मात्र है।

यह सिद्धांत आय के वितरण पक्ष पर ध्यान नहीं देता इस सिद्धांत की इस बात पर भी आलोचना की जाती है कि यह राष्ट्रीय आय के वितरण पक्ष पर ध्यान न देकर उसकी अपेक्षा करता है केवल उत्पादन पक्ष पर ही ध्यान देता है प्रति व्यक्ति अधिकतम औसत आय का तब तक कोई महत्व नहीं जब तक राष्ट्रीय आय का सामान वितरण नहीं होता यदि कुल राष्ट्रीय आय कुछ गिने–चुने धनी व्यक्तियों के हाथों में केंद्रित हो जाए तो आर्थिक कल्याण में वृद्धि नहीं हो सकती है।

### 3.11 अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत तथा माल्थस के सिद्धांत में अंतर–

माल्थस के सिद्धांत की तुलना में अनुकूलतम सिद्धांत इसलिए अधिक श्रेष्ठ है क्योंकि यह किसी भी देश की आर्थिक स्थिति के संबंध में जनसंख्या संबंधी समस्या का अध्ययन करता है माल्थस का दृ ष्टिकोण संकीर्ण था उन्होंने जनसंख्या का संबंध खाद्य पदार्थ की पूर्ति से कर दिया जबकि अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत जनसंख्या को कुल उत्पादन से संबंध करता है जो अधिक उचित है माल्थस ने जनसंख्या की समस्या पर केवल परिमाणात्मक दृष्टिकोण से ही विचार किया यह जनसंख्या के गुणात्मक पहलुओं अर्थात स्वास्थ्य नैतिक स्तर आदि पर ध्यान नहीं देता जबकि अनुकूलतम सिद्धांत परिमाणात्मक पक्ष के साथ गुणात्मक पक्ष पर भी विचार करता है।

माल्थस का सिद्धांत निराशावादी है जबकि अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत आशावादी है तथा निराशावादी से ग्रस्त नहीं है।

माल्थस का सिद्धांत और अधिक व्यवहारिक नही है वह जनसंख्या में होने वाले प्रत्येक वृद्धि को बुरा मानते थे दूसरी ओर अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत देश के प्राकृतिक संसाधनों के पूर्ण प्रयोग के लिए जनसंख्या में केवल वृद्धि आवश्यक भी है माल्थस का सिद्धांत इस अवास्तविक अवधारणा पर आधारित है की प्रकृति कृपण है क्योंकि कृषि में घटते प्रतिफल का नियम कार्यशील रहता है परंतु इस दृष्टिकोण से अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत अधिक व्यावहारिक वास्तविक है क्योंकि यह सिद्धांत यह मानता है कि पहले अनुकूलतम बिंदु तक बढ़ते हुए नियम क्रियाशील होंते हैं और इसके उपरांत घटते हुए प्रतिफल क्रियाशील होंते हैं।

माल्थस का सिद्धांत वैज्ञानिक नहीं है क्योंकि यह इस बात को स्पष्ट नहीं करता कि किसी देश के लिए जनसंख्या का आकार कितना होना चाहिए जबकि अनुकूलतम सिद्धांत हमें यह स्पष्ट बताता है कि किसी समय विशेष पर विश्व की आदर्श जनसंख्या कितनी होनी चाहिए।

माल्थस के सिद्धांत के अनुसार प्राकृतिक प्रकोप अतिजनसंख्या के सूचक हैं जबकि अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत के अनुसार प्रति व्यक्ति आय में कमी होना अतिजनसंख्या की कसौटी है।

माल्थस का सिद्धांत स्थैतिक जबकि अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत एक प्रावैगिक अवधारणा है।

**3.12 बोध प्रश्न–**

माल्थस की जनसंख्या सिद्धांत से आप क्या समझते हैं

माल्थस के जनसंख्या सिद्धांत के उपयुक्त की व्याख्या कीजिए

माल्थस जनसंख्या सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए

अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत से क्या समझते हैं

अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की परिभाषाएं दीजिए

अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की व्याख्या कीजिए

अनुकूलतम जनसंख्या के संदर्भ में डाल्टन एवं रॉबिंसन के विचारों की व्याख्या कीजिए

अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए

अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत की प्रमुख आलोचनाओं की व्याख्या कीजिए

अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धांत तथा माल्थस के सिद्धांत में अंतर स्पष्ट कीजिए

**3.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें–**

1–आर्थिक विचारों का इतिहास : वी.सी. सिन्हा

2–आर्थिक विचारों का इतिहास : डा.सिंह, मित्तल

3–आर्थिक विचारों का इतिहास : डा. युद्धवीर सिंह

4–आर्थिक विचारों का इतिहास : राम कुवारें, डा. राजवीर सिंह

# इकाई – 4

## जे. एस. मिल की विचारधारा, पारस्परिक मांग सिद्धांत

**इकाई की रुपरेखा–**

**4.0 उद्देश्य**

**4.1 प्रस्तावना**

**4.2 पारस्परिक मांग का सिद्धांत**

**4.3 सिद्धांत की मान्यताएं**

**4.4 जे.एस. मिल पारस्परिक मांग सिद्धांत की व्याख्या**

**4.5 पारस्परिक मांग के सिद्धांत की आलोचनाएँ**

**4.6 बोध प्रश्न**

**4.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें**

### 4.0 उद्देश्य–

1–प्रस्तुत इकाई में हम जे.एस. मिल के पारस्परिक मांग सिद्धांत का अध्ययन करेंगे।

2– इस इकाई में हम पारस्परिक मांग सिद्धांत की मान्यताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

3–इस इकाई में हम जे.एस. मिल् के पारस्परिक मांग सिद्धांत की व्याख्या के बारे में जानेंगे।

4–इस इकाई में हम पारस्परिक मांग सिद्धांत पर अन्य अर्थशास्त्रियों के विचारों से अवगत होंगे।

7–इस इकाई में हम जे.एस. मिल् पारस्परिक मांग सिद्धांत के आलोचनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

### 4.1 प्रस्तावना–

जे.एस.मिल के पारस्परिक मांग का सिद्धांत दोनों देशों के बीच अंतरराष्ट्रीय विनिमय की दर निर्धारित करने में रिकार्डों की विफलता का परिणाम था जिसमें आपूर्ति पहलू पर अत्यधिक जोर देने और मांग पहलू की पूरी तरह उपेक्षा के कारण थी। यह जे.एस. मिल ही थे, जिन्होंने रिकार्डों के तुलनात्मक लागत सिद्धांत की कमी को दूर करने का प्रयास किया था। उनके अनुसार, दो देशों के बीच वस्तुओं का वास्तविक लेन–देन जिस अनुपात में होता है, वह प्रत्येक देश की दूसरे देश के उत्पाद की मांग की लोच या पारस्परिक मांग पर निर्भर करता है। पारस्परिक मांग से मिल का तात्पर्य निर्यात की उन मात्राओं से था जो एक देश अलग–अलग व्यापार शर्तों पर आयात की अलग–अलग मात्रा के बदले में पेश करेगा। अर्थात पारस्परिक मांग का तात्पर्य दूसरे देश में एक देश के उत्पाद की मांग की तीव्रता से है।

### 4.2 पारस्परिक मांग का सिद्धांत

जे0एस0 मिल द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त ने एडम स्मिथ तथा रिकार्डो के सिद्धान्त को और मजबूती प्रदान किया। इसका कारण यह है कि अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त के अर्न्तगत दो प्रश्न विचारणीय होते हैं– पहला यह कि दो देशों के बीच व्यापार का क्या कारण है, और दूसरा यह कि दो देशों के बीच व्यापार अनुपात (व्यापार शर्त) का निर्धारण किस प्रकार होगा। एडम स्मिथ तथा रिकार्डो द्वारा विकसित सिद्धान्तों में पहले प्रश्न पर तो विचार किया गया परन्तु दूसरे प्रश्न पर विचार नहीं किया गया। जे0एस0 मिल ने अपने विश्लेषण में इस दूसरे प्रश्न को शामिल किया। वस्तुतः, मिल ने यह मत व्यक्त किया कि एडम स्मिथ तथा रिकार्डो, दोनों ने व्यापार के केवल पूर्ति पक्ष पर ध्यान दिया। इसीलिए वे व्यापार शर्त के निर्धारण पर विचार नहीं कर सके। मिल ने अपने विश्लेषण में दर्शाया कि एडम स्मिथ तथा रिकार्डो, दोनों के विश्लेषण में मॉग पक्ष भी निहित है। इसी मांग को मिल ने प्रतिपूरक मागं की संज्ञा दिया तथा कहा कि व्यापार शर्त का निर्धारण इस प्रतिपूरक मांग के आधार पर ही होगा।

इसीलिए यह सिद्वान्त पहले के दोनों सिद्धान्तों के एक पूरक सिद्धान्त के रुप में सामने आया। वस्तुतः, मिल ने, रिकार्डो प्रस्तुत विश्लेषणों में तुलनात्मक श्रेष्ठता में अन्तर को श्रम लागतों के रुप में न व्यक्त करके इसे श्रम की उत्पादकता के रुप में व्यक्त किया। तुलनात्मक श्रेष्ठता में अन्तर के इस परिवर्तित सकते हैं कि मिल के विश्लेषण के अर्न्तगत कुशलता में तुलनात्मक अन्तर को किस रुप में है, – उत्पादन में विशिष्टीकरण किस प्रकार होगा, – संभावित व्यापार शर्तं का निर्धारण किस प्रकार होगा, – प्रतिपूरक मांग का क्या अभिप्राय है, – सन्तुलन व्यापार शर्त का निर्धारण किस प्रकार होगा। कुशलता एवं अकुशलता में अन्तर तथा विशिष्टीकरण मिल ने अपने विश्लेषण में कुशलता एव ं अकुशलता को श्रम लागतों की मात्रा के बजाय श्रम की 1 इकाई से प्राप्त उत्पादन की मात्रा के रुप में व्यक्त किया। अर्थात् मिल ने तुलनात्मक लागत में अन्तर को श्रम की उत्पादकता के रुप में व्यक्त किया। यदि किसी देश में किसी वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त श्रम की उत्पादकता अधिक है तो वह देश उस वस्तु में श्रेष्ठ (कुशल) होगा यदि किसी देश में किसी वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त श्रम की उत्पादकता कम है तो वह देश उस वस्तु में अश्रेष्ठ (अकुशल) होगा । मिल के विश्लेषण में वर्णित तुलनात्मक लागतों में अन्तर की स्थिति को गणितीय उपकरण आव्यूह (मैट्रिक्स) के रुप में निम्नलिखित रुप में व्यक्त किया जा सकता है:–

मिल ने अपने विश्लेषण के माध्यम से यह व्यक्त किया कि जब दो देश व्यापार की प्रक्रिया मे शामिल होते हैं तो एक देश अपनी वस्तु को देसरे देश के लिए प्रस्तुत (पूर्ति) करता है और इसके बदले में दूसरे देश की वस्तु की मांग करता है। इस प्रकार व्यापार की प्रक्रिया में दोनों देशों के मांग के बीच प्रतिक्रिया होती है। अर्थात् दोनों देशों के बीच व्यापार की प्रक्रिया में मांग की प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है मांग के इसी प्रतिक्रिया को मिल ले प्रतिपूरक मांग कहा। सन्तुलन व्यापार शर्त का निर्धारण मिल ने अपने विश्लेषण के अर्न्तगत यह दर्शाया कि सन्तुलन व्यापार शर्त, संभावित व्यापार शर्तों के सीमा के भीतर ही होगा और इसका निर्धारण प्रतिपूरक मांग के आधार पर होगा। वह व्यापार शर्त जिस पर कि प्रत्येक देश के प्रस्ताव तथा मांग में सामंजस्य स्थापित हो जाय सन्तुलन व्यापार शर्त को व्यक्त करेगा।

### 4.3 सिद्धांत की मान्यताएं

जे.एस. मिल का पारस्परिक मांग का सिद्धांत निम्नलिखित मुख्य मान्यताओं पर आधारित है

(1) व्यापार दो देशों, । और ठ के बीच होता है।

(2) व्यापार दो वस्तुओं, ग और ल में है।

(3) दोनों देशों में उत्पादन स्थिर पैमाने के प्रतिफल द्वारा नियंत्रित होता है।

(4) दो देशों के बीच व्यापार तुलनात्मक लागत के सिद्धांत द्वारा नियंत्रित होता है।

(5) दोनों देशों में मांग का प्रारूप एक जैसा है।

(6) बाजार में पूर्णतः प्रतिस्पर्धी परिस्थितियाँ हैं।

(7) व्यापार पर कोई प्रतिबंध नहीं है और सरकार अहस्तक्षेप की नीति का पालन करती है।

(8) दोनों देशों में संसाधनों का पूर्ण उपयोग है।

(9) परिवहन लागत का अभाव है।

(10) प्रत्येक देश का निर्यात उसके आयात के भुगतान के लिए पर्याप्त है।

**4.4 जे.एस. मिल पारस्परिक मांग सिद्धांत की व्याख्या–**

मिल के पारस्परिक मांग के सिद्धांत को निम्नलिखित चित्र तालिका के आधार पर समझाया जा सकता है।

निम्नलिखित तालिका के अनुसार, दोनों देशों में X और Y वस्तुओं के बीच व्यापार–पूर्व विनिमय अनुपात इस प्रकार हैरू

देश एरू

X की 1 इकाई = Y की 0.63 इकाई

देश बीरू

X की 1 इकाई = Y की 0.80 इकाई

यदि उनके बीच व्यापार शुरू होता है, तो देश A, X के उत्पादन में विशेषज्ञता रखता है जबकि ठएल के उत्पादन में विशेषज्ञता रखता है। लेकिन मूल मुद्दा इस बात से संबंधित है कि वे किस दर पर अपने माल का आदान–प्रदान करेंगे। अंतर्राष्ट्रीय विनिमय दर पारस्परिक मांग या एक–दूसरे के उत्पादों की मांग की सापेक्ष तीव्रता के आधार पर घरेलू विनिमय अनुपात की दो सीमाओं के भीतर तय की जाएगी।

यदि देश B में X वस्तु की मांग कम लोचदार है, लेकिन देश A में Y वस्तु की मांग अधिक लोचदार है, तो देश B, X की दी गई इकाइयों की संख्या के आयात के लिए Y की अधिक इकाइयाँ देने को तैयार होगा और विनिमय की अंतर्राष्ट्रीय दर देश B के घरेलू विनिमय अनुपात के करीब होगी। इसका मतलब है कि विनिमय अनुपात या व्यापार की शर्तें देश । के लिए अधिक अनुकूल हैं और वह व्यापार से कुल लाभ में से बड़ा हिस्सा प्राप्त करेगा।

इसके विपरीत, यदि देश A में Y वस्तु की मांग लोचदार है और देश B में X वस्तु की मांग अधिक लोचदार है, तो देश B, X वस्तु की अधिक इकाइयों के बदले Y की एक अतिरिक्त इकाई छोड़ने को तैयार होगा। इस मामले में, अंतर्राष्ट्रीय विनिमय अनुपात देश A के घरेलू विनिमय अनुपात के करीब आ जाएगा। व्यापार की शर्तें अब देश B के लिए अधिक अनुकूल हैं और यह व्यापार से लाभ का एक बड़ा हिस्सा सुरक्षित करेगा।

पारस्परिक मांग के बल पर वास्तविक विनिमय दर का निर्धारण चित्र 5.1 के माध्यम से दिखाया गया है।

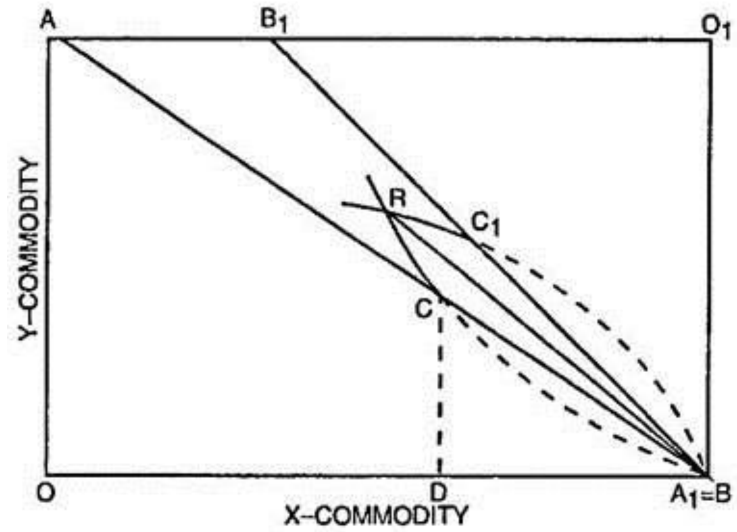

Fig. 5.1

।। 1 देश । के उत्पादन संभावना वक्र को दर्शाता है। यह ग और ल वस्तुओं के विभिन्न संयोजनों को दर्शाता है जिन्हें देश । निरंतर लागत स्थितियों और उपलब्ध श्रम इनपुट के पूर्ण उपयोग के साथ उत्पादित कर सकता है। इसी तरह ठठ 1 देश ठ के उत्पादन संभावना वक्र को दर्शाता है जिसका मूल ल है। मान लीजिए देश । वस्तु ग में विशेषज्ञता रखता है और देश ठ ल में विशेषज्ञता रखता है।

यदि पूर्ण विशेषज्ञता है, तो उत्पादन बिंदु ।1 = ठ है, जहाँ देश । सभी उत्पादक संसाधनों को ग के उत्पादन पर और देश ठए ल के उत्पादन पर लगाता है। ।। 1 और ठठ 1 उत्पादन संभावना वक्र घरेलू विनिमय अनुपात को भी दर्शाते हैं। व्यापार इन दो सीमाओं के भीतर होगा। इसलिए ।।1ए ठ1 संभावित व्यापार क्षेत्र को दर्शाता है। वास्तविक विनिमय अनुपात इसी क्षेत्र में कहीं होगा।

यदि देश । को ग की व्क मात्रा और ल की ब्क मात्रा की आवश्यकता है, तो वह विदेशी व्यापार की अनुपस्थिति में घरेलू उत्पादन के माध्यम से मांग को पूरा कर सकता है। मान लीजिए उसे ब्क की तुलना में ल की अधिक मात्रा की आवश्यकता है। ल की अतिरिक्त मांग को देश ठ से आयात करके पूरा किया जा सकता है। अब ।ए ल की अतिरिक्त इकाइयाँ प्राप्त करने के लिए ग की अधिक मात्रा छोड़ने की पेशकश करेगा। ।1ए ब् देश । के प्रस्ताव वक्र का प्रतिनिधित्व करता है। इस वक्र का ब।1 भाग काल्पनिक है क्योंकि ग और ल वस्तुओं के ये सभी संयोजन घरेलू उत्पादन और बाहरी व्यापार के बिना प्राप्त किए जा सकते हैं।

इसी तरह ठब 1 त देश ठ का ऑफर वक्र है और इस वक्र का ठब 1 हिस्सा काल्पनिक है। जैसे–जैसे हम देश । के ऑफर वक्र के ब् हिस्से के साथ आगे बढ़ते हैं, व्यापार की शर्तें । के अनुकूल होती जाती हैं। इसी तरह, ब1 त के साथ आगे बढ़ने पर व्यापार की शर्तें ठ के लिए ज्यादा अनुकूल होती जाती हैं। दोनों ऑफर वक्र एक–दूसरे को त पर काटते हैं।

इस संतुलन स्थिति में,प्रत्येक देश के निर्यात आयात के भुगतान के लिए पर्याप्त हैं। पारस्परिक मांग में कोई भी परिवर्तन इस वास्तविक विनिमय अनुपात में भिन्नता का कारण बनेगा। देश का प्रस्ताव वक्र जितना अधिक अलोचदार होगा, उसके लिए व्यापार की शर्तें उतनी ही अनुकूल होंगी और इसके विपरीत। त और । 1 (या ठ) को जोड़ने वाली रेखा दो देशों के लिए दो वस्तुओं के वास्तविक विनिमय अनुपात को दर्शाती है।

जे.एस. मिल ने पारस्परिक मांग के सिद्धांत को इस प्रकार संक्षेपित किया है।

(1) वस्तु विनिमय शर्तों की संभावित सीमा प्रत्येक देश में तुलनात्मक दक्षता द्वारा निर्धारित व्यापार की संबंधित शर्तों द्वारा दी जाती है।

(2) इस सीमा के भीतर, वास्तविक शर्तें प्रत्येक देश की दूसरे देश की उपज की मांग पर निर्भर करती हैं।

(3) अंततः, केवल वे वस्तु विनिमय शर्तें स्थिर होंगी जिन पर प्रत्येक देश द्वारा प्रस्तावित निर्यात उसके इच्छित आयातों के भुगतान के लिए पर्याप्त होंगे।

मार्शल के प्रस्ताव वक्र के उपकरण के उपयोग के माध्यम से जें. एस. मिल के पारस्परिक मांग के सिद्धांत को समझाना संभव है। किसी देश का प्रस्ताव वक्र उसके उत्पाद की विभिन्न मात्राओं का वर्णन करता है जो विदेशी देश के उत्पाद की निश्चित मात्रा की मांग को पूरा करने के लिए विदेशी देश को पेश की जा सकती हैं।

यह एक दूसरे के उत्पाद की मांग या पारस्परिक मांग है, जिसके आधार पर प्रत्येक देश के प्रस्ताव वक्र का निर्धारण किया जा सकता है। दो वस्तुओं ग और ल से संबंधित देशों । और ठ के बीच व्यापार की शर्तों को किस तरह से निर्धारित किया जा सकता है, इसे चित्र 5.2 के माध्यम से दिखाया गया है।

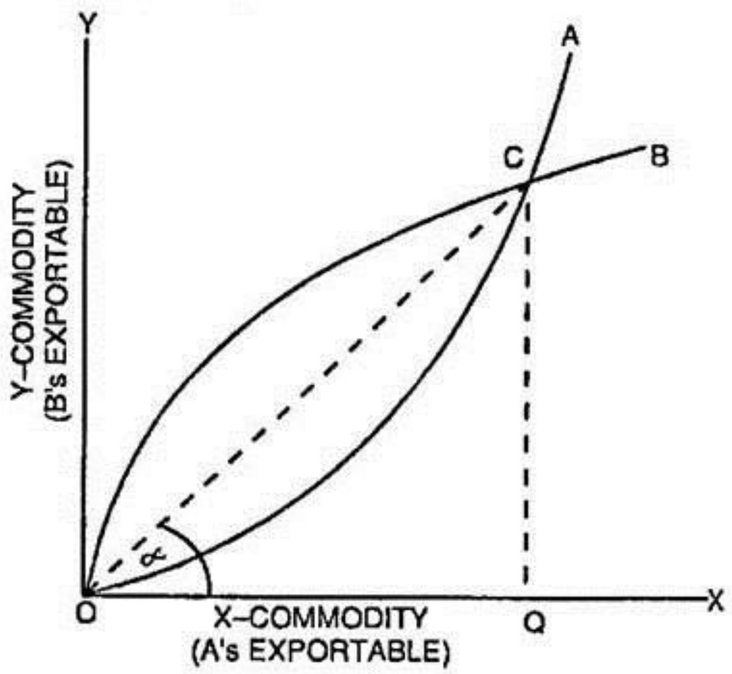


Fig. 5.2

चित्र 5.2 में, ग वस्तु जो । की निर्यात योग्य है, क्षैतिज पैमाने पर मापी जाती है और ल वस्तु जो ठ की निर्यात योग्य है, ऊर्ध्वाधर पैमाने पर मापी जाती है। ट। देश । का प्रस्ताव वक्र है और व्ठ देश ठ का प्रस्ताव वक्र है। वक्र ट। पर प्रत्येक बिंदु ग की विभिन्न मात्राओं को दर्शाता है जिसे देश । ल की विभिन्न मात्राओं के बदले में प्रदान करता है।

इसी तरह देश ठ के प्रस्ताव वक्र व्ठ पर विभिन्न बिंदु वस्तु ल की मात्रा को दर्शाते हैं जिसे देश ठ ग वस्तु की विभिन्न मात्राओं के साथ विनिमय के लिए प्रदान करता है। संतुलन विनिमय ब पर होता है जहाँ दो प्रस्ताव वक्र एक दूसरे को काटते हैं। देश ।ए ल–वस्तु की ब्फ मात्रा के बदले में ग की क्फ मात्रा का निर्यात करता है। व्यापार की शर्तें (ज्व्ज) आयातित (या मांग की गई) मात्रा और निर्यात की गई (या आपूर्ति की गई) मात्रा के अनुपात से मापी जाती हैं, जो संतुलन स्थिति ब में ब्फध्व्फ है।

ब पर ज्व्ज = फ ड ध्फ ग = ब्फध्व्फ = रेखा व्ब का ढलान = जंद ∝

यदि देश । की उत्पाद ल वस्तु की मांग बढ़ जाती है, तो वह ल वस्तु की समान मात्रा के बदले ग वस्तु की अधिक मात्रा देने को तैयार हो जाएगी। ऐसी स्थिति में, देश । का प्रस्ताव वक्र दाईं ओर खिसक जाएगा। इसके विपरीत, यदि उत्पाद ल की । की मांग कम हो जाती है, तो वह ल की समान मात्रा के बदले ग की कम मात्रा देने को तैयार हो जाएगी। इस स्थिति में, देश । का प्रस्ताव वक्र अपनी मूल स्थिति के बाईं ओर खिसक जाएगा।

इसी तरह,यदि देश ठ की ग वस्तु की मांग बढ़ती है, तो वह ग वस्तु की समान मात्रा प्राप्त करने के लिए ल वस्तु की अधिक मात्रा की पेशकश करने को तैयार होगा। इससे देश ठ के प्रस्ताव वक्र में उसकी मूल स्थिति के बाईं ओर बदलाव आएगा। इसके विपरीत, ग वस्तु की मांग में कमी से उसके प्रस्ताव वक्र में दाईं ओर बदलाव आएगा। वास्तविक संतुलन विनिमय अनुपात या व्यापार की शर्तों पर इन बदलावों का प्रभाव चित्र 5.3 और 5.4 के माध्यम से दिखाया जा सकता है।

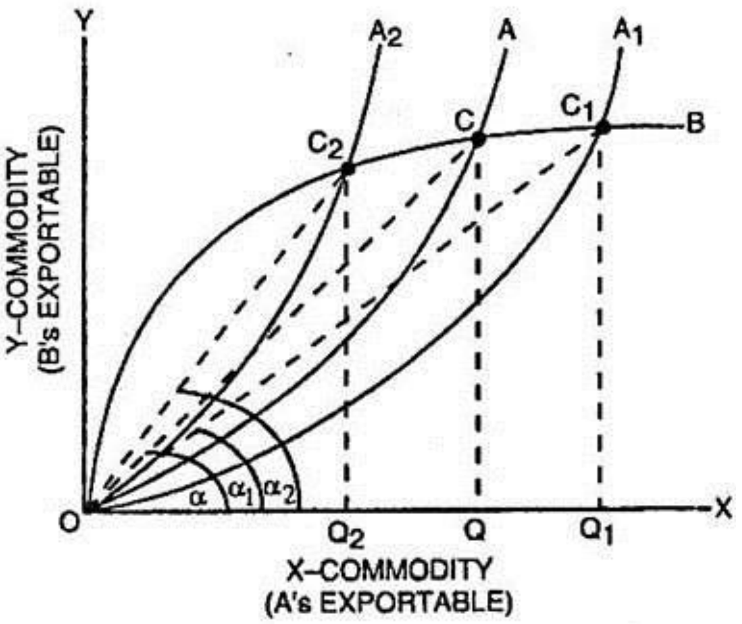


Fig. 5.3

चित्र 5.3 में, व। और व्ठ क्रमशः दो देशों । और ठ के मूल प्रस्ताव वक्र हैं। ब संतुलन विनिमय का बिंदु है और ज्व्ज पर ब = फ ड ध्फ ग = ब्फध्व्फ = रेखा का ढलान व्ब = जंद ∝ है। यदि उत्पाद ल के लिए । की मांग बढ़ती है, तो देश । का प्रस्ताव वक्र दाईं ओर व। 1 पर शिफ्ट हो जाता है। व। 1 और व्ठ

के बीच प्रतिच्छेदन ब 1 पर होता है , जहाँ ब 1 फ 1 ल की मात्रा ग की क्फ 1 मात्रा के विनिमय में महत्वपूर्ण है।

ब 1 पर ज्व्ज = फ ड ध्फ ग = ब 1 फ 1 ध्क्फ 1 = रेखा ब्ब 1 का ढलान = ज्ंद ∝ 1. चूँकि ज्ंद ∝ 1 ज्ंद , ज्व्ज देश । के लिए प्रतिकूल या देश ठ के लिए अनुकूल हो गए हैं। यदि उत्पाद ल के लिए । की मांग कम हो जाती है, तो । का प्रस्ताव वक्र व। से व। 2 तक बाईं ओर स्थानांतरित हो जाता है और विनिमय संतुलन वक्र व। 2 और व्ठ के प्रतिच्छेदन के माध्यम से ब 2 पर होता है ।

देश ।ए ल की ब 2 फ 2 मात्रा का आयात करता है और ग की क्फ 2 मात्रा का निर्यात करता है। ब 2 पर ज्व्ज = फ ड ध्फ ग = ब 2 फ 2 ध्क्फ 2 = रेखा ब्ब 2 का ढलान = ज्ंद ∝ 2 ।

चूँकि ज्ंद ∝ 2 झ ज्ंद ∝ इसलिए व्यापार की शर्तें देश । के लिए अनुकूल और देश ठ के लिए प्रतिकूल हो गई हैं।

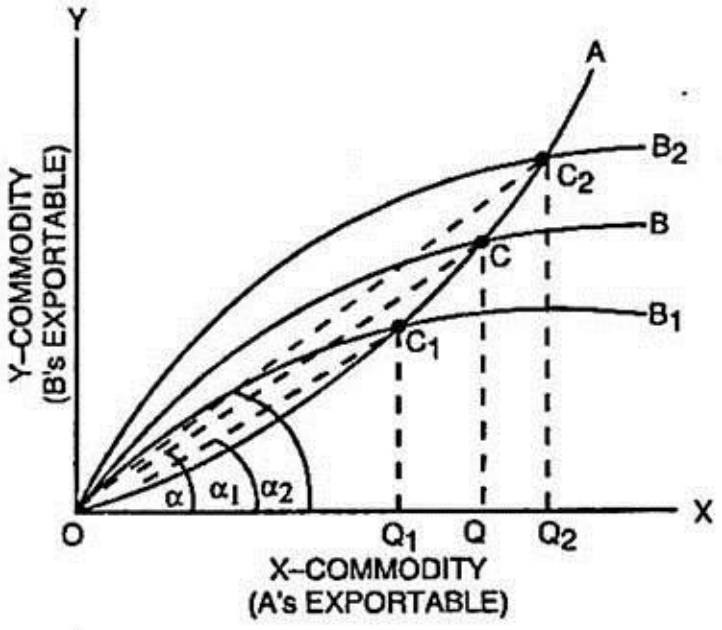


Fig. 5.4

चित्र 5.4 में, व। और व्ठ को क्रमशः देश । और ठ के प्रस्ताव वक्र के रूप में दिया गया है, ब विनिमय का बिंदु है। देश ।ए ल की ब्फ मात्रा आयात करने के लिए ग की क्फ मात्रा का निर्यात करता है। ब पर ज्व्ज = फ ड ध्फ ग = ब्फध्क्फ = रेखा ब्ब का ढलान = ज्ंद ∝। यदि ठ का प्रस्ताव वक्र बाईं ओर व्ठ 2 पर शिफ्ट हो जाता है, जहां ठ की ग–वस्तु की मांग बढ़ जाती है, तो संतुलन व। और व्ठ 2 के प्रतिच्छेदन के माध्यम से ब 2 पर होता है । बिंदु ब 2 पर , देश ठए ग की क्फ 2 मात्रा का आयात करता है और ल वस्तु की ब 2 फ 2 मात्रा का निर्यात करता है। देश । के दृष्टिकोण से, बिंदु ब 2 पर ज्व्ज = फ ड ध्फ ग = ब 2 फ 2 ध्ब 2 फ = रेखा ब्ब 2 का ढलान = ज्ंद ∝ 2 ।

चूँकि ज्ंद ∝ 2 झ ज्ंदए इस देश के लिए ज्व्ज में सुधार हुआ है। यह दर्शाता है कि व्यापार की शर्तें देश ठ के खिलाफ चली गई हैं। इसके विपरीत, यदि ठ की ग–वस्तु की मांग कम हो जाती है, तो वह पहले की तरह ग की समान मात्रा होने के बावजूद वस्तु ल की कम मात्रा की पेशकश करता है। स्थिति में, देश ठ का प्रस्ताव वक्र व्ठ 1 पर दाईं ओर शिफ्ट हो जाता है । विनिमय ब 1 पर होता है जहाँ व्ठ

1 ट। को काटता है। देश ठ ग की क्क 1 मात्रा का आयात करता है और ल की ® 1 फ 1 मात्रा का निर्यात करता है। देश । के दृष्टिकोण से, ® पर ज्व्ज 1 = फ ड ध्फ ग = ब्क 1 ध्ब 1 फ = रेखा ब्व 1 का ढलान = ज्ंद ∝ 1 ।

चूँकि ज्ंद ∝ 1 ढ ज्ंद ∝, देश । के लिए व्यापार की शर्तें बिगड़ जाती हैं जबकि ये देश ठ के लिए अनुकूल हो जाती हैं। इस प्रकार एक दूसरे के उत्पाद की मांग की तीव्रता व्यापारिक देशों के लिए व्यापार की शर्तों में परिवर्तन को निर्धारित करती है।

वास्तविक संतुलन विनिमय दर व्यापारिक देशों के प्रस्ताव वक्रों की लोच से भी निर्धारित होती है। किसी देश के प्रस्ताव वक्र की लोच जितनी अधिक होगी, दूसरे देश के संबंध में उसके लिए व्यापार की शर्तें उतनी ही प्रतिकूल होंगी और इसके विपरीत।

मिल के पारस्परिक मांग के सिद्धांत का विश्लेषण दो देशों के प्रस्ताव वक्रों के संदर्भ में किया जाता है, जो दोनों देशों के बीच व्यापार से लाभ के वितरण का एक माप भी प्रदान कर सकता है। इसे चित्र 5.5 के माध्यम से समझाया जा सकता है।

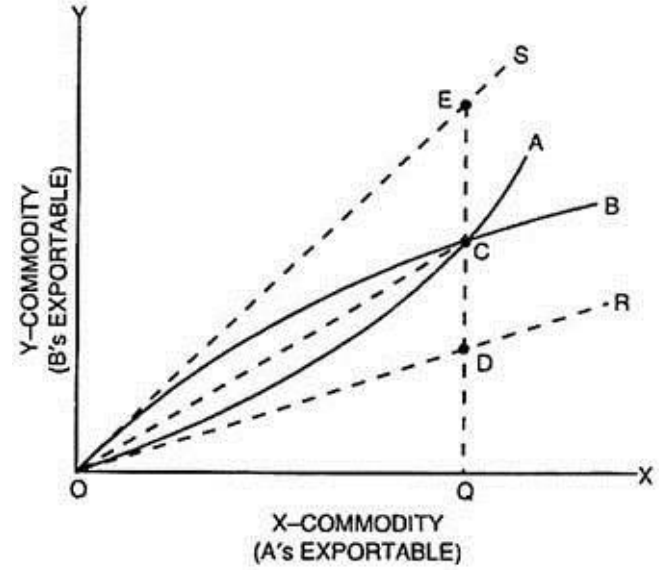


Fig. 5.5

चित्र 5.5 में, ट। और व्ठ क्रमशः देश । और ठ के प्रस्ताव वक्र हैं। रेखा व्ट का ढलान देश । में घरेलू विनिमय अनुपात को मापता है। रेखा ै का ढलान देश ठ के घरेलू विनिमय अनुपात को मापता है। जब व्यापार होता है, तो विनिमय संतुलन ® पर निर्धारित होता है जहाँ ट। और व्ठ एक दूसरे को काटते हैं। अंतर्राष्ट्रीय विनिमय अनुपात को ब्फध्व्फ या रेखा ब्व के ढलान द्वारा मापा जाता है।

व्यापार की अनुपस्थिति में, घरेलू विनिमय अनुपात रेखा व्ट के अनुसार, देश ।, ल के क्फ को ग के व्फ के साथ विनिमय करता है, लेकिन व्यापार होने के बाद, वह ग की व्फ मात्रा के निर्यात के बदले में ल की ब्फ मात्रा का आयात कर सकता है। इस प्रकार देश । के लिए व्यापार से लाभ, ल की ब्फ दृ क्फ = ब्क इकाइयों के बराबर है।

देश ठ के मामले में, घरेलू विनिमय अनुपात रेखा ै को देखते हुए व्यापार–पूर्व स्थिति यह थी कि उसने ल की म्फ मात्रा को ग की व्फ मात्रा के साथ विनिमय किया। लेकिन व्यापार शुरू होने के बाद, देश ठए ग की व्फ मात्रा के आयात के लिए केवल ल की ब्फ मात्रा का निर्यात करता है। इस प्रकार देश ठ के लिए व्यापार से लाभ म्फ दृ ब्फ = म्ब है। एक देश की घरेलू विनिमय अनुपात रेखा के जितना करीब

**अंतरराष्ट्रीय विनिमय अनुपात रेखा होगी, दूसरे देश के लिए व्यापार से लाभ उतना ही अधिक होगा और इसके विपरीत।**

### 4.5 पारस्परिक मांग के सिद्धांत की आलोचनाएँ–

जे.एस. मिल के पारस्परिक मांग के सिद्धांत की सैद्धांतिक संरचना तुलनात्मक लागत के रिकार्डियन सिद्धांत की नींव पर टिकी हुई है।

परिणामस्वरूप, मिल के सिद्धांत में सैद्धांतिक मान्यताएँ लगभग रिकार्डियन सिद्धांत के समान ही हैं। यह मिल के पारस्परिक माँग के सिद्धांत को रिकार्डियन विश्लेषण में पाई जाने वाली समान कमजोरियों के प्रति संवेदनशील बनाता है।

संरचनात्मक कमियों के अतिरिक्त, मिल के दृष्टिकोण पर एफ.डी. ग्राहम और जैकब वाइनर द्वारा निम्नलिखित मुख्य आधारों पर हमला किया गया है।

### (1) आपूर्ति की उपेक्षा–

ग्राहम के अनुसार, पारस्परिक मांग सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीय मूल्यों को निर्धारित करने के लिए मांग पर बहुत अधिक ध्यान केंद्रित करता है और आपूर्ति पहलू को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया गया है। इस तरह के दृष्टिकोण को स्वीकार किया जा सकता है, यदि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धांत उत्पाद की निश्चित मात्रा के संदर्भ में बनाया गया हो। व्यवहार में, व्यापार में ऐसी वस्तुएं शामिल होती हैं जिनकी आपूर्ति में महत्वपूर्ण बदलाव होते हैं। इसलिए, आपूर्ति की स्थितियों का अंतर्राष्ट्रीय विनिमय अनुपात पर निर्णायक प्रभाव पड़ना तय है।

### (2) अनावश्यक–

ग्राहम ने अंतर्राष्ट्रीय मूल्यों के सिद्धांत में पारस्परिक मांग के पूरे विचार को अनावश्यक बताया। यदि उत्पादन निरंतर लागत की स्थितियों के तहत होता है, जैसा कि रिकार्डो और मिल दोनों ने माना है, तो आपूर्ति की स्थितियाँ ही विनिमय की अंतिम संतुलन दर को तय करने के लिए पर्याप्त हैं।

### (3) घरेलू मांग की उपेक्षा–

इस सिद्धांत में, अंतर्राष्ट्रीय विनिमय को एक देश में दूसरे देश के उत्पाद की मांग या पारस्परिक मांग से प्रभावित माना जाता है। प्रत्येक देश में उसके निर्यात योग्य उत्पाद की घरेलू मांग भी एक महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकती है क्योंकि प्रत्येक देश द्वारा उस उत्पाद का निर्यात करने की संभावना होती है, जो घरेलू मांग को पूरा करने के बाद बचता है। घरेलू मांग की अनदेखी करके विनिमय अनुपात का निर्धारण स्पष्ट रूप से दोषपूर्ण था।

### (4) बहु–देशीय, बहु–वस्तु व्यापार में प्रासंगिक नहीं–

रिकार्डियन–मिल तुलनात्मक लागत सिद्धांत में संपूर्ण विश्लेषण दो–देश और दो–वस्तु मॉडल के संदर्भ में है। वास्तविक दुनिया में बहु–देश, बहु–वस्तु व्यापार की स्थिति में, इस बात की प्रबल संभावना है कि व्यापार की अंतर्राष्ट्रीय शर्तें पारस्परिक मांग के बजाय लागत अनुपातों द्वारा निर्धारित की जाती हैं।

### (5) व्यापारिक देशों का आकार–

पारस्परिक मांग सिद्धांत संभवतः दो व्यापारिक देशों के बीच व्यापार की शर्तों को प्रभावित कर सकता है, बशर्ते कि दोनों देश बराबर आकार के हों और उनके संबंधित उत्पादों के मूल्य भी बराबर हों। हालाँकि,

अगर दोनों में से एक देश बड़ा है और दूसरा छोटा है, तो व्यापार से होने वाला लाभ बड़े देश के बजाय बड़े पैमाने पर छोटे देश को जाता है।

चूंकि छोटे देश की उपज बड़े देश की जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है और साथ ही, छोटे देश दूसरे देश की उपज को पूरी तरह से अवशोषित नहीं कर सकते हैं, इसलिए बड़े देश में अपूर्ण विशेषज्ञता होगी लेकिन छोटे देश में पूर्ण विशेषज्ञता होगी। छोटे देश को बड़े देश द्वारा दी जाने वाली हर चीज को लेना होगा और दूसरे देश की जरूरत के हिसाब से निर्यात करना होगा।

असमान आकार वाले देशों के बीच व्यापार में, इसलिए पारस्परिक मांग का बहुत कम महत्व है। एक छोटा देश आमतौर पर कीमत तय करने के बजाय कीमत लेने वाला होता है। चूँकि व्यापार की शर्तें बड़े देश के घरेलू विनिमय अनुपात के करीब होने की संभावना है, इसलिए व्यापार से बड़ा लाभार्थी बड़े देश के बजाय छोटा देश होगा।

**(6) आय में भिन्नतारू**

मिल के पारस्परिक मांग के सिद्धांत का मानना है कि दो देशों में आय का स्तर एक जैसा रहता है। ऐसी धारणा अवास्तविक है। इसके अलावा आय में भिन्नता का व्यापारिक देशों के बीच व्यापार की शर्तों पर प्रभाव पड़ सकता है। यह सिद्धांत व्यापार की शर्तों और पैटर्न पर आय भिन्नता के प्रभाव को अनदेखा करता है।

**(7) अति–सरलीकरण–**

पारस्परिक मांग का सिद्धांत वास्तविकता का अति–सरलीकरण है। व्यापार की अंतर्राष्ट्रीय शर्तों के निर्धारण में, यह मजदूरी–मूल्य कठोरता, मूल्य आंदोलनों और भुगतान संतुलन की स्थिति जैसे महत्वपूर्ण कारकों को ध्यान में रखने में विफल रहता है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि ग्राहम द्वारा दिए गए कुछ तर्क कुछ हद तक वजनदार हैं। आपूर्ति कारक की उपेक्षा निश्चित रूप से जे.एस.मिल की ओर से एक गंभीर चूक थी, लेकिन यह मान लेना यथार्थवादी नहीं है कि पारस्परिक मांग का बिल्कुल भी महत्व नहीं है। फाइंडले के शब्दों में, तथ्य यह है कि व्यापार की शर्तें आमतौर पर कुछ मध्यवर्ती या सीमांत देश के लागत अनुपात के बराबर होंगी, इसका मतलब यह नहीं है कि मांग को समाप्त किया जा सकता है, क्योंकि यह वास्तव में मांग की स्थिति है जो निर्धारित करती है कि कौन सा सीमांत देश है जिसका लागत अनुपात व्यापार की शर्तों के बराबर है।

वास्तव में, पारस्परिक मांग सिद्धांत की ग्राहम की अधिकांश आलोचना अनुचित और गुमराह करने वाली थी। बढ़ती लागतों की स्थितियों में, जब देशों के पास अपूर्ण विशेषज्ञता होने की संभावना होती है, तो लागत अनुपात और पारस्परिक मांग दोनों को व्यापार की शर्तों को निर्धारित करना चाहिए। देशों के बीच व्यापार संबंधों में पारस्परिक मांग को एक अप्रासंगिक कारक के रूप में खारिज करना स्पष्ट रूप से भ्रामक है।

**4.6 बोध प्रश्न–**

1–पारस्परिक मांग सिद्धांत से आप क्या समझते हैं?

2–जे.एस. मिल के पारस्परिक मांग सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।

3–पारस्परिक मांग सिद्धांत की मान्यताओं का वर्णन कीजिए।

4–पारस्परिक मांग सिद्धांत के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का विश्लेषण कीजिए।

5–जे.एस. मिल के पारस्परिक मांग सिद्धांत पर टिप्पणी लिखिए।

6–जे.एस. मिल के पारस्परिक मांग सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

## 4.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें–


1–आर्थिक विचारों का इतिहास : वी.सी. सिन्हा

2–आर्थिक विचारों का इतिहास : डा. सिंह, मित्तल

3–आर्थिक विचारों का इतिहास : डा. युद्धवीर सिंह

4–आर्थिक विचारों का इतिहास : राम कुवारें, डा. राजवीर सिंह

5– उच्चतर समष्टि अर्थशास्त्र : वी.सी. सिन्हा

# इकाई– 5

# जर्मनी का इतिहासवादी सम्प्रदाय, सिसमाण्डी

**इकाई की रूपरेखा**


**5.1 उदेश्य**

**5.2 प्रस्तावना**

**5.3 जीन–चार्ल्स–लियोनार्ड सिमोंडे डी सिस्मोंडी के कार्य**

**5.4 सिसमाण्डी का इतिहासवादी सम्प्रदाय**

**5.5 सारांश**

**5.6 बोध प्रश्न**

**5.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची/उपयोगी पुस्तकें**


## 5.1 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई में जीन–चार्ल्स –लियोनार्ड सिमोंडे डी सिस्मोंडी की भूमिका से अवगत होंगे।
- प्रस्तुत इकाई में जीन–चार्ल्स–लियोनार्ड सिमोंडे डे सिस्मोंडी के जीवन परिचय का अध्ययन करेंगे।
- प्रस्तुत इकाई में जीन–चार्ल्स–लियोनार्ड सिमोंडे डी सिस्मोंडी के कार्य के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई में सिसमाण्डी का इतिहासवादी सम्प्रदाय की भूमिका से अवगत होंगे।

## 5.2 प्रस्तावना

स्विस इतिहासकार और अर्थशास्त्री जीन–चार्ल्स –लियोनार्ड सिमोंडे डी सिस्मोंडी ने 19वीं सदी की शुरुआत में आर्थिक और ऐतिहासिक विश्लेषण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनके काम ने ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या करने में सामाजिक और आर्थिक स्थितियों को समझने के महत्व पर जोर दिया, आर्थिक सिद्धांत और सामाजिक प्रभाव पर ध्यान केंद्रित किया। पूंजीवादी व्यवस्था और सामाजिक संरचनाओं पर इसके प्रभाव की सिस्मोंडी की आलोचना ऐतिहासिक विश्लेषण में आर्थिक कारकों को एकीकृत करने का एक अग्रणी प्रयास था। उनके दृष्टिकोण ने ष्आर्थिक ऐतिहासिक विश्लेषणष के विकास में योगदान दिया, जो बाद के आर्थिक इतिहासकारों और सामाजिक वैज्ञानिकों के लिए एक अग्रदूत था। सिस्मोंडी के काम की विशेषता आर्थिक सिद्धांत को ऐतिहासिक विश्लेषण के साथ एकीकृत करना है, जो आर्थिक स्थितियों और ऐतिहासिक विकास के बीच परस्पर क्रिया की सूक्ष्म समझ प्रदान करता है। उनका काम आर्थिक इतिहास और ऐतिहासिक घटनाओं के सामाजिक–आर्थिक विश्लेषण में समकालीन अध्ययनों के लिए प्रासंगिक बना हुआ है। 1773 में जन्मे, उनका काम अपने समय के प्रमुख ऐतिहासिक स्कूलों, विशेष रूप से जर्मन पद्धति से अलग है। सिस्मोंडी के ऐतिहासिक

विश्लेषण ने ऐतिहासिक विकास पर आर्थिक स्थितियों और सामाजिक संरचनाओं के प्रभाव पर ध्यान केंद्रित किया, आर्थिक सिद्धांत को ऐतिहासिक कथा के साथ एकीकृत किया। लेसेज–फेयर पूंजीवाद और उसके सामाजिक नतीजों की उनकी आलोचना ने आर्थिक विचार को बदल दिया, और अधिक न्यायसंगत और सामाजिक रूप से जागरूक नीतियों की आवश्यकता पर जोर दिया। आर्थिक शक्तियों और सामाजिक गतिशीलता के परस्पर क्रिया के माध्यम से इतिहास का अवलोकन करके, सिस्मोंडी ने अतीत की एक सूक्ष्म समझ प्रदान की, आर्थिक स्थितियों और ऐतिहासिक घटनाओं की परस्पर संबद्धता पर प्रकाश डाला।

जीन–चार्ल्स–लियोनार्ड सिमोंडे डे सिस्मोंडी, स्विटजरलैंड के जिनेवा में जन्मे, इटली के मध्यकालीन पीसा से एक कुलीन परिवार थे। उन्होंने 16वीं शताब्दी की शुरुआत में गुएल्फ–गिबेलिन संघर्षों के कारण फ्रांस में शरण ली और दक्षिणी डौफिन क्षेत्र में खुद को स्थापित किया। प्रोटेस्टेंट कैल्विनवाद में परिवर्तित होने के बाद, वे जिनेवा गणराज्य में चले गए और उच्च पदों पर पहुँचे। सिस्मोंडी के पिता ने अपने कुलीन वंश की इतालवी वर्तनी को पुनर्जीवित किया और दोहरा उपनाम षसिमोंडे डे सिस्मोंडीष बनाया। उन्होंने ल्यों में प्रशिक्षुता प्राप्त की लेकिन फ्रांसीसी क्रांति में फंस गए, जिसके कारण उन्हें जिनेवा लौटना पड़ा। फ्रांसीसी क्रांतिकारी युद्धों ने जिनेवन सरकार को उलट दिया, जिसके कारण सिस्मोंडी की गिरफ्तारी हुई और उनकी संपत्ति जब्त कर ली गई। 1793 में रिहा होने के बाद, वे इंग्लैंड और फिर टस्कनी चले गए, जहाँ उन्होंने पेसिया के पास एक पारिवारिक फार्म स्थापित किया। टस्कनी में सिस्मोंडी के अनुभवों ने 1801 में उनके पहले काम को जन्म दिया।

1800 में, सिस्मोंडी जिनेवा लौट आए और चौंबर ऑफ कॉमर्स में सचिव बन गए। उनके पहले अर्थशास्त्र ग्रंथ, रिचेस कमर्शियल ने फिजियोक्रेट्स और एडम स्मिथ की प्रणालियों की तुलना की, उनके अर्थशास्त्र और उदार नीति सिफारिशों का बचाव किया। इस काम ने फ्रांस में एडम स्मिथ के विचारों को लोकप्रिय बनाने में जीन–बैप्टिस्ट से के काम के साथ प्रतिस्पर्धा की। इटली में रहते हुए 1796 में शुरू हुई सिस्मोंडी की प्रमुख परियोजना राजनीतिक संविधानों की तुलनात्मक जांच थी। उन्होंने मध्यकालीन इतालवी गणराज्यों के इतिहास पर शोध किया, जिसके परिणामस्वरूप स्मारकीय हिस्टॉयर डेस रिपब्लिक्स इटालियन्स, 11वीं शताब्दी के सांप्रदायिक युग से 16वीं शताब्दी के पुनर्जागरण तक मध्यकालीन गणराज्यों का पहला और बेजोड़ इतिहास बना। 1811 में जिनेवा में दिए गए व्याख्यानों के परिणामस्वरूप, सिस्मोंडी ने इतालवी और दक्षिणी यूरोपीय साहित्य पर निबंध लिखने के लिए काम को बीच में ही रोक दिया। इस अवधि के दौरान, सिस्मोंडी जैक्स नेकर के घर में अक्सर मेहमान बनते थे और मैडम डी स्टेल के करीबी दोस्त बन गए, इटली और जर्मनी की यात्राओं पर उनके साथ जाते थे। वे गुलामी के खिलाफ आंदोलन में भी शामिल हो गए, 1814 में दास व्यापार के खिलाफ दो उल्लेखनीय ग्रंथ और 1817 में एक और ग्रंथ लिखा। 1814 में नेपोलियन के साम्राज्य के पतन के बाद, जिनेवा को स्वतंत्रता मिली और सिमोंडे डी सिस्मोंडी को पुनर्जन्म वाले गणराज्य की संप्रभु परिषद के लिए चुना गया। पेरिस में, सिस्मोंडी ने नेपोलियन के कारण का बचाव करते हुए मॉनीटर के लिए लेख लिखे, जिसका उन्होंने जोरदार बचाव किया। नेपोलियन ने सिस्मोंडी को लीजन ऑफ ऑनर की पेशकश की, लेकिन उन्होंने मना कर दिया। 1815 में, सिस्मोंडी ने ब्रूस्टर के एडिनबर्ग एनसाइक्लोपीडिया के लिए राजनीतिक अर्थव्यवस्था पर एक लेख लिखा, जिसमें उन्होंने श्रम समस्याओं और अतिउत्पादन सहित अर्थशास्त्र पर अपने शोध को स्पष्ट किया। युद्ध के बाद के अवसाद के दौरान इंग्लैंड की उनकी यात्रा ने उन्हें प्रभावित किया, और उन्होंने अपने मुख्य अर्थशास्त्र कार्य, नोव्यू प्रिंसिपेस (1819 ए 1827 में विस्तारित) में इन विचारों को विस्तार से बताया।

सिमोंडे डी सिस्मोंडी ने पूंजीवादी औद्योगिक प्रणाली का विरोध किया, यह तर्क देते हुए कि यह गरीबों के लिए हानिकारक है और माल की अपर्याप्त मांग के कारण संकट की संभावना है। उनकी कम खपत की थीसिस को रॉबर्ट माल्थस ने साझा किया, जिसने 1820 के दशक में जनरल ग्लूट विवाद को जन्म

दिया। सिस्मोंडी केवल आंशिक रूप से बहस का पालन करने में सक्षम थे, और 1819 में शादी करने के बाद, उन्होंने फ्रांस के इतिहास पर एक बहु–खंड ऐतिहासिक कार्य पर काम करना शुरू कर दिया। उन्होंने फ्रांस में अर्थशास्त्र और इतिहास को ठुकरा दिया, और लेखन पर ध्यान केंद्रित करना पसंद किया। उन्होंने व्युत्पन्न कार्यों का निर्माण किया, जैसे लार्डनर के इतालवी इतिहास का संक्षेपण, जिनेवा में प्रारंभिक मध्यकालीन इतिहास पर व्याख्यान और 1822 में एक ऐतिहासिक उपन्यास (जूलिया सेवेरा)। लेखन पर उनके ध्यान ने उनकी शादी और उनके काम के प्रकाशन को जन्म दिया। 1836 में, सिस्मोंडी ने राजनीतिक संविधानों पर अपना अध्ययन और आर्थिक निबंधों की एक श्रृंखला प्रकाशित की। हालांकि, उनका मुख्य ध्यान फ्रांस के इतिहास पर था। 16वीं शताब्दी के अंत तक काम पूरा करने के बाद, सिस्मोंडी ने इसे समाप्त करने का फैसला किया और 1839 में एक संक्षेपण प्रकाशित किया।

### 5.3 जीन–चार्ल्स–लियोनार्ड सिमोंडे डी सिस्मोंडी के कार्य

जीन–चार्ल्स–लियोनार्ड सिमोंडे डी सिस्मोंडी के कार्यों का सारणीबद्ध विवरण इस प्रकार हैरू

| **क्षेत्र** | **कार्यध्पुस्तक** | **विवरण** |
|---|---|---|
| आर्थिक सिद्धांत | **"Nouveaux Principes d'Économie Politique"** (1819) | पूंजीवाद और औद्योगिक समाज की आलोचनाय आर्थिक असमानता, समाज पर नकारात्मक प्रभाव, और एक स्थिर आर्थिक प्रणाली की आवश्यकता पर ध्यान। |
| | **"De la richesse commerciale" (1803)** | वाणिज्यिक धन और व्यापारिक गतिविधियों की समीक्षाय आर्थिक वृद्धि के विभिन्न दृष्टिकोण और व्यापार के सामाजिक प्रभाव पर विचार। |
| इतिहास और समाजशास्त्र | **"Histoire des Républiques Italiennes du Moyen Âge" (1807-1825)** | मध्यकालीन इटली के गणराज्यों का अध्ययनय राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक ढांचे का विश्लेषण। |
| | **"Histoire des Français" (1821-1827)** | फ्रांस के इतिहास का अध्ययनयसामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों और ऐतिहासिक प्रक्रियाओं पर ध्यान। |
| सामाजिक और राजनीतिक विचार | सामाजिक सुधार और न्याय | गरीब वर्गों की स्थिति में सुधार के लिए सुझावय आर्थिक असमानता के खिलाफ विचार और सामाजिक न्याय की आवश्यकता पर जोर। |
| | वर्ग संघर्ष एवं सामाजिक न्याय | वर्ग संघर्ष की अवधारणाय सामाजिक और राजनीतिक सुधारों के माध्यम से आर्थिक असमानता को कम करने की आवश्यकता। |
| आर्थिक दृष्टिकोण | सम्पत्ति और विकास | संपत्ति का असमान वितरण और इसका आर्थिक विकास पर प्रभावय अधिक समानता और सामाजिक न्याय से विकास को बढ़ावा देने की |

| | | |
|---|---|---|
| | | आवश्यकता। |
| | वित्तीय और व्यापारिक संकट | वित्तीय और व्यापारिक संकटों की भविष्यवाणीय अनियंत्रित आर्थिक गतिविधियाँ और पूंजीवादी प्रवृत्तियाँ संकट पैदा कर सकती हैं। |

इस सारणी में सिस्मोंडी के कार्यों के प्रमुख पहलुओं और उनके योगदान का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। उनके विचारों ने आर्थिक, ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टिकोणों में महत्वपूर्ण प्रभाव डाला।

**5.4 सिसमाण्डी का इतिहासवादी सम्प्रदायः**

- इतिहास पर ध्यानरू सिसमाण्डी ने इतिहास के अध्ययन में एक विशेष दृष्टिकोण अपनाया, जो कि उनके समय के अन्य इतिहासकारों से अलग था। उन्होंने इतिहास को केवल घटनाओं का क्रम मानने के बजाय समाज और उसकी परिस्थितियों का अध्ययन करने पर जोर दिया।

- आर्थिक दृष्टिकोणरू सिसमाण्डी ने आर्थिक संकटों और उनके सामाजिक प्रभावों पर ध्यान केंद्रित किया। उनका मानना था कि आर्थिक प्रणाली की समस्याओं को समझे बिना इतिहास की वास्तविक समझ संभव नहीं है।

- सामाजिक दृष्टिकोणरू उन्होंने समाज की सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं पर जोर दिया और उन पर आधारित ऐतिहासिक घटनाओं का विश्लेषण किया। उनका काम ऐतिहासिक घटनाओं के सामाजिक और आर्थिक प्रभावों को समझने के लिए महत्वपूर्ण था।

- आलोचना और सुधाररू सिसमाण्डी ने पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की आलोचना की और उसके सुधार के लिए सुझाव दिए। उनका मानना था कि पूंजीवाद समाज की सामाजिक संरचना को कमजोर करता है और इसे सुधारने की आवश्यकता है।

सिसमाण्डी का काम इतिहास और अर्थशास्त्र के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान देता है और उनके विचार आज भी अध्ययन और विश्लेषण के लिए प्रासंगिक हैं।

**5.5 सारांश**

संक्षेप में, जर्मन ऐतिहासिक स्कूल और जीन चार्ल्स लियोनार्ड डी सिस्मोंडी ने मूल्यवान दृष्टिकोण प्रदान किए, जिन्होंने आर्थिक विचार के विकास को आकार देने में मदद की। ऐतिहासिकवादियों ने आर्थिक प्रणालियों को समझने में ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ के महत्व पर जोर दिया, शास्त्रीय अर्थशास्त्र के अमूर्त मॉडल को चुनौती दी। दूसरी ओर, सिस्मोंडी ने बाजार स्व–नियमन की प्रारंभिक आलोचना प्रदान की और सामाजिक और आर्थिक सुधारों की आवश्यकता पर प्रकाश डाला। इन योगदानों ने आर्थिक सिद्धांत में बाद के विकास के लिए मंच तैयार किया, जिसमें सीमांत क्रांति भी शामिल है। जबकि सीमांत क्रांति ने सीमांत उपयोगिता और सामान्य संतुलन जैसी नई विधियों और अवधारणाओं को पेश किया, ऐतिहासिकवादियों और सिस्मोंडी की अंतर्दृष्टि आर्थिक प्रणालियों के ऐतिहासिक और सामाजिक आयामों के बारे में चर्चाओं में प्रासंगिक बनी हुई है। उनकी आलोचनाएँ और दृष्टिकोण हमें याद दिलाते हैं कि आर्थिक सिद्धांत अलगाव में विकसित नहीं होते हैं, बल्कि ऐतिहासिक, सामाजिक और अनुभवजन्य संदर्भों से गहराई से प्रभावित होते हैं। इन पहले के योगदानों को समझने से आर्थिक

विचार के विकास और आर्थिक सिद्धांत और नीति के बारे में चल रही बहसों का एक समृद्ध, अधिक सूक्ष्म दृष्टिकोण मिलता है।

### 5.6 बोध प्रश्न–

- जीन–चार्ल्स –लियोनार्ड सिमोंडे डी सिस्मोंडी से आप क्या समझते हैं ?
- जीन–चार्ल्स–लियोनार्ड सिमोंडे डी सिस्मोंडी के कार्य भूमिका की विवेचना कीजिए।
- सिस्मोंडी सामाजिक और राजनीतिक विचार की व्याख्या कीजिए।
- इतिहासवादी सम्प्रदाय की भूमिका की विवेचना कीजिए।

### 5.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची/उपयोगी पुस्तकें


- Roscher, W. (1854). *Principles of Political Economy* (Grundzüge der Politischen Ökonomie). G. Reimer.
- Roscher, W. (1874). Nationaloekonomik des Ackerbaues (Political Economy of Agriculture). G. Reimer.
- Schneider, M. (2001). Sismondi's Macroeconomic Model An Annotated Translation. History of Economics Review, 34(1), 182–199. https://doi.org/10.1080/10370196.2001.11733365
- https://www.hetwebsite.net/het/profiles/sismondi.html
- Michael Sonenscher, Histoire de la correspondance de Jean-Charles-Léonard Simonde de Sismondi: avec l'inventaire des lettres reçues et envoyées (1793–1842). Par Francesca Sofia, French Studies, Volume 77, Issue 4, October 2023, Pages 647–648, https://doi.org/10.1093/fs/knad150
- Francesca Dal Degan & Nicolas Eyguesier, 2016. "Jean-Charles Léonard Simonde de Sismondi (1773–1842)," Chapters, in: Gilbert Faccarello & Heinz D. Kurz (ed.), Handbook on the History of Economic Analysis Volume I, chapter 20, Edward Elgar Publishing.
- Gislain, J.- J. (1998), 'Sismondi and the evolution of economic institutions', in G. Faccarello (ed.), Studies in the History of French Political Economy. From Bodin to Walras, London and New York: Routledge, pp. 229–53.
- Sismondi, J.C.L. Simonde de (1801), Tableau de l'agriculture toscane, Geneva: Paschoud
- De Salis, J.- R. (1932), Sismondi, 1773–1842. La Vie et l'Œuvre d'un cosmopolite philosophe, Paris: Champion.

# इकाई– 6

# कार्ल मार्क्स का सामाजिक परिवर्तन चिन्तन, मूल्य का सिध्दान्त

**इकाई की रूपरेखा**

**6.0 उदेश्य**

**6.1 प्रस्तावना**

**6.2 सामाजिक परिवर्तन का मार्क्सवादी सिद्धांत**

**6.3 सामाजिक परिवर्तन के बारे में मार्क्सवादी विचार**

**6.4 सामाजिक विकास की निर्धारक शक्ति**

**6.5 सामाजिक परिवर्तन में आधार और अधिरचना की भूमिका**

**6.6 कार्ल मार्क्स का मूल्य सिद्धांत**

**6.7 अधिशेष मूल्य**

**6.8 श्रम शक्ति का मूल्य**

**6.9 अधिशेष मूल्य और लाभ**

**6.10 पूंजीवादी ढांचे के बारे में कार्ल मार्क्स का दृष्टिकोण**

**6.11 समकालीन पूंजीवादी अर्थव्यवस्था पर मार्क्स के मूल्य सिद्धांत के निहितार्थ**

**6.12 सारांश**

**6.13 बोध प्रश्न**

**6.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची/ उपयोगी पुस्तके**

## 6.0 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई में सामाजिक परिवर्तन का मार्क्सवादी सिद्धांत के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई में सामाजिक परिवर्तन के बारे में मार्क्सवादी विचार से भी अवगत होंगे।
- प्रस्तुत इकाई में सामाजिक परिवर्तन में आधार और अधिरचना की भूमिका से अवगत होंगे।
- प्रस्तुत इकाई में पूंजीवादी ढांचे के बारे में कार्ल मार्क्स का दृष्टिकोण से अवगत होंगे।
- प्रस्तुत इकाई में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था पर मार्क्स के मूल्य सिद्धांत के बारे में जानेंगे।

### 6.1 प्रस्तावना

कार्ल मार्क्स (ज्ञंतस डंतग) एक प्रमुख दार्शनिक, अर्थशास्त्री, और समाजशास्त्री थे जिनके विचारों ने 19वीं सदी के बाद के समाज को गहराई से प्रभावित किया। उनका जन्म 5 मई 1818 को ट्रेवीर, प्रुस्सिया (अब जर्मनी में) हुआ था। कार्ल मार्क्स एक दार्शनिक एवं सामाजिक पर्यवेक्षक थे जो अपने समय के सर्वहारा वर्ग के बीच एक राजनीतिक नेता बन गए। भौतिकवाद, धार्मिक विश्वासों और मार्क्सवादी अर्थशास्त्र पर उनके विचार अपने समय के अन्य दार्शनिकों से काफी भिन्न थे। मार्क्स की रचना ष्दास कैपिटलष ने भौतिक आवश्यकताओं और समाजवादी क्रांति के लिए संघर्ष पर जोर दिया, जिसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि सर्वहारा वर्ग को उद्योगवाद द्वारा उत्पादित अधिकांश चीजों का आनंद मिले। मार्क्स का मानना था कि उत्पादन के साधनों का स्वामित्व मानवीय आवश्यकताओं के अनुसार समान रूप से वितरित किया जाना चाहिए, न कि कुछ लोगों के लालच के अनुसार। उन्होंने तर्क दिया कि धर्म जनता के लिए एक नशा है, जो उन्हें शाश्वत भविष्य के वादों के साथ हेरफेर करता है और उन्हें वास्तविकता से अलग करता है। पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था में, मार्क्स ने तर्क दिया कि श्रम के लिए उचित मजदूरी समान रूप से निर्धारित की जानी चाहिए, जैसे कि प्रत्येक वस्तु का मूल्य श्रम की मात्रा से निर्धारित होता है। मार्क्स के विचारों ने 20वीं सदी में दुनिया भर में कई साम्यवादी शासनों की स्थापना की। हालांकि, कुछ लोग उनके विचारों को अधिनायकवादी प्रवृत्तियों के लिए खाका तैयार करने के रूप में व्याख्या करते हैं, जबकि अन्य इसे एक दार्शनिक, सामाजिक वैज्ञानिक और क्रांतिकारी के रूप में देखते हैं। मार्क्स के विचारों ने जर्मन दर्शन, फ्रांसीसी राजनीतिक विचार और अंग्रेजी अर्थशास्त्र को एकीकृत किया, जिससे वे एक दार्शनिक, सामाजिक वैज्ञानिक और क्रांतिकारी बन गए। निष्कर्ष के तौर पर, भौतिकवाद, धार्मिक विश्वासों और मार्क्सवादी अर्थशास्त्र पर मार्क्स के विचारों का आधुनिक राजनीतिक दर्शन एवं समाज पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है।

### 6.2 सामाजिक परिवर्तन का मार्क्सवादी सिद्धांत

मार्क्सवाद सामाजिक परिवर्तन का दर्शन है, जो भौतिक संपदा के उत्पादन व सामाजिक परिवर्तन एवं विकास को आकार देने में आर्थिक गतिविधि की भूमिका पर केंद्रित है। मार्क्स का सामाजिक परिवर्तन का सिद्धांत इतिहास की उनकी भौतिकवादी अवधारणा पर आधारित है, जिसे श्ऐतिहासिक भौतिकवादश के रूप में जाना जाता है, जो अठारहवीं शताब्दी के भौतिकवाद को शास्त्रीय जर्मन दर्शन, विशेष रूप से हेगेल की प्रणाली के साथ जोड़ता है, जिसके कारण फ्यूअरबैक का भौतिकवाद सामने आया। मार्क्स का मानना था कि वस्तुनिष्ठ कानून सामाजिक परिवर्तन एवं विकास की व्याख्या कर सकते हैं, और ये कानून सार्वभौमिक और मनुष्य की इच्छा से स्वतंत्र हैं। गणितीय गतिविधि सामाजिक परिवर्तन की निर्धारण शक्ति है, क्योंकि अधिशेष उत्पादन अधिशेष मूल्यों का निर्माण करता है, जिससे निजी संपत्ति का स्वामित्व बनता है। यह स्वामित्व सामाजिक असमानता और वर्ग संघर्ष की ओर ले जाता है, जिससे वर्ग चेतना और वर्ग दर्शन की ओर अग्रसर होता है। अंततः, क्रांति के माध्यम से, पूंजीवादी व्यवस्था समाप्त हो जाती है, और एक समाजवादी समाज स्थापित होता है। मार्क्स का दर्शन सामाजिक परिवर्तन एवं विकास के लिए एक वैज्ञानिक व्याख्या प्रदान करता है, सामाजिक संबंधों को आकार देने में आर्थिक गतिविधि के महत्व पर जोर देता है।

### 6.3 सामाजिक परिवर्तन के बारे में मार्क्सवादी विचार

मार्क्सवाद–पूर्व समाजशास्त्री समाज के विकास और परिवर्तन पर विभाजित थे, कुछ अलौकिक या दैवीय प्राणियों पर ध्यान केंद्रित करते थे, जबकि अन्य ने कारण–प्रभाव संबंधों के माध्यम से इसे तार्किक और वैज्ञानिक रूप से समझाने की कोशिश की। कार्ल मार्क्स ने दार्शनिक भौतिकवाद का बचाव किया, जो प्राकृतिक विज्ञान की शिक्षाओं के अनुरूप है और इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा तैयार किया।

मार्क्स और एंगेल्स ने जर्मन विचारधारा (1903) में श्ऐतिहासिक भौतिकवादश की शुरुआत की, जो द्वंद्वात्मक भौतिकवाद पर आधारित है। ऐतिहासिक भौतिकवाद इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या है, जिसमें तर्क दिया गया है कि सामाजिक चेतना सामाजिक अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती है, बल्कि सामाजिक अस्तित्व सामाजिक चेतना को निर्धारित करता है। मार्क्स और एंगेल्स ने इतिहास का विश्लेषण करने और सामाजिक परिवर्तन एवं विकास की व्याख्या करने के लिए द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धांतों को लागू किया। उन्होंने समाज की संरचना और विशेषता को बनाने वाली निर्धारक शक्ति, एक समाज दूसरे में क्यों बदलता है, समाज एवं उसकी निर्देशक शक्तियाँ कैसे विकसित होती हैं, और सामाजिक जीवन के मुख्य कारण और नींव के बारे में सवालों के जवाब देने की कोशिश की। ऐतिहासिक भौतिकवाद ने पाया कि समाज, प्रकृति के एक अविभाज्य हिस्से के रूप में, लगातार प्रकृति, विशेष रूप से भौगोलिक वातावरण के साथ बातचीत करता है। अनुकूल प्राकृतिक परिस्थितियाँ समाज के विकास को आगे बढ़ाती हैं, जबकि प्रतिकूल परिस्थितियाँ सामाजिक विकास को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती हैं। भौगोलिक प्रवृत्तियाँ सामाजिक विकास के कारणों की व्याख्या नहीं कर सकती हैं, क्योंकि वे सामाजिक व्यवस्था, उत्पादन स्तर, प्रौद्योगिकी और विज्ञान के चरित्र पर निर्भर करती हैं। लोगों का श्रम वह शक्तिशाली शक्ति है जिसके बिना उत्पादन असंभव है, और जनसंख्या किसी देश के विकास को गति दे सकती है या धीमा कर सकती है। इसलिए, सामाजिक विकास और परिवर्तन का कारण न तो भौगोलिक वातावरण एवं न ही जनसंख्या है।

### 6.4 सामाजिक विकास की निर्धारक शक्ति

बीसवीं सदी के जर्मन दार्शनिक जुर्गन हेबरमास का मानना है कि सभी कामुक मानवीय गतिविधियों का सार भौतिकवादी है। मनुष्य की बुनियादी भौतिक जरूरतें हैं, जैसे भोजन, कपड़ा और आश्रय, जिन्हें प्रकृ ति सीधे पूरा नहीं कर सकती। इन जरूरतों को पूरा करने के लिए, मनुष्य को इन वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए प्राकृतिक वस्तुओं को बदलना होगा। मनुष्य ने समाज का आधार बनाने के लिए सचेत रूप से श्रम लगाया, धर्म, नैतिकता, कानून, इतिहास और सभ्यता के साथ–साथ उत्पादन संबंध बनाए। मनुष्य का श्रम मानव सामाजिक जीवन के लिए एक स्वाभाविक आवश्यकता है, क्योंकि प्राकृतिक संसाधन सीधे उत्पादन में मदद नहीं करते हैं। उत्पादन के साधन, जिसमें मशीनें, उपकरण, औजार, उत्पादन भवन एवं परिवहन शामिल हैं, भौतिक उत्पादन में उपयोग की जाने वाली श्रम की वस्तुएँ और साधन हैं। श्रम का सबसे महत्वपूर्ण साधन वह साधन है जिसके साथ लोग इन वस्तुओं पर कार्य करते हैं और उन्हें बदलते हैं। मनुष्य उत्पादन का मूल तत्व है, जो भौतिक संपदा का उत्पादन करने के लिए सचेत रूप से श्रम लगाता है। श्रम के सभी साधन एवं भौतिक संपदा का उत्पादन करने वाले लोग उत्पादक शक्तियाँ या उत्पादन के साधन हैं। भौतिक उत्पादन में सहयोग एक आवश्यक कारक है, क्योंकि श्रम चरित्र में सामाजिक है और उत्पादन केवल सीमित कनेक्शन और संबंधों के भीतर ही हो सकता है। उत्पादन प्रक्रिया में लोगों के संबंध उत्पादन के संबंधों का निर्माण करते हैं। उत्पादन का एक ऐतिहासिक तरीका उत्पादक शक्तियों और उत्पादन के संगत संबंधों के बीच अटूट एकता के रूप में प्रकट होता है। उत्पादन के संबंध स्वामित्व के रूप पर आधारित होते हैं, जो उत्पादन में विभिन्न सामाजिक समूहों की प्रमुख या अधीनस्थ स्थिति को निर्धारित करता है। पूंजीवादी व्यवस्था में, उत्पादन के साधनों के मालिक को उत्पादित धन का बड़ा हिस्सा प्राप्त होता है।

### 6.5 सामाजिक परिवर्तन में आधार और अधिरचना की भूमिका

उत्पादन का तरीका समाज का एक मूलभूत पहलू है, क्योंकि यह सामाजिक संरचना और लोगों के जीने के तरीके की नींव है। यह लोगों की इच्छा और चाहत से स्वतंत्र होकर वस्तुनिष्ठ रूप से बनता है, और इन संबंधों के अनुरूप उत्पादक शक्तियों से प्रभावित होता है। जैसे–जैसे जनसंख्या बढ़ती है, वैसे–वैसे भौतिक व सांस्कृतिक संसाधनों की मांग भी बढ़ती है। इस बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए,

प्रौद्योगिकी और विज्ञान की मदद से उत्पादन लगातार बढ़ता, विकसित मार्ग की ओर प्रशस्त होता रहता है। उत्पादन का विकास उत्पादक शक्तियों में बदलाव के साथ शुरू होता है, जिसमें उत्पादन के उपकरण और उनका उपयोग करने वाले लोग शामिल हैं। उत्पादन के उपकरण सबसे पहले उत्पादन में लगे लोगों के काम के परिणामस्वरूप विकसित होते हैं, और उत्पादन के उपकरणों के विकास के साथ–साथ काम करने वाले लोग खुद भी बेहतर होते हैं। उत्पादन प्रक्रिया में लोगों के रिश्ते भी श्रम के उपकरणों और काम करने वाले लोगों के विकास के साथ बदलते हैं। उत्पादक शक्तियाँ बढ़ती हैं और उत्पादक प्रणालियों के संबंधों को निर्धारित करती हैं, और वे सक्रिय रूप से उत्पादक शक्तियों को प्रभावित करती हैं।

शुरू में, उत्पादन संबंध उत्पादक शक्तियों की प्रकृति के अनुरूप होते हैं और उत्पादन के विकास के प्रमुख कारक के रूप में कार्य करते हैं। हालाँकि, जैसे–जैसे उत्पादन संबंध अप्रचलित होते जाते हैं, वे उनकी उन्नति में बाधा डालते हैं। नई उत्पादक प्रणाली और पुराने उत्पादन संबंधों के बीच यह विरोधाभास सामाजिक उत्पादन के विभिन्न पक्षों की आंतरिक प्रकृति से उत्पन्न होता है। अंततः यह विरोधाभास इतना तीव्र हो जाता है कि यह सामाजिक संघर्ष में बदल जाता है। एक विरोधी वर्ग समाज में, आधार अधिरचना के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो समाज के राजनीतिक, कानूनी, दार्शनिक, नैतिक, सौंदर्यवादी, धार्मिक विचार, संबंधित संबंध, संस्थाएं व संगठन हैं। आधार अधिरचना की प्रकृति को निर्धारित करता है, और आर्थिक प्रणाली में परिवर्तन अनिवार्य रूप से अधिरचना में परिवर्तन की ओर ले जाता है। जब सामाजिक क्रांति के परिणामस्वरूप एक आर्थिक प्रणाली दूसरे को पीछे छोड़ देती है, तो अधिरचना में परिवर्तन विशेष रूप से गहरे होते हैं।

हालांकि, अधिरचना का आधार आर्थिक प्रणाली है, और इसके विकास की निरंतरता में एक सापेक्ष स्वतंत्रता स्पष्ट है। जब पुराने आधार को एक नए द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है, तो अधिरचना में क्रांति होती है। हालांकि, इसका मतलब यह नहीं है कि पुराने आधार के विनाश के माध्यम से पुरानी अधिरचना की प्रणाली का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इसके बजाय, इसके व्यक्तिगत तत्व आधार से आगे निकल जाते हैं और नए समाज की अधिरचना में चले जाते हैं। सामाजिक परिवर्तन व्यक्तियों की सचेत गतिविधियों द्वारा लाया जाता है, लेकिन इन गतिविधियों और सचेत उद्देश्यों के परिणाम आर्थिक विकास के नियमों द्वारा निर्धारित होते हैं, जो इच्छा या चेतना से स्वतंत्र रूप से संचालित होते हैं। इस प्रकार, सामाजिक विकास की निर्धारण शक्ति उत्पादन का तरीका है, जो समाज का भौतिक आधार है।

## 6.6 कार्ल मार्क्स का मूल्य सिद्धांत

मार्क्स के लिए मूल्य विश्लेषण महत्वपूर्ण है, और इसके अर्थ एवं वैधता पर बहस हुई है। मार्क्स का आर्थिक सिद्धांत, मूल्य सिद्धांत, डेविड रिकार्डो के मूल्य के परिमाण सिद्धांत पर आधारित है, जिसे आंशिक रूप से एडम स्मिथ से उधार लिया गया है। मार्क्स ने मूल्य को आपूर्ति या लागत उत्पादन पक्ष से देखा, जिसका मुख्य उद्देश्य कीमत की व्याख्या करना और मुनाफे की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में श्रम का शोषण कैसे किया जाता है, यह बताना था। पूंजीवाद की विशेषता पूंजीपति और श्रमिक मालिकों के बीच अलगाव है, जिससे मजदूरी सौदेबाजी होती है। श्रम उत्पादन का एकमात्र कारक है जो उत्पादन में जाने वाले से अधिक उत्पादन करने में सक्षम है, और श्रम शक्ति मूल्य–उत्पादक पहलू है। उत्पाद बनाना श्रम शक्ति की जिम्मेदारी है, और पूंजीपतियों को उपयोग मूल्य के रूप में श्रम सेवाओं को खरीदना चाहिए। श्रम मात्रात्मक है, जो उत्पादन के दौरान खर्च किए गए कार्य समय की भौतिक मात्रा को संदर्भित करता है। मार्क्स ने इसे मूल्य के पदार्थ के रूप में पहचाना, और किसी भी वस्तु का सापेक्ष मूल्य उसके उत्पादन के लिए अमूर्त श्रम की मात्रा पर निर्भर करता है। मूल्य किसी वस्तु में निहित श्रम की निश्चित मात्रा का परिणाम है, और इसके मूल्य का बाजार मूल्य से कोई सीधा संबंध नहीं है। मूल्य

का एकमात्र आधार उसके उत्पादन में व्यय किया गया मानव श्रम है, तथा मूल्य में वह शामिल होता है जो मनुष्य प्रकृति द्वारा पहले से ही उपलब्ध कराई गई मूल सामग्रियों में जोड़ सकता है।

### 6.7 अधिशेष मूल्य

मार्क्स ने तर्क दिया कि श्रम का उपयोग मूल्य श्रम समय के विनिमय मूल्य के बराबर है, लेकिन अधिशेष मूल्य श्रम शक्ति द्वारा उत्पादित अतिरिक्त या अतिरिक्त है जो अधिक विनिमय मूल्य की मांग करता है। यह अधिशेष मूल्य पूंजीपतियों द्वारा निकाला और संचित किया जाता है, क्योंकि यह श्रम शक्ति द्वारा श्रम समय के भीतर उत्पादित उत्पादों का मूल्य है। यह पूंजीपतियों द्वारा विनियोजित सामाजिक मूल्य उत्पाद का हिस्सा है, जो श्रमिकों द्वारा उत्पादित मूल्य को श्रम शक्ति के मूल्य से विभाजित करता है।

### 6.8 श्रम शक्ति का मूल्य

श्रम शक्ति का मूल्य वह अमूर्त श्रम समय है जो पूंजीवादी समाज में श्रमिकों को मौद्रिक मजदूरी के रूप में मिलता है। श्रमिकों को वह अधिकतम मजदूरी दी जाती है जो उन्हें मिल सकती है और वे इसे अपनी इच्छानुसार खर्च कर सकते हैं। श्रम शक्ति का मूल्य विशिष्ट वस्तु के उत्पादन और पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक श्रम समय से निर्धारित होता है। श्रम शक्ति के उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम समय वही है जो निर्वाह के साधनों के उत्पादन के लिए आवश्यक है, अर्थात श्रम शक्ति का मूल्य उसके मालिक के भरण–पोषण के लिए आवश्यक निर्वाह के साधनों का मूल्य है।

### 6.9 अधिशेष मूल्य और लाभ

अधिशेष मूल्य और लाभ पूंजी की मात्रा से संबंधित अवधारणाएँ हैं। अधिशेष मूल्य नव उत्पादित मूल्य और श्रम शक्ति के मूल्य के बीच का अंतर है, जबकि लाभ उत्पाद के मूल्य और स्थिर व परिवर्तनशील पूंजी के मूल्य के बीच का अंतर है। शोषण की दर परिवर्तनशील पूंजी की प्रति इकाई निर्मित अधिशेष मूल्य को मापती है, जबकि लाभ की दर पूंजी की वृद्धि की दर को मापती है। मार्क्स ने तर्क दिया कि श्रम सभी मूल्य का स्रोत है, और लाभ दर व अधिशेष मूल्य की दर पर इनपुट मात्रा, गुणवत्ता एवं मूल्य में परिवर्तन के प्रभाव से विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग पूंजीपतियों के लिए लाभ दरों में अंतर हो सकता है।

### 6.10 पूंजीवादी ढांचे के बारे में कार्ल मार्क्स का दृष्टिकोण

मार्क्स ने पूंजीवाद को पूंजीपतियों और गैर–पूंजीपतियों के बीच एक अलगाव के रूप में देखा, जो सीधे प्रतिस्पर्धा में हैं। उन्होंने तर्क दिया कि पूंजीवाद एक मशीन है जिसमें श्रम, पूंजी, कच्चा माल और बाजार शामिल हैं। आर्थिक असमानता के कारण, श्रम की खरीद ष्स्वतंत्र परिस्थितियोंष के तहत नहीं हो सकती है। पूंजीपति उत्पादन के साधनों को नियंत्रित करते हैं, जबकि श्रमिक केवल अपने श्रम को नियंत्रित करते हैं। मार्क्स ने तर्क दिया कि उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व श्रमिकों की कीमत पर पूंजीपतियों को समृद्ध करता है। उन्होंने तर्क दिया कि पूंजी के मालिक काम नहीं करते हैं, श्रमिकों से चोरी करते हैं या उनका शोषण करते हैं। जैसे–जैसे पूंजीपति अधिक पूंजी जमा करते हैं, श्रमिक गरीब होते जाते हैं, जिससे अंततः क्रांति होती है। मार्क्स ने उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व को स्वतंत्रता पर प्रतिबंध के रूप में माना। हालाँकि, उन्होंने पूंजीवाद को ऐतिहासिक रूप से उत्पादन का एक विशिष्ट तरीका और आर्थिक विकास का एक चरण माना, जिसे अंततः शुद्ध साम्यवाद द्वारा प्रतिस्थापित किया जाएगा।

### 6.11 समकालीन पूंजीवादी अर्थव्यवस्था पर मार्क्स के मूल्य सिद्धांत के निहितार्थ

श्रमिकों पर पूंजीवादी शोषण (अतिरिक्त मूल्य) ब्याज, किराया और लाभ के अन्य रूपों सहित लाभ के अस्तित्व से प्रकट होता है। शोषण की दर को लाभ—मजदूरी अनुपात द्वारा मापा जाता है, जिसमें राष्ट्रीय आय में उनका हिस्सा, पूंजीपति राष्ट्रीय उत्पाद का उचित हिस्सा, जिसमें निवेश और विलासिता के सामान शामिल हैं। श्रमिकों को केवल तंत्र के हिस्से के रूप में देखा जाता है, न कि एक व्यक्ति के रूप में। पूंजीपति पूंजीवाद की व्यवस्था का हिस्सा हैं और श्रमिक का शोषण करना उनकी भूमिका है क्योंकि पूरी व्यवस्था लाभ—संचालित है। उत्पादन में, श्रमिक अपने कार्यदिवस की लंबाई, प्रशिक्षण, अनुशासन और श्रम की तीव्रता के अनुपात में नया मूल्य बनाते हैं। श्रमिक वर्ग द्वारा नए उत्पादित मूल्य और श्रम शक्ति के मूल्य के बीच का अंतर अधिशेष मूल्य है। अधिशेष मूल्य लाभ के रूप में प्रकट होता हैय उत्पादन लागत का भुगतान करने के बाद बचा हुआ। संक्षेप में, श्रमिकों का शोषण इसलिए किया जाता है क्योंकि वे जितना नियंत्रित करते हैं या मजदूरी के रूप में प्राप्त करते हैं, उससे अधिक मूल्य का उत्पादन करते हैं। मजदूरी में परिलक्षित श्रम शक्ति का विनिमय मूल्य पूंजीपतियों के लिए उत्पादित मूल्य से कम है। भूमि पर निजी संपत्ति के प्रवर्तन और प्राकृतिक संसाधनों पर विशेष अधिकार सहित पूंजीवादी नियम, अन्यायपूर्ण तरीके से उन सभी को सीमित कर देते हैं, जिन पर सभी का स्वामित्व होना चाहिए, जिससे बिना संपत्ति वाले लोग पूंजीपतियों को उनके अनुकूल बाजार में अपना श्रम बेचने के लिए मजबूर हो जाते हैं, जिससे श्रमिकों को जीवित रहने के लिए कम मजदूरी स्वीकार करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। विश्लेषण का यह स्तर महत्वपूर्ण है क्योंकि यह शोषण के विभिन्न तरीकों के बीच समानताओं को उजागर करता है। पूंजीवादी व्यवस्था में श्रमिक अक्सर पूंजीवादी मशीन में अधिक उत्पादक बनाने के लिए सभी चीजों में सबसे अधिक लचीला होता है और इस प्रकार, अक्सर उसका शोषण किया जाता है। पूंजीवाद के घटकों का उपयोग करके एक बार एक प्रणाली स्थापित हो जाने के बाद, प्रणाली स्थिर हो जाती है। लगाई गई प्रारंभिक पूंजी पहले ही खर्च हो चुकी है और पूंजीवादी मशीन में डूबी हुई लागत है। चूंकि बाजार बढ़ रहा है, इसलिए पूंजीवादी मशीन को और अधिक उत्पादन करना चाहिए। सबसे सस्ता कच्चा माल मिलने के बाद भी कच्चे माल आमतौर पर वही रहते हैं। यदि ये स्थिर होते और बाकी सब भी स्थिर होते, तो श्रमिकों के योगदान का शोषण नहीं होता। हालांकि, पूंजीपति हमेशा बाजार में वृद्धि और उच्च लाभ मार्जिन चाहते हैं। पूंजीवादी राज्य में किसी कंपनी के लिए लागत कम से कम करना ताकि वे सबसे कम कीमत प्रदान कर सकें और बाजार में प्रतिस्पर्धी बन सकें, उन्हें श्रमिकों को सबसे कम राशि का भुगतान करके लागत कम से कम करनी होगी जिससे उनकी वस्तु की कीमत कम रहेगी। यदि कोई पूंजीपति उन्हें अधिक भुगतान करता है और लागत उपभोक्ता पर डाल दी जाती है, तो इसका विनाशकारी प्रभाव हो सकता है। इस प्रकार, पूंजीपति अपने लिए अधिशेष मूल्य जमा करने के लिए न्यूनतम स्तर से नीचे मजदूरी को कम करना जारी रखेगा, जिससे श्रमिकों को मामूली मजदूरी मिलेगी या घर जाने के लिए कुछ भी नहीं मिलेगा। इससे समकालीन पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में सर्वहाराध्श्रमिकों या मजदूरों के औसत जीवन स्तर में गिरावट आएगी।

## 6.12 सारांश

सामाजिक परिवर्तन के मार्क्सवादी सिद्धांत की कई समाजशास्त्रियों ने आलोचना की है, लेकिन यह तर्क दिया जा सकता है कि ऐतिहासिक भौतिकवाद सामाजिक परिवर्तन और विकास का वास्तविक कारण है। मार्क्स और एंगेल्स ने ऐतिहासिक भौतिकवाद को सामाजिक विकास के उद्देश्यपूर्ण नियम के रूप में तैयार किया, जिसमें दिखाया गया कि आर्थिक, रचनात्मक और वैज्ञानिक कारकों के आधार पर अधिरचनाएँ कैसे बनती हैं। यह प्रणाली संस्कृति, शिक्षा, विचारधाराएँ, राजनीति, कला, मूल्य और अन्य पहलुओं को भी आकार देती है। आधुनिक समाज में, पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली सर्वहारा वर्ग का शोषण करते हुए अधिशेष मूल्य बनाती है। इससे वर्ग संघर्ष, चेतना और वर्ग दर्शन का जन्म होता है, जो अंततः क्रांति और समाजवाद की ओर ले जाता है। वर्ग संघर्ष सामाजिक विकास की निर्धारक शक्ति है,

और ऐतिहासिक भौतिकवाद सामाजिक परिवर्तन के लिए एक यथार्थवादी और तार्किक व्याख्या प्रदान करता है।

## 6.13 बोध प्रश्न–

- सामाजिक परिवर्तन का मार्क्सवादी सिद्धांत से आप क्या समझते हैं ?
- मार्क्सवादी विचार की विवेचना कीजिए।
- सामाजिक परिवर्तन में आधार और अधिरचना की भूमिका की विवेचना कीजिए।
- कार्ल मार्क्स का मूल्य सिद्धांत से आप क्या समझते हैं ?
- अधिशेष मूल्य और लाभ प्रभाव की व्याख्या कीजिए।
- पूंजीवादी ढांचे के बारे में कार्ल मार्क्स का दृष्टिकोण अध्ययन के व्याख्या कीजिए।
- पूंजीवादी अर्थव्यवस्था पर मार्क्स के मूल्य सिद्धांत की विवेचना कीजिए।

## 6.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची/ उपयोगी पुस्तके


- Karl,Marx and Frederick Engels:Selected Works in one vol.,Lawrence and Wishart,London,1968,p.24
- Haroon,Rashid,"Karl Marx's Philosophy and Its Relevance Today",Philosophy and progress:Vols.LXII-LXII,January-June,July-December,2017,p.30
- Afanasyev,V.,Marxistphilosophy:A popular Outline,Moscow:progress publisher,1968,p.189-190
- Karl,Marx and Frederick Engels:Selected Works in one vol.,Lawrence and Wishart,London,1968,p.35
- Rashid,Haroon,"Karl Marx's Philosophy and Its Relevance Today",Philosophy and progress:Vols.LXII-LXII,January-June,July-December,2017,p29
- Balibar, E. (2009). The basic concepts of Historical Materialism in Louis Althusser and Etienne Balibar (eds.) Reading Capital. London: Verso Books.
- Cohen, G A. (1979). Reconsidering Historical Materialism in G.A. Cohen Karl Marx's Theory of History: A Defence. Princeton: Princeton University Press.
- Blackledge, P. (2014). Reflections on the Marxist Theory of History. Oxford: Manchester University Press.
- Elster, J. (2012). Historical Materialism in Jon ElsterAn Introduction to Karl Marx. Cambridge: Cambridge University Press.

- Gurley, J. (1978). The Materialist Conception of Historyin R. Edwards, M.Reich and T. Weisskopf (ed.), The Capitalist System: A radical analysis of American society.Englewood Cliffs: Prentice Hall.
- Wood, Allen. (2004). Historical Materialism in Allen Wood Karl Marx. London: Routledge.
- Harvey, D. (1983): "Marx's theory of the Value of Labour Power: An Assessment", Social Research 50, 2: 305-344

# इकाई–07

# सीमान्त विचारधारा : जेवन्स, मेंगर, वालरा, बाम बावर्क

**इकाई की रूपरेखा**

**7.0 उदेश्य**

**7.1 प्रस्तावना**

**7.2 सीमान्त विचारधारा**

**7.3 अर्थशास्त्रीय निष्कर्ष**

**7.4 विलियम स्टैनली जेवन्स**

**7.5 विलियम स्टैनली जेवन्स योगदान**

**7.6 कार्ल मेंगर**

**7.7 कार्ल मेंगर योगदान**

**7.8 लिओन वालरा**

**7.9 लियोन वालरा प्रमुख योगदान और सिद्धांत**

**7.10 यूजेन वॉन बम–बावर्क**

**7.11 यूजेन वॉन बम–बावर्क योगदान**

**7.12 सारांश**

**7.13 बोध प्रश्न**

**7.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची/उपयोगी पुस्तके**

## 7.0 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई में सीमान्त विचारधारा के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई में सीमान्त विचारधारा ने कई महत्वपूर्ण आर्थिक प्रारुप से भी अवगत होंगे।
- प्रस्तुत इकाई में विलियम स्टैनली जेवन्स की भूमिका से अवगत होंगे।
- प्रस्तुत इकाई में कार्ल मेंगर की भूमिका से अवगत होंगे।
- प्रस्तुत इकाई में लिओन वालरा की भूमिका से अवगत होंगे।
- प्रस्तुत इकाई में यूजेन वॉन बम–बावर्क की भूमिका से अवगत होंगे।

**7.1 प्रस्तावना**

"सीमांत विचार जेवॉन्स, मेंगर, वाल्रास, बोहम–बावर्क" चार प्रमुख अर्थशास्त्रियों के योगदान की समीक्षा करता है जिन्होंने 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सीमांत उपयोगिता के सिद्धांत और आर्थिक विचार के क्षेत्र को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया। विलियम स्टेनली जेवॉन्स ने अपने काम ष्द थ्योरी ऑफ पॉलिटिकल इकोनॉमीष में सीमांत उपयोगिता की अवधारणा पेश की, जिसमें वस्तुओं की मात्रा बढ़ने के साथ उनकी घटती उपयोगिता पर जोर दिया गया। कार्ल मेंगर, एक ऑस्ट्रियाई अर्थशास्त्री ने मूल्य के व्यक्तिपरक सिद्धांत को पेश किया, जिसमें इस बात पर प्रकाश डाला गया कि वस्तुओं का मूल्य व्यक्तिगत इच्छाओं और जरूरतों को पूरा करने की उनकी क्षमता से निर्धारित होता है। लियोन वालरा ने सामान्य संतुलन सिद्धांत पर अपने काम के माध्यम से सीमांत उपयोगिता सिद्धांत को और विकसित किया, एक प्रतिस्पर्धी बाजार में आपूर्ति और मांग के अंतःक्रियाओं को समझने के लिए एक गणितीय संरचना पेश किया। बोहम–बावर्क, एक ऑस्ट्रियाई अर्थशास्त्री और मेंगर के छात्र, ने अपने काम ष्पूंजी और ब्याजष में सीमांत उपयोगिता सिद्धांत का विस्तार किया, जिसमें व्यक्तियों की समय वरीयता और उत्पादन में पूंजी की भूमिका पर ध्यान केंद्रित किया गया। इन अर्थशास्त्रियों के सीमांतवादी योगदान ने आर्थिक सिद्धांत में क्रांति ला दी, मूल्य की शास्त्रीय धारणाओं से हटकर एक व्यक्तिपरक, व्यक्ति–केंद्रित दृष्टिकोण को अपनाया। उनके काम ने आधुनिक सूक्ष्मअर्थशास्त्र की नींव रखी, जिसने सैद्धांतिक और व्यावहारिक अर्थशास्त्र दोनों को प्रभावित किया।

19वीं सदी के उत्तरार्ध में आर्थिक सिद्धांत में एक महत्वपूर्ण बदलाव देखा गया, जिसकी विशेषता सीमांत उपयोगिता सिद्धांत का उदय था। यह सिद्धांत, जो यह मानता है कि वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य उनकी सीमांत उपयोगिता से प्राप्त होता है, विलियम स्टेनली जेवॉन्स द्वारा 1871 में अपने कार्य, ष्राजनीतिक अर्थव्यवस्था का सिद्धांतष में प्रस्तुत किया गया था। कार्ल मेंगर, एक अन्य प्रमुख व्यक्ति, ने इस सिद्धांत को और परिष्कृत किया, इस बात पर जोर देते हुए कि मूल्य आंतरिक नहीं है, बल्कि व्यक्तिगत संतुष्टि का एक कार्य है। लियोन वालरा ने सामान्य संतुलन का सिद्धांत विकसित किया, जो आर्थिक प्रणालियों का समग्र रूप से विश्लेषण करने के लिए एक व्यापक रूपरेखा प्रस्तुत करता है। यूजेन वॉन बोहम–बावर्क ने ष्पूंजी और ब्याजष में पूंजी और ब्याज के अपने विस्तृत विश्लेषण के साथ इन विचारों को और आगे बढ़ाया, ब्याज और पूंजी निर्माण के अध्ययन में सीमांत उपयोगिता को एकीकृ त किया। साथ में, जेवॉन्स, मेंगर, वाल्रास और बोहम–बावर्क ने आधुनिक सूक्ष्म आर्थिक सिद्धांत की नींव रखी, जिसमें मूल्य के समग्र उपायों से ध्यान हटाकर आर्थिक निर्णय लेने को प्रेरित करने वाले व्यक्तिगत और व्यक्तिपरक अनुभवों पर ध्यान केंद्रित किया गया। उनके योगदान का अर्थशास्त्र के क्षेत्र पर स्थायी प्रभाव पड़ा है, तथा बाजार व्यवहार और संसाधन आवंटन की समझ को आकार मिला है।

विलियम स्टेनली जेवॉन्स, कार्ल मेंगर, लियोन वालरा और यूजेन वॉन बोहम–बावर्क द्वारा विकसित सीमांत उपयोगिता सिद्धांत ने आर्थिक विचार में एक महत्वपूर्ण बदलाव को चिह्नित किया। इसने व्यक्तिगत प्राथमिकताओं और उपभोग में वृद्धिशील परिवर्तनों से प्राप्त मूल्य की सूक्ष्म समझ पेश की। जेवॉन्स ने सीमांत उपयोगिता की अवधारणा पर जोर दिया, यह प्रदर्शित करते हुए कि वस्तुओं का मूल्य एक और इकाई के उपभोग से प्राप्त अतिरिक्त संतुष्टि से निर्धारित होता है। इस अवधारणा ने आर्थिक विश्लेषण के विभिन्न पहलुओं पर सीमांत सोच को लागू करने के लिए आधार तैयार किया। कार्ल मेंगर ने मूल्य का एक व्यक्तिपरक सिद्धांत पेश किया, जिसमें इस बात पर प्रकाश डाला गया कि मूल्य वस्तुओं में निहित नहीं है, बल्कि व्यक्तिगत इच्छाओं और जरूरतों को पूरा करने की उनकी क्षमता का एक कार्य है। इस ढांचे ने ऑस्ट्रियाई अर्थशास्त्र को अलग करने में मदद की और व्यक्तिगत दृष्टिकोण से मूल्य को समझने के लिए एक ढांचा प्रदान किया। लियोन वालरा ने एक सामान्य संतुलन संरचना विकसित किया, जिसमें दिखाया गया कि कैसे बाजार संतुलन की स्थिति तक पहुँचने के लिए आपूर्ति और मांग

के परस्पर क्रिया के माध्यम से समायोजित होते हैं। यूजेन वॉन बोहम–बावर्क ने सीमांत उपयोगिता के लेंस के माध्यम से पूंजी और ब्याज की भूमिका का विश्लेषण करके इन सिद्धांतों का विस्तार किया। समय वरीयता और पूंजी निर्माण के उनके अन्वेषण ने ब्याज दरों और निवेश के अध्ययन में सीमांतवादी सिद्धांतों को एकीकृत किया, जिससे आर्थिक प्रवचन समृद्ध हुआ।

सीमांतवादी क्रांति आर्थिक सिद्धांत में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर का प्रतिनिधित्व करती है, जो मूल्य, विकल्प और संसाधन आवंटन को समझने के लिए एक परिष्कृत और व्यक्तिगत दृष्टिकोण प्रदान करती है। उनकी विरासत आर्थिक विश्लेषण की आधारशिला बनी हुई है, जो सैद्धांतिक और व्यावहारिक अर्थशास्त्र दोनों पर उनके योगदान के स्थायी प्रभाव को प्रदर्शित करती है।

### 7.2 सीमान्त विचारधारा

सीमान्त विचारधारा (Marginalism) एक आर्थिक सिद्धांत है जो वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य निर्धारण, उपभोक्ता व्यवहार, और उत्पादन निर्णयों पर ध्यान केंद्रित करता है। इस सिद्धांत का मुख्य विचार यह है कि आर्थिक निर्णय अंतिम या सीमान्त (उंतहपदंस) इकाइयों के आधार पर किए जाते हैं। इसे समझने के लिए निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान दिया जा सकता है।

- **सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility)**

सीमान्त उपयोगिता वह अतिरिक्त उपयोगिता (satisfaction or benefit) होती है जो किसी अतिरिक्त इकाई की खपत से प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए, यदि आप एक सेब खाते हैं, तो उसका पहला सेब सबसे अधिक संतोषजनक हो सकता है। दूसरे सेब का संतोष पहले के सेब से कम हो सकता है, और इसी तरह, हर अतिरिक्त सेब की उपयोगिता घटती जाती है। यह अवधारणा विलियम स्टैनली जेवन्स, कार्ल मंगर, और अल्फ्रेड मार्शल के काम से जुड़ी है।

- **सीमान्त लागत (Marginal Cost)**

सीमान्त लागत वह अतिरिक्त लागत है जो एक और इकाई उत्पादन करने पर आती है। यदि आप एक और यूनिट उत्पादित करते हैं, तो उस अतिरिक्त यूनिट की लागत सीमान्त लागत कहलाती है। यह अवधारणा उत्पादन निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

- **सीमान्त मूल्य (Marginal Value)**

सीमान्त मूल्य वस्तु या सेवा की अंतिम इकाई की कीमत को दर्शाता है। यह मूल्य उस अतिरिक्त उपयोगिता और लागत को संतुलित करता है, जिसे उपभोक्ता और उत्पादक अपनी निर्णय प्रक्रिया में विचार करते हैं।

### 7.3 अर्थशास्त्रीय निष्कर्ष (Economic Insights)

सीमान्त विचारधारा ने कई महत्वपूर्ण आर्थिक निष्कर्ष निकाले–

वस्तुओं का मूल्यरू मूल्य वस्तु की अंतिम इकाई की उपयोगिता पर आधारित होता है।

उत्पादन निर्णयरू कंपनियाँ उत्पादन की अंतिम इकाई की लागत और संभावित लाभ को देखकर निर्णय लेती हैं।

खपत और बजटः उपभोक्ता अपने बजट को इस तरह से वितरित करते हैं कि हर वस्तु या सेवा की सीमान्त उपयोगिता उनके खर्च की सीमान्त लागत के बराबर हो।

सीमान्त विचारधारा एक महत्वपूर्ण आर्थिक सिद्धांत है जो 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी की शुरुआत में विकसित हुआ। इसके प्रमुख प्रतिपादक थेरू

- अल्फ्रेड मार्शलः उन्होंने सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility) और सीमान्त लागत (डंतहपदंस ब्वेज) के सिद्धांतों को विस्तारित किया। उनका काम श्प्रिंसिपल्स ऑफ इकोनॉमिक्सश में संकलित है, जहाँ उन्होंने बताया कि मूल्य कैसे वस्तुओं के उपयोगिता के अंतिम इकाई से निर्धारित होता है।

- विलियम स्टैनली जेवन्स (William Stanley Jevons): उन्होंने सीमान्त उपयोगिता के सिद्धांत को प्रस्तुत किया और इसे आर्थिक विश्लेषण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनाया। उनकी प्रसिद्ध कृति श्द थिओरी ऑफ पॉलिटिकल इकॉनमीश है।

- कार्ल मंगर (Carl Menger): वे ऑस्ट्रियाई स्कूल के संस्थापक थे और उन्होंने भी सीमान्त उपयोगिता के सिद्धांत को प्रमुखता दी। उनकी किताब श्प्रिंसिपल्स ऑफ इकोनॉमिक्सश में उन्होंने बाजार मूल्य और उपभोक्ता पसंद के अध्ययन पर ध्यान केंद्रित किया।

- यूगेन बोहम–बावेर्क (Eugen Böhm&Bawerk): उन्होंने सीमान्त उपयोगिता के सिद्धांत का विस्तार किया और पूंजी और ब्याज की अवधारणाओं पर काम किया। उनकी प्रमुख कृतियाँ श्कैपिटल एंड इंटरेस्टश और श्विजन इन इकॉनॉमिक्सश हैं।

इन सभी विचारकों ने सीमान्त उपयोगिता और सीमान्त लागत के सिद्धांतों को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया और अर्थशास्त्र के विश्लेषणात्मक तरीकों को आधुनिक रूप में प्रस्तुत किया।

सीमान्त विचारधारा ने आधुनिक अर्थशास्त्र के लिए एक ठोस आधार प्रदान किया और मूल्य, लागत, और उपयोगिता के विश्लेषण में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

### 7.4 विलियम स्टैनली जेवन्स

विलियम स्टैनली जेवन्स (William Stanley Jevons] 1835–1882) एक प्रमुख ब्रिटिश अर्थशास्त्री थे, जिन्होंने सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility) के सिद्धांत को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनका काम आधुनिक अर्थशास्त्र की नींव रखने में महत्वपूर्ण था। विलियम स्टेनली जेवॉन्स का जन्म 1835 में लिवरपूल में थॉमस जेवॉन्स और मैरी ऐनी रोस्को के घर हुआ था। 1847 के रेलवे बूम संकट के कारण परिवार दिवालिया हो गया था। जेवॉन्स ने लंदन में यूनिवर्सिटी कॉलेज स्कूल और यूनिवर्सिटी कॉलेज में पढ़ाई की, जहाँ उन्होंने ग्राहम और विलियमसन और ऑगस्टस डी मॉर्गन जैसे अग्रदूतों के अधीन रसायन विज्ञान का अध्ययन किया। उन्होंने बिना डिग्री के ही पढ़ाई छोड़ दी और 1854 में ऑस्ट्रेलियाई टकसाल में परीक्षक बनने के लिए सिडनी चले गए। जेवॉन्स के काम में रेलवे नीति, मौसम विज्ञान, संरक्षण, भूमि नीति, बादल निर्माण, बारूद और बिजली, और भूविज्ञान सहित विभिन्न क्षेत्र शामिल थे। वह अपनी शिक्षा पूरी करने के लिए 1859 में यूनिवर्सिटी कॉलेज लौटे। 1860 के दशक की शुरुआत में, जेवॉन्स को अर्थशास्त्र और तर्कशास्त्र में महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई। उन्होंने 1862 में अपनी एमए की डिग्री प्राप्त की और उन्हें तीसरी शाखा में स्वर्ण पदक से सम्मानित किया गया, जिसमें तर्कशास्त्र, नैतिक दर्शन, राजनीतिक दर्शन, दर्शन का इतिहास और

राजनीतिक अर्थव्यवस्था शामिल थी। जेवॉन्स ने 1867 में हैरियट ए. टेलर से शादी की और उनके तीन बच्चे हुए। 1876 में परिवार लंदन चला गया, जहाँ उन्होंने यूनिवर्सिटी कॉलेज में एक कुर्सी संभाली। जेवन्स का छोटा जीवन 1882 में समाप्त हो गया जब वह हेस्टिंग्स के पास डूब गया।

### 7.5 विलियम स्टैनली जेवन्स का योगदान

#### सीमान्त उपयोगिता का सिद्धांत

सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility) के सिद्धांत के अनुसार, किसी वस्तु या सेवा की मूल्य उसका अंतिम इकाई (या सीमान्त इकाई) की उपयोगिता पर आधारित होती है। इसका मतलब यह है कि मूल्य केवल उन वस्तुओं के लिए निर्धारित होता है जिनका अंतिम उपयोग उपभोक्ता को प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति के पास एक सेब है, तो उसका मूल्य उसकी उपयोगिता के आधार पर निर्धारित होगा। यदि व्यक्ति को दूसरा सेब मिलता है, तो उसकी उपयोगिता पहली सेब की तुलना में कम हो सकती है, और इसी तरह, सीमान्त उपयोगिता घटती जाती है।

#### प्रमुख कृति

जेवन्स की प्रमुख कृति ष्जीम जीमवतल वग्च्विसपजपबंस म्बवदवउलष (1871) है। इस पुस्तक में उन्होंने सीमान्त उपयोगिता के सिद्धांत को प्रस्तुत किया और समझाया कि कैसे बाजार मूल्य वस्तुओं की अंतिम इकाई की उपयोगिता से प्रभावित होते हैं।

#### सभी अर्थशास्त्रियों के लिए प्रभाव

जेवन्स ने अर्थशास्त्र में एक नई दिशा प्रदान की, जिसमें उन्होंने मूल्य निर्धारण, खपत, और उत्पादन के निर्णयों को समझाने के लिए सीमान्त उपयोगिता की अवधारणा का उपयोग किया। उनके काम ने सीमान्त विचारधारा के सिद्धांत को मान्यता दिलाई और इसके द्वारा मूल्य निर्धारण, खपत और उत्पादन के आर्थिक विश्लेषण को नया दृष्टिकोण प्रदान किया।

#### अन्य योगदान

जेवन्स ने आर्थिक गणना और सांख्यिकी में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया और वे सांख्यिकी के आधुनिक उपयोग के प्रवर्तक भी माने जाते हैं। वे आर्थिक संतुलन और सांख्यिकीय विश्लेषण के सिद्धांतों पर भी काम करते थे।

जेवन्स का काम सीमान्त उपयोगिता और आधुनिक अर्थशास्त्र के अन्य सिद्धांतों को समझने में अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनका योगदान आज भी अर्थशास्त्र की मूलभूत अवधारणाओं को समझने में सहायक है।

### 7.6 कार्ल मेंगर

कार्ल मेंगर (1840–1921) ऑस्ट्रियाई अर्थशास्त्री थे और उन्हें ऑस्ट्रियाई अर्थशास्त्र के संस्थापक के रूप में जाना जाता है। उन्होंने सीमान्त उपयोगिता (डंतहपदंस न्जपसपजल) के सिद्धांत को महत्वपूर्ण रूप से विकसित किया और आधुनिक अर्थशास्त्र की कई मूलभूत अवधारणाओं को पेश किया। कार्ल मेंगर का काम अर्थशास्त्र में क्रांतिकारी था और उनके सिद्धांतों ने आधुनिक अर्थशास्त्र की नींव रखी। उनके विचारों ने मूल्य निर्धारण, उपयोगिता, और बाजार संचालन की समझ को नया दिशा दिया। ऑस्ट्रियन स्कूल की स्थापना में उनकी भूमिका ने आर्थिक विश्लेषण की कई महत्वपूर्ण विधियों को जन्म दिया, जो आज भी अर्थशास्त्र के अध्ययन में महत्वपूर्ण हैं। उनके सिद्धांतों का प्रभाव आज भी देखने को मिलता है, और वे कई अर्थशास्त्री और शोधकर्ताओं के लिए प्रेरणा स्रोत बने हुए हैं।

### 7.7 कार्ल मेंगर का योगदानः

### सीमान्त उपयोगिता का सिद्धांतः

कार्ल मेंगर ने सीमान्त उपयोगिता के सिद्धांत को प्रस्तुत किया, जिसमें बताया गया कि वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य का निर्धारण अंतिम (या सीमान्त) इकाई की उपयोगिता के आधार पर होता है। यह सिद्धांत इस बात को स्पष्ट करता है कि मूल्य वस्तुओं की अंतिम इकाई की उपयोगिता के अनुसार बढ़ता या घटता है। मंगर ने यह सिद्धांत स्थापित किया कि वस्तुओं की कीमत उन वस्तुओं के अंतिम उपयोगिता से निर्धारित होती है, न कि उनकी कुल उपयोगिता से।

### प्रमुख कृति

मेंगर की प्रमुख कृति "Principles of Economics" (1871) है। इस पुस्तक में उन्होंने सीमान्त उपयोगिता के सिद्धांत को विस्तारित किया और आर्थिक विश्लेषण में इसका महत्व स्पष्ट किया। इस कृ ति में, मेंगर ने मूल्य, खपत, और उत्पादन के विश्लेषण के लिए एक नई दृष्टि पेश की और ऑस्ट्रियाई स्कूल की आधारशिला रखी।

### मूलभूत विचार

मेंगर ने यह विचार प्रस्तुत किया कि वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य उपभोक्ता के लिए उनके संतोषजनकता पर आधारित होता है। उन्होंने वस्तुओं को श्आवश्यकश और श्आंशिकश में विभाजित किया और बताया कि कैसे वस्तुओं का मूल्य उनकी उपयोगिता और दुर्लभता से प्रभावित होता है। उन्होंने प्राकृतिक मूल्य की अवधारणा को प्रस्तुत किया, जिसमें मूल्य वस्तुओं की आपूर्ति और मांग के आधार पर स्वाभाविक रूप से तय होता है।

### ऑस्ट्रियाई अर्थशास्त्रः

मेंगर की विचारधारा ने ऑस्ट्रियाई स्कूल की नींव रखी, जो स्वाधीनता, बाजार की स्वायत्तता, और उद्यमिता पर जोर देता है। यह स्कूल अर्थशास्त्र के अन्य  दृष्टिकोणों से अलग है और व्यक्तिगत निर्णयों और बाजार प्रक्रियाओं को समझने पर केंद्रित है।

कार्ल मेंगर का काम सीमान्त उपयोगिता और ऑस्ट्रियाई अर्थशास्त्र के सिद्धांतों को समझने में अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके सिद्धांतों ने आधुनिक अर्थशास्त्र की कई अवधारणाओं को गहराई से प्रभावित किया और अर्थशास्त्र के अध्ययन में नई दिशा प्रदान की।

### 7.8 लियोन वालरा

लिओन वालरा (1834.1910) एक प्रमुख फ्रांसीसी अर्थशास्त्री थे जिन्होंने सामान्य संतुलन सिद्धांत (General Equilibrium Theory) और मार्जिनल यूटिलिटी थ्योरी में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनका काम आधुनिक अर्थशास्त्र की नींव में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यहाँ उनके प्रमुख योगदान और विचारों का संक्षिप्त विवरण है।

### 7.9 लियोन वालरा प्रमुख योगदान और सिद्धांत–

सामान्य संतुलन सिद्धांत (General Equilibrium Theory):

वालरा का प्रमुख काम Éléments d'économie politique pure" (Pure Economics) में प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने सामान्य संतुलन सिद्धांत प्रस्तुत किया। इस सिद्धांत के अनुसार, बाजार में सभी वस्तुओं

और सेवाओं के लिए एक समान संतुलन स्थिति हो सकती है, जहां आपूर्ति और मांग बराबर होती है। वालरा ने बाजार के सभी हिस्सों के बीच संतुलन को गणितीय मॉडल के माध्यम से विश्लेषित किया, जिसमें सभी बाजारों में वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें और मात्रा एक दूसरे के साथ संतुलित होती हैं।

### मार्जिनल यूटिलिटी थ्योरी (Marginal Utility Theory)–

वालरा ने मार्जिनल यूटिलिटी थ्योरी को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जो यह बताती है कि मूल्य निर्धारण में उपभोक्ताओं की अंतिम इकाई की उपयोगिता (मार्जिनल यूटिलिटी) महत्वपूर्ण होती है। इस दृष्टिकोण ने मूल्य निर्धारण और उपभोक्ता व्यवहार की समझ को बेहतर बनाया।

### विपणन और आदान–प्रदान (Market and EÛchange)–

वालरा ने बाजारों में आदान–प्रदान और मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया पर भी ध्यान केंद्रित किया। उन्होंने समझाया कि कैसे विभिन्न बाजारों में वस्तुओं की आपूर्ति और मांग एक समग्र संतुलन की ओर अग्रसर होती है।

### प्रभाव और विरासत–

वालरा का काम आधुनिक अर्थशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण था। उनके सामान्य संतुलन सिद्धांत ने बाजार अर्थशास्त्र और मूल्य निर्धारण के विश्लेषण में एक नई दिशा दी। वालरा ने गणितीय विश्लेषण का उपयोग करके अर्थशास्त्र को अधिक सटीक और संगठित तरीके से समझाने की कोशिश की, जो बाद में अर्थशास्त्र के अध्ययन में एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण बन गया।

लिओन वालरा के सिद्धांत और विश्लेषण आज भी अर्थशास्त्र के अध्ययन में महत्वपूर्ण हैं और उन्होंने मूल्य निर्धारण, बाजार संतुलन, और अर्थशास्त्र के गणितीय विश्लेषण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके काम ने आर्थिक सिद्धांतों की समझ को व्यापक रूप से प्रभावित किया और वे आधुनिक अर्थशास्त्र के संस्थापक विचारकों में से एक माने जाते हैं।

### वालरा का योगदान

### सीमान्त उपयोगिता और पूंजीः

वॉलरा ने सीमान्त उपयोगिता के सिद्धांत को मंगर के विचारों का विस्तार और स्पष्टता प्रदान की। उनका मानना था कि मूल्य और आर्थिक निर्णय अंतिम इकाई की उपयोगिता पर आधारित होते हैं। वॉलरा ने पूंजी और ब्याज की अवधारणाओं पर महत्वपूर्ण काम किया। उन्होंने ष्कैपिटल एंड इंटरेस्टष (Capital and Interest] 1884) और हिस्ट्री एंड क्रिटिसिज्म ऑफ द थिओरी ऑफ कैपिटलष (History and Criticism of the Theory of Capital, 1890) में ब्याज और पूंजी के आर्थिक विश्लेषण को प्रस्तुत किया।

### ब्याज की थ्योरीः

वॉलरा ने ब्याज की थ्योरी को स्पष्ट किया कि ब्याज की दरें भविष्य की पूंजी की मांग और आपूर्ति पर निर्भर करती हैं। उन्होंने ब्याज को भविष्य की वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिता की तुलना में वर्तमान वस्तुओं की उपयोगिता के अंतर के रूप में व्याख्यायित किया। उन्होंने ष्टाइम प्रेफरेंसष की अवधारणा को पेश किया, जो यह बताती है कि लोग वर्तमान वस्तुओं को भविष्य की वस्तुओं की तुलना में अधिक मूल्य देते हैं। इस कारण, ब्याज दरें उनकी समय वरीयताओं के आधार पर निर्धारित होती हैं।

**पूंजी की अवधारणा**

वॉलरा ने पूंजी को उन संसाधनों के रूप में परिभाषित किया जो उत्पादन के लिए उपयोग किए जाते हैं और जिनका मूल्य भविष्य में होने वाले लाभ पर आधारित होता है। उन्होंने पूंजी के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या की और बताया कि कैसे पूंजी और निवेश के निर्णय दीर्घकालिक लाभ और उत्पादन की बढ़ोतरी के लिए महत्वपूर्ण होते हैं।

**आर्थिक संतुलन और विकासः**

वॉलरा ने आर्थिक संतुलन के सिद्धांतों को भी स्पष्ट किया, जिसमें उन्होंने बताया कि बाजार कैसे स्वचालित रूप से संतुलित होते हैं और कैसे विभिन्न बाजार बल एक दूसरे के साथ संतुलित होते हैं।

### 7.10 यूजेन वॉन बाम–बावर्क

यूजेन वॉन बाम–बावर्क (1851–1914) ऑस्ट्रियाई अर्थशास्त्री थे और उन्होंने सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility) और पूंजी और ब्याज (ब्चपजंस ंदक प्दजमतमेज) के सिद्धांतों में महत्वपूर्ण योगदान दिया। वे ऑस्ट्रियाई स्कूल के प्रमुख विचारकों में से एक माने जाते हैं और उनके काम ने आधुनिक अर्थशास्त्र की कई अवधारणाओं को आकार दिया। यूजेन वॉन बम–बावर्क के सिद्धांत और उनके द्वारा किए गए काम ने ऑस्ट्रियन स्कूल की नींव को मजबूत किया और पूंजी और ब्याज की अवधारणाओं पर नई समझ प्रदान की। उनके विचार आज भी अर्थशास्त्र के अध्ययन में महत्वपूर्ण हैं, और उनके आलोचनात्मक दृष्टिकोण ने मार्क्सवाद और क्लासिकल अर्थशास्त्र के सिद्धांतों की समीक्षा की। उनकी शोध और विश्लेषण ने अर्थशास्त्र की कई महत्वपूर्ण धाराओं को प्रभावित किया और वे आज भी एक प्रमुख आर्थिक विचारक के रूप में मान्यता प्राप्त हैं।

### 7.11 यूजेन वॉन बाम–बावर्क का योगदान

**प्रमुख कृतियाँः**

- **"कैपिटल एंड इंटरेस्ट" (Capital and Interest, 1884)**
- **"हिस्ट्री एंड क्रिटिसिज्म ऑफ द थिओरी ऑफ कैपिटल" (History and Criticism of the Theory of Capital, 1890)**

यूगेन बोहम–बावेर्क का काम पूंजी, ब्याज, और सीमान्त उपयोगिता की अवधारणाओं को गहराई से समझने में मदद करता है और उनकी आर्थिक थ्योरी आज भी महत्वपूर्ण मानी जाती है। उनकी विचारधारा ने ऑस्ट्रियाई अर्थशास्त्र की जड़ों को मजबूती दी और आर्थिक विश्लेषण में महत्वपूर्ण योगदान किया। बाम–बावर्क का काम सीमान्त उपयोगिता, पूंजी और ब्याज की अवधारणाओं को समझने में अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने ऑस्ट्रियाई अर्थशास्त्र के सिद्धांतों को विस्तार दिया और आर्थिक विश्लेषण में नई दृष्टिकोण प्रस्तुत किए। उनकी थ्योरी आज भी अर्थशास्त्र के अध्ययन में एक महत्वपूर्ण आधार मानी जाती है।

### 7.12 सारांश

सीमांत विचारधारा ने आर्थिक सिद्धांत में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन को चिह्नित किया, जो विलियम स्टेनली जेवॉन्स, कार्ल मेंगर, लियोन वालरा और यूजेन वॉन बोहम–बावर्क के अभूतपूर्व योगदान से प्रेरित था। प्रत्येक अर्थशास्त्री ने अपनी स्वतंत्र लेकिन पूरक अंतर्दृष्टि के माध्यम से, श्रम और उत्पादन लागतों पर आधारित शास्त्रीय सिद्धांतों से आर्थिक विश्लेषण का ध्यान हटाकर सीमांत उपयोगिता और व्यक्तिपरक

मूल्य की सूक्ष्म समझ पर केंद्रित किया। जेवॉन्स ने सीमांत उपयोगिता की अवधारणा पेश की, जिसमें इस बात पर जोर दिया गया कि वस्तुओं का मूल्य एक और इकाई के उपभोग से प्राप्त अतिरिक्त संतुष्टि से निर्धारित होता है। मेंगर के काम ने इन विचारों को पुष्ट और विस्तारित किया, मूल्य की व्यक्तिपरक प्रकृति को रेखांकित किया और बताया कि यह व्यक्तिगत प्राथमिकताओं से कैसे उत्पन्न होता है। वाल्रास ने अपने सामान्य संतुलन सिद्धांत के साथ एक औपचारिक रूपरेखा प्रदान की, जो इस बात का व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है कि बाजार संतुलन प्राप्त करने के लिए कैसे परस्पर क्रिया करते हैं। बोहम–बावर्क ने पूंजी और ब्याज की भूमिका की खोज करके ऑस्ट्रियाई परिप्रेक्ष्य को और समृद्ध किया, यह बताते हुए कि समय की प्राथमिकताएँ और उत्पादकता आर्थिक निर्णयों को कैसे प्रभावित करती हैं। सामूहिक रूप से, इन अर्थशास्त्रियों ने न केवल शास्त्रीय आर्थिक सिद्धांतों को चुनौती दी और परिष्कृत किया, बल्कि आधुनिक सूक्ष्म अर्थशास्त्र के लिए आधार भी तैयार किया। सीमांत विश्लेषण और व्यक्तिपरक मूल्य पर उनका जोर आर्थिक विचार के लिए केंद्रीय बना हुआ है, जो इस बात को आकार देता है कि हम उपभोक्ता व्यवहार, बाजार की गतिशीलता और आपूर्ति और मांग के जटिल परस्पर क्रिया को कैसे समझते हैं। इस प्रकार सीमांत क्रांति आर्थिक सिद्धांत में एक महत्वपूर्ण मोड़ का प्रतिनिधित्व करती है, जो आर्थिक घटनाओं का विश्लेषण और व्याख्या करने के लिए एक गहन और अधिक परिष्कृत दृष्टिकोण को दर्शाती है।

### 7.13 बोध प्रश्न–

- सीमान्त विचारधारा से आप क्या समझते हैं ?
- विलियम स्टैनली जेवन्स की भूमिका की विवेचना कीजिए।
- कार्ल मेंगर की भूमिका की विवेचना कीजिए।
- लिओन वालरा की भूमिका की विवेचना कीजिए।
- यूजेन वॉन बम–बावर्क की भूमिका की विवेचना कीजिए।
- विलियम स्टैनली जेवन्स योगदान की व्याख्या कीजिए।
- कार्ल मेंगर योगदान की व्याख्या कीजिए।
- लिओन वालरा योगदान की व्याख्या कीजिए।
- यूजेन वॉन बम–बावर्क योगदान की व्याख्या कीजिए।

### 7.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची / उपयोगी पुस्तके


- Jevons, W. S. (1871). *The Theory of Political Economy*. Macmillan and Co.
- Jevons, W. S. (1875). Money and the Mechanism of Exchange. Macmillan and Co.
- Menger, C. (1871). *Principles of Economics* (Grundsätze der Volkswirtschaftslehre). J. W. C. Müller.
- Menger, C. (1883). *Investigations into the Method of the Social Sciences with Special Reference to Economics*.

- Walras, L. (1874). *Éléments d'économie politique pure* (Elements of Pure Economics). Corbaz.
- Walras, L. (1889). *Éléments d'économie politique pure, deuxième édition* (Elements of Pure Economics, Second Edition). Corbaz.
- Böhm-Bawerk, E. von. (1884). *Capital and Interest* (Kapital und Kapitalzins). Duncker & Humblot.
- Böhm-Bawerk, E. von. (1889). *The Positive Theory of Capital* (Die Positive Theorie des Kapitals). Duncker & Humblot.
- Backhouse, R. E. (2002). *The Ordinary Business of Life: A History of Economics from the Ancient World to the Twenty-First Century*. Princeton University Press.
- Stigler, G. J. (1950). *The Development of Utility Theory, I & II*. Journal of Political Economy, 58(4), 307-327 & 59(5), 307-327.
- Davis, J. B., & Hands, D. W. (2004). *The Philosophy of Economics: An Anthology*. Cambridge University Press.

# खण्ड–3

# कीन्सीयन क्रांति एवं पूर्ववर्ती/उत्तरवर्ती विचारक

## इकाई–1

## अल्फ्रेड मार्शल एवं पीगू


1 : 0 उद्देश्य

1 : 1 प्रस्तावना

1 : 2 जीवन–परिचय

1 : 3 मौलिक योगदान

1 : 3 : 1 परिभाषा

1 : 3 : 2 आर्थिक नियम

1 : 3 : 3 उपभोक्ता का अधिशेष

1 : 3 : 4 मांग की लोच

1 : 3 : 5 उत्पादन के कारक

1 : 3 : 6 जनसंख्या

1 : 3 : 7 वितरण के सिद्धांत

1 : 3 : 8 लगान सम्बन्धी विचार

1 : 3 : 9 मजदूरी सम्बन्धी विचार

1 : 3 : 10 ब्याज सम्बन्धी विचार

1 : 4 कल्याणवादी अर्थशास्तु का दृष्टिकोण

1 : 5 पीगू का जीवन परिचय

1 : 7 पीगू का आर्थिक दृष्टिकोण

1 : 7 : 1 आर्थिक कल्याण

1 : 7 : 2 अर्थशास्त्र का क्षेत्र और उद्देश्य

1 : 7 : 3 श्रम सम्बन्धी विचार

1 : 7 : 4 समाजवादी सम्बन्धी विचार

1 : 7 : 5 रोजगार सम्बन्धी विचार

1 : 10 सारांश

1 : 11 बोध प्रशन

1 : 12 उपयोगी पुस्तकें

1 : 13 शब्दावली

## 1 : 0 उद्देश्यः–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद शिक्षार्थी–

- नव–प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रीयों की विचार–धारा को समझ सकेंगें।
- मार्शल और पीगू के जीवन–परिचय को जान सकेंगें।
- अर्थशास्त्र में मार्शल के योगदान को समझ सकेंगें।
- मार्शल के वितरण सिद्धांत का विश्लेषण कर सकेंगें।
- पीगू के कल्याण सम्बन्धी अवधारणा का विश्लेषण कर सकेंगें।

## 1 : 1 प्रस्तावना

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र का जन्म 1776 ई० में हुआ था उस समय एड्म स्मिथ की प्रसिद्ध पुस्तक वेल्थ ऑफ मेशन्स प्रकाशित हुयी थी। स्मिथ के बाद, माल्यस, रिकार्डो, सीनियर, जेबी से, इत्यादि ने इसकी नींव सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। समय–काल एवं परिस्थितियों के परिवर्तन स्वरूप प्रतिष्ठित आर्थिक विचारकों के सिद्धांतों में कमियाँ प्रकाश में आने लगी। स्मिथ, रिकार्डो, एवं मारल्यस की आलोचना की जाने लगी। उस समय जान स्टुर्अर मिल ने प्रतिष्ठित सिद्धांतों को संशोधित तथा परिस्कृत कर के प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र के खोए हुये विश्वास को पुनः प्राप्त कर लिया था। किन्तु कुछ समय के पश्चात् मिल द्वारा प्रतिपादित विचारों, औद्योगिक, पूँजीवाद, व्यक्तिवाद व्यक्तिहित, तथा सरकार की हस्तक्षेप करने की नीति आदि पर समाजवादी, राज–समाजवादियों, ऐतिहासिक सम्प्रदायियों के विचारको ने आलोचना करनी शुरू कर दी परिणाम स्वरूप, मिल द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों का महत्व कम होने लगा एवं परम्रावादी विचारों का स्थान लोगों की निगाहों से गिरने लगा। मशीन एवं नवीन खोजों के अधिक प्रयोग ने व्यापक पैमाने पर उत्पादन करने को प्रोत्साहन दिया, जिसके कारण अन्य नई कठिनाईयाँ पैदा हो गयी।

कुछ समय पश्चात् व्यापार–चक्रों के घटित होने के बाद उत्पादन एवं उपभोग के क्षेत्र में अस्त–व्यस्तता उत्पन्न हो गयी थी। इस तथ्य ने सरकार और आर्थिक विचारको का ध्यान आकृष्ट किया। इन कारणों से राज्य का आर्थिक कार्यो में बढ़तें हुऐ हस्तक्षेप के कारण प्रतिष्ठित सि़द्धांत के विचारक तत्कालीन समस्याओं के निवारण प्रस्तुत करने में असमर्थ थे ऐसे समय में प्रतिष्ठित विचारकों की ख्याति धीरे–धीरे घूमिल होती गयी। ऐसे समय में एक विद्वान आर्थिक चिंतक की आवश्यकता थी, जो प्राचीन एवं नवीन विचारों का सुंदर समंन्वय करके प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र को सुदृढ़ता प्रदान कर सके इस कठिन कार्य को मार्शल ने अपनी प्रतिभा का परिचय देकर पूर्ण किया। मार्शन ने नवीन तथ्यों एवं समस्याओं के प्रकाश में प्रतिष्ठित आर्थिक सिद्धांतों को संशोधित, परिष्कृत एवं विकसित किया। मार्शल के इन आर्थिक विचारों को नवप्रतिष्ठित अर्थशास्त्र की उपमा दी जाती है। आर्थिक विज्ञान की यह शाखा कैम्ब्रित सम्प्रदान भी कहलाती है।

प्रतिष्ठित आर्थिक सिद्धांतों के प्रभाव के कारण यूरोप के अधिकांश देशों में औद्योगिक क्रांति हो चुकी थी लगभग सभी देशों में कारखाना प्रणाली में कमियाँ दिखायी देने लगी। उद्योगपतियों, सेवायीनको द्वारा खुलकर मजदूरों, बच्चों, एवं महिला श्रमिकों का शोषण किया जाने लगा था इनकी दशा अच्छी नहीं थी। श्रमिकों को बेरोजगार रहना पड़ रहा था। उस समय के समाज–सुधारकों एवं अर्थशास्त्रियों को "विशुद्ध अर्थ–विज्ञान" के दृष्टिकोण से 'कल्याण अर्थशास्त्र' की ओर ध्यान आकृष्ट कर लिया था। कल्याणवादी अर्थशास्त्र का जन्म प्रतिष्ठित आर्थिक चिंतकों की विचारधारा के विरोध के फलस्वरूप हुआ। इस विचाधारा में प्रतिष्ठित विचारकों के व्यक्तिवाद तथा स्वतंत्र प्रतियोगिता का विरोध

किया गया है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य उत्पादन वृद्धि मानते हैं। जबकि कल्याणवादी चिंतक का उद्देश्य अधिकतम सामाजिक–कल्याण से है।

प्रस्तुत इकाई में मार्शल एवं पीगू–के आर्थिक सिद्धांत का ही एक झलक प्रस्तुत की गयी है।

### 1 : 2 जीवन–परिचय

पीगू का जन्म 1877 में हुआ था। उसकी पूरी शिक्षा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में हुई थी। पीगू 1924 से 1936 तक इंग्लैण्ड का प्रभावशाली अर्थशास्त्री रहा। पीगू मार्शल के प्रिय शिष्यों में से एक था। 1908 में जब मार्शल कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से अवकाश पर चला गया तब पीगू को वहां पर प्रोफेसर एवं अध्यक्ष के पद पर नियुक्त किया गया, और वह इस पर पर 1943 तक कार्य करता रहा । प्रतिष्ठित सम्प्रदाय का अन्तिम समर्थक था। 1912 में उसने नामक पुस्तक का प्रकाशन किया था, जिसका नाम बाद में बदल कर द इकोनामिक्स ऑफ वेलफेयर रखा गया। इस पुस्तक का प्रकाशन 1920 में हुआ था। कहा जाता है कि पीगू मार्शल की परम्परा पर ही चला। उसने मार्शल के विचारों को आगे बढ़ाया, परन्तु अनेक बातों में पीगू मार्शल से भिन्न विचार रखता है। मार्शल की अपेक्षा पीगू ने अपने अध्ययन में गणित का अधिक प्रयोग किया और वह मार्शल की अपेक्षा अधिक आदर्शवादी था।

### 1 : 3 मौलिक योगदान

मार्शल के मौलिक योगदान को उसके आर्थिक विचारों के संदर्भ में देखा जा सकता है। मार्शल को नव–परम्परावाद का संस्थापक इस अर्थ में कहा जाता है कि उसने पुराने सिद्धान्तों का पुनर्निर्माण किया था। आर्थिक विचारों के इतिहास में मार्शल का नाम ससम्मान लिया जाता है, क्योंकि वह यथार्थवादी अर्थशास्त्री था। वह इस बात से परिचित था कि प्रतिष्ठित विचारधारा के सिद्धान्तों में कौन सी कमियाँ हैं। मार्शल का कहना था कि निगमन प्रणाली के प्रयोग से अर्थशास्त्र व्यावहारिक समस्याओं को हल करने में असमर्थ हो चुका है। अतः वह रिकार्डो के प्राचीन सिद्धान्तों को संशोधित करना चाहता था। मार्शल ने परिस्थितियों को समझा और अपने पूरे मनोयोग से प्राचीन एवं नये सिद्धान्तों के मध्य समझौते का मार्ग खोज निकाला।

#### 1 : 3 : 1 परिभाषा

मार्शल से पूर्व प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने, विशेषकर ने, विशेषकर स्मिथ ने, अर्थशास्त्र को 'धन का विज्ञान' कहा था। अर्थशास्त्र की इस धारणा के कारण धन व्यक्ति के लिए न होकर व्यक्ति धन के लिए हो चुका था। व्यक्ति के स्थान पर धन को अधिक महत्व दिया जाता था, और धन की पूजा होने लगी थी। लोग अर्थशास्त्र को 'निकृष्ट विाान' कहने लगे। यही कारण है कि बाद के अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र ने अर्थशास्त्र के अध्ययन को मानव कल्याण के रूप में प्रतिष्ठित किया।

अर्थशास्त्र को नैतिकता की दृष्टि से अनैतिक समझा जाने लगा था। इस प्रकार के वातावरण में मार्शल ने बड़ी सूझ–बूझ से काम लिया। उसने अपनी पुस्त में अर्थशास्त्र की जो परिभाषा दी है, उस परिभाषा ने अर्थशास्त्र को एक नयी दिशा दे डाली और अर्थशास्त्र को आलोचना से बचा लिया। मार्शल ने लिखा हैः "अर्थशास्त्र मनुष्य के सामान्य जीवन का अध्ययन है। वह समाज में रहने वाले व्यक्ति के कार्यों के उस भाग का अध्ययन करता है जो भौतिक कल्याण के साधनों की प्राप्ति एवं प्रयोग से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं।"

मार्शल की मानव–कल्याण की विचारधारा को आगे चलकर पीगू ने विकसित किया और अन्त में, उसे कल्याणवादी अर्थशास्त्री कहा जाने लगा। मार्शल पर कल्याणवादी प्रभाव नीतिशास्त्र के अध्ययन की देन है।

जहाँ तक अर्थशास्त्र के क्षेत्र का प्रश्न है, मार्शल ने उसके क्षेत्र को व्यापक बनाया है। उसने अर्थशास्त्र को वास्तविक विज्ञ्ज्ञन मानते के साथ–साथ आदर्श विज्ञान भी माना है। इस प्रकार, मार्शल की महत्वपूर्ण देन अर्थशास्त्र को विज्ञान और कला, दोनों ही मानने में हैं। अब अर्थशास्त्र केवल क्या है **का** अध्ययन नहीं करता है, बल्कि क्या होना चाहिए का भी अध्ययन करता है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक अध्ययन के लिए केवल निगमन प्रणाली का ही प्रयोग किया था। मार्शल इस त्रुटि को समझता था और वह इतिहासवादियों की आगमन प्रणाली के प्रयोग के दोषों को भी जानता था। ऐसी स्थिति में मार्शल ने बड़े ही संयम और सोच–विचार से काम लिया। तथा यह स्पष्ट कर दिया कि अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए दोनों ही प्रणालियों का उपयोग आवश्यक है। इस सन्दर्भ में वह लिखता है कि "कोई ऐसी प्रणाली नहीं है जिसे अर्थशास्त्र की विशिष्ट प्रणाली कहा जा सके। प्रत्येक प्रणाली को अपने स्थान पर उपयोगी बनाने का प्रयास होना चाहिए।

**1 : 3 : 2 आर्थिक नियम**

आर्थिक नियमों के सन्दर्भ मं मार्शल का मौलिक योगदान है। मार्शल ने अर्थशास्त्र को वास्तविक विज्ञान मानने के साथ–साथ आदर्श विज्ञान भी माना, परन्तु उसने इस बात पर विशेष ध्यान दिया कि अर्थशास्त्र का केन्द्र–बिन्दु व्यक्ति है, जिसके कारण आर्थिक नियम प्राकृतिक नियमों की तुलना में कम प्रमाणिक होते हैं।

मार्शल के अनुसार, भले ही आर्थिक नियम भौतिक विज्ञान के नियमों के समान सत्य नहीं हैं, परन्तु वे अन्य सामाजिक विज्ञान के नियमों की तुलना में अधिक प्रामाणिक हैं, क्योंकि मनुष्य के आर्थिक कार्यों को मुद्रा के द्वारा मापा जा सकता है, जबकि अन्य सामाजिक विज्ञान के नियमों के पास ऐसा कोई प्रामणिक मापदण्ड नहीं हैं। हाँ, मौद्रिक मूल्य में समय–समय पर उतार–चढ़ाव अवश्य होते रहते हैं। यही कारण है कि आर्थिक नियम उतने प्रामाणिक नहीं होते हैं। दूसरी बात आर्थिक नियमों के सन्दर्भ में यह कही गयी है कि मनुष्य का व्यवहार परिवर्तनशील है। विभिन्न व्यक्ति विभिन्न प्रकार का व्यवहार करते हैं और उनके व्यवहार में निश्चिता कम होती है। यही कारण है कि मार्शल ने आर्थिक नियमों की तुलना ज्वार–भाटे के नियमों से की है।

यदि मार्शल के विचारों की तुलना प्रतिष्ठित शाखा से की जाय तो सहज ही में यह स्पष्ट हो जायेगा कि आर्थिक नियमों के सन्दर्भ में दोनों में अन्तर है। जहाँ प्रतिष्ठित विद्वान आर्थिक नियमों को सर्वव्यापी एवं निश्चित मानते हैं वहीं मार्शल आर्थिक नियमों को न तो सर्वव्यापी मानता है और न ही निश्चत।

मार्शल ने, उपभोग के क्षेत्र में सीमान्त उपयोगिता के विचार को भी आगे बढ़ाया था। उसने उपयोगिता ह्रास नियम जैसे महत्वपूर्ण विषय को लेकर एक अन्य नये ढंग की व्याख्या प्रस्तुत की है। मार्शल ने उपभोग के क्षेत्र में पुराने नियमों में संशोधन करके नये विचारों से यह सिद्ध कर दिया है कि किस प्रकार एक व्यक्ति के आर्थिक कल्याण को अधिकतम किया जा सकता हैः यद्यपि विगत कुछ वर्षों से उसके सीमान्त उपयोगिता सम्बन्धी विचार को हिक्स, ऐलन आदि के द्वारा आलोचना की जाने लगी है। वे अपनी बात को उदासीनता–वक्र–विश्लेषण की सहायता से स्पष्ट करने लगे हैं। इतने पर भी मार्शल के उपभोग सम्बन्धी विचारों का महत्व कम नहीं है।

**1 : 3 : 3 उपभोक्ता का अधिशेष**

मार्शल ने उपभोक्ता अधिशेष शब्द को आर्थिक साहित्य में जोड़ा उनके अनुसार, "जो कीमत वह वस्तु के बिना जाने के बजाय चुकाने को तैयार होगा, उससे अधिक जो वह वास्तव में चुकाता है, इस अधिशेष संतुष्टि का आर्थिक माप है। इसे उपभोक्ता का अधिशेष कहा जा सकता है"। उपभोक्ता आम तौर पर किसी वस्तु के बिना रहने के बजाय उसके लिए अधिक कीमत चुकाने को तैयार रहते हैं।

लेकिन वास्तव में वे इसके लिए कम भुगतान करते हैं। परिणामस्वरूप उपभोक्ता को अधिशेष संतुष्टि प्राप्त होती है और इसे उपभोक्ता अधिशेष के रूप के जाना जाता है। उपभोक्ता के अधिशेष की अवधारणा कल्याणकारी अर्थशास्त्र का आधार बन गई है। एरिक रोल के शब्दों में, "कल्याणकारी अर्थशास्त्र का पूरा क्षेत्र जिसके संस्थापक मार्शल के शिष्य और उत्तराधिकारी, प्रो. पिगौ हैं, वास्ताव में उन विचारों पर आधारित है जिनमें उपभोक्ता अधिशेष सिद्धांत बौद्धिक पूर्वज हैं।

### 1 : 3 : 4 मांग की लोच

यह एक और महत्वपूर्ण अवधारणा है जो मार्शली ने अर्थशास्त्र को दी। मार्शल के अपने शब्दों में"। बाजार में मांग की लोच बड़ी या छोटी होती है, क्योंकि किसी कीमत में गिरावट के लिए मांग की गई मात्रा बहुत अधिक या कम बढ़ जाती है और कीमत में वृद्धि के लिए बहुत कम या ज्यादा कम हो जाती है।" उन्होंने बीच अंतर किया। लोच की पांच डिग्री बिल्कुल लोचदार, अत्यधिक लोचदार, लोचदार, कम लोचदार और बेलोचदार। उन्होंने कहा कि विलासिता की वस्तुओं की मांग अत्यधिक लोचदार, सुख–सुविधाओं की मांग लोचदार और आवश्यक वस्तुओं की मांग बेलोचदार होती है।

मंग की लोच को मांग की गई राशि में प्रतिशत परिवर्तन/कीमत में प्रतिशत परिवर्तन से मापा जा सकता है, आम तौर पर, मांग की लोच मूल्य लोच को संदर्भित करती है। मार्शल मांग की कीमत लोच को परिभाषित करने वाले पहले व्यक्ति थे। मार्शल ने तीन प्रकार की कीमत लोच दी, इकाई से अधिक इकाई से कम लोच। उन्होंने मांग की लोच को नियंत्रित करने वाले कारकों की भी गणना की, जैसे, मूल्य स्तर, वस्तुओं की प्रकृति, उपयोग की विविधता, विकल्प, समय तत्व, स्वाद और आदत।

### 1 : 3 : 5 उत्पादन के कारक

मार्शल के अनुसार भूमि और श्रम उत्पादन के दो प्रमुख कारके हैं। पूंजी उत्पादन का द्वितीयक कारक है। संगठन एक प्रकार का श्रम ही है। परिणामस्वरूप, भूमि और श्रम उत्पादन के प्राथमिक कारक हैं। मनुष्य सक्रिय होने के कारण, उत्पादन और उपभोग से संबंधित सभी गतिविधियों के पीछे केंद्रीय शक्ति हैं, लेकिन प्रकृति एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है क्योंकि वह अपने परिवेश और पर्यावरण के अनुसार ढलता है।

### 1 : 3 : 6 जनसंख्या

जनसंख्या के विषय पर मार्शल से सहमत थे। मार्शल के अनुसार, किसी देश की जनसंख्या या तो प्राकृतिक कारण से या आप्रवासन से बढ़ती है। जलवायु परिस्थितियों और परिवार के भरण–पोषण के साधनों की कमी के कारण शादियाँ प्रभावित हुईं। उन्होंने कहा कि स्वस्थ और शारीरिक रूप से फिट बच्चों वाले बड़े परिवार देश की संपत्ति हैं और इसलिए, यह कहना सही नहीं है कि जनसंख्या में वृद्धि किसी देश की आर्थिक समृद्धि के लिए हानिकारक है। उनका मानना था कि स्वस्थ बच्चों के बड़े परिवारों से राज्य को बहुत कुछ हासिल हुआ। उन्होंने लिखा, "एक बड़े परिवार के सदस्य एक–दूसरे को शिक्षित करते हैं, वे आमतौर पर छोटे परिवार के सदस्यों की तुलना में अधिक मिलनसार और उज्जवल होते हैं, अक्सर हर तरह से अधिक ऊर्जावान होते हैं"।

### 1 : 3 : 7 वितरण के सिद्धान्त

मार्शल प्रथम अर्थशास्त्री था जिसने वितरण की समस्या को वैज्ञानिक रूप दिया। उसके कुछ महत्वपूर्ण विचार नीचे दिये गये हैः

राष्ट्रीय आय सम्बन्धी विचार– उत्पादन के साधनों के बीच में वितरण किस का हो, इस बात को स्पष्ट करने के लिए, मार्शल ने राष्ट्रीय आय के विचार को प्रस्तुत किया है। उसका कहना है कि "देश की पूँजी एक श्रम प्राकृतिक साधनों के सहयोग से प्रति वर्ष भौतिक एवं अभौतिक वस्तुओं (जिनमें सब प्रकार

की सेवाएँ सम्मिलित हैं) का एक शुद्ध योग उत्पन्न करता है। यही देश की वास्तविक वार्षिक आय या राष्ट्रीय आय है।"

उत्पत्ति के साधनों के हिस्सों का निर्धारण– मार्शल के मतानुसार, उत्पत्ति के प्रत्येक साधन को उसका हिस्सा राष्ट्रीय आय से मिलेगा। जिसमें से प्रत्येक साधन अपनी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार अपना **भाग प्राप्त करता है। राष्ट्रीय आय से भूमि से स्वामी को लगान, पूँजीपति को ब्याज, साहसी को लाभ तथा श्रमिकों को मजदूरी दी जाती है। लगान, ब्याज, मजदूरी एवं लाभ किस प्रकार से निर्धारित होगा इसकी व्याख्या मार्शल ने निम्न प्रकार दी है:**

**स्वबोध प्रश्न– वितरण के सिद्धांत को समझाइये।**

### 1 : 3 : 8 लगान सम्बन्धी विचार

मार्शल ने रिकार्डो के लगान सिद्धान्त से सहमति प्रकट की है। लगान के सन्दर्भ में मार्शल ने रिकार्डो से एक कदम आगे बढ़कर अपने विचारों को रखा है। उसके अनुसार, जब कभी वस्तु की माँग बढ़ती है, तो उत्पादक अपने उत्पादन की मात्रा को बढ़ाने का प्रयास करते हैं। फलतः उत्पादन के साधनों की माँग बढ़ जाती है। परन्तु अल्पकाल में समय इतना कम होता है कि साधनों की पूर्ति तुरन्त नहीं बढ़ायी जा सकती है। इससे साधन की माँग, पूर्ति की अपेक्षा अधिक हो जाती है और साधन का मूल्य बढ़ जाता है। एकाएक साधन के मूल्य में वृद्धि से साधन के स्वामी को अधिक लाभ मिलने लगता है। अनायास प्राप्त होने वाले इस लाभ को मार्शल ने 'आभास लगान' कहा है। मार्शल के अनुसार, यह लगान केवल भूमि को ही प्राप्त नहीं होता है, बल्कि उत्पत्ति के अन्य साधनों को भी प्राप्त होता है। दीर्घकाल में आभास लगान समाप्त हो जाता है।

### 1 : 3 : 9 मजदूरी सम्बन्धी विचार

मार्शल ने मजदूरी निर्धारण के सम्बन्ध में कई विचार प्रस्तुत किये हैं। वह एक स्थल पर मजदूरी–निर्धारण के बारे में प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों से मिलते–जुलते विचार व्यक्त करता है। उसका विचार था कि सामान्य मजदूरी जीवन–स्तर के व्यय के लिए पर्याप्त होनी चाहिए। एक स्थल पर वह मजदूर की मजदूरी सीमान्त उत्पत्ति के बराबर तय करने की बात कहता है। अन्त में, उसने माँग और पूर्ति के सिद्धान्त को मजदूरी के निर्धारण पर भी लागू किया था।

मार्शल ने मजदूरी की दो सीमाएँ निर्धारित की हैं–एक, मजदूरी की न्यूनतम सीमा; दूसरी, मजदूरी की उच्चतम सीमा। मजदूरी की न्यून सीमा वह होती है, जिससे नीचे एक मजदूर मजदूरी नहीं लेना चाहता है, दूसरी, मजदूरी की उच्चतम सीमा वह है जो एक सेवायोजक एक मजदूर को उसकी सीमान्त उत्पादकता से अधिक मजदूरी देने को तैयार नहीं रहता है। इस प्रकार की व्याख्या देने के बाद मार्शल अन्त में यह कहता है कि उच्चतम और न्यूनतम सीमाओं के बीच वास्तविक मजदूरी उस बिन्दु पर तय होगी जहाँ श्रमिकों की माँग और पूर्ति समान हो जाय।

### 1 : 3 : 10 ब्याज सम्बन्धी विचार

मार्शल ने ब्याज को त्याग का पुरस्कार कहा है। उसके अनुसार, पूँजीपति भविष्य की आशा में पूँजी का संचय करता है, अर्थात् भविष्य के लिए त्याग करता है। इसी त्याग के बदले में वह ब्याज लेने का अधिकारी है। ब्याज की दर क्या होगी? इस प्रश्न के उत्तर में मार्शल का कहना है कि इसका निर्धारण भी माँग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा किया जायेगा।

## 1 : 4 कल्याणवादी अर्थशास्त्रु का दृष्टिकोण

कल्याणवादी अर्थशास्त्रु की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती है; फिर भी हम कह सकते हैं कि कल्याणवादी अर्थशास्त्र में एक ऐसी विचारधारा का अध्ययन किया जाता है कि मुख्य उद्देश्य मानव जाति का कल्याण करना है। रैडर के अनुसार, "कल्याणकारी अर्थशास्त्र अर्थ–विज्ञान की वह शाखा है जो आर्थिक नीतियों के सम्बन्ध में औचित्य के मानदण्ड को स्थापित करने तथा उसे लागू करने का प्रयास करती है।" कल्यावादी अर्थशास्त्र उसे कहते है। जो समस्त कल्याण बढ़ाने में मदद करता है। वर्तमान समय में कल्याणवादी अर्थशास्त्र की दो शाखाएं प्रचलन में है। प्रथम शाखा के अन्तर्गत मार्शल, हाप्सन, तथा पीगू का नाम प्रसिद्ध है। दूसरी शाखा में पैरेटो काल्डोर, जे.आर.हिक्स, आई.एम.डी. लिटिल आदि हैं। इस दूसरी शाखा को नव–कल्याण का अर्थशास्त्र कहा जाता है।

पीगू के अनुसार, 'कल्याण' एक मनोवैज्ञानिक दशा है, पीगू के कल्याण का अर्थ बहुत व्यापक है। उसने कल्याण का विचार उपयोगितावाद से लिया है। आर्थिक कल्याण की व्याख्या करते हुए पीगू ने लिखा है कि "यह सामाजिक कल्याण का वह भाग है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुद्रा के मापदण्ड द्वारा नापा जा सकता है।" पीगू की परिभाषा से स्पष्ट है कि आर्थिक कल्याण सामाजिक कल्याण का वह भाग है जो मुद्रा के मापदण्ड से मापा जा सकता है।

## 1 : 5 पीगू का जीवन–परिचय

- पीगू का जन्म 1877 में हुआ था। उसकी पूरी शिक्षा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में हुई थी। पीगू 1924 से 1936 तक इंग्लैण्ड का प्रभावशाली अर्थशास्त्री रहा। पीगू मार्शल के प्रिय शिष्यों में से एक था। 1908 में जब मार्शल कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से अवकाश पर चला गया तब पीगू को वहां पर प्रोफेसर एवं अध्यक्ष के पद पर नियुक्त किया गया, और वह इस पर पर 1943 तक कार्य करता रहा । प्रतिष्ठित सम्प्रदाय का अन्तिम समर्थक था। 1912 में उसने नामक पुस्तक का प्रकाशन किया था, जिसका नाम बाद में बदल कर द इकोनामिक्स ऑफ वेलफेयर रखा गया। इस पुस्तक का प्रकाशन 1920 में हुआ था। कहा जाता है कि पीगू मार्शल की परम्परा पर ही चला। उसने मार्शल के विचारों को आगे बढ़ाया, परन्तु अनेक बातों में पीगू मार्शल से भिन्न विचार रखता है। मार्शल की अपेक्षा पीगू ने अपने अध्ययन में गणित का अधिक प्रयोग किया और वह मार्शल की अपेक्षा अधिक आदर्शवादी था। (विस्तृत अध्ययन के लिए नियोजन और आर्थिक विकास– डा०वी०सी० सिन्हा डा० पुष्पा सिन्हा) देखें।

## 1 : 7 पीगू का आर्थिक दृष्टिकोण

पीगू का प्रमुख आर्थिक दृष्टिकोण को निम्न प्रकार से रखा जा सकता है :

### 1 : 7 : 1 आर्थिक कल्याण

आर्थिक कल्याण पीगू की विचारधारा का केन्द्र–बिन्दु है। कल्याण एक व्यापक शब्द है। इसे किसी एक निश्चित सीमा के अन्दर नहीं बांधा जा सकता है। इसलिए अध्ययन की सुविधा के लिए कल्याण के एक अंश को ले लिया जाय। अब कल्याण तथा कल्याण के इस अंश के बीच में भेद किया जाय; ऐसा करने के लिए हमें अपने आर्थिक साधन द्रव्य की ही शरण लेनी पड़ेगी, क्योंकि हम समस्त मानवीय कार्यों को द्रव्य से ही माप सकते हैं। इसकी सहायता से हम कलयाण तथा कल्याण के इस अंश के बीच भेद करके अर्थशास्त्र के क्षेत्र को सीमित कर सकते हैं। पीगू ने कल्याण को दो भागों में बांटा है– (1) आर्थिक कल्याण, तथा (2) अनार्थिक कल्याण। उसके विचार से अर्थशास्त्री का सम्बन्ध केवल आर्थिक कल्याण से ही है।

पीगू ने बताया कि देश का आर्थिक कल्याण राष्ट्रीय लाभांश अथवा राष्ट्रीय आय के अर्जन और प्रयोग से प्रभावित होता है। संक्षेप में, आर्थिक कल्याण और राष्ट्रीय आय का एक–दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। राष्ट्रीय आय तीन प्रकार से आर्थिक कल्याण को प्रभावित करती है : (1) राष्ट्रीय आय की मात्रा, (2) राष्ट्रीय आय का वितरण, तथा (3) राष्ट्रीय आय की स्थिरता।

प्रो. पीगू का विचार है कि अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य आर्थिक कल्याण में वृद्धि करना है। अतः इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सरकार को भी प्रयत्न करने होंगे। इस सन्दर्भ में, वह लिखता है कि "यदि निर्धनों को मिलने वाले लाभ के भाग में कमी न आये, तो कुल राष्ट्रीय आय के आकार में वृद्धि होने पर, जबकि अन्य बातें समान रहें, आर्थिक कल्याण में भी वृद्धि होती है।

प्रो. पीगू आर्थिक कल्याण में वृद्धि के व्यावहारिक उपाय भी बताता है। उनके अनुसार, विभेदात्मक करारोपण के द्वारा आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो सकती है। इस सन्दर्भ में उसका यह भी सुझाव था कि धनी वर्ग से निर्धन वर्ग की ओर क्रय–शक्ति का हस्तान्तरण किया जाय। संक्षेप में पीगू का आर्थिक कल्याण इस बात पर निर्भर करता है कि उत्पत्ति के साधनों का उत्पादन और उपभोग में कैसे उपयोग होता है।

### 1 : 7 : 2 अर्थशास्त्र का क्षेत्र और उद्देश्य

विज्ञान को दो भागों में विभाजित किया है– (1) प्रकाशदायक विज्ञान, तथा (2) फलदायक विज्ञान। पीगू स्पष्ट करता है कि अर्थशास्त्र का उद्देश्य इन दोनों विज्ञानों की सहायता से मानव कल्याण वह अर्थशास्त्र को केवल कला ही नहीं मानता है, अपितु उसने अर्थशास्त्र को विज्ञान भी माना है, परन्तु उसका विचार है कि अर्थशास्त्र को विज्ञान मानते हुए भी हमें उसका आधार कला को ही स्वीकार करना होगा अन्यथा अर्थशास्त्र अपने उद्देश्य में सफल नहीं होगा न तो बुद्धि सम्बन्धी व्यायाम होने में है और न ही अपने लिये सच्चाई स्थापित करने के साधन में, अपितु नीतिशास्त्र की दासी तथा व्यवहार का दास होने में है। पीगू के अनुसार "यद्यपि अर्थशास्त्री को सामाजिक उन्नति का लक्ष्य सदा सामने रखा चाहिए, उसका अपना मुख्यष कार्य आक्रमण की सीमा के सामने खड़े होने का नहीं, बल्कि धैर्यपूर्वक उस सीमा के पीछे खड़े होकर ज्ञान की युद्ध–सामग्री तैयार करना है। पीगू के इस कथन से स्पष्ट है कि वह धन के अध्ययन का मुख्य विषय क्या होना चाहिए और क्या नहीं होना चाहिए, को मानता है। वह रॉबिन्स की तरह से अर्थशास्त्र को केवल वास्तविक विज्ञान नहीं मानता है। इस बात को पीगू ने सुन्दर शब्दों में स्पष्ट किया है कि "जिस समय हम अर्थशास्त्र का अध्ययन करते हैं तो हमारे प्रवृत्ति एक दार्शनिक की प्रवृत्ति 'ज्ञान के हेतु ज्ञान' प्राप्त करने की नहीं वरन् जीवशास्त्री के ज्ञान की तरह है, उस ज्ञान पीड़ाओं काके दूर करने में सहायता देता है, होती है। में, पीगू अर्थशास्त्र को व्यावहारिक समस्याओं को हल करने वाला शास्त्र मानता है। उसके इस विचार से अर्थशास्त्र की लोकप्रियता काफी बढ़ी है।

### 1 : 7 : 3 श्रम समस्या सम्बन्धी विचार

द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व तक पीगू को श्रम समस्या का विशेषज्ञ माना जाता था। कल्याणवादी होने नाते वह श्रम समस्याओं पर विशेष रुचि रखता था। यही कारण है कि उसके विचारों में कहीं–कहीं समाजवादी झलक दिखायी देती है। प्रो. पीगू कारखाना प्रणाली को सुधारना चाहता है। यहां उसने रॉबर्ट ओवेन के विचार से मिलते–जुलते विचार दिये हैं। उदाहरणार्थ, न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण, काम के घण्टों को निश्चित कर औद्योगिक विवाद तथा अल्प–बेरोजगारी की समस्या आदि। वह इस बात को स्वीकार करता है कि जब तक दलित वर्ग की आर्थिक दशा नहीं सुधारी जाती है तब तक आर्थिक कल्याण में वृद्धि नहीं होगी। इस बात पर प्रभावित होकर पीगू ने श्रम समस्या पर अपनी पुस्तक में विस्तार से चर्चा की है।

**1 : 7 : 4 समाजवाद सम्बन्धी विचार**

पीगू नव–प्रतिष्ठित सम्प्रदाय का सम्मानित सदस्य होने के कारण मुक्त अर्थ–व्यवस्था का समर्थक भी था। परन्तु कल्याणवादी होने के नाते वह कई स्थलों पर समाजवादियों के जैसे विचार देता है। आर्थिक कल्याण में वृद्धि लाने के लिए वह धनिकों की क्रय–शक्ति को निर्धनों की ओर हस्तान्तरित करना चाहता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह धनिकों पर ऊँची दर से करारोपण करने के पक्ष में है। कई स्थलों पर उसने पूंजीवादी अर्थव्यवस्था से समाजवादी अर्िव्यवस्था को उत्तम बताया है। वह पूंजीवाद में संशांधन करके एक ऐसी अर्थव्यवस्था को लाना चाहता है जो बेरोजगारी समाप्त करे और इसके लिए वह सार्वजनिक उद्योगों में वृद्धि करना चाहता था।

**1 : 7 : 5 रोजगार सम्बन्धी विचार**

प्रो. पीगू जे.बी.से के रोजगार सिद्धान्त में थोड़ा बहुत संशोधन करके उसे स्वीकार कर लेता है। उसके अनुसार, ”यदि श्रमिक अपनी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार मजदूरी लेने को तैयार हो जायें, तो श्रम बाजार में कभी भी बेरोजगारी नहीं हो सकती है। बेरोजगारी इसलिए उत्पन्न होती है कि श्रमक खुले बाजार में कम मजदूरी को न लेने का आपसी समझौता कर लेते हैं। यदि सब श्रमिक मिलकर अपनी मौद्रिक मजदूरी को कम करने के लिए राजी हो जाये ंतो बेरोजगारी की समस्या हल हो जायेगी। इस प्रकार, पीगू बेरोजगारी को दूर करने के लिए मजदूरी की दरों में कमी लाना चाहता है।

**1 : 10 सारांशः–**

मार्शल ने नवीन तथ्यों तथा समस्याओं के प्रकाश में प्रतिष्ठित आर्थिक सिद्धांतों को परिस्कृत एवं विकसित किया मार्शल के आर्थिक विचारों का अध्ययन सिद्धांत के रूप में किया जा सकता है। जैसे–आर्थिक नियम, मार्शल का लक्ष्य और अध्ययन प्रणाली, उपभोक्ता सम्बन्धी विचार, उपभोग का महत्व, माँग की लोच, प्रतिनिधि फर्म, उपभोक्ता की बचत, उत्पादन सम्बन्धी विचार, विनिमय सम्बन्धी विचार, वितरण सम्बन्धी सिद्धांत, मौद्रिक सिद्धांत आर्थिक विकास का सिद्धांत, इत्यादि को संक्षेप में समझाने का प्रयास किया गया है।

मार्शल का मानना था कि निगमन प्रणाली के प्रयोग से अर्थशास्त्र व्यवहारिक समस्याओं को हल करने में असफल हो चुका है।

अतः वह स्मिथ और रिकार्डो को ही प्राचीन सिद्धांतों को संशोधित करना चाहता था। मार्शल ने वर्तमान परिस्थितियों का अध्ययन किया और पूरे निष्ठा से प्राचीन एवं नये सिद्धांतों के मध्य बीच (मधयम) का मार्ग निकाला, और चुनौतियों के समाधान का प्रयास किया। पीगू की विचारधारा का केन्द्र बिन्दु आर्थिक कल्याण था। प्रो० पीगू का मानना है कि अर्थशास्त्र का मुख्य उएद्देश्य आर्थिक कल्याण में वृद्धि करना है।

**1 : 11 बोध प्रश्नः–**

नव प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र क्या है।

- मार्शल द्वारा प्रतिपादित किसी एक सिद्धांत को लिखिये।
- अर्थशास्त्र में मार्शल के योगदान पर एक निबंध लिखिये।
- पीगू के कल्याण अर्थशास्त्र पर प्रकाश डालिये।
- अर्थशास्त्र में पीगू का योगदान है।

**1 : 12 उपयोगी पुस्तकें–**

- आर्थिक विकास एवं नियोजन–एस०पी०सिंह एस०चन्द्र पब्लि०।
- आर्थिक विचारों का इतिहास–जे०सी०पंत एवं एम०एल०सेठ एल एकृ०एन०पब्कि०।
- आर्थिक विचारों का इतिहास–एम०एल०सेठ।
- नियोजन और आर्थिक विकास– डा०वी०सी० सिंहा डा० पुष्पा सिन्हा।
- A History of Economics Thought –V. Lokanathan (S.Chand) (Pub).
- V.C. Sinha- History of Economic Thought.
- T.N. Hajela- History of Economic Thought.
- J.A. Shumptor- Ten Great Economists.
- B.N. Ganguli- Indian Economic Thought.
- J.C. Kumarappa- Gandhian Economic Thought.
- P.K. Gopal Krishnan- Development of Ideas in India.

**1 : 13 शब्दावली**

मांग की लोच– मांग की गयी मात्रा में प्रतिशत परितर्वन/कीमत में प्रतिशत परिवर्तन से जाना जाता है।

उत्पादन कार्य में प्रस्तुत काली है, प्राप्त होता है।

लगान– लगान से आशय उस पारितोष्ण से है जो भूमि के मालिक को उन सेवाओं के उपलक्ष्य में जो कल्याणकारी अर्थशास्त्र–अर्थ–विज्ञान की वह शाखा है जो आर्थिक नीतियों के सम्बन्ध में औचित्य के मानदण्ड को स्थापित करने तथा उसे लागू करने का प्रयास करती है।

अधिशेष– जो कीमत उपभोक्ता वस्तु के बिना जानकारी के बजाय चुकाने को तैयार होगा, उससे कम जो वह वास्तव में चुकाता है का अंतर अधिशेष कहा जाता है।

# इकाई–02

# जॉन मेनर्ड कीन्स एवं कीन्सीयन क्रांति

**इकाई की रुपरेखा–**

**2.0 उद्देश्य**

**2.1 प्रस्तावना**

**2.2 कीन्स (केंज) का संक्षिप्त जीवन परिचय**

**2.3 कीन्स का आर्थिक विचारों पर प्रभाव**

**2.4 गुणक सिद्धान्त**

**2.5 पूंजी की सीमान्त उत्पादकता**

**2.6 बजत तथा विनियोग**

**2.7 ब्याज का तरलता पसंदगी सिद्धान्त**

**2.8 कीन्स का अर्थशास्त्रीय पद्धति**

**2.9 रोजगार, ब्याज एवं मुद्रा का सामान्य सिद्धान्त**

**2.10 प्रभावपूर्ण मांग का सिद्धान्त**

**2.11 कीन्स का व्यापार चक्र सिद्धान्त**

**2.12 उपभोग प्रवृत्ति**

**2.13 आलोचना**

**2.14 सारांश**

**2.15 बोध प्रश्न**

**2.16 संदर्भ ग्रन्थ सूची / उपयोगी पुस्तकें**

## 2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी

- क्लासिकल सिद्धांत की मूल अवधारणा क्या थी, समझ सकेंगे।
- कीन्स के अर्थशास्त्र में दिये गये योगदान का मूल्यांकन कर सकेंगे।

- कीन्स के प्रचलित रोजगार सिद्धांत की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- कीन्स पर किस–किस अर्थशास्त्रियों का प्रभाव पड़ा विश्लेषण कर सकेंगे।
- कीन्स के अर्थशास्त्र की प्रवृत्ति कैसी थी समझ सकेंगे।
- कीन्स द्वारा दिए गए सिद्धांतों का संक्षेप में अध्ययन कर सकेंगे।

## 2.1 प्रस्तावना

प्रथम विश्व युद्ध के बाद पूरी दुनिया जब महामंदी के चपेट में थी तो अमीर दिखने वाले यूरोप के देश भयंकर गरीबी और बेरोजगारी से संघर्ष कर रहे थे। बाजार में निराशा दिखायी दे रही थी, उद्योग–धंधे चौपट हो चुके थे, सड़कों पर बेरोजगारी की भीड़ बाजारों में बिना बिके वस्तुओं का भंडार तब प्रायः दुनिया के सभी बाजार ऐसे ही दिख रहे थे। अमेरिका, ब्रिटेन समेत दुनिया के लगभग सभी देशों में भंडारगृह में माल भरे पड़े थे। लोगों की क्रय शक्ति क्षमता लगभग नगण्य हो चुकी थी, बाजार में मांग भी नहीं थी, उत्पादन प्रक्रिया चक्र आगे बढ़ नहीं रहा था ऐसी स्थिति में उद्योगों में कर्मचारियों एवं श्रमिकों की कोई आवश्यकता भी नहीं थी। ऐसे उद्योगों से कर्मचारियों, श्रमिकों की छंटनी भी शुरू हो गयी। पश्चिमी के धनाड्य देशों में ब्रेड के लिये लाइन लगानी पड़ रही थी, ऐसा महसूस हो रहा था कि ये गरीबी से जूझ रहे अफ्रीकी देश हो, 1929 की यह उथल–पुथल मचा देने वाली घटना 1929 की महामंदी के नाम से जाना जाता है। महामंदी से जूझ रही पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्था के लिये ब्रिटेन का एक अर्थशास्त्री उम्मीद की किरण लेकर आया। उसका नाम जॉन मेनार्ड कीन्स (J.M. Kenyes) था। इनके विचारों ने दुनिया की बदहाल हुयी अर्थव्यवस्था में क्रांतिकारी बदलाव किये। इसने पूँजीवाद को मानवीय चेहरा दिखाया। कल्याणकारी राज्य की अवधारणा दी, बाजार को माँग के रूप में ऑक्सीजन मिला, धीरे–धीरे बाजार में आशा की किरण शुरू हुयी। बाजार में माँग बढ़ना शुरू हुआ।

ब्रिटेन और अमेरिका के अलावा कई देशों ने इस अर्थशास्त्री के सिद्धांतों पर अमल किया और महामंदी के इस दुष्यत से निकलने में कामयाब रहे। यहाँ तक ही नहीं वो कीन्स ही थे जिन्होंने द्वितीय विश्व–युद्ध की अथाह बर्बादी से जूझ रहे देशों को इस संकट से निकलने का रास्ता बनाया।

प्रस्तुत इकाई में हम कीन्स के जीवन एवं अर्थशास्त्र में दिये गये अमूल्य योगदान से सम्बन्धित विचारधाराओं, अवधारणाओं इत्यादि के विषय में संक्षेप में अध्ययन करेंगे।

शब्दावली–रोजगार, उपयोगफलन, प्रभावी मांग, सीमांत प्रवृत्ति, समग्र आय, समग्र वृद्धि, गुणक खाद्य

## 2.2 कीन्स (केंज) का संक्षिप्त जीवन परिचय

**संक्षिप्त जीवन–परिचय**–जॉन मेनार्ड केंज को सामान्यतया केंज के नाम से पुकारा जाता है। केंज का जन्म 5 जून, 1883 को हार्वेरोड कैम्ब्रिज में हुआ था। उसका पिता जॉन नेवाइल केंज (John Neville Keynes) स्वयं प्रसिद्ध अर्थशास्त्री तथा तर्कशास्त्री था। वह कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय का कुलसचिव भी रहा। उसके परिवार का मित्र जौन्सन (W.E. Johnson) स्वयं तर्कशास्त्र का विद्वान था। इस विद्वान का केंज पर भरपूर प्रभाव देखा जा सकता है। यहाँ एक विचित्र सत्य का रहस्य खुलता है। वह यह कि 19वीं शताब्दी का प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जे.एस. मिल जो प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जेम्स स्टुअर्ट मिल का पुत्र था, के समान 20वीं शताब्दी के इस प्रसिद्ध अर्थशास्त्री को भी एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री पिता का विश्व–प्रसिद्ध अर्थशास्त्री पुत्र बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। केंज के बौद्धिक विकास में उसके घर का वातावरण महत्वपूर्ण स्थान रखता है। पिता प्रारम्भ में अध्यापक, पाद में कुल–सचिव और माता कैम्ब्रिज नगर की निगमाध्यक्ष थी।

केंज ने 1902 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में प्रवेश किया। वह यहाँ मार्शल के प्रमुख शिष्यों में से एक था। कैम्ब्रिज में रहकर उसने 20 वर्ष तक मार्शल की पुस्तक Principles of Economics को पढ़ा और पढ़ाया। 1905 में केंज ने स्नातक की उपाधि प्राप्त की थी। केंज वाद–विवाद के लिए विख्यात था, तथावहाँ पर छात्र–संघ का प्रधान भी रहा। मार्शल केंज की प्रतिभा से परिचित था। उसकी प्रतिभा से प्रभावित होकर मार्शल ने उसके पिता को एक पत्र में यह लिखा था कि यदि केंज उच्च शिक्षा के लिए अर्थशास्त्र को अपने अध्ययन का विषय चुने तो यह उसके हित में होगा। वास्तव में, मार्शल की यह भविष्यवाणी कुछ समय के पश्चात् सत्य सिद्ध हुई।

1906 में केंज ने भारतीय सिविल सर्विस (I.C.S.) की परीक्षा दी थी जिसमें उसका दूसरा स्थान था। परीक्षाफल निकलने के बाद जब अंक–तालिका उसके सामने आयी तो इस महान् अर्थशास्त्री के अर्थशास्त्र में ही सबसे कम अंक थे। इस अनहोनी घटना के बारे में केंज ने इतना ही कहा कि परीक्षक को अर्थशास्त्र का सामान्य ज्ञान कम था।

1906 से 1908 तक वह इण्डियन ऑफिस में काम करता रहा। 1908 में उसने अपने इस पद से इस्तीफा दे दिया और सीधे किंग्ज कॉलेज (King's College) कैम्ब्रिज को लौट आया। हम बता चुके हैं कि केंज मार्शल का प्रिय शिष्य था, उसी की अनुकम्पा से उसने अर्थशास्त्र का अध्ययन किया और उसी के आग्रह पर वह इस महत्वपूर्ण पद को त्याग कर अध्यापन का कार्य में दत्तचित्त हो गया। यह विचारणीय विषय है कि उस समय यही सर्वोच्च पद था और केंज इस सर्वोच्च पद पर पहुँच चुका था। फिर भी, उसके भाग्य में इस पद से भी उच्च पद पर पहुँचना लिखा हुआ था। यदि केंज मार्शल के आग्रह को न मानकर प्रशासनिक सेवा में नौकरी करता, तो दुनिया उसको कभी भी याद नहीं करती और दुनिया आर्थिक स्थिति भी जैसी आज है वैसी नहीं होती, काफी पीछे होती।

मार्शल केंज को फैलोशिप (Fellowship) के अतिरिक्त 200 पौण्ड प्रति वर्ष अपनी ओर से देता था। 1911 में केंज Economic Journal नामक पत्रिका का सम्पादक बना और वह इस पद पर 1945 तक रहा। वह Royal Economic Society का मन्त्री भी नियुक्त हुआ था। इन दोनों कार्यों का संचालन वह बड़ी कुशलता के साथ करता रहा। 1915 में वह कॉलेज से छुट्टी लेकर राजकीय कोषागार (British Treasury) में परामर्शदाता के पद पर नियुक्त हुआ। इस पद पर वह 1919 तक बना रहा। 1919 में उसने वर्साई सन्धि (Treaty of Versailles) के सम्बन्ध में सरकार से मतभेद हो जाने के कारण इस पद से इस्तीफा दे दिया। वह पुनः अध्ययन के कार्य में जुट गया। वर्साई सन्धि की आलोचना के रूप में उसने 1919 में एक पुस्तक का प्रकाशन किया जिसका शीर्षक The Economic Consequence of Peace था। इस पुस्तक ने केंज को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का विद्वान बना दिया। पुस्तक के पाँच संस्करण निकले और यह पुस्तक 11 भाषाओं में अनुवाद की गयी थी।

1919 में वह Royal Commission of Indian Currency and Finance तथा 1931 में प्रसिद्ध मैकमिलन समिति (Macmillan Committee on Finance and Industry) का सदस्य बन गया। 1940 में केंज वित्तमन्त्री की परामर्श परिषद का सदस्य बना। वह बैंक ऑफ इंगलैण्ड का संचालक भी रहा। 1942 में वह 'Lord Keynes of Lilton' की उपाधि से सम्मानित किया गया। संसद का सदस्य होने के नाते उसने संसद में वाद–विवाद तथा व्याख्यान के स्तर को काफी ऊँचा उठाया था। 23 मई, 1944 को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सम्बन्ध में दिया गया उसका भाषण इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। 21 अप्रैल, 1946 को दिल का दौरा पड़ने से 62 वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गयी थी।

केंज की प्रमुख रचनाएँ निम्न प्रकार हैं :

1. Indian Currency and Finance (1913)
2. The Economic Consequences of Peace (1919)

3. A Treatise on Probability (1921)
4. A Tract on Monetary Reforms (1923)
5. The Economic Consequences of Mr. Churchill (1925)
6. A Treatise on Money (1930)
7. The Means of Prosperity (1933)
8. The General theory of Employment, Interest and Money (1936)
9. How to Pay for the War (1949)

### 2.3 कीन्स पर आर्थिक विचारों के प्रभाव–

कीन्स किन विचारकों से प्रभावित थे। यह कहना कठिन है उस पर तो अपने दौर के गुरु एवं विचारकों का और उस समय की आर्थिक स्थितियों का प्रभाव स्वच्छ दिखलाई देता है।

1. **मार्शल का प्रभाव–**मार्शल के पिता जे. एम. कीन्स मार्शल के परम मित्र थे। अतः बचपन से ही जे.एम.कीन्स का मार्शल के सम्पर्क में आना स्वाभाविक ही था, दूसरे मार्शल कीन्स के गुरु भी थे तथा कीन्स को कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में गुरु के साथ अध्ययन करने का अवसर भी मिला था। इस प्रकार कीन्स का मार्शल द्वारा प्रभावित होना स्वाभाविक था। मार्शल द्वारा प्रतिपादित विचारों आय और व्यय के अन्तर मुद्रा तथा समय के विचार, ब्याज की दर और पूँजी सम्बन्धी आदि का उस पर अत्यन्त ही प्रभाव पड़ा है।
2. **तत्कालिक आर्थिक विचारधारा का प्रभाव–**कीन्स पर तत्कालिक चल रहे लन्दन स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स और नवीन कैम्ब्रिज समुदाय के अर्थशास्त्रियों की विचारधारा का प्रभाव पड़ा है। लन्दन स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स द्वारा संस्थापिक साधनों तथा समाजवाद पर विशेष जोर दिया जा रहा था। इन विचारकों ने भी उसे प्रभावित किया है।
3. **गेसल का प्रभाव–**कीन्स पर गेसल के क्रान्तिकारी विचारों का भी प्रभाव पड़ा है।
4. **प्रोंधा और मार्क्स का प्रभाव–**प्रोंधा और मार्क्स जैसे समाजवादी विचारकों के विचारों से भी कीन्स प्रभावित होते दिखाई पड़ते हैं।
5. **माल्थस का प्रभाव–**माल्थस के विचारों ने भी कीन्स को प्रभावित किया है। माल्थस के व्यापार चक्रों और अति उत्पादन (Over Production) सम्बन्धी विचारों ने भी कीन्स को प्रभावित किया है तथा कीन्स ने अपनी पुस्तक में (Essay in Biography) माल्थस को प्रशंसित दृष्टि से देखा है।
6. **विक्सेल, कैसल और बालरान का प्रभाव–**इन अर्थशास्त्रियों ने परम्परावादियों के मुद्रा तथा साख सम्बन्धी विचारों की कड़ी आलोचना का है। ये विचारक साख को मुद्रा समझते थे। इनके अनुसार ब्याज की दर बचत एवं विनियोग का बराबर नहीं करती है। उनका मत है कि यह साख और विनियोग को प्रभावित करती है। कीन्स के विचार भी इनसे समानता रखते हैं।
7. **तत्कालिक परिस्थितियों का प्रभाव–**प्रत्येक विचारकों की भांति कीन्स पर भी अपने समय के विचारकों का भी प्रभाव पड़ा है। कीन्स की पुस्तकें भारतीय मुद्रा और वित्त तथा शान्ति के आर्थिक परिणाम से इस बात का संकेत मिलता है। प्रथम विश्व युद्ध के समय कीन्स के समक्ष एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न था कि युद्ध वित्त की व्यवस्था किस प्रकार हो? युद्ध उपरान्त इस प्रश्न का ठीक विपरीत दूसरे प्रश्न ने भी अपना स्थान ग्रहण किया कि शान्ति के समय की समस्याओं का निवारण किस धन से किया जाना चाहिए यही कीन्स और सरकारी विचारधारा में विरोध दिखाई देता है। इनके कारण उत्पन्न विचार एवं समाधान कीन्स की पुस्तक से प्राप्त होते हैं।

**प्रथम एवं दूसरे विश्वयुद्ध** के मध्य कीन्स के समक्ष विभिन्न विचारधाराएँ उत्पन्न हुई। उस समय की परिस्थितियों में युद्धों के कार्यों का भार, व्यापार सन्तुलन की तथा मन्दी की समस्या प्रमुख थीं। इन सभी समस्याओं के बारे में विचार करने के लिए कीन्स को बाध्य होना पड़ा। उसकी पुस्तक मुद्रा पर ग्रन्थ (A Treatise of Money) इसी परिणाम की देन है।

कीन्स को अमरीकन स्थिति ने भी प्रभावित किया था। यही वजह थी कि 1964 में वह अमरीकन राष्ट्रपति रूजवेल्ट से मिलने अमरीका गये थे। वहाँ उन्होंने कई दिए। युद्ध के उपरान्त संसार की मुद्रा सम्बन्धी समस्याओं के निराकरण के लिए ही उसने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष (International Monetary) तथा विश्व बैंक (World Bank) जैसी संस्थाओं की स्थापना पर बल दिया।

कीन्स के आर्थिक विचार—कीन्स के विचार हम निम्न शीर्षकों में समझ सकेंगे।

1. कीन्स की मान्यताएँ
2. पूर्ण रोजगार
3. ब्याज की दर
4. गुणक सिद्धान्त
5. कुछ परिभाषाएँ
6. कीन्स के आर्थिक विचारों की मान्यताएँ

1. **कीन्स की मान्यताएँ**—इसके आर्थिक विचारों को समझने में पूर्व उसकी मान्यताओं को समझना आवश्यक है। कीन्स के द्वारा प्रतिपादित विचारों के अध्ययन से निम्न मान्यताओं का ज्ञान होता है।

   (i) **उपभोग अर्थशास्त्र**—कीन्स का मत था कि उपभोग ही माँग को निश्चित करता है और माँग के अनुसार उत्पादन और विनियोग किया जाता है। यही नहीं इसी पर व्यापार चक्र भी निर्भर करता है। हैने लिखते हैं कि आर्थिक क्रिया में उपभोग ही माँग को सुनिश्चित करता है। इसलिए कीन्स ने कहा है कि उपभोग प्रवृत्ति ही आधार बल है। स्पष्ट है कि उपभोग को अधिक महत्व देने के कारण ही प्रो. हैने ने कीन्स के विचारों को उपयोगिता अर्थशास्त्र कहकर पुकारा है।

   (ii) **मन्दी का अर्थशास्त्र**—प्रथम एवं द्वितीय महायुद्ध के बीच कीन्स के विचारों का स्पष्ट दर्शन होता है। इस बीच महामन्दी पैदा हो चुकी थी। इस मन्दी के परिणाम स्वरूप उपभोग में गिरावट हुई तथा बेरोजगारी बढ़ी। कीन्स पर इन सब विषम परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा तथा वह परम्परावाद का विरोधी हो गया। इस प्रकार कीन्स के अर्थशास्त्र को मन्दी का अर्थशास्त्र भी कहते हैं एवं उसने इसे दूर करने के लिए व्यावहारिक प्रयत्न किए।

   (iii) **पूर्ण रोजगार का ध्येय**—कीन्स मानते थे कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी एक सामान्य स्थिति है। अतः वह सरकार को हस्तक्षेप करके पूर्ण रोजगार स्तर बनाए रखने की सलाह देते हैं।

   (iv) **हितों का विरोध**—परम्पराविदों का मानना था कि सभी वर्गों के हित एक दूसरे के पूरक होते हैं, विरोधी नहीं। वे समझते थे कि यदि किसी कारणवश कहीं असन्तुलन है तो वह पूर्ण प्रतियोगिता द्वारा सन्तुलन में आ जाएगा। परन्तु कीन्स इस बात को नहीं मानते थे। क्योंकि उनके द्वारा व्यक्ति हित परस्पर विरोधी हैं। धन बचाने वाले और विनियोग करने वाले में अन्तर है विनियोग करने वाले और उपभोग करने वाले के हितों में विरोध है। साथ ही वह दीर्घकाल में स्वयं सन्तुलन हो जाने में विश्वास नहीं

करता था, क्योंकि वह समझता था कि दीर्घकाल में हम सब मर जाते हैं। इस प्रकार कीन्स का अर्थशास्त्र यह मानता है कि वर्गों के हित परस्पर विरोधी होते हैं।

**हस्तक्षेप का अर्थशास्त्र** (Intervention Economics)–वणिकवादियों की भांति कीन्स व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का विरोधी था। कीन्स की मान्यता थी कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की नीति से एक औद्योगिक प्रधान देश में बचत एवं विनियोग में अन्तर हो जाता है जो व्यावार चक्रों को जन्म देता है। इसी कारण वह सरकार को करों आदि की सहायता से तो देश के अन्दर तथा संक्षिप्त व्यापार नीति द्वारा देश के बाहर हस्तक्षेप करने की सलाह देता है। यहाँ पर यह बात स्पष्ट है कि कीन्स प्रचलित दो विरोधी विचारधाराओं के साम्य के ही पक्षपाती थे।

2. **पूर्ण रोजगार** (Full Employment) –परम्परावादी अर्थशास्त्रियों का मत था कि सामान्य रूप से पूर्ण रोजगार की स्थिति रहनी चाहिए उनका कहना था कि यदि बेरोजगारी की स्थिति होगी तो भी अल्पकाल के लिए ही होगी और वह खुद ही पूर्ण रोजगार की स्थिति पर आ जाएगी। किन्तु कीन्स ने इस मत का विरोध किया। उसने कहा कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति एक क्षणिक वस्तु है। यहाँ तो बेरोजगारी की स्थिति ही सामान्य स्थिति होती है, इसे सिद्ध करने के लिए उसने कहा कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सामान्यतः धन का असमान वितरण होता है जिससे उपभोग प्रवृत्ति इकाई नहीं होती है। परिणामतः कुल आय में से थोड़ा धन शेष कर लिया जाता है। इस शेष की राशि का कुछ हिस्सा तो उपभोग की हुई वस्तुओं पर व्यय कर दिया जाता है। (अर्थात् विनियोग किया जाता है) और कुद भाग बेकार पड़ा रहता है जो कि उपभोग वस्तुओं पर माँग को कम कद देता है। जिससे कि उत्पादन और घटे विनियोग का परिणाम यह होता है कि लोगों को कम काम मिल पाता है। अतः पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में आय और व्यय के इस अन्तर के कारण ही सामान्य रूप से बेरोजगारी की स्थिति के स्तर में सामान्य स्थिति बनी रहती है।
यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि यदि पूर्ण रोजगारी स्थिति सामान्यतः नहीं रहती है तो देश में बेरोजगारी की स्थिति बनी रहती है तथा इसका हल कैसे हो? कीन्स ने इस प्रश्न के उत्तर में जो बातें बताई। उनका चार्ट इस प्रकार है।

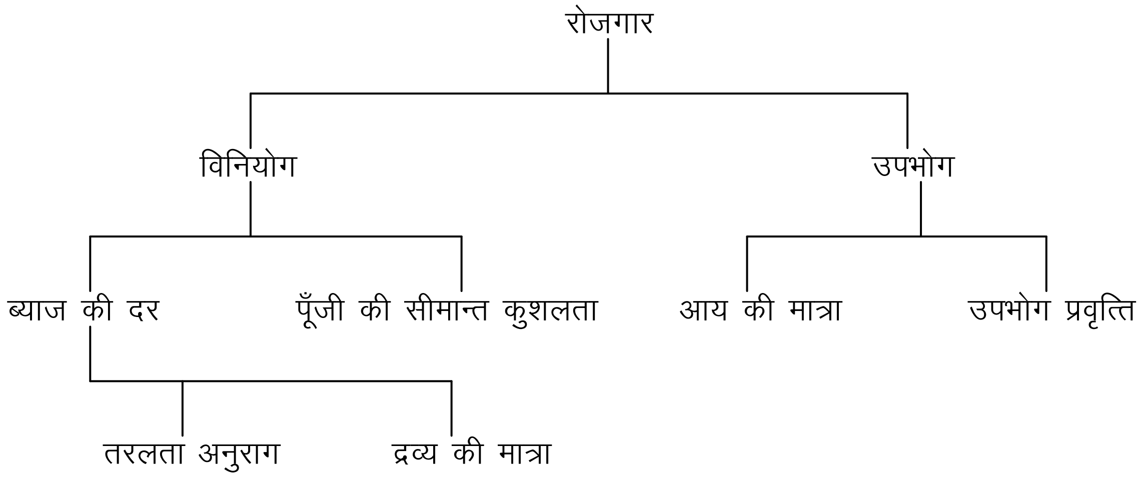


कीन्स का मत है कि उपभोग प्रवृत्ति को बदलना कठिन कार्य है। अतः रोजगार स्तर को ऊँचा उठाने के लिए विनियोग में वृद्धि होनी चाहिए। उसने बताया कि विनियोग दो बातों पर निर्भर करता है। ब्याज की दर व पूँजी की सीमान्त कुशलता उसका कथन है कि यदि ब्याज की दर पूँजी की सीमान्त कुशलता से अधिक होती है तो लोग विनियोग करने के बजाए उधार देना अधिक पसन्द करेंगें। और

विपरीत स्थिति में लोग अधिक लाभ की आशा से विनियोग अधिक करेंगे। कीन्स ने बताया कि ब्याज की दर भी दो बातों पर निर्भर करती है। तरलता अनुराग तथा द्रव्य की मात्रा पर। उसके मत के अनुसार तरलता अनुराग साधारणतः स्थिर रहता है। अतः द्रव्य की मात्रा और ब्याज की दर को घटाया जा सकता है। **ब्याज की दर कम होने से पूँजी की सीमान्त कुशलता अधिक होगी और अधिक विनियोग किया जा सकेगा। इस प्रकार विनियोग बढ़ने से रोजगार स्तर बढ़ेगा और पूर्ण रोजगार की स्थिति बहाल हो जाएगी।**

सवाल यह पैदा होता है कि क्या द्रव्य की मात्रा को बढ़ाने से मुद्रा प्रसार नहीं होगा? कीन्स ने यूरोपीय देशों की मन्दी को देखा था जिसके कारण वहाँ अनेक कारखाने बन्द हो गए। परन्तु कारखाने बन्द होने के बाद मशीनें यथावत् लगी रही थीं तथा कभी भी इन कारखानों में उपभोग वस्तुओं को उत्पादित किया जा सकता था। इसलिए कीन्स का मत था कि जैसे–जसे सरकारी मुद्रा बढ़ेगी वैसे–वैसे लोगों की आय बढ़ेगी (मुद्रा बढ़ने से तात्पर्य सरकार द्वारा मुद्रा वृद्धि करने से है) और उपभोक्त वस्तुओं की माँग में वृद्धि होगी। माँग बढ़ने में बन्द कारखाने चालू होकर उत्पादन करने लगेंगे। जिससे मुद्रा की माँग बढ़ेगी परन्तु कीमतें नहीं बढ़ेंगी। उसने कहा है कि जब सभी कारखाने उत्पादन करने लगेंगे और रोजगार पूर्ण हो जायेंगे तब मुद्रा की मात्रा को बढ़ाने से वस्तुओं की माँग में वृद्धि तो होगी। परन्तु पूर्ति को शीघ्र बढ़ाना सम्भव नहीं। औद्योगिक प्रधान देशों में द्रव्य की मात्रा को बढ़ाने से कीमतों में पूर्ण रोजगार के स्तर तक तो कोई वृद्धि नहीं होगी। परन्तु बाद में उनकी प्रवृत्ति बढ़ने की हो जाएगी।

**ब्याज की दर** –कीन्स ने ब्याज के पुराने सिद्धान्तों की आलोचना की है। उसने त्याग सिद्धान्त की आलोचना करते हुए बताया कि समस्त आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद भी बचाया जा सकता है। ऐसी हालत में त्याग की जरूरत नहीं है। उसने कहा कि **एक कंजूस व्यक्ति को बचाने में सुख होता है दुःख नहीं। मनुष्य हमेशा वर्तमान को भविष्य से अधिक सुरक्षित नहीं मानता है वह बच्चों के प्यार, भावी आवश्यकताओं के कारण भी बचाना चाहता है। बचाई हुई सभी राशियाँ उधार में नहीं दी जा सकती है। संस्थाएँ भी आदान–प्रदान करती हैं। परन्तु इन्हें ऋण देने में कोई त्याग नहीं करना पड़ता।** इस तरह कीन्स ने सीमान्त उत्पादन सिद्धान्त को भी नहीं माना। उसका कहना था कि केवल पूँजी को सीमान्त उत्पत्ति के कारण ही ब्याज नहीं मिलता।

उपर्युक्त आलोचनाओं के पश्चात कीन्स ने ब्याज की परिभाषा यूँ दी है–''ब्याज एक निश्चित समय में तरलता के त्याग का पुरस्कार है। यह नकद द्रव्य के रूप में धन न रखने के लिए पुरस्कार है।'' कीन्स का मत था कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी आय को तरल रूप में रखना चाहता है। इसी के आधार पर उसने तरलता–अनुराग का विचार दिया। कीन्स का विचार था कि यदि कोई व्यक्ति अपने धन को तरल रूप में न रखकर उसे उधार देने को तैयार हो जाता है तो उसे तैयार करने के लिए कुछ प्रलोभन देना आवश्यक होगा। कीन्स के अनुसार यह प्रलोभन ही ब्याज है। अतः द्रव्य को नकद रूप में नहीं रखने के लिए ही ब्याज दिया जाता है।

कीन्स के अनुसार ब्याज की दर का निर्धारण दो बातों से होता है।

1. तरलता अनुराग (Liquidity Preference)
2. द्रव्य की मात्रा (Quantity of Money)

“Instead is a reward for parting with liquidity for specific period, it is a reward for not hoarding.”- Keynes

इसके विस्तार के लिए चित्र प्रस्तुत है–

ब्याज की दर

तरलता अनुराग      द्रव्य की मात्रा

लेन–देन की मनोवृत्ति      सचेत मनोवृत्ति      सट्टा मनोवृत्ति

कीन्स का मत है कि सट्टा मनोवृत्ति का ही तरलता अनुराग पर विशेष प्रभाव पड़ता है। अतः वह सट्टा मनोवृत्ति को सांकेतिक भाषा में (L) तथा द्रव्य की मात्रा को (M) से प्रदर्शित करता है।

ब्याज की दर $\frac{L}{M}$

सरल शब्दों में यदि तरलता अनुराग वही रहता है और द्रव्य की मात्रा बढ़ जाती है तो ब्याज की दरें घटने लगती हैं तथा इसके विपरीत द्रव्य की मात्रा घट जाती है इसके विपरीत ब्याज की दर वृद्धि कर जाएगी। दूसरी ओर यदि द्रव्य की भावना स्थिर रहती है और तरलता अनुराग बढ़ने लगता है तब ब्याज की दर भी बढ़ती है और तरलता अनुराग के कम होने से इसकी दर भी कम होने लगती है।

ब्याज की दर सरलता अनुराग तथा द्रव्य की मात्रा के सम्बन्ध को निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया

है। चित्र में द्रव्य की मात्रा अ, म है और तरलता अनुराग रखा ल ᑭ है तो ब्याज की दर 5 प्रतिशत है। परन्तु द्रव्य की मात्रा बढ़कर अ म हो जाती है और तरलता अनुराग स्थिर रहता है तो ब्याज दर गिर कर 4 प्रतिशत हो जाती है।

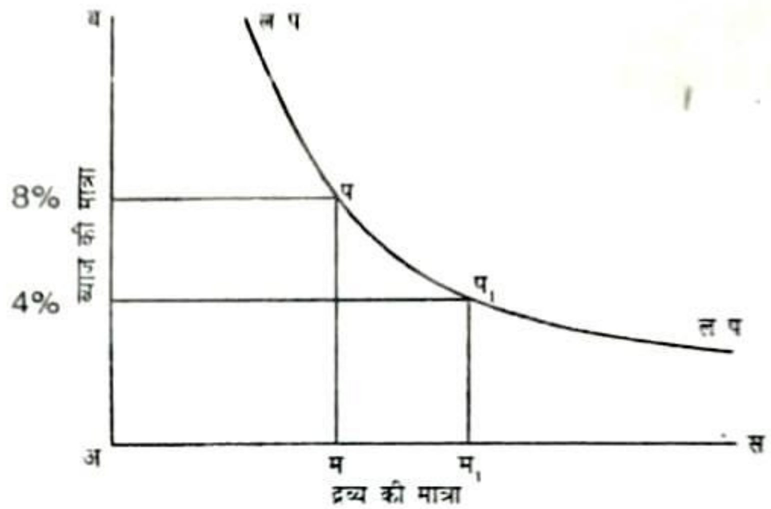


कीन्स ने अपने ब्याज दर सिद्धान्त को प्रतिवाद न करके परम्परावादियों की इस विचारधारा का खण्डन किया कि ब्याज की कम दर से व्यापारी अधिक विनियोग करते हैं। कीन्स ने बताया कि ग्याज की कम दर से विनियोग की राशि नहीं बढ़ती और न ही रोजगार की समस्या का निदान सम्भव है। विनियोग भविष्य में मिलने वाले लाभ से संचालित होता है। ऐसी हालत में विनियोग को ब्याज दर प्रभावित नहीं करती। अधिकतम लाभ की आशा से वह ऊँचे ब्याज दर पर भी विनियोग कर सकता है। और इसके विपरीत लाभ की आशा नहीं है तो वह कम या शून्य ब्याज की दर पर विनियोग के लिए तैयार नहीं होगा।

उपर्युक्त विवेचना स्पष्ट करती है कि ब्याज की दर को निर्धारण करने पर पूँजी की माँग और पूर्ति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कीन्स परम्परावादियों के इस विचार को भी खण्डित करता है कि बचत होने से ब्याज की दर और कम होगी तथा ऐसा होने से ब्याज की दर और विनियोग बराबर हो जायेंगे। उसने यह सिद्ध कर दिया कि परम्परावादियों का विचार सही नहीं है क्योंकि उपभोक्ता वस्तुओं की मांग कम होने पर विनियोग अधिक नहीं किया जा सकेगा।

कीन्स ने अपने नए ब्याज की दर सिद्धान्त के द्वारा परम्परावादी तर्क का खण्डन किया है परन्तु उसने यह बात स्वीकार की है कि बचत और विनियोग बराबर रहते हैं। यदि Y = आय, C = उपभोक्ता वस्तुओं पर व्यय और I = विनियोग तब कीन्स के अनुसार स्पष्ट है कि–

$Y = C + I$

$S = Y - C$

Or $S + C = Y$

Or $S + C = C + I$

Or $S = I$

इससे यह सिद्ध होता है कि बचत विनियोग के बराबर रहती है और उस पर ब्याज की दर का कोई प्रभाव नहीं होता। कीन्स के अनुसार मनुष्य अपने बचाए हुए धन का उपभोग विनियोग के लिए नहीं करते तब लोगों की आय कम हो जाती है क्योंकि एक मनुष्य द्वारा किया गया व्यय दूसरे मनुष्य की आय होती है। ऐसी स्थिति में मनुष्य कम बचा पायेंगे और बचत तथा विनियोग बराबर होंगे।

## 2.4 गुणांक सिद्धांत

केंज का गुणक सिद्धान्त उपभोग–प्रवृत्ति से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। गुणक की परिभाषा में केंज ने लिखा है कि ''उपभोग–प्रवृत्ति के उपलब्ध होने पर गुणक समस्त रोजगार एवं आय और विनियोग के मध्य समुचित सम्बन्ध स्थापित करता है।'' इसके द्वारा यह ज्ञात होता है कि विनियोग में किसी प्रकार की वृद्धि करने से आय में हुई वृद्धि विनियोग में की गयी वृद्धि की K गुणा होगी। गुणक दो प्रकार का होता है– (i) विनियोग गुणक, तथा (ii) रोजगार गुणक।

**(i) विनियोग गुणक** (Investment Multiplier)–केंज के रोजगार सिद्धान्त में विनियोग गुणक का महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध उपभोग से है। सिद्धान्त यह बताता है कि प्रारम्भिक विनियोग से धन की वृद्धि कई गुना अधिक हो सकती है। इससे लोगों की आय में वृद्धि का क्रम लगातार चलता रहता है। अन्त में, आय का स्तर विनियोग की राशि से कई गुना अधिक होता है। संक्षेप में यह आय प्रारम्भिक निवेश की जितनी गुनी होती है, वही गुणक कहलाता है, अथवा निवेश वृद्धि तथा आय–वृद्धि के अनुपात को गुणक कहते हैं।

केंज ने गुणक की परिभाषा में गुणक को K संकेताक्षर द्वारा स्पष्ट किया है। विनियोग वृद्धि और आय वृद्धि के इस सम्बन्ध (गुणक) को एक सूत्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:

$\delta y = K\delta i$

**हैन्सन** के शब्दों में, ''केंज का विनियोग गुणक विनियेग में हुई वृद्धि को आय की वृद्धि से सम्बद्ध करता है।''

अर्थात् $\frac{\delta y}{\delta i}$

सूत्र में K = गुणक है, $\delta$ = परिवर्तन (ह्वास अथवा वृद्धि), y = आय, i = विनियोग है। मान लीजिए अर्थ–व्यवस्था में 100 करोड़ रुपये का विनियोग करने से राष्ट्रीय आय बढ़कर 500 करोड़ रुपये के बराबर हो जाती है, अतः गुणक $(K) = \frac{\delta y(500)}{\delta i(100)} = 5$ होगा। यहाँ पर सूत्र के अनुसार आय में विनियोग की अपेक्षा पाँच गुनी अधिक वृद्धि होती है।

गुणक का सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Consume) से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। इसे इस प्रकार लिख सकते हैं–

$$(K) = \frac{1}{1-M}$$

यहाँ M का अर्थ सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति से है, 1 (एक) में से M जब घटता है तो बचत निकलती है, अतः सूत्र को इस प्रकार भी लिख सकते हैं–

$$(K) = \frac{1}{S}$$

यहाँ M का अर्थ सीमान्त बचत प्रवृत्ति है। इसका अर्थ यह हुआ कि उपभोग प्रवृत्ति जितनी अधिक होगी, उतनी बचत कम होगी और उतना ही गुणक अधिक होगा। उपभोग प्रवृत्ति जितनी कम होगी, बचत उतनी अधिक होगी एवं गुणक उतना ही कम होगा। निम्न तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है:

| **सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति** | **सीमान्त बचत प्रवृत्ति** | **गुणक (K)** |
|---|---|---|
| $\left(MPC = \frac{\delta e}{\delta y}\right)$ | $\left(MPS = \frac{\delta S}{\delta y}\right)$ | $K = \left(\frac{1}{1-MPC} = \frac{1}{MPS}\right)$ |
| 0 | 1 | 1 |
| 1/2 | 1/2 | 2 |
| 2/3 | 1/3 | 2 |
| 3/4 | 1/4 | 4 |
| 4/5 | 1/5 | 5 |
| 5/9 | 1/9 | 9 |
| 9/10 | 1/10 | 10 |
| 1 | 0 | $\infty$ |

**(ii) MPC** सदैव शून्य से अधिक ओर एक से कम (अर्थात् $0 < MPC < 1$ होती है इसलिए गुणक का मूल्य सदैव एक और अनन्त के मध्य में (अर्थात् $1 < K < \infty$ रहता है।)

**(iii)** यदि गुणक कम है, तो इसका अर्थ है कि आय में हुई समस्त वृद्धि की बचत की जा रही है और कुछ भी व्यय नहीं किया जाता है, क्योंकि MPC शून्य है।

**(iv)** अनन्त गुणक का तात्पर्य है कि MPC बराबर है। 1 (एक) के, और आय में हुई समस्त वृद्धि उपभोग पर व्यय की जाती है। इसके द्वारा अर्थ–व्यवस्था में शीघ्र ही पूर्ण रोजगार उपलब्ध हो जायेगा।

गुणक में कुछ छिद्र (Leakage) भी हैं, जो इसके प्रभाव को कम कर देते हैं, जैसे ऋणों का भुगतान, संग्रह (Hoarding), आयात तथा मूल्यों में वृद्धि आदि।

## 2.5 पूँजी की सीमान्त उत्पादकता

विनियोग दो बातों पर निर्भर करता है–(i) **ब्याज की दर,** तथा (ii) **पूँजी की सीमान्त उत्पादकता।** पूँजी की सीमान्त उत्पादकता के बारे में **केंज** ने लिखा है कि ''पूँजी की सीमान्त उत्पादकता अपहार (Discount) की उस दर के बराबर होती है जो वार्षिक प्रतिभूतियों के वर्तमान मूल्य को, जो उसके समय अवधि की आय पर आधारित होता है, उनके पूर्ति–मूल्य के बराबर कर दे।''

इस प्राकर की सीमान्त उत्पादकता का अर्थ यह हुआ कि एक साहसी अथवा उत्पादक उस पूँजी–सम्पत्ति की एक अतिरिक्त इकाई द्वारा उसकी लागत की तुलना में कितनी आय प्राप्त करेगा। इस सन्दर्भ में केंज ने पूँजी की सीमान्त उत्पादकता की जो व्याख्या की है वह इस प्रकार हैः ''पूँजी की सीमान्त उत्पादकता 'कटौती' की उस दर के समकक्ष होती है जो किसी मशीन के सम्पूर्ण जीवन को, प्रतिवर्ष के भावी आयों के वर्तमान मूल्यों को उसकी पूर्ति कीमत के समकक्ष कर देती है।'' इसे एक उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता हैः एक साहसी विनियोग करते समय यह अनुमान लगाता है कि नयी मशीन में विनियोग करने से 100000 रुपये की लागत आती है, और यह मशीन अपने जीवन–काल में 5000 रुपये का वार्षिक शुद्ध लाभ प्रदान करती है, तो पूँजी की सीमान्त उत्पादकता ज्ञात करने के लिए हम भावी वार्षिक आय 5000 रुपये की वास्तविक लागत 1 लाख से अनुपात ज्ञात करेंगे, अर्थात् $\frac{5000}{100000} \times 100 = 5$ प्रतिशत है, ऐसी दशा में पूँजी की सीमान्त उत्पादकता 5 प्रतिशत होगी।

### पूँजी की सीमान्त उत्पादकता का स्वभाव

विनियोग में वृद्धि के साथ–साथ पूँजी की सीमान्त उत्पादकता में कमी होती जाती है। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं–

(i) पूँजी–सम्पत्ति की पूर्ति में वृद्धि के साथ–साथ उसकी भावी आय में कमी आ जाती है।

(ii) विशेष पूँजी–सम्पत्ति की पूर्ति बढ़ाने के लिए उत्पादन–साधनों की माँग में वृद्धि करके उस सम्पत्ति की लागत में वृद्धि हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप भावी आय में भी कमी होने लगती है।

हि

## 2.6 बचत तथा विनियोग

बचत और विनियोग की समानता केंज के सिद्धान्त की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। उसका कथन है कि बचत सदा विनियोग के बराबर होती है; अर्थात् S = I, क्योंकि ये एक ही वस्तु के विभिन्न पक्ष हैं। केंज ने चालू अवधि में, बचत और विनियोग को चालू आय से, चालू उपभोग के आधिक्य के रूप में परिभाषित किया है, ताकि वे अनिवार्य रूप से समान रहें। केंज के विचार को निम्न सूत्र के अनुसार रखा जा सकता है, और इस सूत्र से यह स्पष्ट किया जा सकता है कि अन्ततः बचत = विनियोग के। सूत्र के अनुसार :

ST = YT – CT
IT = YT – CT
YT – CT, दोनों समीकरणों के समान हैं, अतः  ST = IT

यहाँ Ŝ = बचत, I = विनियोग, Y = आय, C = उपभोग, तथा T = चालू अवधि है। सूत्र के अनुसार अन्त में बचत (S) = विनियोग (I।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने भी बचत और विनियोग को बराबर बताया था, परन्तु उन्होंने इस समानता को ब्याज दर की सहायता से स्थापित बताया है। केंज ने इस समानता का आधार राष्ट्रीय आय को बताया है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री मानते थे कि यह साम्य पूर्ण रोजगार में भी सम्भव है, परन्तु केंज इस बात से सहमत नहीं था।

## 2.7 ब्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त

केंज ने ब्याज का एक नवीन सिद्धान्त दिया है। ब्याज किस बात का पुरस्कार है, इस प्रश्न के उत्तर में बहुत से विद्वानों ने अलग–अलग बातें बतायी हैं। सीनियर ने ब्याज को त्याग का पुरस्कार बताया है। बॉम बावर्क ने इसे समय वरीयता कहा है। मार्शल ने प्रतीक्षा का पुरस्कार कहा है, परन्तु केंज के अनुसार, **ब्याज एक निश्चित समय के लिए तरलता परित्याग का पारितोषिक है।** नकदी–वरीयता (Liquidity Preference) द्रव्य की माँग को निर्धारित करती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने पास द्रव्य को नकद रूप में रखना चाहता है। केंज के अनुसार नकदी संग्रह के तीन उद्देश्य हैं– (i) लेन–देन –उद्देश्य, (ii) सावधानी–उद्देश्य, तथा (iii) सट्टा–उद्देश्य।

### (1) लेन–देन–उद्देश्य (Transactive Motive)

प्रत्येक व्यापारी को प्रतिदिन छोटे–छोटे भुगतानः जैसे–कच्चे माल का क्रय, मजदूरों की मजदूरी का भुगतान आदि करने होते हैं। यही नहीं, उसे लाभांश तथा बीमा आदि सम्बन्धी व्ययों का भी भुगतान करना होता है। इन सब कार्यों के लिए एक व्यवसायी को नकद मुद्रा की आवश्यकता होती है। यदि उत्पादन का कार्य बढ़ रहा है तो इन कार्यों के सम्पादन के लिए अधिक रुपये की आवश्यकता होगी और व्यवसायी अपने पास नकदी की मात्रा अधिक रखेंगे। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि लेन–देन के उद्देश्य के अन्तर्गत नकदी की माँग कच्चे माल की कीमत और मजदूरी की दर पर निर्भर है। जब कीमतों एवं मजदूरियों में वृद्धि हो जाती है, तो व्यवसायियों को लेन–देन के लिए अपने पास अधिक नकदी रखनी होती है।

### (2) सावधानी–उद्देश्य (Precautionary Motive)

सावधानी–उद्देश्य का सम्बन्ध भविष्य में होने वाले आकस्मिक व्ययों (Unforeseen eÛpenses) की पूर्ति से है। हम भविष्य का सही–सही अनुमान नहीं लगा पाते हैं। भविष्य में कभी भी किसी भी प्रकार की दुर्घटना घट सकती है। इस प्रकार की आकस्मिक दुर्घटनाओं पर व्यक्ति को अकस्मात् व्यय करना होता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपने पास कुछ न कुछ नकद द्रव्य अवश्य रखता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नकदी की माँग का निर्धारण अधिकांशतया विशुद्ध आर्थिक तत्वों की अपेक्षा सामाजिक एवं राजनीतिक तत्वों से होता है।

### (3) सट्टा–उद्देश्य (Speculative Motive)

उपर्युक्त दो उद्देश्यों की तुलना में सट्टे का उद्देश्य अनिश्चित होता है। यह बाजार की परिस्थितियों के आधार पर लाभ प्राप्त करने का एक साधन है। कुछ लोग अपने पास इसलिए भी नकदी रखते हैं कि वे भविष्य में सट्टा करके अधिक लाभ प्राप्त कर सकें। यदि लोग यह अनुमान लगाते

हों कि भविष्य में ब्याज की दर बढ़ने वाली है तो वे अपने पास नकद द्रव्य की मात्रा बढ़ाकर अधिक रुपया उधार लगायेंगे और अधिक ब्याज प्राप्त कर लेंगे। इस प्रकार, लोगों में नकदी के प्रति झुकाव होने लगता है। इसके विपरीत, यदि लोग यह अनुमान लगायें कि भविष्य में ब्याज की दर घटने वाली है तो वे वर्तमान में ही अधिकाधिक रुपया लगायेंगे और अपने पास नकदी की मात्रा कम से कम रखेंगे। संक्षेप में, ब्याज की दर के घटने व बढ़ने के अनुमानों के ही आधार पर नकदी की मात्रा को बढ़ाया तथा घटाया जाता है। इस प्रकार, **सट्टा–उद्देश्य के अन्तर्गत नकदी की माँग प्रचलित ब्याज–दर पर इतनी निर्भर नहीं होती जितनी ब्याज दर के भावी परिवर्तनों की आशंकाओं पर होती है।**

सट्टा–उद्देश्य के अन्तर्गत नकदी की माँग बाजार के उतार–चढ़ावों से प्रभावित होती है, जबकि अन्य दो उद्देश्यों के अन्तर्गत नकदी की माँग अपेक्षाकृत स्थिर रहती है, और उसका भावी अनुमान अधिक अच्छे ढंग से लगाया जा सकता है। केंज के नकदी वरीयता सिद्धान्त (Liquidity Preference Theory) के अनुसार, नकदी की कुल माँग तीनों उद्देश्यों की कुल माँग होती है। नकदी वरीयता तथा ब्याज की दर में एक सीधा सम्बन्ध होता है। संक्षेप में, नकदी–वरीयता जितनी ऊँची होगी, ब्याज दर उतनी ही अधिक ऊँची होगी और नकदी–वरीयता जितनी नीची होगी, व्याज दर उतनी ही नीची होगी। दूसरे शब्दों में, ऊँची ब्याज दर पर नकदी वरीयता नीची और नीची ब्याज दर पर नकदी वरीयता ऊँची होती है। यहाँ इस बात को स्पष्ट कर देना अप्रासांगिक नहीं होगा कि जिन उद्देश्यों से द्रव्य की तरलता की माँग की जाती है वे द्रव्य की माँग–पक्ष के भी निर्धारक तत्व हैंय अर्थात् उपर्युक्त व्याख्या द्रव्य की माँग पक्ष की द्योतक है।

जहाँ तक द्रव्य की पूर्ति–पक्ष का सम्बन्ध है वह व्यक्तियों, बैंकों आदि के द्वारा की जाती है। मुद्रा की समग्र पूर्ति को निर्धारित करने वाले तत्व मौद्रिक एवं बैंकिंग अधिकरण (authorities) होते हैं। द्रव्य की पूर्ति ब्याज–दर पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। द्रव्य की पूर्ति जितनी अधिक होती है, ब्याज की दर उतनी ही कम होती हैय और द्रव्य की पूर्ति जितनी ही कम होती है, व्याज की दर उतनी ही अधिक होती हैय ब्याज की दर द्रव्य की पूर्ति पर कुछ भी प्रभाव नहीं डालती है, क्योंकि द्रव्य की पूर्ति बैंकिंग प्रणाली के ऊपर निर्भर करती है।

उपर्युक्त व्याख्या के अन्तर्गत हमने द्रव्य की माँग व पूर्ति का अध्ययन किया है। जिस प्रकार किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु की माँग व पूर्ति से निर्धारित होता है उसी प्रकार ब्याज दर एक ओर तो नकदी–वरीयता द्वारा और दूसरी ओर द्रव्य की पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। यदि तरलता पसन्दगी स्थिर रहे तो मुद्रा के परिमाण में वृद्धि से ब्याज की दर में कमी होगी। यदि तरलता पसन्दगी में भी, मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन के साथ–साथ परिवर्तन होता है तो वास्तविक ब्याज दर तरलता पसन्दगी और मुद्रा की मात्रा, इन दोनों शक्तियों के अन्तिम फल पर निर्भर होगी।

निवेश–प्रेरणा के सारांश को निम्न प्रकार रखा जा सकता है :

(i) यदि ब्याज की दर को स्थिर मान लिया जाय तो पूँजी की सीमान्त–उत्पादकता जितनी ही ऊँची होगी, निवेश की मात्रा भी उतनी ही अधिक होगी।

(ii) यदि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता को स्थिर मान लिया जाय, तो ब्याज दर जितनी नीची होगी, निवेश की मात्रा भी उतनी ही ऊँची होगी।

**विनियोग** (Investment) – कीन्स के अनुसार विनियोग ब्याज की दर एवं पूँजी सीमान्त का कार्य क्षमता पर निर्भर करता है। पूँजी की सीमान्त कार्य क्षमता विनियोग कर्ता की मनोवृत्ति पर निर्भर करती है और यहाँ वह भावी उत्पादन क्षमता द्वारा प्रेरित होता है। भावी उत्पादन क्षमता द्वारा प्ररित होता है। भावी उत्पादन क्षमता भी पूँजी के पूर्ति मूल्य और दूरदर्शी उत्पादन पर निर्भर करती है। पूँजी का मूल्य उसके साधनों को तैयार करने के व्यय के बराबर होता है जिसमें सरलता से कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। इसके अलावा ब्याज दर में वृद्धि होगी और इसके विपरीत वृद्धि होगी। कीन्स ने बताया किइस कार्य को सरकार अच्छी तरह से कर सकती है। लेकिन पूँजी की माँग के सम्बन्ध में वह

विवश है क्योंकि इस पर व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक झुकाव प्रभावित होते हैं। स्पष्ट है यदि राष्ट्रीय आय और रोजगार भी प्रोत्साहन देता है तो सरकार को विनियोग बढ़ाना चाहिए।

**बचत–(Saving)** कीन्स कहता है कि आय में से उपभोग पर जो व्यय किया जाता है उसे निकाल देने पर जो बचता है उसे (Saving) कहते हैं यदि माना जाए कि S=बचत, Y=आय और C=उपभोग व्यय, तब बचत को इस प्रकार दर्शाते हैं।

$S = Y - C$

कीन्स परम्परावादी विचारकों की आलोचना करते हुए कहते हैं कि यह कथन गलत है कि अगर कुछ व्यक्तियों की बचत बढ़ती है तो देश की कुल बचत भी बढ़ेगी। ऐसा हो सकता है कि जब व्यक्ति अधिक बचाता है तो वह उपभोग की वस्तुओं पर कम व्यय करता है। तब इसका तात्पर्य यह है कि उपभोग की वस्तुओं को बेचने वालों की आय कम हो रही है इसलिए इस क्रम के अनुसार देश की कुल बचत नहीं बढ़ रही है।

## 2.8 कीन्स के अर्थशास्त्र की पद्धति

केंज का अर्थशास्त्र परम्परावाद और नव–परम्परावाद की त्रुटिपूर्ण विचारधारा के परिणामस्वरूप जन्म लेता है। केंज की विचारधारा ही केज का अर्थशास्त्र है। इस अर्थशास्त्र की विचित्र बात यह है कि यह लगभग प्रत्येक बात में दोनों वादों से भिन्न विचार रखता है। केंज के अर्थशास्त्र की प्रकृति को समझने के लिए यह आवश्यक है कि उसके अर्थशास्त्र की निम्न विशेषताओं को समझ लिया जायः

### 1. समष्टिभाव का अर्थशास्त्र

प्रतिष्ठित विचारधारा का मूलमन्त्र व्यष्टिभाव था। उन्होंने व्यक्तिगत बातों को विशेष महत्व दिया था। प्रतिष्ठित शाखा ने व्यक्तिगत फर्म, व्यक्तिगत मूल्य, एक उद्योग तथा एक इकाई की समस्या तक ही अपना ध्यान केन्द्रित कर लिया था। परन्तु केंज ने इस विचारधारा के विपरीत समष्टिभाव के अर्थशास्त्र (Macro Economics) को महत्व दिया। उसने कुल राष्ट्रीय आय, कुल व्यय, कुल रोजगार की समस्याओं को अपने अध्ययन का केन्द्र–बिन्दु बनाया। जनरल थ्यौरी नामक ग्रन्थ में उसने इसी विचारधारा को प्रमुख स्थान दिया है।

### 2. सन्तुलन की धारणा

परम्परावादियों का विचार था कि अर्थ–व्यवस्था में स्वयं सन्तुलन स्थापित हो जाता है। जब कभी असन्तुलन की दशा आती है, यह अस्थायी प्रकृति का होता है और कुछ समय के पश्चात् स्वयं ठीक हो जाता है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का विचार था कि अर्थ–व्यवस्था में हस्तक्षेप के बिना ही पूर्ण रोजगार स्थापित हो जाता है। अतः पूर्ण रोजगार की चिन्ता नहीं की जानी चाहिए। केंज ने स्वयं इसको महसूस किया था कि स्वसन्तुलन की धारणा पूर्णतया काल्पनिक है। परम्परावादियों के विपरीत उसका विचार था कि अर्थ–व्यवस्था प्रायः असन्तुलन को स्थिति में रहती है और पूर्ण रोजगार की स्थिति नहीं होती है। केंज के अनुसार, यदि अर्थ–व्यवस्था को स्वतन्त्र रूप से छोड़ दिया जाये, तो वह आवश्यक रूप से व्यापार–चक्रों के जाल में फंस जायेगी। अतः अर्थ–व्यवस्था को इस चक्र से बचाने के लिए कारगर हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है।

### 3. अल्पकालीन विश्लेषण

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री दीर्घकालीन विश्लेषण के पक्ष में थे, जबकि केंज अल्पकालीन विश्लेषण को सर्वाधिक महत्व देता है। केंज के अनुसार व्यक्ति का जीवन ही अल्पकालीन है और उसकी समस्या भी अल्पकालीन होती है। रोजगार के सिद्धान्त में उसने अल्पकालीन तत्वों को सर्वाधिक महत्व दिया है। यह उपभोग तथा विनियोग को बढ़ाकर रोजगार के स्तर को ऊँचा उठाना चाहता था।

#### 4. उपभोग का महत्व

केंज के रोजगार सिद्धान्त का आधार प्रभावपूर्ण माँग (Effective Demand) माना जाता है, परन्तु प्रभावपूर्ण मौग उपभोग पर आश्रित है। इस प्रकार, केंज के अध्ययन का आधार उपभोग है, रोजगार स्तर की वृद्धि के लिए केंज उपभोग वस्तुओं को अधिक महत्व देता है।

#### 5. मौद्रिक तत्वों की सहायता

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के लिए मुद्रा केवल विनिमय का माध्यम तथा मूल्य की मापक थी। केंज से पूर्व मुद्रा के कार्यों व उसके महत्व की व्याख्या सामान्य रूप में की जाती थी। केंज प्रथम अर्थशास्त्री था जिसने मौद्रिक नीति की सहायता से रोजगार को प्राप्त करने की बात कही थी। केंज के लगभग सभी विश्लेषण मौद्रिक सिद्धान्तों पर आधारित हैं।

#### 6. हस्तक्षेप की अर्थ–व्यवस्था

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री मुक्त अर्थ–व्यवस्था के लाभों का गुणगान करते नहीं थकते थे, क्योंकि उनके अर्थशास्त्र का केन्द्र बिन्दु मुक्त अर्थ–व्यवस्था थी। केंज मुक्त अर्थ–व्यवस्था के दोषों से परिचित था, तथा समझता था कि जे. बी. से का नियम, 'पूर्ति स्वयं अपनी माँग पैदा करती है', निराधार है। अतः केंज सरकारी हस्तक्षेप की सहायता से केवल बेरोजगारी को ही दूर नहीं करना चाहता था, बल्कि अति–उत्पादन की समस्या से भी निपट लेना चाहता था। इस प्रकार, केंज एक पत्थर से दो शिकार करता है जो उसके बौद्धिक चातुर्य का ही प्रतीक है। हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए के केंज राज्य–समाजवादी था या उसके विचार समाजवादियों से मेल खाते हैं वरन् वह समाजवाद का कट्टर विरोधी था।

#### 7. अध्ययन–प्रणाली

केंज का अर्थशास्त्र कल्पनाओं पर आधारित नहीं है। वह वस्तु स्थिति की सही–सही व्याख्या करता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने आगमन प्रणाली की सहायता ली है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि केंज की विचारधारा न तो प्रतिष्ठित विचारधारा है और न ही वह नव–प्रतिष्ठित विचारधारा है। यह एक ऐसी विचारधारा है जो अपने आप में केंजवादी विचारधारा को जन्म देती है।

## केंज द्वारा प्रतिष्ठित विचारधारा का विरोध

केंज के विचारों का महत्व भली–भाँति समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम उन बातों को समझ लें जिनके आधार पर केंज ने प्रतिष्ठित सम्प्रदाय की आलोचना की थी। संक्षेप में, प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र की प्रमुख आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं।

1. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री व्यक्तिगत अर्थशास्त्र के समर्थक थे, जबकि केंज ने समष्टिगत अर्थशास्त्र को अधिक महत्व दिया है। उसके अनुसार, प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने यह भुला दिया था कि समाज एक व्यक्ति से बहुत भिन्न होता है, यद्यपि वह व्यक्तियों से ही मिलकर बनता है।

2. ब्याज के सम्बन्ध में केंज के विचार प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों से भिन्न हैं। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार, ब्याज बचत करने का पुरस्कार है, जबकि केंज ने इस मत का विरोध किया है। केंज ने ब्याज को बचत का पुरस्कार नहीं माना है और कहा है कि सब प्रकार की बचतों पर भी

ब्याज नहीं दिया जाता है। केंज के अनुसार, ब्याज वह भुगतान है जो लोगों को द्रव्यता–पसन्दगी (Liquidity Preference) के परित्याग के लिए दिया जाता है।

3. केज प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की स्वयं–संचालित सन्तुलन विधि से भी असन्तुष्ट था।

4. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विचार कल्पना पर आधारित हैं। यही कारण है कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के आर्थिक सिद्धान्त अधिक समय तक नहीं रहे। केंज के अनुसार, प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के आर्थिक सिद्धान्त अवास्तविक हैं जबकि केंज का अर्थशास्त्र वास्तविक है।

## 2.9 रोजगार, ब्याज एवं मुद्रा का सामान्य सिद्धान्त

केंज अपने समय की परिस्थितियों से काफी प्रभावित था, विशेगकर विश्वव्यापी मन्दी का केंज के उस अत्यधिक प्रभाव पड़ा। परिस्थितियों का जो प्रभाव उस पर पड़ा उस सक्का फल उसकी महान पुस्तक General Theory है। इस महान ग्रन्थ की तुलना एडम स्मिथ की पुस्तक Wealth of Nations से की जा सकती है। केज को पुस्तक का प्रकाशन 1936 में हुआ और इसी के साथ आर्थिक जगत में एक नयी विचारधारा ने भी जन्म लिया। इस नयी विचारधारा को Keynesian Economics (केंज का अर्थशाख) कहा जाने लगा। पुस्तक का विश्व भर की भाषाओं में अनुवाद होने लगा और विश्व के अर्थशास्त्री केज की प्रतिभा का लोहा मानने को तैयार हो गये। केंज की पुस्तक अर्थशास्त्र के क्षेत्र में केंज–प्रेरित क्रान्ति (Keynesian Revolution) लाने के लिए जिम्मेदार है।

केंज की पुस्तक की प्रशंसा में प्रो. शुम्पीटर ने लिखा है कि ''लार्ड केंज को वैज्ञानिक उपलब्धियों के आलोचक एवं प्रशंसक, दोनों ही इस कथन से सहमत होंगे कि उसकी General Theory of Employment] Interest and Money, 1930 से प्रारम्भ होने वाले दशक की उत्कृष्ट सफलता है, और कम से कम यह कहा जा सकता है कि अपने प्रकाशन के बाद के दस वर्षों के विश्लेषणात्मक कार्य पर वह पूरी तरह से छाई रही।''

केज की पुस्तक 6 भागों और 24 अध्यायों में विभक्त है।

(1) पुस्तक के प्रथम खण्ड को 'विषय–प्रवेश' कहा गया है। इस खण्ड में 36 पृष्ठ तथा तीन अध्याय है। प्रथम भाग में सामान्य सिद्धान्त, प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र की आलोचना तथा समर्थ माँग की व्याख्या की गयी है।

(2) दूसरा भाग रोजगार, उत्पादन, आय–व्यय तथा बचत का है। यह भाग चार अध्यायों में बंटा हुआ है और इसमें कुल 50 पृष्ठ हैं।

(3) पुस्तक का तीसरा भाग 'उपभोग प्रवृत्ति' (The Propensity to Consume) का है। इस भाग में तीन अध्यायों के 45 पृष्ठ हैं। पहले दो अध्यायों में उपभोग प्रवृत्ति तथा इसे निर्धारित करने वाले वस्तुपरक (objective) व व्यक्तिपरक (subjective) कारणों एवं तीसरे अध्याय में सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति व गुणक (multiplier) की व्याख्या की गयी है।

(4) चौथे भाग का शीर्षक 'निवेश प्रेरणा' (The Inducement to Invest) है। इस भाग को 8 अध्यायों तथा एक परिशिष्ट में बाँटा गया है। इसके कुल 120 पृष्ठ हैं। इन अध्यायों में पूँजी की सीमान्त उत्पादकता तथा ब्याज के सिद्धान्तों की व्याख्या दी गयी है।

(5) पाँचवें खण्ड का शीर्षक 'द्रव्य, मजदूरी तथा मूल्य' (Money] Wages and Price) है। इस खण्ड को तीन अध्यायों व एक परिशिष्ट में बाँटा गया है। खण्ड के पृष्ठों की कुल संख्या 60 के लगभग है।

(6) पुस्तक का छठा भाग तीन अध्यायों में बंटा है, और इस खण्ड में वणिकवाद, व्यापार–चक्र तथा सामाजिक दर्शन आदि की बात कही गयी है।

General Theory का प्रकाशन अर्थ–विज्ञान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण घटना थी, क्योंकि इस पुस्तक ने अर्थशास्त्र के रूप को बदल दिया था। बीसवीं शताब्दी में अभी तक प्रकाशित सम्भवतः सभी पुस्तकों से अधिक चर्चा इसी पुस्तक की हुई है। **डिलार्ड** (Dillard) के शब्दों में, ''जिस प्रकार अठारहवीं शताब्दी में एडम स्मिथ की पुस्तक Wealth of Nations और उन्नीसवीं शताब्दी में कार्ल मार्क्स की पुस्तक Capital आलोचना का केन्द्र बनी रही। उसी प्रकार केंज की पुस्तक General Theory बीसवीं शताब्दी में अर्थशास्त्रियों के वाद–विवाद और आलोचना का केन्द्र बनी हुई है। जिस प्रकार स्मिथ की पुस्तक 'वणिकवाद' के लिए और मार्क्स की 'पूँजीवाद' के लिए चुनौती बनी, उसी प्रकार केंज की पुस्तक 'व्यक्तिवाद' के लिए चुनौती है।''

केंज ने अपनी पुस्तक में प्रतिष्ठित विचारधारा की सभी मान्यताओं को जड़ से समाप्त कर दिया। केंज स्वयं प्रारम्भ में प्रतिष्ठित एवं नव–प्रतिष्ठित विचारधारा का समर्थक था। जब उसकी नवीन पुस्तक लोगों को पढ़ने के लिए मिली तो उसके विचारों से लोग आश्चर्यचकित हो गये। सोचा जाने लगा था कि जो व्यक्ति कुछ समय पूर्व तक प्रतिष्ठित सम्प्रदाय का कट्टर समर्थक था आज वही किस प्रकार अपने विचारों को बदलकर उनका कटु आलोचक बन गया। उस समय के विद्वानों ने प्रारम्भ में केंज के विचारों की आलोचना की, किन्तु धीरे–धीरे केंज के विचारों स सहमत होने वाले अर्थशास्त्रियों की संख्या लगातार बढ़ने लगी थी।

## 2.10 प्रभावपूर्ण माँग का सिद्धान्त

यह सिद्धान्त कीन्स की जनरल थ्योरी की शुरूआत है। कीन्स का कथन है कि पूर्ण रोजगार प्रभावशाली माँग पर निर्भर है। समाज के अन्तर्गत प्रभावपूर्ण माँग कम होने से बेकारी का प्रसार होता है। व्यक्ति और समाज दोनों के बारे में यह एक सत्य सिद्धान्त है कि समाज की असल आय में बढ़ोत्तरी होने से उपभोग भी बढ़ता है किन्तु यह उस सीमा तक नहीं बढ़ता है जिस तक आय बढ़ती है। अन्य शब्दों में उपभोग आय की अपेक्षा पिछड़ जाता है। यदि पूर्ण रोजगार बनाए रखना हो तो वास्तविक विनियोग को इतना बढ़ाना चाहिए कि उपभोक्ताओं की माँग के बीच कोई फर्क न रहे। कुल विनियोग कुल उपभोग दोनों की मिली जुली मात्रा कुल आय की मात्रा के बराबर रहनी चाहिए। यही प्रभावपूर्ण माँग का सिद्धान्त है।

जनरल थ्योरी में प्रयोग हुई माँग की धारणा पूरी अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित होती है। यह व्यक्तिगत फर्मों की या व्यक्तिगत उद्योगों में माँग से भिन्न होती है। क्योंकि एक उद्योग की माँग विभिन्न कीमतों पर क्रय की गई वस्तु की मात्रा की सूची होती है, किन्तु सम्पर्क अर्थव्यवस्था की माँग को इस प्रकार की सरल भौतिक मात्राओं में प्रकट करना सम्भव नहीं है। अतः कीन्स समस्त उत्पादन मात्रा को नापने के लिए श्रम को उस आय का माध्यम बताता है। उसने कहा है कि एक निश्चित रोजगार के

स्तर पर जो कुल उत्पादन होता है उसकी मात्रा हेतु माँग कीमत के रूप में निर्धारित धनराशि बढ़ जाती है यानी कुल माँग कीमत रोजगार की मात्रा में वृद्धि होने के साथ–साथ बढ़ती है।

समाज की प्रभावपूर्ण माँग कुल उपभोग (C) और कुल विनियोग (1) योग के बराबर होती है। उपभोग समाज में व्यक्तियों की व्यय योग्य आय की मात्रा और उनकी उपभोग प्रवृत्ति पर निर्भर है। विनियोग पूँजी की सीमान्त कुशलता और ब्याज दर पर निर्भर होती है। इस तरह जनरल थ्योरी में निम्न धाराएँ भी शामिल कर ली गई है।

(A) ब्याज दर

(B) पूँजी की सीमान्त कुशलता

(C) उपभोग प्रवृत्ति

**(A) ब्याज दर**–कीन्स की धारणा है कि ब्याज एक मौद्रिक तथ्य है। कि यह बात पसन्दगी के त्याग का पुरस्कार है। व्याज की दर के द्वारा धन की मात्रा और इसे द्रव रूप में रखने की इच्छा के बीच सन्तुलन स्थापित होता है और मनुष्य अपने धन को नगदी के रूप में रखने को आतुर क्यों होता है? कीन्स बताता है कि लोग किन उद्देश्यों से अपने पास नगदी रखते हैं। व्यापारी उद्देश्य, सहा उद्देश्य, सुरक्षा उद्देश्य। इन तीनों में से बीच का उद्देश्य अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस पर कर्ज देने वाले की मनोदशा का प्रभाव रहता है और इसलिए यह ज्यादा स्थिर होता है। किन्तु अन्य दो उद्देश्य पर्याप्त रूप से स्थिर होते हैं। अतः ब्याज दर (r) सट्टा उद्देश्य (L2) और उसकी पूर्ति के लिए नगदी की प्राप्य मात्रा (M2) पर निर्भर होती है। यदि द्रवता पसन्दगी या सहा उद्देश्य वाली द्रवता पसन्दगी में भी तब्दीली हों तो ब्याज दर क्या होगी, यह दोनों परिवर्तन शक्तियों के मिले जुले प्रभाव पर निर्भर होगा। अतः इसके बारे में पूर्व कयन ठीक न होगा।

पूँजी की सीमान्त कुशलता (Marginal Efficiency of Capital)–कीन्स के अनुत्तार समाज में कुल विनियोग पूँजी की सीमान्त उत्पादकता वह अनुमानित लाभ दर है जिसकी नवीन विनियोग से प्राप्त होने की आशा है। कीन्स इस लाभ दर को रोजगार को प्रभावित करने वाला अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली कारण मानता है। वह विनियोजकों की आयुक्ति पूर्ण मनोवृत्ति पर निर्भर करती है। पूँजी की सीमान्त उत्पादकता अल्पकाल में अस्थिर रहती है। और दीर्घकाल में इसके गिरने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। जिस परिस्थिति में समाज के पारा पूँजी, वस्तुओं के भण्डार संचय हो जाए उसमें वह शून्य तक घट सकती है। पूँजी की सीमान्त उत्पादकता इतनी अधिक बलवान होती है कि वह स्थान दर के प्रभावों को निरस्त कर देती है।

**उपभोग प्रवृत्ति (Propensity to Consume)–उपभोग आय की मात्रा और इसके उस भाग पर निर्भर है जो कि उपभोग के लिए उपलब्ध होता है। राष्ट्रीय आय की प्रत्येक मात्रा के लिए इसका भाग, जो जनता के द्वारा उपयोग पर खर्च किया जाता है, प्रायः एक रिवर अनुपात होता है।** इसका आशय ये हुआ कि, कि औसत उपभोग प्रवृत्ति प्रायः स्थिर रहती है। उपभोग प्रवृत्ति यह बताती है कि आय में परिवर्तन होने पर उपभोग में भी किस प्रकार परिवर्तन होते है। याद रहे कि यहाँ कीन्स कुल समाज की उपभोग प्रवृत्ति पर विचार कर रहे हैं, एक परिवार या एक व्यक्ति के लिए नहीं। उन्होंने वास्तविक अनुभव के आधार पर ही यह मान्यतस थी कि औसत उपभोग प्रवृति अल्पकाल में प्रायः स्थिर होती है।

किसी समय विशेष में उपभोग प्रवृत्ति क्या होगी, यह समाज की प्रचलित रीतियों एवं वितरणा प्रणाली, कर प्रणाली आदि पर निर्भर करती है।

**उच्च्व उपभोग प्रवृत्ति समाज में अधिक रोजगार के लिए अनुकूल होती है इसके कारण, ऐसी दशा में आय और उपभोग पर खर्च की जाने वाली आय के बीच कुष्ठ अन्तर रहता है और इसे पाटने के लिए अपेक्षाकृत कम विनियोग की आवश्यकता पड़ती हैं, किन्तु नीची उपभोग प्रवृत्ति रोजगार वृद्धि के लिए अनुकूल नहीं है।** क्योंकि ऐसी दश में आय और उपभोग पर व्यय की जाने वाली आय के बीच बहुत अन्तर रहता है और इसे खत्म करने के लिए (अन्तर को) आधिक विनियोग भी आवश्यक होती है। यदि आय के सभी स्तरों पर उपभोग प्रवृत्ति 100% हो, तो आय और उपभोग के बीच का अन्तर खत्म हो जाएगा। तथा नए विनियोग के बिना ही पूर्ण रोजगार का स्तर प्राप्त किया जा सकेगा। यही वह आदर्श स्थिति है, जिसमें सेज (Say) का नियम क्रियाशील होता है। किन्तु व्यवहार में उपभोग प्रवृत्ति सभी सभ्य समाजों में बहुत ही कम रहती है, जिससे आय और उपभोग के बीच एक अन्तर होता है जिसे अधिक विनियोग के द्वारा बराबर करना पड़ता है।

उपभोग प्रवृत्ति किस तरह बढ़े? कीन्स बताता है कि केवल आय को पुर्नवितरण द्वारा ही ऊँचा नहीं किया जा सकता है, क्योंकि इसमें धनिकी के असन्तोष और विरोध की आशंका है। इसी तर्क बहुत ही विकसित पूँजीवादी समाज में वस्तुओं के भंडार पहले से ही बहुत संचित रहते हैं, जिस कारण विनियोग व्यय को बढ़ाकर रोजगार स्थिति को सुधारने का अवसर कम होता है। ऐसी दशा में युद्ध उपयुक्त एवं लाभकारी होते हैं। क्योंकि युद्ध के दौरान सामग्री के सृजन के साथ–साथ अत्यधिक विनाश भी होता है। जिससे नवीन विनियोगों के लिए अवसर उत्पन्न होते हैं।

यह उल्लेखनीय है कि कीन्स एक धनी अर्थव्यवस्था की अपेक्षा एक निर्धन अर्थव्यवस्था को अच्छा समझते हैं, क्योंकि इसमें उपभोग प्रवृत्ति के ऊँचा होने के कारण उपभोग और आय के मध्य अन्तर बहुत ही कम या नही ंके बराबर होता है तथा विनियोग की समस्या नहीं होती। इस प्रकार कीन्स ने यह कहा है कि समाज जितना अधिक धनी होगा, उस समाज की अर्थव्यवस्था में उतने ही अवांछनीय अवगुण होंगे।

**जनरल थ्योरी की व्यावहारिक उपयोगिता–** जनरल थ्योरी की व्यावहारिक नीतियों का पथ–प्रदर्शक है। यह परम्परावादी अर्थशास्त्रियों की अवास्तविक व्याख्या के विरूद्ध कीन्स की प्रतिक्रिया है। यह वर्तमान समस्याओं के समाधान हेतु एक व्यापक योजना प्रस्तुत करती है, जो विश्व की आर्थिक समस्याओं को व्यावहारिक दृष्टि से देखता है। इसने यह अन्तिम रूप से सिद्ध कर दिया है कि स्वतन्त्र आर्थिक प्रणाली के द्वारा पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इस हेतु राज्यको कुछ धनात्मक कार्यों को करने की जरूरत होती है।

**राज्य को चाहिए कि वह सार्वजनिक निर्माण कार्यों की एक ऐसी योजना बनाए, जो उपभोग के सतर और अधिक आय के स्तरों के मध्य बढ़ती हुई खाई को पाटने में मददगार बने उसे सस्ती मुद्रा की ऐसी योजना बनानी चाहिए, जिससे अर्थव्यवस्था में ब्याज दर इतनी कम हो जाए िकवह समाज में विनियोगों की वृद्धि में सहायक हो इसके अलावा उपयुक्त कर प्रणाली के द्वारा समाज में आयों का पुनर्वितरण इस तरह से किया जाए कि अर्थव्यवस्था को रोजगार के ऊँचे दर्जे पर स्थिर रखा जा सके।** कीन्स सार्वजनिक निर्माण कार्यों की नीति में इतनी दृढ़ आस्था रखते थे कि उन्होंने यहाँ तक कह दिया कि यदि उत्पादक प्रकार के सार्वजनिक निर्माण कार्यों को हाथ में लेना सम्भव न हो तो पिरामिड

निर्माण, पत्तियाँ तोड़ना और जमीन में गड्ढे खोदना और फिर उनको भरना आदि व्यर्थ कार्य भी अर्थव्यवस्था को पूर्ण रोजगार के स्तर तक पहुँचाने में बहुत सहायता दे सकते हैं।

**कीन्स के आर्थिक विचारों की विशेषताएँ**

**(Characteristic of Keynes Economic Thought)**

कीन्स के आर्थिक विचारों में निम्न विशेषताएँ मिलती हैं–

1. समय विहीन अर्थशास्त्र–(Time less Economics) – कीन्स ने एक निश्चित समय का अध्ययन किया है। यह बताते हैं कि वर्तमान में कुल आय=वर्तमान के कुल व्यय के (उपभेक्ता+विनियोग) तथा आय बचत (विनियोग)=वर्तमान उपभोग। इसी कारण कीन्स कहता है कि दीर्घकाल में हम सब मर जायेंगे। यही कारण चलन के वेग के विचार को छोड़ देता है तथा प्रत्येक सदस्य को अवधि में अध्ययन न कर एक निश्चित समय में ही अध्ययन करता है।
2. **आय अर्थशास्त्र (Income Economics)–** कीन्स के अर्थशास्त्र मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त पर ही आधारित है अपितु यह आय का भी अध्ययन करता है। इस वजह से कीन्स सर्वप्रथम मुद्रा आय और बाद में साख–आय का भी अध्ययन करता है।
3. **मौद्रिक अर्थशास्त्र (Monetary Economics)–**परम्परावादी शाखा तथा अन्य शाखाओं के अर्थशास्त्रियों ने 'Real Economics' का अध्ययन किया था उन्होंने वास्तविक आय, वास्तविक मजदूरी, वास्तविक लागत आदि का अध्ययन किया था। उनका मत था कि मुद्रा तो केवल विनिमय का माध्यम है। इससे आर्थिक समस्याओं पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। कीन्स ने मुद्रा को विशेष महत्व दिया और बताया कि मुद्रा न केवल विनिमय का माध्यम है। अपितु मूल्य मापक और बचत का साधन भी है। अतः वह समष्टि अर्थशास्त्र के विभिन्न पहलुओं, कुल आय, कुल उपभोग कुल विनियोग को मुद्रा से सम्बन्धित कर अध्ययन करता है।
4. **चक्रीय अर्थशास्त्र (Circular Flow Economics)–**कीन्स उत्पादन, उपभोग बचत, विनियोग वगैरह का एक चक्र बनाकर अध्ययन करता है। इस अध्ययन के तरीकों के अनुसार कुल आय, कुल व्यय एवं कुल बचत कुल विनियोग के बराबर होती है। कीन्स अपने इस चक्र में रुकावट आने पर मुद्रा की मदद से दूर करने का प्रयास करता है उसके इस विचार के अनुसार **उत्पादन को मुद्रा में आँका जाएगा आर यही व्यक्तियों की कुल आय होगी।** उसका मत है कि इस पूरी आय को उपभोग के लिए खर्च किया जाएगा। इस आय का जो भाग उपभोग व वस्तुओं पर खर्च किया जाएगा, वही बचत होगी। इसी बचत का विनियोग (Investment) किया जाता है। इस तरह कुल बचत और कुल विनियोग बराबर होंगे। कीन्स यह भी बताता है कि अगर इन दोनों में अन्तर रहेगा तब इस अन्तर को पूरा किया जाएगा। इसके लिए उसका कथन है कि करों द्वारा ये पूरा होंगे या करों द्वारा इन्हें पूरा किया जाएगा और अगर यह कमी पूरी नहीं होगी तब उपभोग वस्तुओं की माँग कम हो जाने से अति उत्पादन की समस्या घेर लेगी।
5. **समष्टि अर्थशास्त्र (Macro Economics)–**कीन्स से पूर्व के अर्थशास्त्री विभिन्न आर्थिक समस्याओं के अध्ययन के लिए व्यक्तियों को आधार मानते थे। उनके इस आधार पर आधारित अर्थशास्त्र को विज्ञान में व्यष्टि अर्थशास्त्र कहकर पुकारते हैं। कीन्स ने अध्ययन के इस तरीके को त्याग दिया। उसने बताया कि एक व्यक्ति का कार्य दूसरे व्यक्ति के कार्य के विपरीत हो सकता है। अतः हमें एक व्यक्ति का कार्य दूसरे व्यक्ति के कार्य के विपरीत हो सकता है। अतः हमें एक व्यक्ति नहीं अपितु अपने अध्ययन के लिए सभी व्यक्तियों के कार्यों के योगों का अध्ययन करना चाहिए। इसी वजह से कीन्स ने कुल आय, कुल उपभोग, कुल विनियोग, कुल बेरोजगारी आदि का अध्ययन किया। कीन्स द्वारा इस विचार के कारण ही उसके तरीके पर आधारित अर्थशास्त्र को विद्वानों ने समष्टि अर्थशास्त्र की संज्ञा दी है। इस प्रकार यह स्पष्ट है

कि कीन्स के अध्ययन के इस तरीके से जीवन की भावनाओं को सरल बना दिया है और व्यक्तियों और वर्गों के अन्तर को भुला दिया है।

## 2.11 कीन्स के व्यापार चक्र सिद्धान्त

## (The Trade Cycle theory of Keynes)

कीन्स ने व्यापार चक्र को वर्तमान समाज में होने वाली अत्यन्त जटिल घटना के रूप में स्वीकार किया है, जिसे समझने के लिए पूँजी की सीमान्त उत्पादकता एक उत्तम साधन है। उनके अनुसार व्यापार चक्र की उत्पत्ति का मुख्य कारण विनियोग वस्तुओं के वे बदलाव हैं, जो कि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता में परिवर्तनों के फलस्वरूप उदय होते हैं अर्थात् व्यापार चक्रों की व्याख्या पूँजी की सीमान्त उत्पादकता और ब्याज दर में परिवर्तनों के फलस्वरूप उदय होती हैं—अर्थात् व्यापार चक्रों की व्याख्या पूँजी की सीमान्त उत्पादकता और ब्याज दर परिवर्तनों के आधार पर करना सम्भव है। **पूँजी की सीमान्त उत्पादकता वर्तमान विनियोग व्यय और भविष्य में लाभ प्राप्त करने की आशा पर आधारित है।**

**व्यापार चक्र का कारण**

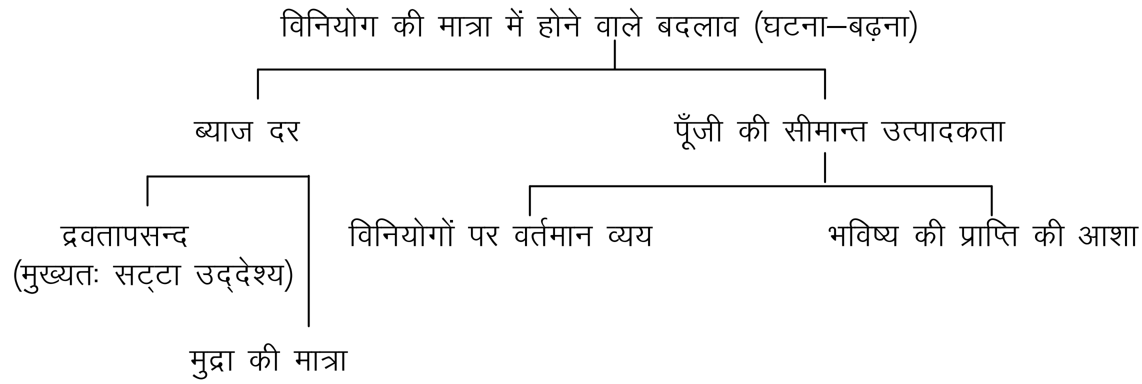


कीन्स ने व्यापार चक्रों की व्याख्या में ब्याज दर की अपेक्षा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता को अत्यधिक महत्त्व दिया। उनका कहना है कि असली कारण तो पूँजी की सीमान्त उत्पादकता ही है। ब्याज दर तो सहायता करती है। इन दोनों के अतिरिक्त विनियोग गुणक को भी दृष्टिगत रखना आवश्यक है, क्योंकि इसके बगैर व्यापार चक्र का आकार बहुत छोटा होता है। कीन्स ने बताया कि मन्दी में पूँजी की सीमान्त कुशलता उच्च होती है। क्योंकि जमा किया हुआ स्टॉक इस हालत में पहुँचने तक नष्ट हो जाते हैं। और ब्याज दर नीची होती है। क्योंकि बैंकों के खजाने भर गए होते हैं। अतः नए विनियोग किए जाते हैं और विनियोग गुणक के प्रभाव पड़ने के कारण विनियोग और रोजगार दोनों वृद्धि करने लगते हैं। जल्दी ही सारी अर्थव्यवस्था व्यस्त हो जाती है और पूर्ण रोजगार का स्तर प्राप्त हो जाता है। उसके बाद विनियोगों के जारी रहने से अभिवृद्धि की अवस्था उत्पन्न हो जाती है और लोगों में आशा की भावना जागती है। कुछ समय पश्चात अधिक उत्पादन के फलस्वरूप वस्तुओं के संचय में भारी वृद्धि होने लगती है, व्यवसायियों को हानि होने लगती है और वे निराशावादी बन जाते हैं, जिसका नतीजा ये होता है कि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता घट जाती है और अर्थव्यवस्था मन्दी की ओर जाने लगती है। इससे अब साधनों में बेकारी फैलने लगती है, क्योंकि वस्तुओं के लिए मांग कम हो गई है। अब विनियोग गुणक विपरीत दिशा में कार्य करते हैं जिसके फलस्वरूप विनियोग और रोजगार दोनों संचयी गति से घटने लगते हैं तथा मन्दी हो जाती है।

व्यापार चक्र सम्बन्धी उपर्युक्त व्याख्या सन्तोषजनक होते हुए भी इसमें कुछ दोष है। कीन्स का मत है कि **मन्दी की अवस्था में ब्याज दर को घटाने से मन्दी के चंगुल से अर्थव्यवस्था को मुक्ति मिल जाती है,** यह बात जबकि गलत है वर्तमान अध्ययनों से पता चलता है कि ब्याज दर का विनियोगों की

मात्रा पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। जैसा कि **बेन्हम** ने कहा है कि साहसी अपने पुराने व्यवसायों को तब ही बढ़ायेंगे जब उन्हें यह आशा हो कि भविष्य में उनकी उपज की मांग में वृद्धि होगी जिससे वह पहले की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त कर सकें।

कीन्स ने पूँजी की सीमान्त उत्पादकता को बहुत महत्व दिया है, किन्तु यह नहीं बताया कि वह किन पर निर्भर है। उनका विचार है कि यह विनियोजकों की मनोभावना पर निर्भर है जब ऐसा है तो कीन्स के सिद्धान्त और पीगू के व्यापार–चक्र सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त में कोई अन्तर नहीं रहता।

## 2.12 उपभोग प्रवृत्ति

केंज की प्रभावोत्पादक मांग का एक प्रमुख घटक उपभोग प्रवृत्ति है। इस पर रोजगार, आय और उत्पादन बड़ी सीमा तक निर्भर करते हैं। केंज के अनुसार स्वयं उपभोग दो बातों पर निर्भर करता है– (i) आय की मात्रा, तथा (ii) उपभोग प्रवृत्ति। संक्षेप में, उपभोग प्रवृत्ति कुल आय और कुल उपभोग के सम्बन्ध को प्रकट करती है। यह वह अनुसूची है जो कुल आय के विभिन्न स्तरों पर उपभोग की भिन्न–भिन्न मात्राओं को व्यक्त करती है। उपभोग प्रवृत्ति और आय में 'क्रियात्मक सम्बन्ध' (Functiona Relation) होता है। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि $C = f(y)$ है। यदि y आय है तो C उपभोग। y में जिस प्रकार का परिवर्तन होगा उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध C पर होगा। वास्तव में, उपभोग फलन, आय और उपभोग के मध्य पाये जाने वाले सम्बन्ध को प्रकट करता है। केंज के अनुसार, उपभोग प्रवृत्ति एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है, अतः इसकी क्रिया का अध्ययन करना आवश्यक है।

### उपभोग सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक नियम

इस व्याख्या में केंज ने बताया है कि एक बिन्दु से पूर्व आय की तुलना में उपभोग की प्रवृत्ति अधिक उच्च होती है। आय में वृद्धि के साथ ही उपभोग में भी वृद्धि होती है। परन्तु जिस अनुपात में आय में वृद्धि होती है उसी अनुपात में उपभोग में वृद्धि नहीं हो पाती है। उपभोग के बीच में एक बिन्दु ऐसा भी है जहाँ पर आय और उपभोग, दोनों बराबर हो जाते हैं। इस बिन्दु को 'अन्तराल बिन्दु' (Break-even Point) कहते हैं। इस बिन्दु के बाद आय–स्तर बढ़ता है और उस अनुपात में उपभोग के न बढ़ पाने के कारण आय–वक्र व उपभोग–वक्र में अन्तर आ जाता है। इस स्थिति को निम्नांकित तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है:

| आय | उपभोग पर व्यय | सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति |
|---|---|---|
| 100 | 150 (–50) | – |
| 200 | 210 (–40) | $\frac{90}{100} = .9$ |
| 300 | 300 (0) | $\frac{60}{100} = .6$ |
| 400 | 350 (+50) | $\frac{50}{100} = .5$ |
| 500 | 390 (+110) | $\frac{40}{100} = .4$ |
| 600 | 425 (+175) | $\frac{35}{100} = .35$ |
| 700 | 455 (+245) | $\frac{30}{100} = .30$ |

केंज के रोजगार सिद्धान्त में औसत उपभोग प्रवृत्ति (A.P.C.) तथा सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (M.P.C.) का महत्वपूर्ण स्थान है। इन दोनों प्रवृत्तियों का संक्षिप्त वर्णन अग्र प्रकार हैः

**(i) औसत उपभोग प्रवृत्ति** (A.P.C.) – औसत उपभोग प्रवृत्ति वह प्रवृत्ति है जिस पर आय का एक निश्चित आनुपातिक भाग व्यय किया जाता है। माना कि एक व्यक्ति की आय 1200 रुपये है और वह उस आय में से 600 रुपया व्यय कर देता है, अतः औसत उपभोग प्रवृत्ति $\frac{600}{1200} = 0.5$ होगी।

$$\text{औसत उपभोग प्रवृत्ति (A.P.C.)} = \frac{\text{उपभोग की राशि (C)}}{\text{आय की मात्रा (y)}}$$

सूत्र रूप में, $ACP = \frac{C}{y}$

**(ii) सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति** (M.P.C.)–सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति को एक काल्पनिक उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, आय में जो अतिरिक्त वृद्धि होती है और उस वृद्धि के परिणामस्वरूप उपभोग में जो अतिरिक्त वृद्धि होती है उस वृद्धि को हम सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति कह सकते हैं। यदि आय में 40 रुपये की अतिरिक्त वृद्धि होती है और उपभोग में केवल 10 रुपये की अतिरिक्त वृद्धि होती है तब ऐसी दशा में सीमान्त उपभोग–प्रवृत्ति $\frac{10}{40} = .25$ के होगी। इस स्थिति को हम दूसरे शब्दों में निम्न प्रकार से भी व्यक्त कर सकते हैंः

$$\text{सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (M.P.C.)} = \frac{\text{उपभोग की मात्रा में अतिरिक्त वृद्धि } (\delta c)}{\text{आय की मात्रा में अतिरिक्त वृद्धि } (\delta y)}$$

सूत्र रूप में, $MPC = \frac{\delta c}{\delta y}$

हमने अपनी सारणी में इस सूत्र के आधार पर उपभोग की प्रवृत्ति को स्पष्ट किया है, अर्थात् 240–150 = 90 = 90 ⁄ 100 = .9 है। (सूत्र में $\delta$ (डेल्टा) का अर्थ है परिवर्तन, कमी अथवा वृद्धि)

उपभोग प्रवृत्ति के निर्धारक तत्व–उपभोग प्रवृत्ति को निर्धारित करने वाले दो तत्व हैं :

(i) व्यक्ति सापेक्ष साधन, तथा (ii) व्यक्ति निरपेक्ष साधन

## केंज के महत्वपूर्ण सुझाव

केंज व्यावहारिक अर्थशास्त्री था। उसने केवल मन्दी को दूर करने तथा रोजगार बढ़ाने वाली बातों का ही उल्लेख नहीं किया है, बल्कि अनेक उन व्यावहारिक उपायों को भी बताया है जो आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। उनके द्वारा दिए गये प्रमुख उपाय निम्नलिखित हैंः

**1. घाटे की वित्त–व्यवस्था का सुझाव–**

घाटे की वित्त–व्यवस्था केंज की महत्पूर्ण देन है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने घाटे की वित्त – व्यवस्था (deficit financing) को अर्थ–व्यवस्था के लिए विनाशकारी बताया है। उस समय के अर्थशास्त्रियों का यह नारा था कि सबसे अच्छी सरकार वह है जो कम से कम कर लगाये और कम से कम खर्च करे। उस समय घाटे की वित्त–व्यवस्थो का चलन नाममात्र को भी नहीं था। यदि मन्दी से दुनिया की अर्थ–व्यवस्था बेहाल न हुई होती तो केंज भी 'पम्प प्राइमिंग' जैसी योजना का सुझाव नहीं देता, और उसकी यह योजना इतनी अधिक कारगर भी नहीं होती।

केंज ने सुझाव दिया है कि मन्दी को दूर करने, रोजगार को बढ़ाने तथा पिछड़े हुए क्षेत्रों का विकास करने के लिए सरकार को रेल–रोड, नही, बाँध, खाद व लौह–इस्पात के कल–कारखानों पर धन व्यय करना चाहिए। इस क्रिया से माज की क्रय–शक्ति बढ़ती है, गुणक प्रभावी होता है, नयी माँग बढ़ने लगती है, नये कल–कारखाने खुलने लगते हैं और लोगों को अधिकाधिक रोजगार मिलने लगता है। केंज का यह सुझाव नये आविष्कार के रूप में अमेरिका के न्यू डील (New Deal) कार्यक्रम में बहुत अधिक सफल रहा।

**2. बैंक दर**

केंज बैंक दर में ऐसे परिवर्तन करने के सुझाव देता है, जिससे ब्याज–दर को घटाया जा सके। समृद्धि काल में यदि ब्याज–दर को घटाया जा सका, तो विनियोग कें लिए आसानी से पूँजी उपलब्ध हो सकती है और समृद्धि काल में स्थायित्व लाया जा सकता है।

**3. उपभोग में वृद्धि**

हम बता चुके हैं कि केंज ने General Theory में उपभोग–प्रवृत्ति को सर्वाधिक महत्व दिया है, जबकि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने उपभोग की उपेक्षा कर दी थी। केंज ने उपभोग बढ़ाकर रोजगार को बढ़ाने की बात कही है। वह सुझाव देता है कि सरकार को मौद्रिक तथा रोजकोषीय नीति में ऐसे कारगर परिवर्तन करने चाहिए जिससे लोगों की उपभोग प्रवृत्ति बढ़ाई जा सके। केंज घाटे की वित्त–व्यवस्था विशेषकर मुद्रा–प्रसार से भी उपभोग प्रवृत्ति बढ़ाने की बात करता है। यह सामान्य सी बात है कि जब समाज में मुद्रा का चलन–वेग बढ़ने लगता है, तब लोगों की क्रय–शक्ति बढ़ती है और इसी से उपभोग प्रवृत्ति भी बढ़ जाती है।

**4. वितरण की समानता**

उपभोग प्रवृत्ति को बढ़ाने व रोजगार में वृद्धि करने के लिए केंज ने धन के वितरण को समान करने की बात कही है। धन की असमानता उपभोग प्रवृत्ति को घटाती है। यदि धन के वितरण को विकेन्द्रित कर दिया जाता है, तो वह एक नहीं अनेक व्यक्तियों के हाथों तक चला जाता है जिससे उपभोग बढ़ता है। यह क्रिया सम्पूर्ण अर्थ–व्यवस्था को प्रभावित करने लगती है। केंज ने यह सुझाव भी दिया है कि धनिकों पर प्रगतिशील दर से करारोपण किया जाना चाहिए, जबकि निर्धनों से कम दर पर कर वसूल किये जाने चाहिए। इससे धन के वितरण की न्यायोचित व्यवस्था तो होगी ही, साथ ही उपभोग प्रवृत्ति भी बढ़ेगी।

**5. नियन्त्रित अर्थ–व्यवस्था का सुझाव**

केंज के इस सुझाव से लोग उसे समाजवादी मानते हैं, परन्तु ऐसा कहना सही नहीं है। केंज सरकारी हस्तक्षेप की बात करके यह बताना चाहता है कि सरकार का यह कदम रोजगार दिलाने में महत्वपूर्ण कार्य कर सकता है। केंज प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की मुक्त अर्थ–व्यवस्था के परिणामों को भुगत चुका था। उस समय की अनियन्त्रित आर्थिक नीतियों के ही कारण अति–उत्पादन से सम्पूर्ण अर्थ–व्यवस्था छिन्न–भिन्न हो चुकी थी। यही कारण है कि केंज अर्थ–व्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप की बात करता है।

**6. मजदूरी कटौती का विरोध**

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री, विशेषकर पीगू, रोजगार में वृद्धि लाने के लिए मजदूरी की दर में कटौती करना चाहता था। उसके अनुसार, मजदूरी की दरों में कटौती करके अधिक से अधिक लोगों को रोजगार दिलाया जा सकता है। केंज इस विचार से सहमत नहीं था। उसका विचार था कि मजदूरी में कमी कर के लोगों की क्रय–शक्ति घटेगी, उपभोग घटेगा, इससे उत्पादन और रोजगार भी घटेगा। प्रतिष्ठित विचारधारा के विरोध में केंज मजदूरी की दरों को कम करने के पक्ष में नहीं था, बल्कि वइ इसे अधिकाधिक रूप में स्थिर रखना चाहता है।

उपर्युक्त सुझावों को देने के बाद केंज हमारे सामने एक सफल अर्थशास्त्री के रूप में अवतरित होता है।

## 2.13 केंज के सिद्धान्त की आलोचनाएँ

यह सत्य है कि केंज महान अर्थशास्त्री था। उसे हम नये अर्थशास्त्र का जनक कह सकते हैं। उी की प्रेरणा से अर्थशास्त्र के क्षेत्र में एक नयी क्रान्ति भी आयी। 1936 में General Theory के प्रकाशन के बाद केंज के प्रशंसकों के साथ–साथ आलोचकों की संख्या भी बढ़ती गयी। केंज की प्रमुख आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं :

1. आलोचकों का मत है कि अर्थशास्त्र के क्षेत्र में केंज का कोई नवीर योगदान नहीं है। उसने केवल उन्हीं बातों की ओर इशारा किया है, जो बातें पहले से ही सोची और समझी जा चुकी थीं।
2. पीगू ने केंज की आलोचना यह कहकर की है कि केंज ने मार्शल की माँग और पूर्ति विश्लेषण को सामूहिक माँग तथा सामूहिक पूर्ति के रूप में संशोधित किया है।
3. आलोचकों का कहना है कि केंज ने उत्पादन तथा आय की उपेक्षा करके अपना पूरा ध्यान पूर्ण रोजगार स्तर पर केन्द्रित कर दिया था जो गलत है।
4. केंज का विचार था कि मन्दी को दूर करने के लिए ब्याज की दर में कमी की जानी चाहिए, क्योंकि इससे अर्थ–व्यवस्था की विकास दर में वृद्धि होती है। लेकिन आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत है कि केवल ब्याज–दर को घटाने से विनियोग नहीं बढ़ाया जा सकता है। इस सन्दर्भ में, बेनहम (Benham) का कहना है कि ''उद्योगपति अपने व्यापार को तभी बढ़ाते हैं जब उनको भावी मांग के बढ़ने की आशा होती है। या वस्तुओं को तैयार करने और बेचने की लागत में कमी आने की सम्भावना हो जिससे वे पहले की अपेक्षा वस्तुएँ अधिक मात्रा में बेच सकेंगे और अधिक लाभ प्राप्त कर सकेंगे।'' अतः व्यापारी केवल इस बात से प्रभावित नहीं होते हैं कि बैंकों से किस दर पर उधार मिल सकता है। **क्राउथर** के शब्दों में, ''आप घोड़े को पानी के पास ले जा सकते हैं, किन्तु उसे पानी पीने के लिए विवश नहीं कर सकते।''
5. केंज व्यापार–चक्रों के आने का कोई निश्चित कारण नहीं बता पाया है। हाँ, उसने इतना अवश्य कहा है कि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता के कारण व्यापार में उतार–चढ़ाव आते हैं, परन्तु वह इस बात को स्पष्ट नहीं कर पाया है कि व्यापार–चक्र बार–बार एक नियत समय पर और एक निश्चित मार्ग से ही क्यों आते रहते हैं।
6. केंज के आलोचकों का कहना है कि केंज का अर्थशास्त्र केवल विकसित देशों के लिए है, जबकि समस्या पिछड़े हुए देशों के सामने है। सम्भवतः केंज का ध्यान अपने देश ब्रिटेन तक ही सीमित था।
7. अन्त में, यह कहा जा सकता है कि केंज का यह सिद्धान्त पीगू के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के बहुत निकट है। उसके अनुसार, पूँजी की सीमान्त उत्पादकता साहसियों की मनोवृत्ति पर निर्भर करती है जिससे उत्पादन तथा रोजगार प्रभावित होता है।

## 2.14 सारांश

आर्थिक विचारों के इतिहास में कीन्स का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। यदि इसको एक कथन के रूप में कहना चाहें तो प्रो0 हैने ने जो कीन्स के लिये लिखते हैं वही अपने आप में सम्पूर्ण लगता है। '''कीन्स कैम्क्ति विश्वविद्यालय का शिक्षित विद्यार्थी एवं शिक्षक था। वह एक सरकारी पदाधिकारी, सम्पादक, वैज्ञानिक संघ का मंत्री तथा एक व्यापारी था। लेकिन प्रत्येक समय वह एक अर्थशास्त्री था जो सदैव समय एवं स्थान की समस्याओं की ओर विशेष रूप से ध्यान देता था।''

कीन्स नवीन अर्थशास्त्र के नेता और वर्तमान प्रसद्धि कीन्स प्रेरित क्रान्ति के जनक हैं। वर्तमान आर्थिक विचारधारा और आर्थिक नीतियों पर उनका गहरा प्रभाव है। जिसमें समय व्यतीत होने पर भी

कोई प्रभाव नहीं पड़ा। ब्रिटेन ये ही नहीं वरन लगभग सभी विश्व के देशों में कीन्सवादी अर्थशास्त्र के समर्थक पाये जाते हैं। अर्थशास्त्र में कीन्स का अद्वितीय योगदान रहा है।

कीन्स ने अपनी पुस्तक Indian Currency and Finance में परम्परावादी मौद्रिक सिद्धांत के विरोध के प्रमाण उपस्थित है। A Treatise of Probability दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में प्रमुख लेखन कार्य है। A Tract of Monetary Reform में कीन्स ने मौद्रिक प्रबन्ध के पक्ष में विचार रखे हैं। The end of Laisser-faire में पूंजीवाद की आलोचना करते हुए कीन्स ने यह सिद्ध कर दिया कि व्यक्तिगत और सामाजिक हित प्रायः एक दूसरे के विरोधी होती हैं। इस विरोध को देखते हुए कीन्स निर्बाधवाद के पक्ष में नहीं थे। और पूँजीवाद की बुराईयों के निवारण के लिए वे राज्य के हस्तक्षेप को आवश्यक समझते थे। A Treastise of Money में व्यापार चड के मौद्रिक सिद्धांत की व्याख्या की और यह विचार प्रस्तुत किया कि केन्द्रीय बैंक की ब्याज दर नीति में समुचित परिवर्तन करके आर्थिक स्थायित्व को प्राप्त किया जा सकता है। इस पुस्तक में कई कमियाँ थी जिसको कीन्स ने स्वीकार किया तथा अगली पुस्तक General Theory of Employment Interest and Money प्रकाशित हुयी। जो कीन्स के अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि की आधारशिला है। यह पुस्तक, सामान्य सिद्धांत (General Theory) नाप से भी प्रसिद्ध है। यह पुस्तक तीसा की महामंदी का ही परिणाम थी इसके प्रकाशन के बाद आर्थिक विचारधारा और नियमों के एक युग की शुरूआत हुयी। इसने प्राचीन परम्परावादी अर्थशास्त्र के स्थान पर नवीन या कीन्सवादी अर्थशास्त्र को जन्म दिया।

18वीं सदी की Welth of Nation (Adam Smith) और 19वीं शताब्दी को Das Capital (मार्क्स) के समान 20वीं सदी का General Theory (कीन्स भी वाद–विवाद और आलोचनाओं का केन्द) बन गयी। यदि स्मिथ की पुस्तक वणिकवाद की कड़ी आलोचना थी और मार्क्स की पुस्तक पूंजीवाद की कड़ी आलोचना है। तो कीन्स की पुस्तक प्रतिष्ठित निबन्धवाद की जनों पर गहरा प्रहार है।

इस पुस्तक में आर्थिक विषयों पर अनेक महत्वपूर्ण विचार सम्मिलित हैं। कीन्स का प्रसिद्ध सिद्धांत रोजगार का तरलता अधिमान, व्यापार चक्र, गुणक–खाद्य उपयोग का मनोवैज्ञानिक नियम इत्यादि है।जिसने आर्थिक विचारधारा के क्षेत्र में एक नये युग का श्रीगणेश किया है।

विस्तृत अध्ययन के लिए आर्थिक विचारों का ..............................की पुस्तकों का अध्ययन किया जा सकता है।

## 2.15 बोध प्रश्न

1. कीन्स के अर्थशास्त्र की प्रवृत्ति कैसी है?
2. कीन्स ने किस आधार पवर क्लासिकल सिद्धांत की आलोचना की?
3. प्रभावपूर्ण मांग से आप क्या समझते हैं?
4. कीन्स के तरलता पसंदगी सिद्धांत को संक्षेप में समझाइए।
5. कीन्स के मुख्य सिद्धांतों की व्याख्या कीजिए।

## 2.16 संदर्भ ग्रन्थ सूची / उपयोग पुस्तकें–

आर्थिक विचारों का साहित्य–प्रो0 सी पन्त
History of Economic Thought – V.C. Sinha
History of Economic Thought – T.N. Hajela
J.A. Shumpts – Ten Great Economist

# इकाई–03
# शुम्पीटर–साहसी की भूमिका व नव–प्रवर्तन, विकास सिद्धान्त

**3 : 0 उद्देश्य**

**3 : 1 प्रस्तावना**

**3 : 2 जोसेफ ए. शुम्पीटर**

**3 : 3 उद्यमी की भूमिका**

**3 : 4 नवप्रवर्तन का सिद्धांत**

**3 : 5 पूंजीवाद और समाजवाद**

**3 : 6 शुम्पीटर का आर्थिक दृष्टिकोण**

**3 : 6 : 1 आर्थिक विकास का सिद्धान्त**

**3 : 6 : 2 व्यापार–चक्र का सिद्धान्त**

**3 : 7 सारांश :–**

**3 : 8 शब्दावली–**

**3 : 9 बोध प्रश्न–**

**3 : 10 उपयोगी पुस्तकें–**

## 3 : 0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई अध्ययन के बाद शिक्षाथी यह समझ सकेंगें कि–

- उद्यमी एवं नवप्रवर्तन का अर्थ क्या है।
- व्यापार–चक्र के सिद्धांत को समझ सकेंगें।
- शुम्पीटर के सामान्य–जीवन परिचय को पढ़ सकेंगें।
- नवप्रवर्तन के सिद्धांत को समझ सकेंगें।

## 3 : 1 प्रस्तावना

आधुनिक अर्थशास्त्रियों की श्रेणी में जोसेफ ए० शुम्पीटर का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। शुम्पीटर की अध्ययन प्रणाली समाष्टि विश्लेषण पर आधारित थी अर्थशास्त्री होते हुये भी शुम्पीटर का सामाजिक दर्शन के प्रति बहुत ही रूचि थी इस दृष्टिकोण से हम उन्हे एक, समाजशास्त्री विद्वान भी

कह सकते है। जहाँ तक शुम्पीटर के आर्थिक विकास के सिद्धांत की बात है। इसके लिए वह अद्यमकर्ता की श्रेय देता है। उसके अनुसार उद्यमकर्ता को नवप्रवर्तन के कारण आर्थिक विकास होता है। शुम्पीटर विकास क्रम को एक स्थिर अवस्था से प्रारम्भ करता है। जिसमें प्रतियोगिता पायी जाती है। इस अवस्था में निवेश नहीं होते और लाभ की दर शून्य होती है। ऐसी ही दशा में उद्यमी नव–प्रवर्तन का सूत्रपात करते है। और उन्हें लाभ प्राप्त होने लगता है। नवप्रवर्तन के साथ आर्थिक विकास प्रारम्भ होता है। प्रस्तुत इकाई में शुम्पीटर के उद्यमी, नवप्रवर्तन एक विकास के सिद्धांतों का एक परिध्यात्मक अध्ययन करेगें।

## 3 : 2 जोसेफ ए. शुम्पीटर

### जीवन–परिचय

शुम्पीटर का जन्म 1883 में आस्ट्रिया के ट्रीश नामक स्थान पर हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के बाद शुम्पीटर ने 1901 में वियेना विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया था उसने वियेना से वकालत की परीक्षा पास की और कुछ समय तक वकील का भी कार्य किया, परन्तु उसका मन आर्थिक समस्याओं में ही लगा रहता था। कुछ समय बाद वकालत का पेशा छोड़क रवह अर्थशास्त्र के अध्ययन में जुट गया। अध्ययन की समाप्ति के बाद वह जेरनोविज विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र का प्रोफेसर नियुक्त हो गया। वह वहाँ अधिक समय नहीं रहा, क्योंकि 1925 में उसकी नियुक्ति बॉन विश्वविद्यालय में आचार्य के पद पर हो गयी। इस पद पर वह 7 वर्ष तक रहा। तत्पश्चात् 1932 में उसकी नियुक्ति अमेरिका के हार्वर्ड विश्वविद्यालय में आचार्य के पद पर हो गयी और वह उस पद पर जीवनपर्यन्त बना रहा।

शुम्पीटर ने प्रारम्भ में मार्क्सवादी दर्शन और समाजवादी आन्दोलन का गहन अध्ययन किया था। उसके आर्थिक विचारों पर प्रमुख प्रभाव वालरस, फिशर, क्लार्क, वीजर, तथा बॉम बावर्क का पड़ा। वह वालरस से सर्वाधिक प्रभावित था। उसका विचार था कि वालरस के "सामान्य सन्तुलन" के विचार के अध्ययन के बिना कोई भी अच्छा सैद्धान्तिक विश्लेषण नहीं किया जा सकता है।

शुम्पीटर ने अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए आगमन तथा निगमन, दोनों ही प्रणालियों की सहायता ली है। परन्तु वह यह भी मानता है कि कुछ आर्थिक क्षेत्रों में केवल निगमन प्रणाली ही महत्वपूर्ण कार्य कर सकती है। उदाहरणार्थ, मूल्य विश्लेषण के सिद्धान्त में शुम्पीटर ऐतिहासिक अध्ययन–प्रणाली का भी प्रयोग करता है। व्यापार–चक्रों के अध्ययन में उसने सांख्यिकी का भरपूर उपयोग किया है।

शुम्पीटर ने अनेक आर्थिक विषयों पर लिखा। उसकी अध्ययन–प्रणाली समष्टि विश्लेषण पर आधारित थी। उसकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित है :

## 3 : 3 उद्यमी की भूमिका

आर्थिक विकास में शुम्पीटर के अनुसार, उद्यमी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नवाचारों और आर्थिक गतिविधि का विस्फोट उद्यमी का था। नवप्रवर्तन में एक नई वस्तु, नई वस्तु का परिचय शामिल है उत्पादन की विधि, नये बाजार का खुलना, खोज कच्चे माल या अर्थ–निर्मित माल की आपूर्ति का नया स्रोत माल और एक उद्योग मेंएक नए संगठन की शुरूआत। जोखिम और अनिश्चिता से भरी दुनिया, केवल अपवादस्वरूप उद्यमी नवाचारों को पेश करके सफल होते हैं। एक नवप्रवर्तनशील उद्यमी के पीछे प्रेरक कारक लाभ था इस प्रकार उद्यमी ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई आर्थिक विकास की दर निर्धारित करना। उनकी अनुपस्थिति में, विकास दर धीमी होना निश्चित है।

## 3 : 4 नवप्रवर्तन का सिद्धांत

शुम्पीटर ने अपनी स्वयं की प्रणाली विकसित की जिसमें उन्होंने पृथ्वी पर होने वाले विभिन्न परिवर्तनों के प्रभावों का विश्लेषण किया। उत्पादन की एक नई तकनीक का परिचय। अपनेक प्रारंभिक मॉडल में, शुम्पीटर ने सामान्य संतुलन सिद्धांत से लाभ और ब्याज को हटा दिया। उन्होंने माना कि सभी मूल्य मांग द्वारा बनाए गए थे और सभी लागत अवसर लागत थी और चूंकि कोर्ठ अधिशेष नहीं था, इसलिए कोई लाभ नहीं था। ब्याज उत्पन्न नहीं होगा क्योंकि उद्यमी को भविष्य का पूरा ज्ञान था। फिर उन्होंने आर्थिक प्रणाली के कामकाज पर नवाचारों के प्रभावों का अध्ययन किया। उन्होंने नवाचार को "किसी आविष्कार के आर्थिक उपयोग में परिचय" के रूप में परिभाषित किया। नवाचार की शुरूआत के बाद, लागत प्रतिस्पर्धी स्तर से नीचे गिर जाती है और लाभ दिखाई देता है। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि लाभ केवल एक गतिशील समाज में उत्पन्न होता है। फिर शुम्पीटर ने व्यवसाय चक्रों की दीर्घकालिक प्रक्रिओं का विश्लेषण करना शुरू किया। लंबे समय में, समृद्धि और मुद्रस्फीति ने नवाचारों की शुरूआत की क्योंकि पूंजी प्रचुर मात्रा में थी। ये नवाचार लाभ की उम्मीद पर निर्भर थे और ऋण सृजन द्वारा वित्तपोषित थे। शुम्पीटर के अनुसार, नवप्रवर्तक ने बैंक से पैसा उधार लिया और दूसरों को पछाड़ने के लिए बाजार में चला गया। अन्य उद्यमी तब तक उसका अनुसरण करते रहे जब तक कि एक नया संतुलन नहीं बन गया। शुम्पीटर का मॉडल नवाचारों द्वारा पेश किए गए आर्थिक परिवर्तनों तक सीमित है। हालांकि, शुम्पीटर ने आर्थिक परिवर्तनों के लिए विभिन्न कारणों के अंतर–संबंध का विश्लेषण नहीं किया। शुम्पीटर का सिद्धान्त व्यापक नहीं है क्योंकि उन्होंने सार्वजनिक नीति और आर्थिक परिवर्तन के बीच संबंधों का विश्लेषण नहीं किया। इसके अलावा, उन्होंने प्रतिस्पर्धा की डिग्री और उसके प्रभावों को ध्यान में नहीं रखा क्योंकि उन्होंने पूर्ण प्रतिस्पर्धा की स्थिति मान ली थी। उन्होंने व्यक्तिगत फर्म के दृष्टिकोण से नवाचारों द्वारा पेश किए गए आर्थिक परिवर्तनों का भी अध्ययन नहीं किया।

जोसेफ ए. शुम्पीटर ने व्यापार चक्रों का नवाचार सिद्धांत विकसित किया है। एक नवाचार में एक नए उत्पाद की खोज, एक नए बाजार का उद्घाटन, एक उद्योग का पुनर्गठन और उत्पादन की एक नई विधि का विकास शामिल है। ये नवाचार उत्पादन की लागत को कम कर सकते हैं और मांग वक्र को बदल सकते हैं। इस प्रकार नवाचार परिवर्तन ला सकते हैं आर्थिक स्थिति में, मान लीजिए, पूर्ण रोजगार स्तर पर, एक नए उत्पाद के रूप में एक नवाचार पेश किया गया है। नवाचार को बैंक ऋण द्वारा वित्तपोषित किया जाता है। चूंकि पहले से ही पूर्ण रोजगार है, इसलिए नए उत्पाद के निर्माण के लिए उत्पादन के कारकों को दूसरों से वापस लेना पड़ता है। इसलिए, उत्पादन के कारकों के लिए प्रतिस्पर्धा के कारण लागत बढ़ सकती है, जिससे कीमत में वृद्धि हो सकती है। जब नया उत्पाद सफल हो जाता है, तो अन्य उद्यमी भी इसी तरह के उत्पाद बनाएंगे। इसका परिणाम संचयी विस्तार और समृद्धि होगा। जब नवाचार को कई लोगों द्वारा अपनाया जाता है, तो असाधारण लाभ प्रतिस्पर्धा से दूर हो जाएंगे। घाटे में चल रही फर्में व्यवसाय से बाहर हो जाएंगी। रोजगार, उत्पादन और आय में गिरावट के परिणामस्वरूप अवसाद होता है।

शुम्पीटर के सिद्धांत की आलोचना निम्नलिखित आधारों पर की गई है। सबसे पहले, शुम्पीटर का सिद्धांत दो मान्यताओं पर आधारित है, अर्थात् पूर्ण रोजगार और नवाचार को बैंकों द्वक्षरा वित्तपोषित किया जा रहा है। लेकिन पूर्ण रोजगार एक अवास्तविक मान्यता है, क्योंकि दुनिया के किसी भी देश ने पूर्ण रोजगार हासिल नहीं किया है। इसके आलावा नवाचार को आमतौर पर प्रवर्तकों द्वारा वित्तपोषित किया जाता है न कि बैंकों द्वारा। दूसरे, नवाचार व्यापार चक्र का एकमात्र कारण नहीं है। ऐसे कई अन्य कारण हैं जिनका शुम्पीटर ने विश्लेषण नहीं किया है। विस्तृत अध्ययन के लिये देखें। आर्थिक विचारों का इतिहास, डा. एम०एल० झिंमन।

## पूंजी

शुम्पीटर ने पूंजी को ठोस वस्तुओं से नहीं पहचाना; बल्कि इसे क्रम शक्ति के कोष का प्रतिनिधत्व करने वाले एक अलग एजेंट या कारक के रूप में माना। इस संबंध में वे बोहम–बावेर्क और एफ.ए. वॉन हायेक द्वारा विकसित आर्थिक विचारों से अलग हो गए। पूंजी तभी महत्वपूर्ण हो गई जब आर्थिक विकास हुआ। इसने आर्थिक विकास की प्रक्रिया के दौरान ब्याज के उद्भव की व्याख्या की। ब्याज स्थिर अवस्था में उत्पन्न नहीं हुआ और इसलिए यह गतिशील विश्लेषण का एक पहलू था। पूंजी नवाचार के तहत अर्जित नई उत्पादक शक्तियों के लिए चुकाई गई कीमत थी। यह मुद्रा बाजार में पैदा हुई जो आर्थिक विकास का एक निर्माण था। (विस्तृत अध्ययन के लिए आर्थिक विकास एवं नियोजन– एसपी सिंह) देखें। **स्वबोध प्रश्न** –उद्यमी एवं नवप्रवर्तन का क्या अर्थ है।

## 3 : 5 पूंजीवाद और समाजवाद

शुम्पीटर मार्क्स से सहमत थे कि पूंजीवाद अपने भीतरी अंतर्विरोधों के कारण अपने विनाश के बीज बो रहा है। पूंजीवाद अपनी ही उपलब्धियों से नष्ट हो गया। शुम्पीटर को पूंजीवाद की संभावनाओं पर असीम विश्वास था, लेकिन वह मार्क्सवादी तरीके से विश्वास करते थे। पूंजीवाद की सफलता ही उसके अंतिम पतन के बीज बोएगी। पूंजीवाद को आर्थिक बाधाएं नहीं, बल्कि सामाजिक कारक कमजोर करते हैं। शुम्पीटर के अनुसार, औद्योगिक ढांचे के विनाश, उद्यमशीलता के कार्य के क्षय और संरक्षण करने वाले राजनीतिक ढांचे के विघटन के कारण पूंजीवाद की आर्थिक और सामाजिक नींव ढह गई। इस प्रकार नवाचार एक अवैयक्तिक नियमित गतिविधि में बदल गया। व्यापार की एकाग्रता और एकाधिकार के विकास ने निजी संपत्ति और अनुबंध की स्वतंत्रता की संस्थाओं को नष्ट कर दिया। पूंजीवाद की रक्षा करने वाला सामाजिक वर्ग भी अपनी राजनीतिक शक्ति खो बैठा और स्थापित व्यापार और उद्योग का समर्थन करने के लिए तैयार नहीं रहा। शिक्षित बेरोजगार 'संपन्न' पूंजीवादी वर्ग के खिलाफ़ लड़ने के लिए खुद को संगठित किया और बुद्धिजीवियों ने नेतृत्व प्रदान किया। इन सभी नई ताकतों ने पूंजीवाद के क्रमिक पतन को बढ़ावा दिया और समाजवाद की ओर आंदोलन को मजबूत किया। पूंजीवाद इस नए माहौल में काम नहीं कर सका।

सेलिगमैन के शब्दों में निष्कर्ष निकालने के लिए कि शुम्पीटर कोई सुधार नहीं थे। उन्हें सार्वजनिक नीति में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वे न तो मार्क्सवादी थे और न ही समाजवादी। इसके बजाय वे एक वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक अन्वेषक थे, जिनका कोई खास स्वार्थ नहीं था। वे किसी व्यक्ति के शिष्य नहीं थे, और उन्होंने कोई स्कूल भी नहीं खोला। शुम्पीटर के पूंजीवाद, समाजवाद और लोकतंत्र की समीक्षा में जोन रॉबिन्सन ने लिखा, "प्रोफेसर शुम्पीटर, जैसा कि कई त्वरित वाक्यांशों से पता चलता है, समाजवाद के लिए बहुत कम प्यार करते हैं, और समाजवादियों के लिए बिल्कुल भी नहीं। उनकी स्वाभाविक सहानुभूति विस्तारशील पूंजीवाद के वीर युग के साथ है। लेकिन फिर भी वे पूंजीवाद को बर्बाद और समाजवाद को अपरिहार्य मानते हैं।"

एक अर्थशास्त्री के रूप में, शुम्पीटर एक अद्वितीय स्थान रखते हैं। उन्होंने कोई स्कूल नहीं खोला और उनके अनुयायी भी मुश्किल से ही थे। वे अपने आप में एक अलग ही वर्ग थे। अर्थशास्त्र की सभी शाखाओं पर उनकी महारत थी। वे अपने विचारों और शैली में स्वतंत्र थे। विचारों और अभिव्यक्ति की मौलिकता के बावजूद, उनक`लेखन में अस्पष्टता और सुगंगति की कमी है। "उनके दिमाग की जटिलता, विविधता और सार्वभौमिकता का नतीजा यह हुआ कि वे अपने विचारों को पूरी तरह से एकीकृत नहीं कर पाए", और यही कारण है कि वे वह स्थान हासिल नहीं कर पाए जो उनके समकालीनों, खासकर कीन्स के पास था। स्वबोध प्रश्न– पूँजीवाद और समाजवाद पर शुम्पीटर का दृष्टिकोण क्या था।

## 3 : 6 शुम्पीटर का आर्थिक दृष्टिकोण

### 3 : 6 : 1 आर्थिक विकास का सिद्धान्त

अर्थशास्त्री होते हुए भी शुम्पीटर का सामाजिक दर्शन के प्रति बहुत गहरा लगाव था। इस दृष्टि के हम उसे एक समाजशास्त्री विद्वान कह सकते हैं। इसी सन्दर्भ में उसने अपने विचारों को विकसित किया है। जहाँ तक उसके आर्थिक विकास के सिद्धान्त की बात है, इसके लिए वह उद्यमकर्ता को श्रेय देता है। उसके अनुसार, उद्यमकर्ता होता है। उद्यमकर्ता नयी–नयी वस्तुओं का निर्माण करते हैं, नये बाजार व नयी तकनीक की खेल करते हैं, उत्पादन के नये–नये साधनों की खोज करके उत्पादन प्रणाली में महत्वपूर्ण परिवर्तन ला देते हैं। उनकी यह क्रिया सन्तुलन को विचलित कर देती है और इस प्रकार स्थायी सन्तुलन हमेशा विचलित होता रहता है। कुल मिलाकर ये सब क्रियाएँ आर्थिक विकास को जन्म देती हैं।

शुम्पीटर विकास–क्रम को एक स्थिर अवस्था से प्रारम्भ करता है जिसमें प्रतियोगिता पायी जाती है। इस अवस्था में विनियोग नहीं होते हैं और लाभ की दर शून्य होती है। परन्तु ऐसी दशा में उद्यमी नवीन योजनाओं का सूत्रपात करते हैं, और उन्हें लाभ प्राप्त होने लगता है। उनके लाभ को देखकर नये–नये साहसी भी उत्पादन के श्रेत्र में प्रवेश करते हैं और उनके साथ प्रतियोगिता करने लगते हैं। प्रकतियोगिता के कारण लाभ समाप्त हो जाता है। फिर से कुछ नये साहसी नव–प्रवर्तन सूत्रपात करते हैं और फिर पुरानी क्रिया चालू होने लगती है। इस प्रकार, यह क्रिया और प्रतिक्रिया का क्रम चालू रहता है।

नव–प्रवर्तन के साथ आर्थिक विकास प्रारम्भ होता है और वस्तुओं के मूल्य बढ़ने लगते हैं, लोगों की आय बढ़ने लगती है। व्यापार का संचालन करने के लिए बैंकों से अधिक ऋण लिया जाने लगता है, विनिपयोग तथा सट्टे की की क्रियाएँ बढ़नी प्रारम्भ हो जाती हैं। जब यह क्रिया चरम बिन्दु पर पहुँच जाती है तब इसके विपरीत क्रिया प्रारम्भ होती है। लाभ की दर शून्य हो जाती है। समाज में मुद्रा की कमी होने लगती है, लोग बैंकों से ऋण नहीं लेते हैं, बल्कि बैंकों को ऋणों का भुगतान होने लगता है। कुछ मिलाकर मुद्र संकुचन की जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। मुद्रा संकुचन के कारण जब अर्थव्यवस्था पूरी तरह से प्रभावित हो जाती है, तब फिर से नव–प्रवर्तन का समय प्रारम्भ होने लगता है और 'वृत्ताकार प्रवाह' चालू रहता है।

### 3 : 6 : 2 व्यापार–चक्र का सिद्धान्त

शुम्पीटर का व्यापार–चक्र का सिद्धान्त आर्थिक विकास के सिद्धान्त का ही एक भाग है। उसके अनुसार, अर्थव्यवस्था के उतार–चढ़ाव उद्यमकर्ताओं के कारण आते रहते हैं। हम बता चुके हैं कि उद्यमकर्ता लाभ की भावना से प्रेरित होकर नव–प्रवर्तन की योजना को प्रारम्भ करते हैं। उनकी ही प्रेरणा से बैंक अत्यधिक साख का सृजन करते हैं, लोग ऋण लेने के लिए आकर्षित होते हैं और ब्याज की दर बढ़ने लगती है। व्यापार का विकास होने लगता है तथा सेवायोजक श्रमिकों को ऊँची मजदूरी देकर काम की ओर आकर्षित करते हैं। उत्पादन लागत के बढ़ जाने से साहसियों के लाभ में कमी आती है। इसके बाद अवसाद काल आना आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार, नव प्रवर्तन साम्य की दशा को भंग कर देता है, जिससे अर्थव्यवस्था में समय–समय पर उतार–चढ़ाव आते रहते हैं जो व्यापार–चक्रों को जन्म देते हैं।

मशीनें ही मशीनें दिखायी देने लगती हैं, जो मानव–शक्ति का शोषण और बेरोजगारी को जन्म देती हैं। अंशधारी प्रबन्ध से दूर होते हैं और धीरे–धीरे व्यक्तिगत सम्पत्ति का लोप होने लगता है जो पूंजीवादी

व्यवस्था को समाप्त कर देता है। शुम्पीटर के अनुसार, पूंजीवादी व्यवस्था की समाप्ति के बाद समाजवाद का आना अवश्यम्भावी है।

शुम्पीटर पूंजीवादी व्यवस्था को बुरा नहीं समझता है। उसका विचार था कि पूंजीवादी व्यवस्था में नव–प्रवर्तनों को पूरी छूट होती है, जिससे उत्पादन की नवीनतम प्रणालियाँ विकसित होती हैं, और उपभोक्ता को मनचाही वस्तुएँ भी उपलब्ध होने लगती हैं। उसके विचार से यदि पूँजीवादी व्यवस्था में हमेशा नव–प्रवर्तन होते रहें, तो पूंजीवाद हमेशा जीवित रह सकता है। परन्तु शुम्पीटर का कहना है कि पूंजीवाद में ऐसा करने की शक्ति नहीं रह गयी है। अतः पूंजीवाद अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता है।

शुम्पीटर पूंजीवाद की समाप्ति के लिए बौद्धिक वातावरण को भी उत्तरदायी समझता है। पूंजीवाद तब तक समाप्त नहीं हो सकता है, जब तक कि उसके प्रति शत्रुता उत्पन्न नहीं हो जाती है; और यह शत्रुता बुद्धिजीवी ही पैदा कर सकते हैं। पूंजीवाद श्रम–आन्दोलन को जन्म देता है जिसका प्रतिनिधित्व बुद्धिजीवी करते हैं। इस प्रकार, पूंजीवाद की समाप्ति में एक नहीं, अनेक कारण सहायता प्रदान करते हैं।

शुम्पीटर का मानना था कि आर्थिक विज्ञान के अध्ययन के लिए आगमनात्मक और निगमनात्मक दोनों ही विधियाँ आवश्यक हैं। निगमनात्मक विधि मूल्य सिद्धांत में प्रभावी थी और आगमनात्मक विधि आर्थिक संगठन के अध्ययन और विश्लेषण के लिए उपयुक्त थी। उन्होंने व्यापार चक्रों के अपने अध्ययन में सांख्यिकीय विधि का अनुसरण किया और बाद में उन्हें एहसास हुआ कि यह उपयोगी नहीं थी।उनके लिए ऐतिहासिक विधि सबसे महत्वपूर्ण थी। साथ ही, उन्होंने अर्थशास्त्र के विज्ञान में गणित को एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में स्वीकार किया। विस्तृत अध्ययन के लिये आर्थिक विचारों का इतिहास–एम०एल०सेठ। पुस्तक का अध्ययन किया जा सकता है।

**3:7 सारांश :–**

आधुनिक अर्थशास्त्रियों की अग्रणी पंक्ति में जोसेफ ए० शुम्पीटर का नाम आता है। शुम्पीटर के आर्थिक विकास सिद्धांत में मुख्य श्रेय उद्यमी को जाता है। क्योंकि शुम्पीटर के अनुसार उद्यमी के नवप्रवर्तन या नवाचार के कारण ही आर्थिक विकास होता है। इस प्रकार आर्थिक विकास का प्रमुख नायक उद्यमकर्ता होता है। उद्यमकर्ता नयी–नयी वस्तुओं का निर्माण करते हैं। नये–बाजार व नयी तकनीक की खोज करते है। उत्पादन प्रणाली में महत्वपूर्ण परिवर्तन ला देते है। उनकी यह क्रिया संतुलन में परिवर्तन कर देती है। इस प्रकार स्थायी संतुलन हमेशा विचलित होता रहता है। ये सब क्रियायें आर्थिक विकास को जन्म देती है।

शुम्पीटर का व्यापार–चक्र का सिद्धांत भी आर्थिक विकास के सिद्धांत का एक भाग ही है। उसके अनुसार अर्थ–व्यवस्था के उतार–चढ़ाव उद्यमकर्ताओं के कारण आते रहते है। उद्यमकर्ता लाभ की भावना से प्रेरित होकर नव–प्रवर्तन की योजना को प्रारम्भ करते हैं। व्यापार का विकास होने लगता है। तथा सेवायोजक श्रमिकों को ऊँची मजदूरी देकर काम की ओर आकर्षित करते है। उत्पादन लागत बढ़ जाने के कारण साहसियों के लाभ में कमी आती है। इसके बाद अवजाद का समय आना प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार नवप्रवर्तन संतुलन की दशा को विचलित कर देता है। जिससे अर्थव्यवस्था में समय–समय पर उतार–चढ़ाव आते रहते हैं। जो व्यापार–चक्रों को जन्म देते है।

## 3 : 8 शब्दावली–

उद्यमी, नवप्रवर्तन पूँजीवाद व्यापार–चक्र

उद्यमी–व व्यवसायी होते है। जो जोखिम उठाकर अपनी सफलता पाते है।

नवप्रवर्तन–किसी उद्यम में थोड़ा या बहुत बड़ा बदलाव लाना जैसे–नई विधि, नई

तकनीक, नई कार्य पद्धति इत्यादि।

पूँजीवाद–पूँजीवाद एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था हो जिसमें निजी व्यक्ति या व्यवसाय पूँजीगत वस्तुओं के मालिक होते है।

व्यापार–चक्र– आर्थिक गति विधियों में उतार–चढ़ाव को संदर्भित करता है। विशेष रूप

से रोजगार, उत्पादन, आय, कीमतें लाभ इत्यादि।

## 3 : 9 बोध प्रश्न–

- शुम्पीटर के विकास मॉडल की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।
- शुम्पीटर के आर्थिक विकास में नव–प्रवर्तन के योगदान की व्याख्या किस प्रकार की है।
- शुम्पीटर के विकास सिद्धांत में साहसी की भूमिका समझाइए।
- Schumpeter- History of Economic Analysis.

## 3 : 10 उपयोगी पुस्तकें–


- आर्थिक विकास एवं नियोजन–एस०पी०सिंह एस०चन्द्र पब्लि०।
- आर्थिक विचारों का इतिहास–जे०सी०पंत एवं एम०एल०सेठ एल एकृ०एन०पब्कि०।
- आर्थिक विचारों का इतिहास–एम०एल०सिंह।
- नियोजन और आर्थिक विकास– डा०वी०सी० सिंह डा० पुष्पा सिन्हा।
- A History of Economics Thought –V. Lokanathan (S.Chand) (Pub).
- V.C. Sinha- History of Economic Thought.
- T.N. Hajela- History of Economic Thought.
- J.A. Shumptor- Ten Great Economists.
- B.N. Ganguli- Indian Economic Thought.
- J.C. Kumarappa- Gandhian Economic Thought.
- P.K. Gopal Krishnan- Development of Ideas in India.

# इकाई–04
# नव क्लासिकी विचारक– मिल्टन फ्रीडमैन

**4:0 उद्देश्यः–**

**4:1 प्रस्तावना**

**4:2 मुद्रा का परिमाण सिद्धांत**

**4:3 फ्रीडमैन का मुद्रा मांग सिद्धांत**

**4:4 मिल्टन फ्रीडमैन और एल.जे. सैवेज परिकल्पना**

**4:5 स्थायी आय उपकल्पना**

**4:6 सारांशः–**

**4:7 शब्दावलीः–**

**4:8 बोध प्रश्न–**

**4:9 उपयोगी पुस्तके–**

## 4:0 उद्देश्यः–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त शिक्षार्थी–

- फ्रीडमैन के जीवन–परिचय के विषय में समण सकेंगे।
- आधुनिक मुद्रा परिणाम सिद्धांत के प्रमुख तत्वों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- स्थायी आय परिकल्पना को समझ सकेंगे।
- मुद्रा मांग सिद्धांत की अवधारणा को समझ सकेंगे।

## 4:1 प्रस्तावना

मिल्टन फ्रीडमैन 20वीं शताब्दी के प्रमुख अर्थशास्त्री थे जो कि खुले बाजार का समर्थन करते थे। कैयिटिलिडम एंड फ्रीडम में फ्रीडमैन ने बाजार की अर्थव्यवस्था के अध्ययन को परदे के पीछे से निकालकर जमीनी दृष्टिकर्ता के साथ पेश किया। फ्रीडमैन का काफी काम मुख्य रूप से मूल्य सिद्धांत पर ही है। जो बताती है कि व्यक्तिगत बाजारों में मूल्य कैसे निर्धारित होते हैं। लेकिन फ्रीडमैन मौद्रीकरण के लिये जाने जाते है।

कीन्स और उस समय के बहुत से प्रसिद्ध संस्थानों को चुनौती देते हुये फ्रीडमैन ने मुद्रा के मात्रा संबंधी सिद्धांत को प्रमाणित किया। फ्रीडमैन ने बताया कि लंबी अवधि में बढ़ा हुआ मौद्रिक विकास मूल्यों को बढ़ाता है। पर उत्पादन पर इसका थोड़ा असर होता है। या फिर इसका असर नगण्य रहता है। कम अवधि में उनका तर्क था कि मुद्रा आपूर्ति में बढ़त की वजह से रोजभार और उत्पादन बढ़ते हैं और मुद्रा आपूर्ति में गिरावट से विपरीत असर होता है। हालांकि कई अर्थशास्त्री फ्रीडमैन के मौद्रिक विचारों से असहमत थे।

फ्रीडमैन एक प्रसिद्ध लेखक और मुख्य रूढ़िवादी विचारक है। उन्हें मौद्रिक अर्थशास्त्र में उनके योगदान के लिए जाना जाता है। जो यह मानता है कि कर और राजकोषिय नीति के बजाय मौद्रिक नीति मुद्रास्फीती को नियंत्रित्र करने का सबसे प्रभावी साधन है।

प्रस्तुत इकाई में हम फ्रीडमैन के जीवन के विषय में एवं अर्थशास्त्र में (विशेषकर मौद्रिक अर्थशास्त्र) में उनके योगदान का अध्ययन करेगें।

**4:2 मुद्रा का परिमाण सिद्धांत**

1956 में प्रकाशित अपने निबंध "द क्वांटिटी थ्योरी ऑफ मनी–ए रीस्टेटमेंट" में फ्रीडमैन ने मुद्रा के पुराने परिमाण सिद्धांत को दोहराया। अपने रीस्टेटमेंट में उन्होंने कहा कि "मुद्रा महत्व रखता है"।

फ्रीडमैन के आधुनिक मात्रा सिद्धांत को बेहतर ढंग से समझने और उसकी सराहना करने के लिए, फ्रीडमैन की प्रमुख मान्यताओं और विश्वासों को बताना आवश्यक है।

सबसे पहले फ्रीडमैन कहते हैं कि उनका मात्रा सिद्धांत धन की मांग का सिद्धांत है न कि उत्पादन, आय या कीमतों का सिद्धांत।

दूसरे, फ्राइडमैन पैसे की मांग के दो प्रकारों के बीच अंतर करते हैं। पहले प्रकार में, लेन–देन उद्देश्यों के लिए पैसे की मांग की जाती है। यह विनियम के माध्यम से रूपव में कार्य करता है। पैसे का यह दृष्टिकोण पुराने मात्रा सिद्धांत के समान ही है। लेकिन दूसरे प्रकार में, पैसे की मांग इसलिए की जाती है क्योंकि इसे एक परिसंपत्ति के रूप में माना जाता है। मुद्रा विनिमय के माध्यम से अधिक बुनियादी है। यह क्रय शक्ति का एक अस्थायी निवास है और इसलिए एक परिसंपत्ति या धन का एक हिस्सा है। फ्राइडमैन धन की मांग को धन सिद्धांत के एक हिस्से के रूप में मानते हैं।

तीसरा, फ्रीडमैन पैसे की मांग को किसी भी टिकाऊ उपभोक्ता वस्तु की मांग की तरह ही मानते हैं। पैसे की मांग 3 कारकों पर निर्भर करती हैः (ए) विभिन्न रूपों में रखी जाने वाली कुल संपत्ति (बी) इन विभिन्न परिसंपत्तियों से कीमत या रिटर्न और (सी) परिसंपत्ति धारकों की पसंद और प्रथमिकताएं। फ्रीडमैन पांच अलग–अलग रूपों पर विचार करते हैं जिनमें धन रखा जा सकता है अर्थात् पैसा (एम), बॉन्ड (बी), इक्विटी (ई), भौतिक गैर–मानव सामान (जी) और मानव पूंजी (एच)।

व्यापक अर्थ में, कुल संपत्ति में सभी प्रकार की "आय" शामिल होती है। "आय" से फ्राइडमैन का मतलब है "कुल नाममात्र स्थायी आय" जो कि आय से होने वाली औसत अपेक्षित आय है।

धन के धारक अपनी कुल संपत्ति को उसके विभिन्न रूपों में इस तरह से वितरित करते हैं कि उनसे अधिकतम उपयोगिता प्राप्त की जा सके। वे परिसंपत्तियों को इस तरह से वितरित करते हैं कि जिस दर पर वे एक प्रकार की संपत्ति को दूसरे के लिए प्रतिस्थापित कर सकते हैं वह उस दर के बराबर है जिस पर वे ऐसा करने के लिए तैयार हैं। तदनुसार, मानव पूंजी को छोड़कर विभिन्न परिसंपत्तियों को रखने की लागत को विभिन्न परिसंपत्तियों पर ब्याज दर और उनकी कीमतों में अपेक्षित परिवर्तन से मापा जा सकता है।

इस प्रकार फ्राइडमैंन कहते हैं कि चार कारके हैं जो पैसे की मांग को निर्धारित करते हैं। वे हैंः मूल्य स्तर, वास्तविक आय, ब्याज दर और मूल्य स्तर में वृद्धि की दर।

मुद्रा की मांग एकात्मक रूप से लोचदार होती है। मुद्रा की मांग और वास्तविक आय (वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन) के बीच संबंध भी प्रत्यक्ष होता है। लेकिन यह कीमत के मामले में आनुपातिक नहीं होता। इस प्रकार, जबकि मूल्य स्तर में परितर्वन मुद्रा की मांग में प्रत्यक्ष और आनुपातिक परिवर्तन का कारण बनता है, वास्तविक आय में परिवर्तन मुद्रा की मांग में प्रत्यक्ष लेकिन आनुपातिक से अधिक परिवर्तन पैसा करते हैं।

ब्याज दर और मूल्य स्तर में वृद्धि की दर नकदी शेष रखने की लागत का गठन करती है। यदि धन को नकदी के रूप में रखा जाता है, तो यह कोई आय अर्जित नहीं करता है। लेकिन यदि

उसी धन को उधार दिया जाता है, तो यह मालिक को ब्याज के रूप में कुछ आय अर्जित कर सकता है। ब्याज नकदी रखने की लागत है। उच्च ब्याज दर पर दधन की मांग कम होगी। दूसरी ओर, कम ब्याज दर धन की मांग में वृद्धि करती है। इस प्रकार ब्याज दर और धन की मांग के बीच एक व्युत्क्रम संबंध है।

मूल्य स्तर में वृद्धि की दर भी मुद्रा की मांग को प्रभावित करती है। मूल्य स्तर में वृद्धि की दर और मुद्रा की मांग के बीच विपरीत संबंध होता है। जब मूल्य स्तर उच्च दर से बढ़ता है, तो मुद्रा रखने की लागत बढ़ जाएगी। लोग कम नकदी शेष रखना चाहेंगे। मुद्रा की मांग में कमी आएगी। दूसरी ओर, जब मूलय स्तर कम दर से बढ़ता है, तो मुद्रा रखने की लागत बढ़ जाती है।

मुद्रा धारण क्षमता में कमी आएगी तथा मुद्रा की मांग बढ़ेगी। चौथा, फ्राइडमैन का मानना है कि धन के प्रत्येक रूप की अपनी विशेषताएं और अलग–अलग उपज या रिटर्न होता है। व्यापक अर्थ में धन में मुद्रा, मांग जमा और सावधि जमा शामिल हैं जो ब्याज देते हैं। धन धारक को सुविधा, सुरक्षा आदि के रूप में वास्तविक रिटर्न भी देता है जिसे कीमत (पी) के संदर्भ में मापा जाता है। जब मूल्य स्तर गिरता है, तो धन पर रिटर्न की दर सकारात्मक होती है क्योंकि धन का मूल्य बढ़ जाता है। जब मूल्य स्तर बढ़ता है, तो धन का मूल्य गिरता है और रिटर्न की दर नकारात्मक होती है। इस प्रकार फ्राइडमैन के मांग फ़ंक्शन में पी एक महत्वपूर्ण चर है।

बांड, इक्विटी और भौतिक परिसंपत्तियों पर रिटर्न की दर में वर्तमान में भुगतान की जाने वाली ब्याज दर और उनकी कीमतों में होने वाले परिवर्तन शामिल होते हैं।

जहाँ तक मानव संपदा का सवाल है, संस्थागत बाधाओं के कारण मानव संपदा को गैर–मानव संपदा में बदलने का मापन करना बहुत मुश्किल है। लेकिन गैर–मानव संपदा के लिए मानव संपदा को प्रतिस्थापित करने की कुछ संभावना है। फ्रीडमैन गैर–मानव संपदा से मानव संपदा के अनुपात या संपदा से आय के अनुपात को डब्लू कहते हैं। फ्रीडमैन के अनुसार, धन की मांग की आय लोच एकता से अधिक है।

फ्राइडमैन के आधुनकि मात्रा सिद्धांत में, मुद्रा की आपूर्ति मुद्रा की मांग से स्वतंत्र होती है। मौद्रिक अधिकारियों की कार्रवाइयों के कारण, मुद्रा की आपूर्ति में परिवर्तन होता है, जबकि मुद्रा की मांग कमोबेश स्थिर रहती है। इसका मतलब है कि लोगों के पास नकदी या बैंक जमा के रूप में जो धन होना चाहिए, वह कमोबेश उनकी स्थायी आय से तय होता है।

यदि केंद्रीय बैंक प्रतिभूतियाँ खरीदता है, तो केंद्रीय बैंक को प्रतिभूतियाँ बेचने वाले लोगों को पैसा मिलता है और इससे उनकी नकदी होल्डिंग में वृद्धि होती है। लोग इस अतिरिक्त धन को आंशिक रूप से उपभोक्ता वस्तुओं पर और आंशिक रूप से संपत्ति खरीदकर खर्च करेंगे। इस खर्च से उनकी नकदी शेष राशि कम हो जाएगी और साथ ही राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि होगी।

दूसरी ओर, जब केंद्रीय बैंक प्रतिभूतियाँ बेचता है, तो लोगों के पास स्थायी आय के सापेक्ष मुद्रा की मात्रा कम हो जाती है। इसलिए, वे आंशिक रूप से अपनी खपत कम करके और आंशिक रूप से अपनी संपत्ति बेचकर अपनी नकदी बढ़ाने की कोशिश करेंगे। इससे राष्ट्रीय आय कम हो जाएगी। इस प्रकार दोनों ही मामलों में मुद्रा की मांग स्थिर रहती है।

यदि मुद्रा की मांग दी गई है, तो व्यय और आय पर मुद्रा की आपूर्ति में परिवर्तन के प्रभावों की भविष्यवाणी करना संभव है। यदि अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार स्तर से कम है, तो मुद्रा की आपूर्ति में वृद्धि से व्यय, उत्पादन और रोजगार के स्तर में वृद्धि होती है। लेकिन यह केवल अल्पावधि में ही संभव है।

फ्रीडमैन के मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के रेखा चित्र से समझाया जा सकता है।

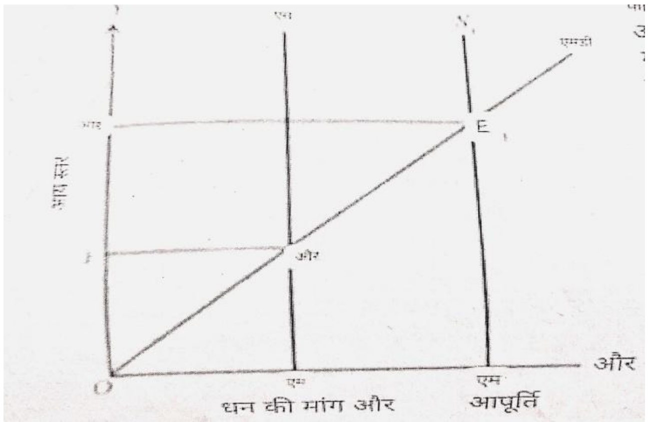


हालांकि, फ्राइडमैन ने अपने आधुनिक मात्रा सिद्धांत के माध्यम से आर्थिक गतिविधि में एक कारण कारक के रूप में धन की भूमिका में रूचि को पुनर्जीवित किया, फिर भी कई अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धांत के खिलाफ विवादास्पद मुद्दे उठाए। इस सिद्धांत के खिलाफ मुख्य आलोचनाएँ इस प्रकार हैं।

1. फ्रीडमैन की आलोचना पैसे की व्यापक परिभाषा के लिए की गई है, जिसमें न केवल मुद्रा और मांग जमा बल्कि सावधि जमा भी शामिल है। यह व्यापक परिभाषा पैसे की मांग पर ब्याज दर के प्रभाव को नजरअंदाज करती है। यदि सावधि जमा पर ब्याज दर बढ़ती है, तो उनकी मांग बढ़ जाती है। लेकिन मुद्रा और मांग जमा की मांग में गिरावट आती है। इसलिए ब्याज दर का कुल प्रभाव मुद्रा की मांग पर नगण्य होगा।
2. आलोचकों ने मौद्रिक परिवर्तन के वास्तविक आर्थिक परिवर्तन में संचरण के बारे में फ्रीडमैन के स्पष्टीकरण पर सवाल उठाए हैं। फ्रीडमैन के विश्लेषण में, एम में परिवर्तन पी में परिवर्तन, वास्तविक आय में गिरावट और उत्पादन और आय में परिवर्तन के रूप में पारित किया जाता है। लेकिन आालोचकों का तर्क है कि एम में परिवर्तन से पहले ब्याज दर में परिवर्तन होता है और फिर निवेश, रोजगार, उत्पादन, आय और कीमतों में परिवर्तन होता है।
3. फ्राइडमैन मानते हैं कि मुद्रा की आपूर्ति कीमत और आय में होने वाले परिवर्तनों से स्वतंत्र है। मुद्रा की आपूर्ति मौद्रिक अधिकारियों द्वारा बाह्म रूप से निर्धारित की जाती है। लेकिन तथ्य यह है कि मुद्रा की आपूर्ति अंतर्जात है।
4. आलोचकों का यह भी तर्क है कि जब आधुनिक अर्थव्यवस्था में मुद्रा की भूमिका गतिशील होती है, तो स्थिर मौद्रिक नीति के बारे मतें फ्रीडमैन के सुझावों को स्वीकार करना मुश्किल होता है। इसके अलावा मुद्रा आपूर्ति को नियमित और स्थिर दर से बढ़ावा भी मुश्किल होता है।
5. फ्राइडमैन के विश्लेषण में, मुद्रा आपूर्ति और जीएनपी के बीच सकारात्मक सहसंबंध मौजूद प्रतीत होता है। लेकिन कलडोर के अनुसार, ब्रिटेन में सबसे अच्छा सहसंबंध नकदी में भिन्नता और बाजार मूल्यों पर व्यक्तिगत उपभोग में भिन्नता के बीच पाया जाता है।
6. आलोचकों द्वारा आय की अवधारणा की भी आलोचना की जाती है। कीन्स और उनके अनुयायियों ने आय की अवधारणा का उपयोग चालू आय के अर्थ में किया। लेकिन फ्रीडमैन ने आय शब्द का उपयोग स्थायी आय के अर्थ में किया। लेकिन स्थायी आय को मापना और उसका परिमाण निर्धारित करना बहुत कठिन है।
7. पुनः, फ्राइडमैन की धन संबंधी अवधारणा अत्यधिक व्यापक और अस्पष्ट है तथा "मानव पूंजी" जैसी अवधारणाओं को मापना कठिन है।

उपरोक्त आलोचनाओं के बावजूद, जैसा कि एच.जी. जॉनसन कहते हैं, "फ्रीडमैन ने पूंजी सिद्धांत के मूल सिद्धांत को मौद्रिक सिद्धांत में लागू किया है– अर्थात पूंजी पर प्रतिफल और वर्तमान आय का मूल्य संभवतः कीन्स के सामान्य सिद्धांत के बाद से मौद्रिक सिद्धांत में सबसे महत्वपूर्ण विकास है। इसका सैद्धांतिक महत्व व्यवहार पर प्रभाव के रूप में धन और आय के वैचारिक एकीकरण में निहित है।"

**4:3 फ्रीडमैन का मुद्रा मांग सिद्धांत**

फ्रीडमैन का मुद्रा का मांग सिद्धान्त एक पूंजी सिद्धांत है, क्योंकि वह मुद्रा को परिसम्पत्ति अथवा पूंजी वस्तु मानता है। अंतिम सम्पत्तिधारकों की ओर से मुद्रा की मांग एक टिकऊ वस्तु के लिए मांग की तरह है।

अंतिम सम्पत्तिधारकों के लिए वास्तविक रूप में मुद्रा की मांग मुख्यतया निम्न चरों का फलन होने की संभावना हो सकती है।

**कुल सम्पत्ति–** एक समय पर व्यक्ति के पास जो विभिन्न सपरिसम्पत्तियां होती हैं, उन्हीं से कुल सम्पत्ति का गठन होता है। वास्तविक जीवन में कुल सम्पत्ति की गणना कठिन होती है, इसलिए फ्रीडमैन कहता है कि आय को कुल सम्पत्ति का सूचक मानना चाहिए। इसलिए उसने सम्पत्ति को स्थायी आय (Y) से प्रतिस्थापित किया।

**सम्पत्ति का मानव और गैर–मानव रूप में विभाजन–** कुल सम्पत्ति, मानवीय तथा गैर–मानवीय सम्पत्ति में रूपान्तरित करने में अनेक कानूनी तथा संस्थानिक बाधाएं होती है। ऐसा गैर–मानव सम्पत्ति को वर्तमान अर्जनों द्वारा खरीद कर अथवा गैर–मानव सम्पत्ति के प्रयोग से वित्त् प्रबन्धन द्वारा दक्षताएं प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है। अतः गैर–मानव सम्पत्ति के रूप में कुल सम्पत्ति का अंश एक अतिरिक्त महत्पूर्ण चर है। फ्रीडमैन गैर–मानव से मानव सम्पत्ति के अनुपात को अथवा सम्पत्ति से आय के अनुपात को W कहता है।

**मुद्रा को संग्रहीत करने की अवसर लागत–** मुद्रा को संग्रहीत करने की अवसर लागत दो बातों से प्रभावित होती है–

(अ) विभिन्न प्रकार की वैकल्पिक परिसम्पत्तियों जैसे बाण्डढ व शेयरों पर ब्याज की दर तथा,

(ब) कीमत स्तर में परिवर्तन की प्रत्याशित दर। वास्तव में ये दोनों ही कारक मुद्रा शेषों को रखने की लागत को प्रभावित करते हैं।

ब्याज दर में वृद्धि होती है अथवा सामान्य कीमत–स्तर में वृद्धि होती है (अर्थात् जब नकदी रखने की लागत में वृद्धि हो जाती है) तो व्यक्ति अपने पास नकदी की मात्रा कम रखकर अपने दायित्वों व खर्चों को पूरा करता है। इस प्रकार लोगों की तरलता पसंदगी घट जाती हैं। इसके विपरीत, जब ब्याज की दर कम हो जाती है अथवा कीमतों की वृद्धि दर में ह्रास होता है तो मुद्रा या नकदी रखने की लागत घट जाती है, जिसके परिणामस्वरूप तरलता पसंदगी बढ़ जाती है।

संक्षेप में मुद्रा की मांग और मुद्रा रखने की लागत में विपरीत सम्बन्ध होता है।

**अन्य चर–** आय के अतिरिक्त अन्य चर, मुद्रा की सेवाओं से संबंध उपयोगिता को प्रभावित कर सकते हैं, जो वास्तविक तरलता को निर्धारित करते हैं। तरलता के अतिरिक्त सम्पत्ति धारकों की रुचियां और अभिमान चर होते हैं। एक अन्य चर अंतिम सम्पत्तिधारकों द्वारा वर्तमान पूंजी वस्तुओं में व्यापार है। ये

चर सम्पत्तियों के अन्य प्रकारों के साथ मुद्रा के मांग फलन को भी निर्धारित करते हैं। ऐसे चरों को फ्रीडमैन (म्यू) का नाम देता है।

**विस्तृत अध्ययन के लिये मौद्रिक अर्थशास्त्र जे० बी० सिन्हा देखे।**

**फ्रीडमैन का मांग फलन**

उपलिखित मान्यताओं व समीकरण के आधार पर मिल्टन फ्रीडमैन मांग फलन के सिद्धान्त को निम्न प्रकार से निरूपित करता है–

$$\frac{Md}{P} = \mathrm{f}\,[\,\mathrm{W}, \mathrm{H}, \frac{\Delta P}{P}, \mathrm{rm}, \mathrm{rb}, \mathrm{rre}, \mathrm{U}]$$

**जहाँ**

Md= मुद्रा के नकद कोषों की मांग,

W= कुल सम्पत्ति,

H= गैर मानवीय सम्पत्ति का मानवीय सम्पत्ति के साथ अनुपात,

P= कीमत स्तर,

rm= मुद्रा से प्राप्त प्रतिफल की प्रत्याशित दर,

rb= प्रतिभूतियों के स्थिर मूल्यों पर प्राप्त प्रतिफल की प्रत्याशित दर (इसमें उनकी कीमतों की प्रत्याशित दर भी शामिल है।)

= वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन की प्रत्यांशित दर अर्थात् वास्तविक परिसम्पत्तियों के प्रतिफल की प्रत्याशित दर,

re= अंश पत्रों से प्राप्त प्रतिफल की प्रत्याशा,

U= आय के अलावा उन सभी कारकों को प्रदर्शित करता है जिनमें मुद्रा की उपयोगिता प्रभावित होती है। लेकिन व्यवहार में कुल सम्पत्ति के बारे में सही सूचनाएँ उपलब्ध नहीं होतीं। इसलिए कुल सम्पत्ति (W) के स्थान पर स्थायी आय (Y) की अवधारणा का प्रयोग किया जाता है। यदि उपरोक्त फलन में W के स्थान पर Y को प्रतिस्थापित किया जाये तो फलन निम्नलिखित रूप धारण करेगा–

$$\frac{Md}{P} = \mathrm{f}\,[\,\mathrm{W}, \mathrm{H}, \frac{\Delta P}{P}, \mathrm{rm}, \mathrm{rb}, \mathrm{rre}, \mathrm{U}]$$

यही मिल्टन फ्रीडमैन का फलन है जो कि मुद्रा की मांग को प्रदर्शित करता है।

उपर्युक्त समीकरण से स्पष्ट है कि वास्तविक मुद्रा शेषों को प्रभावित करने के **तीन प्रमुख कारण होते हैं–**

1. वास्तविक आय व सम्पत्ति का स्तर
2. नकद शेषों को रखने की अवसर लागत था

3. सम्पत्तिवानों की रुचियां व अधिमान। इन तीनों कारकों का मांग फलन में निरूपण किया गया है। **प्रथम कारक** से, फ्रीडमैन यह निरूपित करता है कि मुद्रा की मांग की आय **लोच** एक से अधिक है। दूसरे कारक पर विचार करते हुए फ्रीडमैन यह मानता है कि मुद्रा की मांग की ब्याज लोच नगण्य होगी। अतः इन सबसे फ्रीडमैन निम्न **निष्कर्षों** पर पहुँचता है–

1. विभिन्न परिसम्पत्तियों की प्रत्याशित प्रप्तियों में (प्रतिफलों) में वृद्धि होने से एक सम्पत्तिधारक की मुद्रा की मांग कम हो जाती है, और सम्पत्ति में वृद्धि से मुद्रा की मांग बढ़ जाती है।
2. सम्पत्ति के साथ मुद्रा की मांग का धनात्मक संबंध पाया जाता है। जब सम्पत्ति बढ़ती है तो इससे मुद्रा की मांग में वृद्धि होती है, क्योंकि लोग मुद्रा को अधिक धारण करते हैं।
3. मुद्रा मांग की आय इकाई से अधिक होती है, जिसका अर्थ है कि दीर्घकाल में आय चलन वेग गिर रही होती है। इसका अभिप्राय है कि मुद्रा का दीर्घकालीन मांग फलन स्थिर और सापेक्षतया ब्याज बेलोच है।

### 4:4 मिल्टन फ्रीडमैन और एल.जे. सैवेज परिकल्पना

मिल्टन फ्रीडमैन और एल.जे. सैवेज ने अपने प्रसिद्ध लेख में एक परिकल्पना प्रस्तुत की है जो बताती है कि क्यों लोगों का एक ही समूह बीमा खरीदता है और जुआ भी खेलता है। बीमा खरीदकर वे जोखिम से बचना चाहते हैं और जुआ खेलकर वे जोखिम उठाते हैं। लोगों के इस विरोधाभासी व्यवहार को पैसे की घटती सीमांत उपयोगिता की बर्नौली परिकल्पना से नहीं समझाया जा सकता। फ्रीडमैन और सैवेज ने सभी आय श्रेणियों के लिए पैसे की घटती सीमांत उपयोगिता की इस परिकल्पना को त्याग दिया और इसके बजाय एक अन्य परिकल्पना को अपनाया। फ्रीडमैन–सैवेज परिकल्पना के अनुसार, अधिकांश लोगों के लिए, पैसे की आय की सीमांत उपयोगिता पैसे की आय के एक निश्चित स्तर तक कम हो जाती है, यह उस स्तर से पैसे की आय के एक निश्चित उच्च स्तर तक बढ़ जाती है।

और फिर उस स्तर से आगे यह फिर से कम हो जाती है। इस परिकल्पना के साथ जोखिम से बचने के लिए बीमा खरीदने और जुओ खेलने और जोखिम उठाने के एचएमयू दोनों प्रकार के व्यवहार को समझाया गया है। फ्रीडमैन–सैवेज परिकल्पना डी–है चित्र में दिखाया गया है।

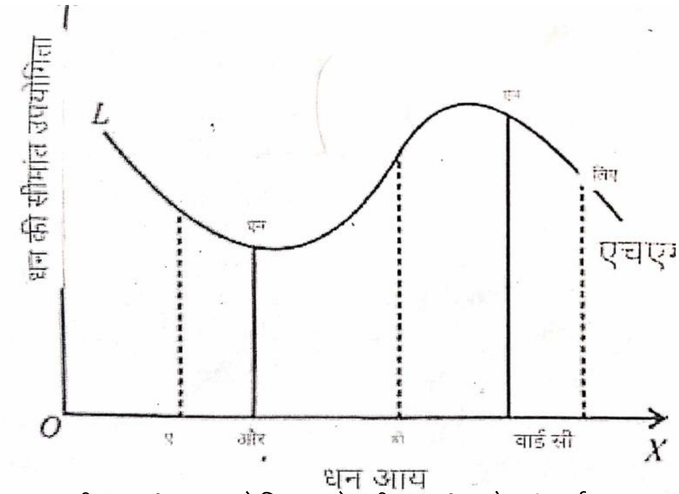


LM पर धन आय की समांत उपयोगिता के तीन खंड है, (अर्थात आय स्तर OY तक), धन आय की सीमांत उपयोगिता घटती है, खंड MN (अर्थात आय स्तर Y और $Y_2$ के बीच) जहां धन आय की सीमांत उपयोगिता बढ़ती है और खंड NH (अर्थात् $OY_2$ से अधिक आय) जहां धन आय की सीमांत

उपयोगिता फिर से घटती है। खंड LM निम्न स्तर पर धन आय की सीमांत उपयोगिताओं को दर्शाता है, श्रेणी MN मध्य श्रेणी पर धन आय की सीमांत उपयोगिताओं को दर्शाता है और खंड NH उच्च स्तर पर धन आय की सीमांत उपयोगिताओं को दर्शाता है।

मान लीजिए किसी व्यक्ति की आय OA है जो आय की घटती सीमांत उपयोगिता के पहले खंड में आती है। ऐसा व्यक्ति बीमा, खरीदने के लिए प्रेरित होगा और इस तरह जोखिम से बचेगा, क्योंकि भुगतान (बीमा प्रीमियम) बीमा के बिना होने वाली उपयोगिता की हानि की तुलना में छोटा है। उपयोगिता की हानि बहुत बड़ी है क्योंकि A के बाईं ओर धन की सीमांत उपयोगिता अधिक है। ऐसी आय के साथ व्यक्ति जुआ या जोखिम भरे निवेश में जोखिम लेने के लिए तैयार नहीं होगा, क्योंकि किसी भी आय से उपयोगिता में लाभ उससे होने वाली उपयोगिता की हानि से कम होगा। अब मान लीजिए व्यक्ति की आय OB है जो मध्यम आय खंड MN में आती है जहां धन आय की सीमांत उपयोगिता बढ़ रही है। OB आय के साथ, व्यक्ति लॉटरी टिकट खरीदने, जुआ खेलने या जोखिम भरे निवेश करने के लिए तैयार होगा क्योंकि अतिरिक्त धन से उपयोगिता में लाभ लॉटरी टिकट के लिए छोटे भुगतान से उपयोगिता की हानि या जुए में समान मौद्रिक हानि से होने वाली हानि से बहुत अधिक होगा (धन आय की सीमांत उपयोगिता बढ़ रही है)।

खंड MH में $Y_2$ से अधिक आय वाला व्यक्ति काफी उच्च आय का आनंद लेता है और इसलिए उसके लिए धन की सीमांत उपयोगिता घट रही है। इसके परिणामस्वरूप वह बहुत अनुकूल बाधाओं को छोड़कर किसी भी जुए या जोखिम भरे निवेश में जोखिम लेने के लिए तैयार नहीं होगा।

फ्रीडमैन–सैवेज का मानना है कि धन की सीमांत उपयोगिता का वक्र विभिन्न परिस्थितियों में लोगों के व्यवहार या दृष्टिकोण को दर्शाता है। सामाजिक–आर्थिक समूह। वे निश्चित रूप से स्वीकार करते हैं कि एक ही सामाजिक–आर्थिक समूह के भीतर व्यक्तियों के बीच कई अंतर है; कुछ लोगों को जुआ खेलने का बहुत शौक है और अन्य लोग कोई भी जोखिम लेने के लिए तैयार नहीं हैं। फिर भी फ्रीडमैन और सैवेज का मानना है कि वक्र व्यापक वर्गों की प्रवृत्तियों का वर्णन करता है। वे तर्क देने हैं कि धन की बढ़ती सीमांत उपयोगिता वाले मध्य समूह वे हैं जो खुद को बेहतर बनाने के लिए जोखिम उठाने के लिए उत्सुक हैं। अधिक धन की उम्मीद इस समूह के लोगों के लिए बहुत मायने रखती है; यदि उनके प्रयास सफल होते हैं, तो वे खुद को अगले सामाजिक–आर्थिक वर्ग में ऊपर उठा लेंगे। ये लोग न केवल अधिक उपभोक्ता सामान चाहते हैं; वे सामाजिक स्तर परद ऊपर की ओर देखते हैं। वे ऊपर उठना चाहते हैं, अपने जीवन के पैटर्न को बदलना चाहते हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि उनके लिए धन की सीमांत उपयोगिता बढ़ जाती है।

फ्राइडमैन के अनुसार, 1930 के दशक की महामंदी को 'महा संकुचन' कहा जाना चाहिए। उन्होंने 1928–1933 के बीच की प्रवृत्ति का विश्लेषण किया है और बताया है कि महामंदी के लिए मुख्य रूप से फेडरल रिजर्व सिस्टम जिम्मेदार है। मुद्रा के स्टॉक में तेज और अभूतपूर्व गिरावट मौद्रिक प्राधिकरण द्वारा तरलता प्रदान करने में विफलता का परिणाम थी, जो बैंकों को सक्षम बनाती, जो अपने दायित्व को पूरा करने में विफल रहे। फ्राइडमैन ने बताया हैं कि शायद रिकॉर्ड की सबसे उल्लेखनीय विशेषता वह अनुकूलनशीलता और लचीलापन है जो निजी अर्थव्यवस्था ने इस तरह के चरम उकसावे के तहत अक्सर दिखाया है।

फ्राइडमैन ने ए.जे. श्वार्ट्ज के साथ मिलकर एक किताब लिखी है जिसका नाम है ए मॉनेटरी हिस्ट्री ऑफ द यूनाइटेड स्टेट्स, 1867–1960। इसमें उन्होंने अमेरिका के आर्थिक इतिहास का विश्लेषण

किया है। अपनी दूसरी "ए प्रोग्राम फॉर मॉनेटरी स्एबिलिटी" में उन्होंने बताया है कि निजी बाजार अर्थव्यवस्था के प्रभावी और सफल संचालन के लिए एक स्थिर मौद्रिक ढांचा आवश्यक है।

फ्राइडमैन मुक्त बाजार तंत्र के एक अडिग समर्थक हैं। इस विश्व प्रसिद्ध अर्थशास्त्री के नाम 23 किताबें और 40 शोधपत्र हैं।

**4:5 स्थायी आय उपकल्पना**

अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन उपभोग फलनों के मध्य सामंजस्य सीापित करने का एक अन्य प्रयास 1957 में प्रकाशित मिल्टन फ्रीडमैन के अध्ययन में पाया जाता है। उन्होंने किसी भी एक प्रदत्त अवधि की वर्तमान आय एवं स्थायी आय के मध्य अन्तर सीापित किया है, जिनको उपभोक्ता अपने उपभोग आचरण का आधार मानते हैं। इसी तरह का अन्तर वर्तमान उपभोग एवं स्थायी उपभोग के मध्य किया गया है।

मिल्टन फ्रीडमैन ने निरपेक्ष आय और सापेक्ष आय परिकल्पनाओं को अस्वीकार करते हुए स्थायी आय परिकल्पना प्रस्तुत की है। मिल्टन फ्रीडमैन भी सापेक्ष आय सिद्धान्त की तरह आय आय उपभोग के मध्य आनुपातिक सम्बन्ध स्वीकार करते हैं। अन्तर यह है कि यह सम्बन्ध स्थायी आय और स्थायी उपभोग के मध्य विद्यमान होता है। इस तरह मिल्टन फ्रीडमैन की स्थायी आय परिकल्पना में चालू आय के सीान पर स्थायी आय का प्रयोग किया जाता है।

**स्थायी आय उपकल्पना का प्रमुख तत्व**

**प्रो० मिलटन फ्रीडमैन** के सिद्धान्त के प्रमुख तत्व निम्नलिखित है–

**स्थायी आय का अर्थ– मिल्टन फ्रीडमैन** ने 'चालू आय परिकल्पना' को अस्वीकार किया तथा उसके स्थान पर उपभोग व्यय के रूप में स्थायी आय की बात की। उनके अनुसार किसी परिवार की स्थायी आय उसकी एक वर्ष की चालू आय से प्रदर्शित नहीं होती है बल्कि दीर्घकाल में प्राप्त प्रत्याशित आय से प्रदर्शित होती है।

फ्रीडमैन स्थायी आय जो समाज के उपभोग व्यवहार को निर्देशित करती है तथा वास्तविक आय जिसे वह दी हुई अवधि में प्राप्ति करता है; के बीच अन्तर सीापित करते हैं। **फ्रीडमैन** स्थायी आय को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि स्थायी आय से अभिप्राय उस राशि से है, जिसे उपभोक्ता इकाई अपनी सम्पत्ति को पूर्ववत् बनाये रखते हुए उपभोग कर सकती है। सम्पत्ति से आशय व्यक्ति की आय के वर्तमान मूल्य से है, जो उसे भविष्य में आय पर निर्भर करता है।

**4:6 सारांशः–**

कीन्स से पहले के अर्थशास्त्रियों का यह मानना था कि मुद्रा की पूति में परितर्वन कीमत–स्तरों में परिवर्तन के लिये जिम्मेदार होते है। कीन्स की पुस्तक के 1936 में प्रकाशित होने के बाद अर्थशास्त्रियों ने मुद्रा परिमाण के प्रतिष्ठित सिद्धांत को रद्द कर दिया। कीन्स के अनुसार मुद्रा की पूर्ति व उत्पादन व कीमत के स्तरों में कोई भी सरल सम्बन्ध नहीं है। एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मिल्टन फ्रीडमैन के अगुवाई में एक नई विचारधारा पैदा हुयी जिसने सामान्य कीमत–स्तर निर्धारण में ही नहीं बल्कि देश की आर्थिक गतिविधियों में परिवर्तनों के सम्बन्ध में भी मुद्रा के महत्व पर बल दिया।

मुद्रा परिणाम सिद्धांत के पुनः व्यवस्थापन में फ्रीडमैन कहता है कि मुद्रा का परिणाम सिद्धांत मुद्रा का मांग सिद्धांत है। यह उत्पादन, मौद्रिक आय एवं कीमत–स्तर का सिद्धांत नहीं है। फ्रीडमैन का मानना है कि मुद्रा की मांग उसी प्रकार की जाती है। जिस प्रकार हम लोग वस्तुओं एवं सेवाओं की

मांग करते है। मुद्रा वादी विचारधारा  के अनुसार मुद्रा पूर्ति तथा कीमतों के बीच सम्बन्ध केवल सबल ही नहीं बल्कि प्रत्यक्ष भी होता है। इस सिद्धांत में मुद्रा पूर्ति के विस्तार को उपभोक्ताओं एवं विनियोजको दोनों के हाथों में अधिक मुद्रा होने के रूप में माना गया है।

फ्रीडमैन विश्लेषण में कीन्सीयन विश्लेषण से भिन्न मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि का कुल मांग में वृद्धि के माध्यम से कीमतों तथा आय पर प्रत्यक्ष विश्लेषण किया है।

**4:7 शब्दावलीः–**

**मुद्रा की पूर्ति–** मुद्रा की पूर्ति से तात्पर्य किसी समय विशेष पर एक देश में प्रचलित वैद्याानिक  मुद्रा की कुल मात्रा से है;

**मानव पूँजीः–** यह मानवों की उत्पादकीय क्षमता है।

**मुद्रा का मूल्य–** मुद्रा के मूल्य से आशय उसकी सामान्य क्रय–शक्ति से है।

**मौद्रिक संतुलनः–** जहाँ मुद्रा–संचय की माँग मुद्रा–मूर्ति के बराबर होती है।

**मौद्रिक नीतिः–** मौद्रिक नीति से आशय केन्द्रीय बैंक द्वारा अपनाये गये उन उपायों से है जिनके द्वारा वह अर्थव्यवस्था में करेंन्सी तथा साथ की मात्रा को नियंत्रित करता है।

**4:8 बोध प्रश्न–**

- फ्रीडमैन के मुद्रा–माँग सिद्धांत की विवेचना कीजिये।
- फ्रीडमैन के मुद्रा–परिमाण सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

**4:9 उपयोगी पुस्तके–**


- आर्थिक विकास एवं नियोजन–एस०पी०सिंह एस०चन्द्र पब्लि०।
- आर्थिक विचारों का इतिहास–जे०सी०पंत एवं एम०एल०सेठ एल एकृ०एन०पब्कि०।
- आर्थिक विचारों का इतिहास–एम०एल०सिंह।
- नियोजन और आर्थिक विकास– डा०वी०सी० सिंह डा० पुष्पा सिन्हा।
- A History of  Economics Thought –V. Lokanathan (S.Chand) (Pub).
- V.C. Sinha- History of  Economic Thought.
- T.N. Hajela- History of  Economic Thought.
- J.A. Shumptor- Ten Great Economists.
- B.N. Ganguli- Indian Economic Thought.
- J.C. Kumarappa- Gandhian Economic Thought.
- P.K. Gopal Krishnan- Development of  Ideas in India.

# खण्ड– 4

# भारतीय आर्थिक विचारक

## इकाई–01

## भारतीय आर्थिक विचारः कौटिल्य, तिरूवल्लुवर, दादाभाई नौरोजी, रानाडे, गोखले


**1.0 उद्देश्य–**

**1.1प्रस्तावना**

**1.2 कौटिल्य के आर्थिक विचार**

**1.3 वैल्यूवर के आर्थिक विचार**

**1.4 दादा भाई नौरोजी के आर्थिक विचार**

**1.5 रानाडे के आर्थिक विचार**

**1.6 गोपाल कृष्ण गोखले के आर्थिक विचार**

**1.7 निष्कर्ष**

**1.8 अभ्यास प्रश्न।**

**1.9 संदर्भ सूची।**


**1.0 उद्देश्य–**

इस अध्याय के अध्ययन का उद्देश्य भारत के महान आर्थिक विचारों जैसे कौटिल्य वैल्यूवर नैरोजी रानाडे तथा गोखले के आर्थिक विचारों से अवगत कराना है। ये सभी विद्वान अर्थशास्त्री तो नहीं थे किन्तु भारत के संदर्भ में इनके आर्थिक विचार बहुत प्रशासंगिक रहे हैं।

**1.1 प्रस्तावना –**

प्राचीन काल मे भारत भले ही अर्थ प्रधान न रहा हो परन्तु इसका अभिप्राय यह नही है कि देश के विद्वानों आर्थिक पक्षो में सोचा व लिखा न हो। हमें अपने प्राचीन साहित्य, वेदो, उपनिषेदो, महाभारत व रामायण में आर्थिक विचारो का समावेश किसी न किसी रूप में देखने को मिलता है। भले ही उस समय के आर्थिक विचार व नितिया स्वतंत्र रूप से अपना कार्य न कर सकी, परन्तु उनका सम्बंध नीतिशास्त्र से आवश्य था। सभ्यता की प्रगती के साथ साथ विचरो का विकास होता है और सभ्यता की प्रगति मुख्यतः भौतिक तथा भौगोलिक प्रतिस्थितियों पर निर्भर करती है। भारत में भी यही हुआ। आज भी भारत की महानता के बारे में ऐतिहासिक प्रमाण स्पष्ट है। कौटिल्य के बाद 19वीं शताब्दी के मध्य में देश के कुछ विद्वानों ने भारतीय परिस्थितियों को ध्यान में रखतें हुए स्वतंत्र चिंतन करना प्रारम्भ कर दिया था।

**कौटिल्य**

कौटिल्य के जीवन के विषय में पूरी जानकारी नहीं है। प्रचलित मत है कि इनका नाम विष्णुगुप्त तथा चाणक्य था और यह चन्द्रगुप्त मौर्य के, जो कि 321 ई.पू. में गद्दी पर बैठा था, मन्त्री थे। कौटिल्य को चाणक्य के नाम से भी जाना जाता है। इनका मूल नाम विष्णुगुप्त था। कौटिल्य ने राजा चन्द्रगुप्त मौर्य को नीतिगत उपदेश देने के लिए एक ग्रन्थ की रचना की जिसे बाद में कौटिल्य का अर्थशास्त्र कहा जाता है।

कौटिल्य के जीवन के विषय में कुछ भी प्रामाणिक बात ज्ञात नहीं है। प्रचलित दन्त कथाओं, मुद्राराक्षस नामक नाटक और प्राचीन ग्रन्थों में बिखरे हुए वर्णन से केवल इतना अनुमान होता है कि वे ब्राह्मण थे। नन्द–वंश से किसी कारण रूष्ट होने पर उन्होने उनके नाश की प्रतिज्ञा की थी और उसकी पूर्ति उन्होंने चन्द्रगुप्त को मगध राज्य का राजा और भारत का सम्राट बनवाकर की थी।

## 1.2 कौटिल्य के आर्थिक विचार

अर्थशास्त्र शब्द की प्रथम परिभाषा कौटिल्य के ग्रन्थ में मिलती है। उन्होंने लिखा है, ''अर्थ मनुष्य के जीवन की वृत्ति का आधार है। अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो मनुष्य से पूर्व पृथ्वी से पालन तथा प्राप्ति का विचार करता है।''

'वृत्ति' से एक अन्य शब्द निकला 'वार्ता'। यह शब्द कृषि, पशुपालन और व्यापार इनके लिए सम्मिलित रूप से प्रयुक्त होता है। वार्ता को भी अर्थशास्त्र में प्रयुक्त किया गया है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र केवल अर्थ का ही वर्णन नहीं करता, उनमें राजनीति, नीतिशास्त्र, दण्ड–नीति तथा वार्ता, आदि का विशद वर्णन है।

कौटिल्य के अनुसार पृथ्वी के लाभ और पालन का शास्त्र अर्थशास्त्र है। यह विस्तृत परिभाषा है वार्ता केवल इनके एक भाग का नाम है।

अर्थशास्त्र शब्द का प्रयोग भारतीय वाङ्मय में विस्तृत रूप में हुआ है। महाभारत में अर्जुन को अर्थशास्त्र का ज्ञाता कहा गया है। अन्य पुराणादि में इस नाम का वर्णन है।

अर्थशास्त्र 15 अध्यायों में विभक्त है, जो राज्रू के शासन, उद्योगों के प्रबन्ध, भूमि के सुधार, व्यापार, सेना, विदेशी नीति, करारोपण तथा श्रमिक–गण (Guildे), आदि से सम्बन्धित हैं। राज्य के संचालन के प्रत्येक पक्ष का विशद वर्णन किया गया है। कौटिल्य के प्रमुख आर्थिक विचार हैं :

**(1) करारोपण** – राज्य के व्यय को चलाने के लिए करों की व्यवस्था है। भूमिकर कृषि के उत्पादन का छठा अंश (भाग) होना चाहिए। भूमिकर को वसूल करने वाले समाहर्ता के कार्यो का वर्णन है। बाहर से आने वाले माल पर आयात कर तथा चुंगी (शुल्क) की व्यवस्था है। नदी तथा पुल के प्रयोग, सड़कों तथा वनों के प्रयोग पर कर का आदेश है। राज्य की आय व्यय के हिसाब का महत्व समझाया गया है। करों का उल्लंघन करने पर कठोर दण्ड का नियम बताया गया है। विजित राष्ट्रों से कर लेना चाहिए, ऐसा भी लिखा है। सरकारी खेती को आय भी राज्य कोष में आ जाती है। 'उदकभाग' सिंचाई कर का नाम था। अपनी सिंचाई पर भी यह कर देना पड़ता था। उत्पादन कर तथा निर्यात कर अन्य कर हैं।

**(2) श्रम सम्बन्धी विचार** – शुक्राचार्य के समान श्रमिकों के विषय में कौटिल्य ने विस्तार से नियम बताये हैं। मजदूरी वस्तु के गुण तथा मात्रा के आधार पर होनी चाहिए। छुट्टियों के दिनों में अतिरिक्त वेतन मिलना चाहिए। मजदूरी लेकर काम न करने वालों का अंगूठा काट देना चाहिए। अन्य उद्योगों में सौदे के अनुसार मजदूरी की व्यवस्था है। कौटिल्य ने वृद्वावस्था की पेंशन, पुरस्कार, इत्यादि के विषय में भी लिखा है। खेतिहर मजदूर का फसल 1/10, व्यापारी को बिक्री की राशि का 1/10, पशुपालक को उत्पन्न धन का 1/10 मजदूर को देना चाहिए। मजदूरी न देने पर जुर्माना होना चाहिए।

**(3) कृषि** – राज्य के सभी व्यवसाय निम्न तीन वर्गो में विभाजित हैं : (प) कृषि, (पप) पशुपालन, एवं (पपप) वाणिज्य। इनमें कृषि सबसे महत्वपूर्ण है। कृषि के सुधार के लिए राजा को बेकार भूमि पर किसानों को बसाना चाहिए (शून्य निवेश) इसका अर्थ नवीन भूमि पर खेती से है। एक गांव में 100 से 500 तक परिवार होने चाहिए। बेकार भूमि पर राजा का अधिकार होता है। राजा को बीज तथा बैल, आदि की सहायता देनी चाहिए। ऋण का भी विधान है। समय–समय पर करों की छूट भी आवश्यक है। दान में दी गयी भूमि पर कर नहीं लगता था। सिंचाई का वर्णन है। राज्य का काम 'सेतुबन्ध' बताया गया है। सेतु का अर्थ यहां बांध से है। तालाबों तथा कुओं से व्यक्तिगत सिंचाई का भी आदेश है। बांधों से होने वाली अन्य आय राज्य की होती है। बंजर भूमि (भूमिछिद्र) पशुओं के लिए होनी चाहिए। राज्य को स्वयं भी पशुओं का पालन करना चाहिए। 'गोडध्यक्ष' का कार्य इन पशुओं की देखभाल है।

**(4) वनों की उपज** – दो प्रकार के वनों का वर्णन है – (क) द्रव्यवन, जिससे ईधन, औषधि, आदि प्राप्त होते हैं, (ख) हस्तिवन, जिसमें हाथियों के रहने की व्यवस्था होती है। युद्व में हाथी का वही महत्व था, जो आजकल टैंक का है। वनों पर राजा का नियंत्रण होता है। नये वनों के लगाने का भी आदेश है। वनों से प्राप्त वस्तुओं`स नाव, जहाज तथा रस्से, आदि बनाना चाहिए।

**(5) व्यापार** – राज्य का नियंत्रण व्यापार पर आवश्यक है। इसके लिए 'पण्डाध्यक्ष' की नियुक्ति होनी चाहिए। वह मूल्यों का नियंत्रण करता है। देशाी माल पर 5% और विदेशी माल पर 10% लाभ की व्यवस्था है। नियंत्रित मूल्य से अधिक लेने पर 1000 पण दण्ड की व्यवस्था की गयी है। राज्य स्वयं भी व्यापार करता है। राज्य के उद्योग, व्यापार तथा कृषि इस बात का स्पष्ट प्रमाण देते हैं कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) का विधान है। विदेशी व्यापार में भी राज्य का नियंत्रण होना चाहिए।

**राज्य का व्यापारिक माल दो प्रकार का होता है** – 'स्वाभमिज' या देश में निर्मित तथा 'परभूमिज' या विदेश में निर्मित। पण्डाध्यक्ष राज्य के व्यापार का प्रबन्धक होता है। आयातों को प्रोत्साहित किया गया है। विदेशी व्यापारियों को सुविधाएं दी गयी हैं। कुछ वस्तुओं पर आयात कर (प्रवेश शुल्क) माफ था। विवाह तथा पूजा, आदि के उपकरणों पर कर नहीं लगाना चाहिए। नाप–तौल के बांटो के निर्माण और निरीक्षण के लिए 'पोतवाध्यक्ष' नियुक्त होने चाहिए।

**(6) यातायात** – यातयात के प्रधान साधन नदियों और सड़कों द्वारा थे। विदेशी व्यापार समुद्र के मार्ग से होता था। कौटिल्य ने भूमि का मार्ग अधिक लाभदायक बताया है, क्योकि वह अधिक सुरक्षित होता है। यात्रा 'सार्थ' (कारवां) द्वारा होती थी। सड़कों के प्रयोग के कर को 'वर्तनी' कहते थे। सड़कों के निर्माण एवं यात्रा की सुरक्षा का भार राज्य पर था। यदि सार्थ का कोई नुकसान होता था, तो सरकारी कर्मचारियों पर जुर्माना करके उसकी पूर्ति की जाती थी। सरकारी सिपाही सार्थो के साथ भी भेजे जाते थे, जिसके लिए 'अतिवाहिका' नामक कर वसूल होता था। पानी में भी सामूहिक रूप से जहाज तथा नावें, आदि चलाने का आदेश है।

**(7) मुद्रा** – इसके निर्माण के लिए टकसालें थी और विशेष अधिकारी नियुक्त होते थे, जिन्हें 'लक्षणाध्यक्ष' कहते थे। चांदी के सिक्के 1 पण, 1/2 पण, 1/4 पण, तथा 1/8 पण के होते थे। इन सिक्के में 11/16 चांदी, 4/16 तांबा तथा 1/16 अन्य धातु होती थी। इसके अतिरिक्त तांबे के सिक्के, जो पण के मूल्य के क्रमशः 1/16, 1/82, 1/64, होते थे, चलते थे। हमारा रूपया निश्चय ही कौटिल्य के दिमाग की उपज है। सिक्कें का सरकारी टंकणशाला में बनाना अनिवार्य था।

**(8) खानों का प्रबन्ध** – खानों पर राज्य का अधिकार है। उनका बहुत महत्व बताया गया है, क्योंकि उनसे मूल्यवान धातुएं प्राप्त होती हैं, जो सेना के लिए आवश्यक हैं। सोना तथा चांदी का महत्व सबसे

अधिक बताया है। कौटिल्य का कथन है कि बड़ी खदानों में लागत कम आती है, अतः वे श्रेष्ठ हैं। लोहा, आदि धातुओं की वस्तुओं के निर्माण के लिए 'लौहाध्यक्ष' होते थे। सोना–चांदी की वस्तुए 'स्वर्णाध्यक्ष' की निगरानी में बनती थी। खानों से कुल मिलाकर 12 प्रकार की आय हो सकती है।

**(9) अद्योग –** कौटिल्य ने राजकीय और व्यक्तिगत उद्योगों का वर्णन किया है। राज्य के वस्त्र उद्योग के लिए 'सूत्राध्यक्ष' का उल्लेख है, जो ऊनी, सूती तथा रेशमी वस्त्र तैयार कराता था। सबके कारखाने अलग–अलग होते थे। रथाध्यक्ष रथों का निर्माण करता था। सेना के हथियार, रस्से तथा गाड़ियॉ, आदि भी सरकारी कारखाने मे बनने की बात है, परन्तु फिर भी निजी धन्धे थे। स्वतन्त्र व्यापारी मजदूरों और कारीगरों से चीजें बनवाते थे।

**(10) अन्य विचार –** कौटिल्य ने दासों, नौकरों (भृत्यों) और मजदूरों (कर्मकारों) के काम और उनसे सम्बन्धित नियमों का वर्णन किया है। दास प्रथा के यह अन्तिम दिन थे। सम्भवतः प्रथम से तृतीय शताब्दी में दास प्रथा का यहां प्रभाव बताया है। राज्यकी आय और व्यय का विशद वर्णन दिया है।

कौटिल्य के इस संक्षिप्त वर्णन के पश्चात् कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। उनके विचार की निम्नलिखित विशेषताएं हैं :

(1) अर्थशास्त्र एक विशाल शास्त्र है। वार्ता उसका छोटा–सा भाग है।अर्थनीति दण्ड–नीति का ही एक अंग है।

(2) उनका दृष्टिकोण व्यावहारिक है। वे सिद्वान्तों के विवेचन में नहीं पडें। वणिकवाद के समान उन्होंने नीति का ही वर्णन किया है।

(3) उन्होंने नैतिकता और भावुकता को राज्य और अर्थ के संचालन से अलग रखा है। इस विषय में मैकियावेली से उनकी तुलना की जाती है, परन्तु कौटिल्य अद्वितीय हैं और उनकी तुलना हो ही नहीं सकती।

(4) कौटिल्य ने मिश्रित अर्थव्यवस्था की, जिसमें राज्य का अधिक से अधिक योगदान है, व्यवस्था दी है। अधिकांश उद्योग पर राज्य का आधिपत्य हो, राज्य व्यापार करें, खेती कराये, पशुपालन करें, ऐसा उनका आदेश है, परन्तु मुक्त व्यापार भी चलता है, उस पर कौटिल्य ने कठोर नियन्त्रण आवश्यक बताया है।

(5) ऐसा लगता है कि योजनाबद्व उत्पादन की बात उन्होंने की है। ऐसा यदि नहीं भी सिद्व हो सके तो यह भी निर्विवाद है कि वे मुक्त अर्थव्यवस्था के पक्ष में नहीं थे।

(6) कौटिल्य ने एक क्रान्तिकारी विचार रखा है। उन्होंने अर्थ को प्रथम पुरूषार्थ कहा है और अन्य को इसका अधीन बताया है। महाभारत में वेद व्यास ने धर्म को प्रधान आदर्श कहा है। कौटिल्य व्यावहारिक और वास्तविकतावादी थे।

(7) उनका अर्थशास्त्र राज्यों को शक्तिशाली बनाने का एक साधन था। इस विषय में उनके विचार वणिकवादियों एवं राष्ट्रीयतावादियों से मिलते हैं।

## वैल्यूवर

## (VALLUVAR)

वैल्यूवर दक्षिण भारत के तमिलनाडु राज्य के हिन्दु सम्प्रदाय के एक विचारक एवं उपदेशक थे। प्राचीन भारत में वैल्यूवर के आर्थिक विचारों का विशेष महत्व है। प्राचीन आर्थिक विचारों की श्रृंखला को वैल्यूवर के विचारों के बिना पूरा नहीं माना जा सकता।

वैल्यूवर एक सन्त एवं भविष्यवक्ता (Seer) थे। उनकी कृति 'जेपतनाानतंस' संगम युग की एक महान कृति कही जाती है। यह कृति नैतिक मूल्यों का मार्गदर्शन करने वाली एक महान एवं लोकप्रिय रचना है। यह कृति 'जीवन के मौलिक मूल्यों' (Fundamental Values of Life) पर प्रकाश डालती है।

## 1.3 वैल्यूवर के आर्थिक विचार

## (ECONOMIC IDEAS OF VALLUVAR)

### (1) प्रेरणात्मक दिशा–निर्देश (Cardinal Principles)

वैल्यूवर के विचार जनमानस के लिए प्रेरणात्मक दिशा–निर्देश थे। वैल्यूवर ने भविष्यवक्ता के रूप में देशवासियों को वह मार्ग दिखाया, जिसे वे एक सम्पन्नतापूर्ण जीवन के लिए आवश्यक समझते थे। वैल्यूवर के विचार में एक सुसंगठित एवं सम्पन्न समाज के निर्माण के लिए चार सिद्वान्तों का अनुपालन आवश्यक है–

(i) ईश्वर में आस्थाः

(ii) आर्थिक संसाधन सृजनः

(iii) आध्यात्मिक नेतृत्वः

(iv) नैतिक नियमों का अनुपालन।

### (2) आर्थिक समाज पर विचार (Ideas on Economic Society)

वैल्यूवर के महान ग्रन्थ 'जेपतनाानतंस' का द्वितीय खण्ड सम्पति से सम्बन्धित है। द्वितीय खण्ड को 'Porutpal' का नाम दिया गया, जिसका अभिप्राय है– ''ऐसी सभी भौतिक वस्तुएं तथा स्पर्श योग्य वस्तुएं जिन्हें प्राप्त किया जा सकता है, उनका उपभोग किया जा सकता है तथा खोया जा सकता है तथा जिन्हें व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में परिवार के भरण–पोषण के लिए तथा जीवन के दायित्वों के निर्वहन के लिए प्राप्त करता है।''

**(3) गरीबी एवं भीख मांगना–एक सामाजिक अभिशाप है (Poverty and Begging as Social Curses)** वैल्यूवर ने गरीबी की बुराईयों को सामाजिक अभिशाप की श्रेणी मे रखा। उनके विचार में गरीबी जैसा दर्द व्यक्ति की जीवन शैली के नैतिक मूल्यों पर डाका डालता है और गरीबी सभी सामाजिक बुराइयों का घोंसला बन जाती है।

गरीबी के साथ–साथ वैल्यूवर भीख मांगने (Begging) के भी सख्त विरोधी थे। उन्होंने गरीबी निवारण के लिए भीख मांगने को अनुचित बताया।

**(4) धन संग्रह पर विचार (Idea on Accumulation of Wealth)** वैल्यूवर ने गरीबी एवं भीख मांगने को सामाजिक अभिशाप बताने के साथ–साथ इन बुराइयों के निवारण के लिए धन अर्जन एवं आवश्यताओं के अनुरूप धन संग्रह की उत्पादकीय क्रियाओं का समर्थन किया। वैल्यूवर ने गरीबी एवं भीख मांगने की क्रिया की समाप्ति एवं धनार्जन तथा आवश्यक धन संग्रह के साथ–साथ समाज मे उपभोग को प्रेरित करने तथा सम्पति के उचित वितरण के विचार भी प्रस्तुत किए। वैल्यूवर बड़े धन संग्रह (िवंतकपदह वि ंसजी) के विरोधी थे।

**(5) संतुलित व्यय (balanced Spending)** वैल्यूवर न तो बड़े धन संग्रह के ही समर्थक थे और न ही विलासितापूर्ण व्यय को उन्होंने उचित बताया। 'संतुलित व्यय' नीति पर बल देते हुए उनके विचार थे।

(क) सदैव अपने संसाधनों के अनुरूप व्यय करो,

(ख) धन के लिए प्यासे बनों, किन्तु कंजूस बनकर नहीं,

(ग) कृपा एवं दान व्यक्ति की स्वयं की सम्पति के अनपात में होना चाहिए,

(घ) अपने संसाधनों से अधिक व्यय करने वाला व्यक्ति यद्यपि सम्पन्न तो दिखाई देता है, किन्तु वस्तुतः वह अवनति का मार्ग अपनाकर अपने विनाश की ओर अग्रसर होता है।

उपर्युक्त विचारों के साथ वैल्यूवर ने 'संतुलित व्यय नीति' (Balanced Spending Method) अपनाने पर बल दिया।

**(6) लोक वित्त पर विचार (Ideas on Public Finance)** लोक वित्त के क्षेत्र में वैल्यूवर ने राज्य के चार आवश्यक कार्यो का उल्लेख किया जै–

(क) राजस्व का सृजन (Creatioin of Revenue) :

(ख) राजस्व का एकत्रीकरण (Collection of Revenue) :

(ग) राजस्व का प्रबन्धन (Management of Revenue) :

(घ) लोक व्यय (Public Expenditure)।

वैल्यूवर सरकार द्वारा कर बसूलने के लिए सरकार की 'अनावश्यक अनिवार्यता' (न्दकनम ब्वउचनसेपवद) के विरोधी थे। उनके विचार में ऐसा राजा जो अनावश्यक अनिवार्यता के साथ कर वसूलता है, वस्तुतः एक ऐसे राहजनी करने वाले लुटेरे के समान है जो राहगीरों को धमकाकर उनको लूटता है।

वैल्यूवर के विचार में कर के अतिरिक्त राज्य के लिए राजस्व के दो अन्य स्त्रोत भी हैं–

(क) रीति–रिवाजों पर अर्जित आय

(ख) पराजित शत्रुओं द्वारा अदा की गई धनराशि

(7) कल्याणकारी राज्य सम्बन्धित विचार (Ideas Related to Welfare State)

वेल्युवर कल्याणकारी राज्य की स्थापना के समर्थक थे। उनके प्रमुख विचार थे–

(क) राजा को एक प्रभावी प्रशासक होना चाहिए।

(ख) शिक्षा का विस्तार करके उसे उत्पादन का एक आवश्यक साधन बनाया  जाना चाहिए।

(ग) शिक्षा व्यक्ति को चतुरता देती है, जिससे व्यक्ति आय अर्जित करता है तथा धन का सृजन करता है।

(घ) आय की असमानताएं शिक्षा एवं ज्ञान के प्रसार से कम होती हैं।

(ड़) आर्थिक समाज ' एक जागरूक सामाजिक चेतनता' (vigilant social consciousness) पर आधारित होना चाहिए।

(य) आधारभूत नैतिक मूल्य एवं सबल कल्याणवादी सिद्वान्तों पर देश का आर्थिक समाज केन्द्रित होना चाहिए।

(ल) राज्य की क्रियाओं की तुलना में व्यक्ति की क्रियाएं अधिक महत्वपूर्ण होती हैं, अतः राज्य की क्रियाओं की सफलता व्यक्ति की क्रियाओं, उसकी सहभागिता एवं उसके प्रयासों पर ही निर्भर करती है।

### 1.4 दादाभाई नौरोजी

### (DADABHAI NAOROJI(1825-1917)

दादाभाई नौरोजी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संस्थापकों में से थे और भारत में राष्ट्रीय आंदोलन के सूत्रधारों में अग्रगण्य थे। भारत के स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में नौरोजी का नाम सदैव स्मरण किया जायगा। उनके विचारों ने भारत की राजनीति ही नहीं आर्थिकता को भी प्रभावित किया। उन्हें भारतीय अर्थतन्त्र तथा वित्त का अद्वितीय ज्ञान था। उस समय के भारत के सन्दर्भ में दादाभाई ने आर्थिक दर्शन पर अपनी 'पावर्टी एण्ड अन–ब्रिटिश रूल इन इण्डिया' नामक प्रामाणिक पुस्तक लिखकर निर्भीक सैद्वान्तिक सूझबूझ का परिचय दिया। ये तीन बार कांग्रेस के सभापति चुने गए और 1906 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में उन्होंने अध्यक्षीय आसन से धोषणा की कि भारत के राजनीतिक प्रयत्नों का उद्देश्य 'स्वराज' है। उनका 'निर्गम अथवा प्रवाह का सिद्वान्त' (Drain Theory) भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक चिन्तन में उतना ही विस्फोटक बन गया था जितने मार्क्स के 'अतिरिक्त मूल्य' और 'वर्ग संगर्ष' के सिद्वान्त मार्क्सवादी क्षेत्रों में बन गए हैं। दादाभाई नौरोजी को देशवासियों ने प्रेम से 'भारत का पितामह' (Grand Old Man of Indi) की उपाधि दी जो किसी भी देशवासी के लिए सबसे बड़ा पुरस्कार हो सकता है।

### दादाभाई नौरोजी : जीवन परिचय

### (DADABHAI NAOROKI : LIFE HISTORY)

दादाभाई नौरोजी का जन्म बम्बई के एक धार्मिक पारसी परिवार में 4 सितम्बर 1825 ई. को हुआ था। उनके पिता तभी स्वर्गवासी हो गए जबकि वे दस वर्ष के थे। उनकी माता ने उन्हें अच्छी से अच्छी शिक्षा दिलाई। बम्बई के ऐलफिन्स्टन कॉलेज के छात्रों में वे सदैव शीर्ष स्थान पर रहे। उनकी योग्यता से उनके अध्यापक भी प्रभावित रहे थे। बम्बई के प्रधान न्यायाधीश सर कर्सकिन मेरी यह चाहते थे कि वे इंग्लैण्ड जाकर वकालत पढ़ें। परन्तु परिवार धार्मिक तथा कट्टरपंथी था, अतः वे ऐसा न कर सके। उनका विदेश जाना पारिवारिक जनों ने ठीक न समझा।

सन् 1850 ई. में दादाभाई ऐलफिन्सटन कॉलेज में ही अंकगणित तथा प्राकृतिक विज्ञान के अध्यापक नियुक्त हो गए। इस स्थान को प्राप्त करने वाले वे प्रथम भारतीय थे। सन् 1853 में उन्होंने अपने कुछ साथियों के सहयोग से बम्बई एसोसिएशन की स्थापना की। सन् 1856 ई. में उन्होने कॉलेज की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और एक पारसी कम्पनी में 'केमा एण्ड सन्स' के व्यापारिक कार्य की देखभाल के लिए इंग्लैण्ड चले गए। सन् 1867 में उन्होंने अपने कुछ मित्रों के साथ लन्दन में 'ईस्ट इण्डिया एसोसिएशन' की स्थापना की। सन् 1869 में इसकी एक शाखा बम्बई में स्थापित की गई। सन् 1874 में वे बड़ौदा रियासत के दीवान बनाए गए। सन् 1875 में वे बम्बई कॉरपोरेशन के सदस्य बन गए। सन् 1885 में वे बम्बई प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषद् के अतिरिक्त सदस्य बने। दादाभाई ने ब्रिटेन को अपने राजनीतिक जीवन का कार्यक्षेत्र बनाया ताकि वे वहां रहकर भारतीय हितों के लिए लड़ सकें। सन् 1892 में केन्द्रीय फिसम्बरी से चुनाव लड़कर वे ब्रिटिश लोकसभा (हाउस ऑफ कॉमन्स) के सदस्य बने ताकि वे इस महान् सभा में भारत के हितों का समुचित ढंग से प्रतिनिधित्व कर सकें। किसी

भारतीय के लिए ब्रिटिश संसद का सदस्य निर्वाचित होना उस समय की महान् घटना थी। अपने इंग्लैण्ड के एक लम्बें निवास में उनकी मित्रता ग्लेडस्टोन, ब्राडलाफ, ब्राइट आदि से हुई। चार्ल्स ब्राडलाफ के द्वारा उन्होंने ब्रिटिश संसद में एक प्रस्ताव रखवाया कि इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षाएं इंगलैण्ड और भारत दोनों स्थानों पर हों। 1897 में उन्हें भारतीय वित्त व्यय सम्बंधी वेल्बी कमर सप के समक्ष अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करने के लिए आमन्त्रित किया गया। उन्होंने कमीशन को अनेक ज्ञापन दिए। उन्होंने दुःख प्रकट किया कि भारत के धन को किस प्रकार बुरी तरह खर्च किया जाता है।

दादाभाई कांग्रेस के संस्थापकों में से थे और अपने जीवनकाल में तीन बार कांग्रेस के सभापति रहे–सन् 1886 में कलकत्ता कांग्रेस में, 1893 में लाहौर कांग्रेस में और फिर 1906 में कलकत्ता कांग्रेस में। कांग्रेस को स्वदेशी और स्वराज्य के नारे उन्होंने प्रदान किए। वे वैधानिक आन्दोलन के पक्षपाती थे, इसलिए कांग्रेस को  वैधानिक आन्दोलन के मार्ग पर ही आगे बढ़ाया। अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि बिना स्वशासन के भारत का कल्याण नहीं हो सकता। संक्षेप में लगभग अर्द्वशताब्दी तक दादाभाई भारतीय राजनीति के प्रभावशाली व्यक्तित्व रहे। 30 जून 1917 को मुम्बई में उनकी मृत्यु हो गई। दादाभाई के जन्म दिन पर बोलते हुए महात्मा गांधी ने कहा था : 'हम दादाभाई को भारत का पितामह कहते थे .... दादाभाई ने भारत की सेवा को एक धर्म बना डाला था। स्वराज्य शब्द उन्ही से हमें मिला है। वे भारत के गरीबों के मित्र थे। भारत की दरिद्रता का दर्शन पहले पहल दादाभाई ने ही हमें कराया था। दादाभाई ने भारत की दरिद्रता देखी। उन्होंने सिखाया कि 'स्वराज्य' उसकी औषधि है।' संक्षेप में , दादाभाई लगभग अर्द्व शताब्दी तक भारतीय राजनीति के प्रभावशाली व्यक्तित्व रहें।

## दादाभाई नौरोजी की रचनाएं

## (WORKS OF DADABHAI NAOROJI)

सन् 1901 में दादाभाई नौरोजी की प्रसिद्व पुस्तक 'पॉवर्टी एण्ड अन–ब्रिटिश रूल इन इण्डिया (Poverty and Un british Rule in India) लन्दन से प्रकाशित हुई, जिसमें उन्होने अंग्रेजों द्वारा भारत के शोषण का विस्तृत एवं तर्कपूर्ण विवेचन किया। भारतीय अर्थशास्त्र तथा भारतीय राष्ट्रवाद के क्षेत्र में यह एक श्रेष्ठ प्रामाणिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में भारतीय वित्त की समस्याओं के अध्ययन में दादाभाई ने सांख्यिकी पद्वतियों को लागू किया और 'निर्गम सिद्वान्त' का प्रतिपादन किया।एक दृष्टि से उनका यह ग्रन्थ राजनीतिक एवं समाजवादी चिन्तन में आर्थिक दृष्टिकोण का महा भाष्य माना गया। इससे पूर्व सन् 1876 में उनकी पुस्तक Poverty in India प्रकाशित हुई।

## दादाभाई नौरोजी के आर्थिक विचार

## (WORK OF DADABHAI NAOROJI)

दादाभाई ने भारतीय राष्ट्रवाद के आर्थिक आधारों के सिद्वान्तों का निर्माण किया। भारतीय दरिद्रता और गरीबी का सही चित्रण करके उन्होंने जनता की आंखें खोल दी। उन्होंने अकाल, भुखमरी, बीमारी और शोषण आदि का बड़ा ही सजीव वर्णन किया। उन्होंने ब्रिटिश शासकों की अप्राकृतिक आर्थिक नीति को जनता के सामने रखा।

दादाभाई ने अपने आर्थिक विचारों का प्रतिपादन अपनी दो प्रसिद्व रचनाओं में किया है जिनके नाम हैं 'पॉवर्टी इन इण्डिया' तथा 'पॉवर्टी एण्ड अन ब्रिटिश रूल इन इण्डिया'। सन् 1876 में प्रकाशित 'पॉवर्टी इन इण्डिया' में दादाभाई ने प्रतिपादित किया कि भारत के लोगों की आय बहुत कम है, प्रति व्यक्ति वार्षिक केवल बीस रूपए होती है। अंग्रेज जितनी धनराशि का माल भारत से बाहर ले जाते हैं, उससे बहुत कम धनराशि का माल बाहर से भारत में लाते हैं। भारतीय जनता से करों के रूप में वसूल

की गई आय के मुकाबले भारतीयों की भलाई के कार्यो में बहुत कम धन खर्च किया जाता है। अंग्रेजों को सिर्फ भारत का धन यहां से ले जाने और बड़े अधिकारियों और सैनिकों की जेब भरने से मतलब है न कि भारत की गरीबी दूर करने और लोगों को भुखमरी से बचाने में।

अपनी दूसरी रचना 'पॉवर्टी एण्ड अन–ब्रिटिश रूल इन इण्डिया' (1901) में दो पहलुओं का प्रतिपादन है : भारत की आर्थिक दशा का विश्लेषण तथा राजनीतिक परिस्थितियों का तार्किक विवेचन। आर्थिक दशा का विश्लेषण करते हुए तरह–तरह के प्रमाण और आंकड़े देकर यह यमझाया गया है कि भारत किस तरह दिन प्रति दिन अधिक गरीब होता जा रहा है और राजनीतिक परिस्थितियों का विवेचन करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि भारत में गरीबी का मुख्य कारण ब्रिटिश शासन है जिसमें अंग्रेज सैनिकों और प्रशासकों पर अनाप शनाप खर्च किया जाता है। दादाभाई के आर्थिक विचारों को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत समझा जा सकता है :

**भारत** की राष्ट्रीय आय का अनुमान

दादाभाई नौरोजी ने सर्वप्रथम 1868 में भारत की राष्ट्रीय आय का अनुमान प्रस्तुत किया था। उन्होंने अपनी पुस्तक 'च्वअमतजल ंदक नदइतपजपेी त्नसम पद प्दकपं' में राष्ट्रीय आय 340 करोड़ रूपया तथा प्रति व्यक्ति वार्षिक आय 20 रूपया बताया था। उनके अनुसार, एक व्यक्ति को जीवित रखने के लिए 34 रूपया की आवश्यकता थी। उनके अनुसार, एक सामान्य भारतीय को उतना अनाज और कपड़ा नहीं मिल पाता था, जितना कि एक सामान्य अपराधि को दिया जाता था। अतः भारतीयों का सामान्य जीवन स्तर बहुत ही निम्न स्तर का था। यदि उस समय की परिस्थितियों पर विचार किया जाए तो वह कहा जा सकता है कि उस समय आज की तरह विकसित विधियों के न होते हुए भी नौरोजी ने राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया जो एक सराहनीय कार्य था।

भारत की बढ़ती हुई निर्धनता

दादाभाई ने कई आंकड़ों द्वारा यह प्रमाणित किया कि भारत में निर्धनता दिन प्रतिदिन बढ .ती जा रही है। इसके लिए इन्होंने निम्नलिखित प्रमाण दिये :

(1) राष्ट्रीय आय एवं औसत आय का कम होना – दादाभाई ने कहा कि भारतीय औसत आय 20 रूपये प्रति वर्ष से भी कम है, जबकि प्रति व्यक्ति जीवन का व्यय देश में 34 रूपये है। उन्होंने लिखा है कि देश के अधिकांश नगरों में मनुष्य भुखमरी के शिकार हैं। मजदूरी की दरें शायद विश्व भर से नीची हैं। उन्होंने अंकों द्वारा बताया कि सन 1866–67 में बिहार और बंगाल के अधिकांश लोक–निर्माण के मजदूरों की मजदूरी1 आना 6 पाई प्रतिदिन से लेकर 2 आना 6 पाई तक है। सन् 1871–72 में बम्बई जैसे औद्योगिक नगर में लोक–निर्माण में मजदूरी 5 आना प्रतिदिन थी और महिलाओं को 3 आना तथा बच्चों को 2 आना 4 पाई मिलता था। उन्होंने देश भर के नगरों के अंक दिये हैं।

(2) बेकारी दूसरा प्रमाण है – हजारों की संख्या में लोगों को कोई भी काम नहीं है और वे इधर–उधर भटकते हैं।

(3) खेती की दुर्दशा– खेती में लगे हुए को पेट भर खाना मिलना मुश्किल है। बहुत से लोग खेती छोड़ चुके हैं।

(4) अकाल – ब्रिटिश युग में अकाल एक सामान्य बात हो गयी है, जो कि निर्धनता का स्पष्ट प्रमाण है।

## भारत की निर्धनता के कारण

भारत की निर्धनता के लिए उन्होंने ब्रिटेन की आर्थिक एवं राजनीतिक नीति को उत्तरदायी बताया। ब्रिटेन की सेनाओं ओर ब्रिटिश युद्वों का व्यय भारत को वहन करना पड़ता है। भारत में रेलों के निर्माण का कोई लाभ भारत को नहीं मिलता, क्योंकि उसकी आय ब्रिटिश पूंजीपतियों को मिलती है। भारत के लोगों को भारत के प्रशासन तथा रेलों आदि में महत्वपूर्ण कार्य नहीं मिलता, दादाभाई ने भारत से ब्रिटेन को जाने वाली उपार राशि का जिक्र किया, जिसे उनका 'प्रवाह अथवा निर्गम सिद्वान्त' (क्तंपद जीमवतल) कहा जाता है।

उनका कथन था कि भारत में स्थित यूरोपियन अधिकारी एवं उद्योगपति भारत में जो अर्जित करते हैं वह ब्रिटेन को भेज दिया जाता है। उनकी बचत, लाभ, वेतन और पेंशन के रूप में भी भारत का बहुत सा धन बाहर जाता है। यही धन भारत के अन्दर यदि खर्च होता , तो लोगों की खुशहाली बढ़ती।

भारत में पूंजी का निर्माण उद्योग धन्धों और रोजगार की उन्नति के लिए आवश्यक है, परन्तु ब्रिटिश नीति के फलस्वरूप ऐसा होना सम्भव नहीं है। उन्होंने बताया कि सन् 1835 में यह प्रवाह 5 मिलियन पौण्ड था जो सन् 1900 में 30 मिलियन पौण्ड हो गया। देश की पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था इसी कारण थी।

## ब्रिटिश शासन की अप्राकृतिक वित्तीय तथा आर्थिक नीति

दादाभाई ने ब्रिटिश शासकों की अप्राकृतिक वित्तीय तथा आर्थिक नीति पर खेद प्रकट किया। उन्होने अंग्रेजों की नीति को अप्राकृतिक इसलिए बताया कि उन्होंने देश पर सार्वजनिक ऋण का भारी बोझ लाद रखा था और यह बोझ वास्तव में विदेशी साम्राज्यवाद द्वारा थोपा गया राजनीतिक बोझ था। अंग्रेजों ने भारत के शासन के लिए इंग्लैण्ड तथा भारत दोनों ही स्थानों में एक भारी भरकम प्रशासकीय ढांचे का निर्माण किया था। इस ढांचे का व्यय भी भारत पर एक भारी आर्थिक बोझ था। इस प्रकार देशवासी अपने प्राकृतिक अधिकारों तथा जीविका के साधनों से वंचित कर दिए गए थे। इसलिए दादाभाई चाहते थे कि देश की आर्थिक समृद्वि के लिए देश के साधनों के इस विनाशकारी निर्गम को रोका जाए। दादाभाई के शब्दों में ''जब तक इस घातक निर्गम को समुचित रूप से नहीं रोका जाता और भारतवासियों को अपने देश में पुनः अपने प्रकृतिक अधिकरों का उपयोग नहीं करने दिया जाता तब तक इस देश के भौतिक उद्धार की कोई आशा नहीं है।''

## भारत से धन का निर्गम

दादाभाई ने भारतीय वित्त की विभिन्न समस्याओं पर अपनी सांख्यिकी पद्वति से विचार किया और समस्याओं का मूल कारण जानने के लिए वैज्ञानिक विश्लेषण किया। उन्होंने अर्थशास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर सिद्व किया कि भारतीय अर्थतन्त्र भारी आर्थिक निर्गम (म्बवदवउपब क्तंपद) का शिकार है।

भारत की दरिद्रता की व्याख्या उस समय अंग्रेज अर्थशास्त्रियों ने दूसरे ही ढंग से की थी। उन्होंने यह मत प्रकट किया था कि भारत में गरीबी अर्थशास्त्र के सामान्य नियमों के आधार पर बढ़ती जा रही थी। उन्होंने कहा था कि भारत के ऊपर गरीबी को ऊपर से नहीं थोपा जा रहा था वरन् भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या ही इसके लिए उत्तरदायी थी। लेकिन दादाभाई ने इस लचर तर्क की स्वीकार नहीं किया और उन्होंने लिखाः ''प्रायः जनसंख्यातिरेक का घिसा–पिटा तर्क दिया जाता है। वे कहते हैं कि ब्रिटेन द्वारा स्थापित शांति से जनसंख्या में वृद्वि हुई है, किन्तु ब्रिटेन द्वारा देश के धन की लूट से जो विनाश हुआ है उसे वे भूल जाते है... भारत का विनाश आर्थिक नियमों के निर्दयतापूर्वक कार्य करने के कारण नहीं हो रहा है। उनके विनाश का मुख्य कारण ब्रिटेन की क्रुर तथा विचारशून्य नीति है। भारत के साधनों का भारत में ही निर्दयतापूर्वक अपव्यय किया जाता है और इसके अतिरिक्त उन

साधनों को निर्दयतीपूर्वक लूटखसोटकर इंग्लैण्ड ले जाया जाता है। संक्षेप में, भारत का रक्त चूसा जा रहा है और इस प्रकार आर्थिक नियमों को निर्दयतापूर्वक विकृत किया जा रहा है। वस्तुतः ये सब चीजे ही देश के विनाश के लिए उत्तरदायी हैं। जब दोष स्वयं आपका है तो प्रकृति को दोष देने से क्या लाभ होगा? प्राकृतिक तथा आर्थिक नियमों को पूर्णरूप से कार्य करने दीजिए तो भारत दूसरा इंग्लैण्ड बन जाएगा और तब इंग्लैण्ड को स्वयं जाब से कई गुना लाभ होगा।

दादाभाई ने आंकड़े देकर सिद्व किया कि भारत की गरीबी का मुख्य कारण भारत से इंग्लैण्ड जाने वाली भारी धनराशि है। उन्होंने बताया कि इंग्लैण्ड प्रति वर्ष लगभग 3 से 6 करोड़ पौण्ड की दर से भारत के साधनों की लूट कर रहा है। उनका कहना था कि सुदूर इंग्लैण्ड से भारत का शासन बहुत खर्चीला पड़ रहा है और उसके परिणामस्वरूप देश की बहुत अवनति हुई हैं। आर्थिक साधनों के निर्गम के कारण देश में पूंजी का संचय नहीं हो पाता और देश की दरिद्रता निरन्तर बढ़ती जा रही है। उन्होंने अपने निर्गम सिद्वान्त में उन विभिन्न मदों को स्पष्ट रूप से गिनाया जिनके रूप में देश से भारी–भरकम रकम का निष्कासन हो रहा था :

1. ब्रिटिश अधिकारियों की पेंशन, 2. युद्व कार्यालय का भुगतान, 3. भारत में ब्रिटिश सेना का खर्च, 4. भारत सरकार के इंग्लैण्ड में खर्चे, 5. भारत में स्थित ब्रिटिश व्यावसायिक वर्गो द्वारा अपनी कमाई में से स्वदेश भेजी गई रकमें।

चूँकि इस निर्गम के कारण भारत में पूंजी का संचय नहीं हो पाता, इसलिए जिस धन को अंग्रेज लोग यहां से खसोटकर ले जाते हैं उसे पूंजी के रूप में भारत में वापस ले आते हैं और इस प्रकार व्यापार तथा प्रमुख उद्योगों पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लेते हैं और इसके द्वारा वे भारत का और अधिक शोषण करते तथा और अधिक धन देश से बाहर ले जाते हें। अन्त में, सरकारी तौर पर धन का निर्गम ही सारी बुराइयों की जड़ हैं।

आर्थिक निर्गम के साथ–साथ दादाभाई ने नैतिक निर्गम के बारे में भी विचार किया। उन्होंने भारत के नैतिक ह्रास के प्रति दुःख प्रकट करते हुए आर्थिक विपन्नता को बुद्वि तथा अनुभव की क्षीणता से सम्बंधित माना। अंग्रेजों द्वारा भारत में शासन के सभी विभागों में उच्च पदों पर आसीन रहने के कारण भारतीयों में हीनता की भावना का संचार होना स्वाभाविक था नैरोजी के अनुसार यूरोपवासी भारत की सेवा में नियुक्त होकर एक ओर धन अर्जित करने का कार्य प्रारम्भ करते थे। तो दूसरी ओर अनुभव तथा बुद्वि का भी अर्जन करते थे। सेवा निवृत होने के पश्चात वे धन और अनुभव दोनों ही अपने साथ लेकर स्वदेश लौट जाते थे। इस प्रकार भारत को आर्थिक तथा नैतिक दोनों प्रकार की सम्पति से रहित होना पड़ता था। इसका परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय तथा सामाजिक कार्य में बुद्वि तथा अनुभव से युक्त वयोवृद्व व्यक्ति मिलने कठिन हो गए और देश को मार्ग दिखाने वालों की कमी का सामना करना पड़ा।

इस प्रकार का नैतिक निर्गम भारत में महले कभी नहीं हुआ। आक्रामक या तो भारत को लूटकर चले गए या फिर स्थयी रूप भारत में बस गए थे। इस दशा में उत्पादन का समूचा और राजनीतिक–प्रशासनिक अनुभवों की घरोहर सब भारत में ही रहती थी। लेकिन अंग्रेजों की आर्थिक शोषण की नीति भारत के रक्त को भी चूसे जा रही थी। भारत का राष्ट्रीय ऋण दिन–रात बढ़ रहा था। दादाभाई ने कहा कि अंग्रेजों की भारत के आर्थिक शोषण की जो नीति है वह भारत को एक दिन निष्प्राण बना देगी। अंग्रेजों को उन्होंने इस दृष्टि से भारत के सबसे बुरे विदेशी कहा। भारत का धन इंग्लैण्ड में इकट्ठा होता जा रहा था, यह सतत् प्रवाहित शोषण की घारा भारत के आर्थिक विनाश की सूचक थी।

दादाभाई ने ब्रिटिश शासन से मांग की कि भारत और इंलैण्ड के बीच वित्तीय सम्बंधों की समुचित जांच–पड़ताल की जानी चाहिए और उन्हें नैतिक तथा न्यायपूर्ण आधार पर रखा जाना चाहिए।

उन्होंने सुझाव दिया कि भारत के राजस्व पर भारित अनेक मदों का व्यय इंग्लैण्ड के कोष से दिया जाना चाहिए, जैसे कि इण्डिया ऑफिस का व्यय, भारत में रखी जाने वाली अंग्रेजी सेनाओं का व्यय आदि। उन्होंने यह भी मांग की कि प्रशासन के उच्चतर पदों पर भारतीयों को भी नियुक्त किया जाना चाहिए क्योंकि ब्रिटिश सरकार द्वारा इंग्लैण्ड से अपने आदमी चुनकर भेजे जाने से न केवल भारत का आर्थिक पतन होता है वरन् भारतीयों का नैतिक ह्रास भी होता है। दादाभाई ने भारत के साधनों का विकास करने के लिए इंग्लैण्ड की पूंजी का स्वागत किया, लेकिन स्पष्टतः यह भी कहा दिया कि इस पूंजी का उद्देश्य भारत का शोषण करना नहीं वरन् विकास करना होना चाहिए

संक्षेप में, दादाभाई ने अंग्रेजों द्वारा भारत के आर्थिक शोषण का पर्दाफाश किया गया और भारतीय राष्ट्रवाद के आर्थिक आधारों के सिद्वानत (The Theory of the economic Foundation of Indian Nationalism) का प्रतिपादन किया गया।

## दादाभाई के विचरों का मूल्यांकन

## (AN ESTIMATE OF DADABHAI'S POLITICAL PHILOSOPHY)

हम दादाभाई को भारत का पितामह कहते हैं। 'स्वराज' शब्द उन्ही से हमें मिला है। भारत की दरिद्रता हम दादाभाई ने ही हमें कराया था। उन्होने भारतीय राजनीति की आर्थिक व्याख्या प्रस्तुत की। अर्थशास्त्रीय शोध के क्षेत्र मे वैज्ञानिक वस्तुगत पद्वति का उन्होंने अनुसरण किया। राजनीति के क्षेत्र में उन्होंने नैतिकता पर जोर दिया। स्वराज्य की प्राप्ति वे सद्भावना के आधार पर तथा वैज्ञानिक ढंग से ही चाहते थे। वे चाहते थे कि स्वराज्य के लिए उच्च प्रशासनिक नौकरियों में अधिक से अधिक भारतीय आयें तथा विधान सभाओं में भी भारत के अधिक से अधिक प्रतिनिधि रहें।

स्वराज्य की मांग तथा उसे पाने के लिए स्वदेशी व बहिष्कार के साधनों को स्वीकार करने के कारण दादाभाई कांग्रेस के दोनों ही पक्षों (उदार और उग्र) के अधिक निकट समझे जाने लगे। उन्होंने क्रांनितकारी और हिंसात्मक प्रवृति को कभी नहीं उकसाया तथा संवैधानिक आन्दोलन के मार्ग से वे कभी विचलित नहीं हुए। दादाभाई के जीवनी लेखक आर.ए. मसानी लिखते हैं : ''दादाभाई अनेक निराशाओं के बाद भी जिस उद्देश्य, सिद्वांन्त, नीति व कार्यप्रणाली के साथ दृढ़तापूर्वक राजनीति में भाग ले रहे थे, गांधीजी ने उसी का अनुसरण किया।''

## 1.5 महादेव गोविन्द रानाडे

## (MAHADEO GOVIND RANADE : 1842-1901)

### सामान्य जीवन परिचय

रानाडे का जन्म 1842 में बम्बई के नासिक नगर में हुआ था। वकालत की परीक्षा पास करने के बाद वह 1881 में मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त हुए थे। दीर्घकाल तक इस पद पर कार्य करने के बाद वह 1893 में बम्बई हाईकोर्ट के जज नियुक्त हुए। कहा जाता है कि रानाडे पर जर्मन अर्थशास्त्री मिस्ट (स्पेज) का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था। सर्वप्रथम, रानाडे ने ही 'भारतीय अर्थशास्त्र' नामक शब्द का प्रयोग किया था। रानाडे भारत की निर्धनता से काफी दुःखी थे। उन्होंने भारत की अर्थव्यवस्था को सुधारने का हर सम्भव प्रयत्न किया। रानाडे के विचारों का प्रभाव बाद में गॉधीजी पर भी पड़ा। रानाडे का व्यक्तित्व प्रभावशाली तो था ही साथ ही साथ वह जिस बात को कहते थे उसका भी समाज में बड़ा प्रभाव पड़ता था। रानाडे को भारत के 'पुनर्जागरण का पिता' (Father of Indian Renaissance) कहा जाता है। भारत के सन्दर्भ में उन्होंने जो आर्थिक विचार दिये उनमें लिस्ट के विचारों के अतिरिक्त इतिहासवादियों तथा संस्थापित अर्थशास्त्रियों के विचारों का भी प्रभाव देखा जा सकता है।

रानाडे ने भारत के लिए कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की कल्पना की थी। उनके आर्थिक विचारों का संकलन उनकी पुस्तक म्ेंल वद प्दकपंद च्वसपजपबंस म्बवदवउल में है। 'भारतीय अर्थशास्त्र' शब्द का प्रयोग करते हुए उन्होंने कहा था कि आर्थिक नीतियों का निर्धारण भारत की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए, पाश्चात्य देशों में बनाये गये आर्थिक सिद्वान्तों को बिना सोचे समझे भारत पर लागू नहीं किया जा सकता है, क्योकि भारत एक विशिष्ट परिस्थिति वाला परतन्त्र देश है। अतः समृद्व तथा विकसित देशों की आर्थिक नीतियों से इस देश का आर्थिक हित सम्भव नहीं है। अनेक महत्वपूर्ण कार्यो व पदों का सम्पादन करते हुए रानाडे का देहान्त 1901 में हो गया।

## रानाडे के प्रमुख आर्थिक विचार

रानाडे के प्रमुख आर्थिक विचारों को हम निम्न क्रम में प्रस्तुत कर सकते हैं :

### 1. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की आलोचना

रानाडे ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विचारों का गहन अध्ययन किया और वह इस निष्कर्ष पर पहॅुचे कि उनके आर्थिक सिद्वान्त काल्पनिक व अव्यावहाहिक थे। रानाडे के अनुसार प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने जिन आर्थिक सिद्वान्तों को सर्वव्यापक तथा सत्य मान लिया था वे स्थिर परिस्थितियों के पर्याय हैं परन्तु देखा जाय तो अर्थव्यवस्था स्थिर नहीं रह सकती, उसमें सदैव परिवर्तन होते रहते हैं। अतः परिवर्तित परिस्थिति में उनके सिद्वानतों की कोई उपयोगिता नहीं रह जाती है। उनका कहना था कि एडम स्मिथ, रिकार्डों तथा मिल के आर्थिक विचार तो परिवर्तित परिस्थितियों में इंगलैण्ड तक में लागू नहीं हो सकते, भारत में लागू होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता है।

रानाडे के अनुसार प्रतिष्ठित सम्प्रदाय के आर्थिक विचार स्वहित की भावना पर आधारित थे। रानाडे स्वहित की बात मानते अवश्य हैं, परन्तु उन्होंने एक तर्क यह दिया कि व्यक्ति जो भी कार्य करता है उसके पीछे केवल स्वहित की भावना नहीं रहती है, बल्कि वह अन्य परिस्थितियों से भी प्रभावित होकर कार्य करता है।

### 2. अर्थशास्त्र की अध्ययन प्रणाली

रानाडे के अनुसार अर्थशास्त्र के लिए निगमन प्रणाली का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। वह ऐतिहासिक अध्ययन प्रणाली के पक्ष में थे। उनके अनुसार, अतीत काल को ध्यान में रखकर भविष्य के निष्कर्षो को निकाला जाना चाहिए। वह आगमन प्रणाली को अधिक प्रामाणिक प्रणाली मानते थे। उन्होंने अर्थशास्त्र को एक काल्पनिक विज्ञान माना है और कहा है कि इसके नियम स्वयंसिद्व बातों पर आधारित नहीं होने चाहिए।

### 3. नियोजित अर्थव्यवस्था

हम बता चुके हैं कि रानाडे कल्याणकारी राज्य की कल्पना करते थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने नियोजित अर्थव्यवस्था के विचार प्रस्तुत किये हैं। उनके अनुसार, भारत की अर्थव्यवस्था के विकास के लिए एक ऐसी योजना का होना आवश्यक है जिसमें सरकारी हस्तक्षेप हो। रानाडे स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था के पक्षधर नहीं थे। उनके मतानुसार ब्रिटिश सरकार द्वारा भरत के लिए अपनायी गयी स्वतन्त्र व्यापार की नीति हितकर नहीं है। अतः भारत के परिप्रेक्ष्य में वह योजनाबद्व अर्थव्यस्था को लागू करना चाहते थे।

**4. संरक्षण सम्बन्धी नियम**

जर्मन अर्थशास्त्री लिस्ट के समान रानाडे भी भारत के औद्योगिक विकास के लिए संरक्षण की नीति लागू करना चाहते थे। जिस समय रानाडे देश के लिए संरक्षण के विचार प्रस्तुत कर रहे थे उस समय भारत में अंग्रेजों के द्वारा स्वतन्त्र व्यापार की नीति का अनुसरण किया जा रहा था। स्वतन्त्र व्यापार नीति वास्तव में अंग्रेजों के लिए हितकर थी, परन्तु इससे भारत का शोषण हो रहा था। उस समय भारत कृषि प्रधान देश था, उद्योग धन्धों का विकास नहीं हुआ था, पूरे देश में बेरोजगारी तथा निर्धनता का बोलबाला था। यदि ऐसी दशा में भारत जैसा निर्धन देश इंगलैण्ड जैसे शक्तिशाली देश की तरह स्वतन्त्र व्यापार नीति का पालन करने लगता तो उसका अस्तित्व ही समाप्त हो सकता था। रानाडे लिस्ट की संरक्षणवादी नीति से प्रभावित होकर भारत की अर्थव्यवस्था के लिए भी संरक्षण की नीति का समर्थन करने लगे थे, परन्तु अंग्रेज रानाडे की इस नीति का परिपालन नहीं कर पाये, क्योंकि यह व्यवस्था उनके लिए हितकर नहीं थी।

हम यहॉ इस बात को स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि रानाडे अंग्रेजों से प्रत्यक्ष रूप में भारत के लिए संरक्षण की नीति लागू करने के लिए नहीं कह सकते थे, क्योकि उनका ऐसा करना, उसने भारत छोड़ों कहने के बराबर होता। अप्रत्यक्ष रूप में उन्होंने अंग्रेज सरकार से कहा था कि सरकार ने रेलें, नहरें बनाकर यह मान लिया कि देश में प्रत्येक कार्य निजी पूँजी के हाथ में नहीं छोड़ा जा सकता है। अतः सरकार को चाहिए कि वे सब कार्य करे जो सार्वजनिक हित में वह सर्वोत्तम ढंग से कर सकती है।

**5. औद्योगीकरण के पक्ष में तर्क**

रानाडे के विचार लिस्ट के विचारों से मेल खाते हैं। वह गरीबी को दूर करने तथा देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए सम्पूर्ण देश में औद्योगीकरण का जाल बिछा देना चाहते थे। वे उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए संरक्षण सम्बंधी विचार भी देते हैं। उनके अनुसार, औद्योगीक उन्नति के लिए कोई भी बलिदान अधिक नहीं हो सकता है। औद्योगीकरण को वह बेरोजगारी का स्थायी हल मानते थे। यहॉ यह नहीं समझ लेना चाहिए कि रानाडे केवल उद्योगों के ही विकास की बातें करते थे। उन्होंने औद्योगीकरण के लिए कृषि के महत्व को भी सर्वोच्च स्थान दिया था। उनके अनुसार, कृषि व्यवस्था पर देश के करोड़ों लोग आश्रित हैं। अतः इस व्यवसाय का विकास होना आवश्यक है। बिना कृषि विकास के उद्योग धन्धों को कच्चा माल उपलब्ध नहीं हो सकेगा, तथा करोड़ों लोगों को खाने को भोजन भी नहीं मिलेगा।

**6. निर्धनता के सम्बंध में विचार**

सर्वप्रथम, रानाडे ने भारत की निर्धनता के कारणों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। इससे पूर्व भी अन्य विद्वानों ने भारतीय निर्धनता के कारणों पर प्रकाश डाला था परन्तु वे कारण उतने सटीक नहीं हैं जितने रानाडे के द्वारा बताये गये थे। उनके अनुसार, भारतीय निर्धनता के प्रमुख कारण हैं :

(i) देश का कृषि प्रधान होना तथा कृषि का परम्परागत तरीके से किया जाना।

(ii) भूमि–सुधार कार्यक्रमों का अभाव तथा दोषपूर्ण भू–नीति

(iii) उद्योग–धन्धों का अभाव तथा देश में जोखिम झेलने वाले साहसियों का अभाव

(iv) देश में उद्योग–धन्धों के विकास के लिए पूँजी की कमी। पूँजी–निवेश के स्वच्छ अवसरों का अभाव तथा देश में बैंकिंग व्यवस्था का अल्पविकास।

दादाभाई नौरोजी ने बताया कि देश की निर्धनता का मुख्य कारण देश के साधनों का विदेशों को निष्कासित किया जाना है। रानाडे नौरोजी के इस विचार से सहमत नहीं थे। उनका कहना था कि निर्धनता का मुख्य कारण भारत की पिछड़ी हुई कृषि व्यवस्था तथा उद्योग धन्धों का अभाव है। वह इस व्यवस्था में सुधार लाने के लिए संरक्षण के पक्ष में थे। उनका विचार था कि देश के श्रमिकों तथा किसानों को उनके श्रम का उचित पुरस्कार नहीं मिल रहा है, जिसके कारण देश का निर्धनता और भी अधिक बढ़ रही है। भारत में बैंकों का विकास न होने से साख व्यवस्था उचित नहीं है। अतः साख व्यवस्था के अभाव में देश के उद्योग धन्धों का विकास नहीं हो पा रहा है। रानाडे का सुझाव था कि देश में यातायात के साधनों का विकास किया जाय और सर्वत्र लधु एवं कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जाय।

### 7. लगान सम्बन्धी विचार

रानाडे भारत के सन्दर्भ में, रिकार्डो के लगान सिद्वान्त को मान्यता नहीं देते हैं। उनके अनुसार, भारत में जमींदारों के बीच भूमि प्राप्त करने की प्रतियोगिता नहीं है। उनके विचार से किसानों की गरीबी का प्रमुख कारण उनसे वसूल किया जाने वाला लगान था। भूमि प्राप्त करने के लिए किसानों के बीच जो प्रतियोगिता होती है वे उस प्रतियोगिता को सरकारी हस्तक्षेप से दूर रखना चाहते थे। रानाडे का कहना था कि भूमि उन लोगों के हाथों में जाने से रोकनी चाहिए जो उसे स्वयं नहीं जोतते हैं। उन्होंने जमींदारी प्रथा को समाप्त करने का भी बात कही थी। इस प्रकार, उनके भूमि सम्बंधी सुधार वर्तमान समय के भूमि–सुधार कार्यक्रमों से मेल खाते हैं।

### 8. जनसंख्या सम्बन्धी विचार

रानाडे ने जनसंख्या के उचित वितरण की बात कही है। उनके अनुसार, कृषि एवं उद्योगों के विकास के लिए यह आवश्यक है कि जनसंख्या का वितरण समान रूप से किया जाय। अतः जनसंख्या का वितरण सुनियोजित ढ़ंग से किया जाना चाहिए। उनका तो यहॉ तक कहना था कि जनसंख्या के अधिक हो जाने पर उसे विदेशों में जाने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।

### 9. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम–विभाजन

रानाडे प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन के पक्ष में नहीं थे। जैसा हम जानते हैं कि प्रतिनष्ठित अर्थशास्त्रियों का मत था कि गर्म देश केवल कच्चे माल का ही उत्पादन करें जबकि ठण्डे देश निर्मित माल का। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार, इस प्रकार के श्रम विभाजन से दोनों ही देशों का हित होगा, परन्तु रानाडे इस विचार के पक्ष में नहीं थे। उनके अनुसार, ऐसा करने से कुछ देश लगातार आर्थिक प्रगति करते रहेंगे और कुछ देश पिछड़ते जायेगें। संक्षेप में, इस क्रिया से शीतोष्ण कटिबन्धीय देश उष्ण कटिबन्धीय देशों का शोषण करते जायेंगे। अतः इस प्रकार के श्रम विभाजन का विशेष महत्व नहीं है।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि रानाडे अपने युग के महान अर्थशास्त्री थे। उन्होंने ही सर्वप्रथम भारतीय अर्थशास्त्र की नींव डाली तथा भारत में कृषि व्यवसथा को सुधारने और औद्योगीकरण की नींव डालने के लिए महत्वपूर्ण कार्य किये। वह देश की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए उसी प्रकार की अर्थव्यवस्था को निर्मित करने के पक्ष में थे। भारत की आर्थिक दशा को ध्यान में रखते हुए उन्होंने सरकारी हस्तक्षेप तथा संरक्षण के महत्व को स्वीकार किया था।

### 1.6 गोपाल कृष्ण गोखले

## (GOPAL KRISHNA GOKHALE : 1866-1915)

### सामान्य जीवन परिचय

गेपाल कृष्ण गोखले का जन्म 9 मई 1866 को महाराष्ट्र राज्य के रत्नागिरि जिले में स्थित कुतलोक (ज्ञनजसवा) नामक स्थान पर हुआ था। गोखले जब 10 वर्ष की आयु के थे तब उन्हें घर छोड़कर प्रारम्भिक शिक्षा के लिए कोल्हापुर जाना पड़ा था। 1879 में जब उनकी उम्र 13 वर्ष की थी तब उनके पिता का देहान्त हो गया था। 1893 में उनकी माता का भी देहान्त हो गया। जब उनकी उम्र 14 वर्ष की थी तब उनकी शादी हो गयी थी। इसके बाद, जब वह 21 वर्ष के हुए तब उनकी दूसरी शादी भी हो गयी। 1881 में हाईस्कुल की परीक्षा पास करने के बाद उन्होंने 1884 में एलफिन्स्टन कालेज, बम्बई से बी.ए. की उपाधि प्राप्त की। बी.ए पास करने के बाद उन्होंने कानून का अध्ययन किया। 1886 से 1902 तक उन्होंने पूना के फर्गूसन कॉलेज में इतिहास और अर्थशास्त्र पढ़ाया। 1887 में वह महादेव गोविन्द रानाडे के सम्पर्क में आये। रानाडे का गोखले पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा था। 1899 में वह बम्बई विधान सभा के लिए सदस्य निर्वाचित हो गये। 1888 में वह सार्वजनिक सभा के मन्त्री भी नियुक्त हुए। गोखले दक्षिण शिक्षा समाज (Deccan Education Society) के आजीवन सदस्य रहे और समय–समय पर वह उसकी प्रगति तथा कार्य–विधि में रूचि लेते रहे। 1895 में वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के उपमन्त्री भी नियुक्त हुए थे।

1896 में उनकी प्रथम भेंट गॉधीजी से हुई। गॉधीजी गोखले के विचारों से इतने अधिक प्रभावित हुए कि वह उन्हे अपना राजनीतिक गुरू मानने लगें। 1897 में वह वेलबी आयोग (Welby Commission) के सामने अपना बयान देने इंगलैण्ड गये, जहॉ उनकी भेंट दिनशा वाचा (Dinsha Wacha) तथा नैरोजी (Naoroji) से हुई। 1902 में वह केन्द्रीय विधान सभा (Imperial Legisative Council) के सदस्य निर्वाचित हुए थे। 1904 में उनको C.I.E. की सम्मानार्थ उपाधि दी गयी। वह अनेक कामों के सन्दर्भ में अनेक बार ईगलैण्ड जाते रहे। उन्हीं के द्वारा भारत में ‘‘मतअंदजे व्‍िपदकपं ‘‘वबपमजल’ की स्थापनपा की गयी जो आज भी जीवित है। 1908 में उनके द्वारा रानाडे आर्थिक संस्थान की स्थापना की गयी। 1912 में गोखले को लोक–सेवा आयोग के सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया। 1914 में उनको ज्ञ.C.I.E. की उपाधि दी गयी जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया। गोखले लगभग तीस वर्षो तक राजनीतिक एवं शैक्षिक जीवन व्यतीत करते रहे। उन्होंने भारत के पक्ष में अंग्रेजों की कटु आलोचना भी की। वे लॉर्ड कर्जन (Lord Curzon) के कटु आलोचक थे। इतने पर भी, 19 फरवरी 1915 को जब गोखले की मृत्यु हुई तब लॉर्ड कर्जन ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा था

कि ‘‘वास्तव में ईश्वर ने उन्हें असाधारण योग्यताऍ प्रदान की थी, जिनका उन्होंने सच्ची भावना के साथ अपने देश के हितों के लिए उपयोग किया।

### गोखले के आर्थिक विचार

गोखले के आर्थिक विचारों को उनके लेखों तथा भाषणों से संग्रहीत किया जा सकता है। उनके आर्थिक विचारों पर रानाडे तथा दादाभाई नौरोजी की स्पष्ट छाप दिखायी देती है। लोकवित्त के क्षेत्र में उनकी गहरी पैठ थी। गोखले के आर्थिक विचारों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि उसका मुख्य उद्देश्य भारत की निर्धनता को दूर करना था। संक्षेप में, उनके आर्थिक विचारों को निम्न क्रम से प्रस्तुत किया जा सकता है :

**1. बजट सम्बन्धी विचार –** गोखले का विचार था कि भारत क बजट को अलग–अलग भागों में विभाजित किया जाना चाहिए, और उस पर खुलकर बहस भी होनी चाहिए। गोखले बचत के बजटों के

पक्ष में नहीं थे। उनके अनुसार, यदि सरकार बचत के बजट बनाती है, तो वह लोगों से प्राप्त धनराश को लोगों के हित में खर्च नहीं करती है। गोखले ऋण की अदायगी के लिए बचत के बजटों का उपयोग नहीं करना चाहते थे। उनके मतानुसार, देश में रेलें आय का अच्छा साधन हैं। अतः रेलों के लाभ से ही ऋण की अदायगी की जानी चाहिए। गोखले ऋणों की अदायगी के लिए लोगों पर भार नहीं डालना चाहते थे, और न ही वह करारोपण से ऋण भार की अदायगी के पक्ष में थे।

**2. अनुत्पादक व्यय पर रोक** – गोखले ने बढ़ते हुए सरकारी व्यय को रोकने की भी बात कही। सेना पर होने वाले व्यय को वह अनुत्पादक व्यय कहते हैं। उनके अनुसार, भारत में वित्तीय नियन्त्रण अपर्याप्त है। उनके अनुसार, सरकार करारोपण के द्वारा जो आय प्राप्त कर रही है उस पर आय का अधिकांश भाग ब्रिटिश साम्राज्य के आधिपत्य को कायम रखने के लिए व्यय किया जाता है। यूरोपीय सिविल सर्विस के अफसरों को ऊँचे वेतन, भत्ते आदि दिये जाते हैं जो अपव्यय है। अंग्रेजों की यह व्यवस्था भारत के लिए हितकर नहीं है। अंग्रेज सरकार का बढ़ता हुआ व्यय–भार करदाताओं को भारी क्षति पहुँचा रहा था, जो देश की निर्धनता को बढ़ाता रहा है। यदि इस व्यय को उत्पादक कार्यो में लगा दिया जाता, तो इससे देश की अर्थव्यवस्था को सुधारा जा सकता था।

**3. उत्पादक व्यय के पक्षपाती** – हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि गोखले प्रत्येक प्रकार के व्यय को नियंन्त्रित करने के पक्ष में थे। वह हर प्रकार के व्यय को न तो नियन्त्रित करना चाहते थे और न ही हर प्रकार के व्यय को अनुत्पादक कहते थे। वह प्रशासकनिक व्यय को अवश्य की कम करना चाहते थे, जबकि शिक्षा स्ववास्थ्य तथा उद्योगों के विकास पर किया जाने वाला प्रत्येक व्यय उनकी दृष्टि में उत्पदक था। गोखले अत्यधिक करारोपण के पक्ष मे भी नहीं थे। उनके अनुसार, नमक पर कर तथा सूती कपड़े पर लगाया गया उत्पादन शुल्क समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

4. **लैण्डएलिनेशन बिल का विरोध** – जिस समय गोखले बम्बई विधान परिषद के सदस्य थे उसी समय स्ंदक ।सपमदंजपवद ठपसस नामक कानून का प्रस्ताव सरकार ने प्रस्तुत किया था। गोखले के अनुसार ग्रामीण ऋणग्रस्तता का प्रमुख कारण किसानका अपनी जमीनको महाजन के पास गिरवीं रख देना है। यह जमीन हमेंशा के लिए महाजन की हो जाती थी। सरकारी कानून में ऐसी व्यवस्था की गयी थी कि किसान अपनी भूमि को गिरवीं तो नहीं रख सकेगा, परन्तु वह अपनी फसल को अवश्य गिरवीं रख सकेगा। गोखले ने इस कानून का विरोध किया था।

**5. सहकारिता आन्दोलन के जन्मदाता** – गोखले को भारत के लिए सहाकरी आन्दोलन का जन्मदाता कहा जा सकता है। गोखले से पूर्व किसी भी विद्वान का ध्यान इस ओर नहीं गया था। वह भारत की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए देश में सहकारी आन्दोलन की नींव डालना चाहते थे।

6. **स्वतन्त्र व्यापार सम्बंन्धी विचार** – गोखले ने स्वतन्त्र व्यापार की नीति का समर्थन अवश्य किया था, परन्तु उन्होंने यह सुझाव भी दिया था कि देश की आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थिति का ध्यान रखते हुए व्यापारिक नीति का निर्धारण किया जाना चाहिए। उनके अनुसार, प्रत्येक दशा में संरक्षण की नीति लाभप्रद नहीं हो सकती है। वे संरक्षण के द्वारा देश में शक्तिशाली औद्योगिक संगठन के पक्ष में नहीं थे।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि गोखले एक व्यवहारकुशल अर्थशास्त्री थे। उन्होंने जो भी विचार व्यक्त किये थे वे विचार देश के हित को ध्यान में रखकर दिये गये थे। वह देश की दशा को ध्यान में रखते हुए प्रशासनिक अपव्यय को रोकना चाहते थे। सामाजिक कल्याण को बढ़ाने वाले प्रत्येक व्यय, जैसे शिक्षा तथा स्वास्थ्य पर किये जाने वाले व्यय को वह बुरा नहीं मानते थे। कुल मिलाकर हम कह सकते है कि गोखले एक समाज–सुधारक तथा महान अर्थशास्त्री थे।

### 1.7 निष्कर्ष

इस अध्याय के अन्तर्गत भारत के महान आर्थिक विचारक कौटिल्य, वैल्यूवर, दादाभाई नौरोजी, रानाडे और गोपाल कृष्ण गोखले के सामाजिक आर्थिक विचारों को दर्शाया गया है प्राचीन काल में भारत भले ही अर्थ प्रधान न रहा हो परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि देश के विद्वानों, आर्थिक पक्षों में सोचा व लिखा न हो भारत में 19वीं शताब्दी के मध्य तक कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुए सौभाग्य की बात है कि 19वीं शताब्दी के मध्य में देश के कुछ विद्वानों देश के कुछ विद्वानों ने भारतीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए स्वतंत्र चिन्तन करना प्रारम्भ कर दिया था। राष्ट्रवाद, निर्धनता का प्रभाव बुद्धिवाद इत्यादि आधारों पर अनेक प्रकार के आर्थिक सुधार के लिए उपरोक्त चिन्तकों ने अपना विचार व्यक्त किया।

### 1.8 अभ्यास प्रश्नः–

1. कौटिल्य के आर्थिक विचारों को स्पष्ट कीजिए।
2. भारतीय संदर्भ में दादाभाई नौरोजी के आर्थिक विचारों पर प्रकाश डालिए।
3. गोपाल कृष्ण गोखले के आर्थिक विचारों को दर्शाए।

### 1.9 संदर्भ सूची


I. Madan,G.R.-Economic Thinking in India (1966).

II. Mudgal, B.S.- Political Economy in Ancient India.

III. Naroji,Dadabhai.- Poverty and un-British rule in India. (1901).

IV. Ranade, M.G.- Essays on Political Economy. (1898).

V. Shah,K.T.- ancient Foundations of Economics in India,(1954).

VI. Shyama Shastri,- Kautilya’s Arthashastra, 6Th. Ed., 1960.

## इकाई–02

## गांधी जी के आर्थिक विचार, स्वदेशी विचारधारा, श्रम तथा मशीनों का महत्व, न्यायवादी सिद्धान्त

**इकाई की रुपरेखा–**


**2.0 उद्देश्य**

**2.1 प्रस्तावना**

**2.2 गांधी का सर्वोदय दर्शन।**

**2.3 गांधी के आर्थिक विचार।**

**2.4 गांधी का आदर्शवाद**

**2.5 श्रम तथा यंत्रीकरण**

**2.6 न्यास का सिद्धान्त**

**2.7 निष्कर्ष**

**2.8 अभ्यास प्रश्न।**

**2.9 संदर्भ सूची।**


### 2.0 उद्देश्य

भारतीय स्वतंत्रता के महानायक महात्मा गांधी को माना जाता है भारतीय संदर्भ में गांधी जी के विचारों के बारें में जानकारी देना इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य है चूंकि गांधी जी अर्थशास्त्री नहीं थे किन्तु भारतीय जनमानस के आवश्यकताओं और उपलब्ध संसाधनों के संदर्भ में उनके आर्थिक विचार अत्यधिक महत्वपूर्ण पाये जाते हैं।

### 2.1 प्रस्तावना

महात्मा गांधी का जन्म 2 अक्टूबर, 1869 को गुजरात के पोरबन्दर स्थान में हुआ था। इनके पिता करमचन्द एक रियासत के दीवान थे। माता अत्यन्त धार्मिक महिला थीं। धार्मिक संस्कार इनको जन्म से ही मिले थे। प्रारम्भिक शिक्षा भारत एवं इंगलैण्ड में हुई। वहां से वकालत पास करके यह वापस आये। उनका राजनीतिक जीवन दक्षिणी अफ्रीका में प्रारम्भ हुआ। वहां उन्होंने गौरी सरकार का विरोध किया। वापस लौटकर गांधीजी ने अपने को देश की सेवा में अर्पित कर दिया और जीवन भर देश सेवा में संलग्न रहे।

गांधीजी के जीवन का वर्णन देश के इतिहास का वर्णन है, क्योंकि सन् 1915 से 1948 तक वे भारत के बिना ताज के बादशाह थे और देश के एकमात्र नेता थे। उनको राष्ट्रपिता कहा जाता है। 30 जनवरी, 1948 को नाथूराम गोडसे ने उन्हें गोली मार दी थी।

गांधीजी का साहित्य एवं वाडमय विशाल है। उनके अभी व्याख्यान, लेख यहां तक कि पत्र भी संकलित किये जा चुके हैं अथवा किये जा रहे हैं। उन्होंने हरिजन एवं Young India का सम्पादन

किया था, जिनमें उनके विचार एकत्र हैं। उनके प्रधान ग्रन्थ ' सत्य के मेरे अनुभव' या आत्मकथा, 'शत प्रतिशत स्वदेशी', ' रचनात्मक कार्यक्रम' तथा 'अनासक्ति योग' आदि प्रमुख हैं।

गांधीजी पर मुख्य प्रभाव धर्मो और संतों का था। ईसाई धर्म से उन्होंने प्रेम और सेवा का पाठ सीखा, जैन धर्म से अहिंसा ग्रहण की और हिन्दू धर्म की आध्यात्मिकता उनके जीवन का आधार थी। उन पर रानाडे, गोखले, तिलक, टाल्सटाय तथा रस्किन का प्रभाव था। गांधीजी एक महान् राजनीतिज्ञ, विचारक, संत एवं अर्थशास्त्री थे। उल्लेखनीय है कि सर्वोदय केवल आर्थिक सिद्वान्त नहीं हैं—आर्थिक विचार उसका एक पक्ष मात्र है। सर्वोदय एक समग्र विचारधारा है और इसका अपना दर्शन, राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक चिन्तन है। यद्यपि हमें आर्थिक पक्ष का ही विशेष अध्ययन करना है, परन्तु पृष्ठभूमि के रूप में उसके अन्य विचारों को भी जानना आवश्यक है।

## 2.2 गांधीजी का सर्वोदय का दर्शन

'सर्वोदय' शब्द से यह स्पष्ट है कि इसका लक्ष्य सब लोगों का उदय या उन्नति है। इसमें निहित अर्थ गरीब और दलित व्यक्तियों को सबसे पहले उठाना है और यह बाइबिल के सिद्वान्त 'पीड़ित की रक्षा करों' (Unto this last) को आधार मानकर चलता है। इसके साथ ही इसमें साम्यवाद के वर्ग–संधर्ष की घृणा एवं हिंसा का अभाव है।

सर्वोदय का आधार आध्यामिकता (Spirituatlism) है। यह ईश्वर तथा आत्मा में आस्था रखता है। परन्तु यह आधार दुराग्रह एवं कट्टरता से मुक्त है। प्रत्येक धर्म को मानने वाले यहां तक कि नास्तिक के लिए सर्वोदय के मंच पर स्थान है। जीवन का उद्देश्य भगवान को पाना है और भगवान के अनन्त रूप है। गांधीजी कहतें थे, सत्य ही ईश्वर हैं' यह अत्यन्त व्यापक परिभाषा है। सत्य साध्य है तथा अन्य सब चीजें साधन हैं। सत्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य जो काम करता है तथा जो वस्तुएं उपलब्ध करता है वही उसका कर्म है।

कर्म को सेवा बनाना है, चाहे वह आर्थिक कार्य हो या राजनीतिक। सेवा कर्म को या साधन को पवित्र बनाने का नाम है। साधन को पवित्र बनाने के लिए अहिंसा प्रथम सिद्वान्त और प्रेम दूसरा। इस प्रकार गांधी के दर्शन का मूल मन्त्र है सत्य, अहिंसा और प्रेम।

प्रसिद्व लेखक रोमां रोला (Romain Rolland) ने गांधीजी को 'आधुनिक ईसामसीह' (Modern Christ) कहा था। वह बात बिल्कुल सत्य है।

## 2.3 गांधीजी के आर्थिक विचार

**(ECONOMIC THOUGHT OF GANDHI JI)**

इनके आर्थिक विचारों को हम संक्षेप में इस प्रकार लिख सकते हैंः

1. **अर्थशास्त्र का उद्देश्य जनता की सेवा करना** – उन्होंने लिखा है, ''जो अर्थशास्त्र शक्तिशाली व्यक्तियों को गरीब का शोषण सिखाता है वह असत्य अर्थशास्त्र है। सच्चा अर्थशास्त्र सबके लाभ के लिए होता है और वह जीवन के लिए अनिवार्य है।'' इसका अर्थ यह हुआ कि गांधीजी की दृष्टि में अर्थशास्त्र एक नैतिक विज्ञान है। पाश्चात्य विचारक उसे मुख्य रूप से एक प्राकृतिक विज्ञान ही मानते रहे हैं। यह एक मौलिक उन्तर है। वस्तुतः यह केवल आर्थिक दृष्टिकोण का ही अन्तर नहीं, जीवन के प्रति पूर्व पश्चिम के दृष्टिकोण का भेद है। भारतीय आदर्श सदा जीवन का एक लक्ष्य मानकर चलता है।

2. **अर्थ जीवन का साध्य नहीं साधन है** – गांधीजी ने धन को महत्वपूर्ण मानते हुए भी उसे साधन ही माना है। उनका सिद्वान्त था 'जीने के लिए खाओं, खाने के लिए मत जिओं।' इसका अर्थ यह हुआ कि

उपभोग आर्थिक क्रिया का उद्देश्य नहीं है। धन का उपयोग इसलिए जरूरी है कि मनुष्य अपने कार्य को भली–भांति कर सके।

**3. अर्थ के विषय में आदर्श भोग नहीं त्याग होना चाहिए –** यहां हम गांधीजी में असाधारण सन्तुलन पाते हैं। उन्होंने एक तरफ तो जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति आवश्यक समझी–भोजन, बस्त्र, निवास, शिक्षा एवं इलाज को अनिवार्य बनाना, परन्तु दूसरी तरफ आवश्यकताओं के कम करने पर जोर दिया। विलासिता को उनके अर्थशास्त्र में कोई स्थान नहीं है। 'सादा जीवन उच्च विचार' उनका आदर्श था। इसका अर्थ यह है कि गांधीजी के अनुसार उपयोगिता का अर्थ उपादेयता (Usefulnè) है। विदेश में जो शराब तथा सिगरेट आदि में उपयोगिता कही गयी है वह गांधी को मान्य नहीं है। यह भी एक आधारभूत अन्तर है और यही दृष्टिकोण जीवन स्तर (ैजंदकंतक व िसपअपदह) के प्रति भी है। ऊंचे जीवन स्तर का आशय पाश्चात्य दृष्टिकोण से अर्थ बहुत सी आवश्यकताओं से होता है, परन्तु सर्वोदय में ऊंचा जीवन स्तर ऊंचे आदर्शो और मूल्यों से निर्मित होता है।

4. **गांधी का अर्थशास्त्र मूल रूप से समाजवादी –** धन का उपयोग व्यक्ति के लिए नहीं समाज मात्र के लिए होना चाहिए। वे 'ईशावास्य वृत्ति', 'त्येन त्यक्तेन भुअजीथा' के समर्थक थे। उन्होंने व्यक्तिगत पूंजी का बहुत विरोध नहीं किया, परन्तु वे यह मानते थे किधन का संग्रह समाज के हित में ही होना चाहिए। इसी कारण उन्होंने अपने प्रसिद्व 'न्यासवाद का सिद्वान्त' (Theory of Trusteeship) का प्रतिपादन किया। धनी लोग अपने धन को समाज की धरोहर समझें और समाज के हित में ही उसे व्यय करें। गांधीजी धन के न्यायपूर्ण वितरण के पक्ष में थे। आय की असमानता समाप्त होनी चाहिए, ऐसा मानते थे। शिक्षा, न्याय तथा भोजनादि सुविधाएं सबके लिए समान रूप से उपलब्ध होनी चाहिए।

5. **गांधी का आदर्श एक वर्गहीन समाज का निर्माण करना –** इस विषय में वे साम्यवाद के आदर्श को मानते थे। धन, जाति, धर्म तथा वर्ण इत्यादि का भेद समाप्त होना चाहिए। ऊंच–नीच का अन्तर अनैतिक है।

**6. आधुनिक बड़े उद्योगों तथा मशीनी उत्पादन के विरूद्व – उनके अनुसार बड़े उद्योगों और मशीनी उत्पादन से समाज में शोषण बढ़ता है तथा बेकारी फैलती है। इसके स्थान पर वे लद्यु उद्योगों के समर्थक थे। गांधीजी ने चरखे को अपनी क्रान्ति का प्रतीक बनाया, जो कि कुटीर शिल्प के प्रति उनकी आस्था का प्रमाण है। उनके प्रभाव से खादी एवं ग्रामोद्योग का महत्व बढ़ा।**

7. **समाज की विषमता दूर करने के लिए रचनात्मक कार्यक्रम (Constructive Programme)** – अहिंसा और सत्याग्रह द्वारा समाज को बदला जाय। यहां पर उनका 'हदय परिवर्तन का सिद्वान्त आता ह। मनुष्य में सतोगुण, अर्थात् देवत्व का अंश रहता है। उसे विकसित करके मनुष्य को पशु से मानव बनाया जा सकता है ऐसा उन्होंने सिद्व करके दिखाया भी है।

8. **गांधीवादी अर्थशास्त्र एक नियन्त्रित अर्थशास्त्र (Controlled Economy ) है** – उनका आदर्श यह था कि नियन्त्रण बाहर से शासन द्वारा नहीं अन्दर से होना चाहिए। यह नैतिक समाज की सही व्यवस्था के लिए आवश्यक है।

9. **आर्थिक स्वावलम्बन –** गांधीजी आर्थिक स्वावलम्बन को आवश्यक मानते थे। राष्ट्र को ही नहीं प्रत्येक गांव को आर्थिक रूप से आत्म–निर्भर होना चाहिए और अपनी आवश्यकता की वस्तुओं का स्वयं निर्माण करना चाहिए।

**10. ग्राम राज्य –** उनकी अर्थव्यवस्था में गांवों की प्रधानता है। गांव एक परिवार सा हो, कोई भेदभाव न रहें, परस्पर वे एक–दूसरे की सहायता करें तथा प्रत्येक की समस्या को सबकी समस्या समझाा जाय।

इस विचार को विनोबाजी ने बहुत आगे बढ़ाया है। उनके अनुसार प्रत्येक गांव एक स्वतन्त्र राज्य के समान आत्मनिर्भर होना चाहिए।

**11. श्रम का महत्व** – गांधीजी के अनुसार श्रम अत्यन्त पवित्र वस्तु है। कोई कार्य छोटा नही है। हमें स्वयं अपने हाथ से मेहनत करनी चाहिए। प्रत्येक को शारीरिक श्रम करना आवश्यक है और प्रत्येक को कार्य भी मिलना जरूरी है।

**12. अनावश्यक क्रियाओं की समाप्ति** – अनावश्यक आर्थिक क्रियाएं जैसे शराब तथा अफीम का उत्पादन समाप्त हो। सट्टा तथा अनावश्यक विदेशी व्यापार आदि भी त्याज्य हैं।

**13. पशुपालन** – पशुपालन एवं खास तौर से गौ सेवा उनके अनुसार अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

14. **जनसंख्या** – जनसंख्या के विषय में यद्यपि उनका दृष्टिकोण माल्थस के समान निराशाबादी नहीं है, परन्तु वे सीमित जनसंख्या को ही उचित समझते थे। इसके लिए वे संयम एवं निग्रह को ही आवश्यक मानते थे।

15. **राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता** – राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता भी इनका एक सिद्वान्त है। हमें अपनी आवश्यकताओं की स्वयं पूर्ति करनी चाहिए।

16. **सधन की पवित्रता** – गांधी दर्शन का एक सिद्वान्त साधन की पवित्रता है। दूषित साधन से पवित्र उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो सकती, यह एक मनोवैज्ञानिक सिद्वान्त है। सत्य की स्थापना असत्य द्वारा, अहिंसा की हिंसा द्वारा तथा प्रेम की धृणा द्वारा नहीं हो सकती। यदि हम हिंसा से अहिंसक समाज लाना चाहते हैं, तो यह सम्भव नहीं है,क्योंकि इससे हिंसा का ही महत्व समाज में बढ़ता है।

### महात्मा गांधी के आर्थिक विचारों का मूल्यांकन

गांधीजी का आर्थिक चिन्तन नैतिक एवं व्यावहारिक है, जैसा कि भारत की परम्परागत विचारधारा है। उनका अर्थशास्त्र उनके समाजशास्त्र का ही एक भाग है, उसे जीवन के अन्य भागों एवं उद्देश्यों से अलग नहीं किया जा सकता। गांधीजी के अर्थशास्त्र के कुछ सिद्वान्तों का विस्तृत विवेचन आवश्यक है।

### 2.4 गांधीजी का आदर्शवाद

उनकी आर्थिक विचारधारा आदर्शवादी एवं नैतिक (Moral and Normative ) है, जिस कारण पाश्चात्य अर्थ में उनको अर्थशास्त्री नहीं कहा जा सकता, परन्तु उनका आदर्शवाद अव्यावहारिक नहीं है। भले ही उनके सिद्वान्त विज्ञान के नियमों पर आधारित नहीं, किन्तु वे सम्भव और सत्य हैं। व्यक्ति और समाज का आर्थिक आचरण (Economic Behaviour ) क्या है और किन नियमों पर आधारित है, यह उनके चिन्तन का विषय नहीं है। वे केवल यह विचार करते हैं कि आर्थिक आचरण कैसा होना चाहिए। एडम स्मिथ का कथन था कि मनुष्य अपने स्वार्थ से संचालित होता है, परन्तु गांधीजी ने यह कहा है कि मनुष्य के आचरण को बदल जा सकता है जिससे कि वह समाज के हित में संचालित हो। मनुष्य की प्रकृति को बदला जा सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि आर्थिक नियम शाश्वत नहीं हैं, उनकी दिशा बदली जा सकती ह। कार्ल मार्क्स भी आर्थिक नियमों को शाश्वत नहीं मानते थे, परन्तु उनके परिवर्तन का कार्यक्रम समाज को बदलने पर आधारित था। वे शक्ति द्वारा शोषण बन्द करने के पक्ष में थे, किन्तु गांधीजी का निग्रह आन्तरिक है।

स्वयं अपने जीवन के द्वारा उन्होंने यह प्रमाणित किया कि आर्थिक क्रियाएं बदली जा सकती हैं। स्वयं गांधीजी पर आर्थिक नियम लागू नहीं हो सकते। एकाधिकार का सिद्वान्त, मूल्य का सिद्वान्त तथा

ग्रेशम का नियम इन सबके गांधी उपवाद ही निकलेगे। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या समाज के आचरण को बदला जा सकता है? उत्तर बहुत आशाजनक नहीं है। निग्रह से जनसंख्या का नियन्त्रण अभी तक सम्भव नहीं हुआ। पूंजीवादियों को ट्रस्टी बनाना शेर को घास खाना सिखाना है। अपवादस्वरूप एकाघ व्यक्ति को सेठ जमनालाल बजाज बनाया जा सकता है, परन्तु पूरे समाज को सेवायुक्ति सिखाना कम से कम सभ्यता के वर्तमान चरण में सम्भव नहीं है उसके लिए बाहरी नियन्त्रण अत्यन्त आवश्यक है।

## 2.5 श्रम तथा यन्त्रीकरण के सम्बन्ध में विचार

गांधीजी मशीनों के विरोधी थे। उन्होंने लिखा है कि ''मशीनें आधुनिक सभ्यता की प्रतीक है और एक बड़े पाप का प्रमाण है। मशीन में मुझे कोई अच्छाई नजर नहीं आती। इसकी बुराई पर ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। इसलिए मुख्य बात मत भूलो। यह समझना अवश्यक है कि मशीनें खराब चीज हैं। क्रमशः हम उन्हें दूर कर सकेंगे, इसलिए मशीनों का स्वागत करने की अपेक्षा हमें इन्हें खराब चीज मानना चाहिए, जिसे हटाना है।''

परन्तु लगता है कि बाद में उन्होंने मशीनों के विषय में अपना विचार बदला था। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है, ''यदि काम करने वालों की कमी हो, तो मशीनें अच्छी मानी जा सकती हैं परन्तु यदि काम करने वाले आवश्यकता से अधिक हो तो मशीनें खराब हैं।''

वस्तुतः ऐसा लगता है कि मशीनों के द्वारा होने वाली हानियों से वे इतने विचलित हो गये थे कि इस पर तटस्थ भाव से उनको चिन्तन करने का अवसर नहीं मिला। मशीनों का उपयोग समाज के शोषण के लिए किया गया है, परन्तु स्वयं जड़ मशीनों का इसमें कोई कसूर नहीं है। उनका आविष्कार निस्सन्देह मनुष्य के कल्याण के लिए हुआ है। संसार क्या स्वयं भारत ही यन्त्रों की दिशा में बढ़ता जा रहा है, क्योकि यन्त्रों के बिना कार्य चल ही नहीं सकता। संसार की निरनतर बढ़ती हुई जनसंख्या को भोजन, वस्त, दबाएं, आदि केवल मशीनें ही जुटा सकती है। खेती में क्रान्तिकारी परिवर्तन मशीनों और विज्ञान के द्वारा ही सम्भव है। बिजली, रेल, मोटर, सिंचाई—सभी यन्त्रों से ही सम्भव है। इसके बिना पीने का पानी तक मिलना सम्भव नहीं है।

निस्सन्देह मशीनों पर थोड़े से व्यक्तियों ने अधिकार करके उनके द्वारा शोषण करना शुरू कर दिया, परन्तु इसे रोका जा सकता है। मशीनों पर पूरे समाज का अधिकार होना चाहिए। मुख्य बात यह है कि चरखा और करघा भी मशीनें ही हैं, जो मानव शक्ति से परिचालित हैं। शारीरिक श्रम अच्छा होता हे, परन्तु पशुओं के समान बोझा ढोना कोई नैतिक या आदर्श स्थिति नहीं कही जा सकती।

वस्तुतः गांधीजी का कथन यह था कि मशीनों से यदि बेकारी फैलती है, तो मशीनों का प्रयोग ठीक नहीं है। उन्होंने लिखा है कि ''चरखा भी मशीन है तथा दन्तशोधक भी मशीन है। मेरा कथन है कि श्रम को बचाने का उन्माद समाप्त होना चाहिए। मनुष्य श्रम बचाते जाते हें यहां तक हजारों लोग सडकों पर भूखों मरने के लिए छोड़ दिये जाते हैं। आगे कही हुई उनकी बात जैसे समस्या का समाधान है, ''मैं केवल थोड़े से व्यक्तियों का समय और श्रम नहीं बचाना चाहता, बल्कि सबका बचाना चाहता हूॅ।'' असल में यही विचार अन्तिम मानना चाहिए।

## 2.6 न्यासवाद का सिद्वान्त

इस सिद्वान्त के विषय में प्रारम्भ में गांधीजी दृढ़ थे, परन्तु जीवन के अन्तिम दिनों में उन्होंने कुछ संशोधन कर दिया था। बाद में वे जानते थे कि सरकार को धनी लोगों को नियन्त्रण मे रखना चाहिए। न्यासवाद का मूल सिद्वान्त यह है कि धन समाज का है, व्यक्ति को उससे आसक्त नहीं होना चाहिए। परन्तु इस उच्च आदर्श का क्या कोई व्यावहारिक मूल्य कम से कम वर्तमान समय में है? साम्यवाद ह्दय परिवर्तन के आदर्श को नहीं मानता, बलपूर्वक सम्पति को छीन लेता है। सर्वोदय बल प्रयोग को

बुरा समझता है। आदर्श एक ही होते हुए भी रास्ते अलग–अलग हैं, परन्तु ऐसा लगता है कि सर्वोदय का कार्यक्रम कम से कम निकट भविष्य में कोई सनतोषजनक परिणाम उत्पन्न नहीं कर सका है।

इसका कारण यह है कि मानव प्रकृति को बदला तो जा सकता है, परन्तु यह एक अत्यनत कठिन कार्य है। क्या समाज के उद्योग धन्धों, उपभेक्ताओं और मजदूरों की जीविका तथा आवश्यकता पूर्ति थोड़े से उद्योगपतियों और पूंजीपतियों के सुपुर्द की जा सकती है? क्या यह सम्भव है कि यह लोग समाज के साथ न्याय करेंगें? इतिहास देखने से पता चलता है कि ऐसा कभी हुआ नहीं है।

**ग्राम राज की कल्पना**

गांधीजी का सबसे उदात्त एवं सशक्त विचार भारत में एक विकेन्द्रित समाज एवं अर्थव्यवस्था की रचना है। उनकी दृष्टि में प्रत्येक गांव को वैसा ही स्वतन्त्र, आत्मनिर्भर एवं शक्तिशाली होना चाहिए जैसा एक राज्य होता है। गांव को अपनी आवश्यकता की पूर्ति अपने साधनों से करनी चाहिए। वह कम से कम आयात करें, जिससे कि गांव का धन गांव मे रहें। अपने झगड़े वह स्वयं सुलझाये तथा अपने समाज का प्रबन्ध वह पंचायत से करे। गांधीजी काकथन था, ''भारत को देखना है तो गांवो को देखना चाहिए। भारत को जगाना है तो गांवों को जगाना चाहिए।''

**कुटीर उद्योग का अर्थशास्त्र**

गांधीजी ने छोटे उद्योग–धन्धों को बहुत अधिक महत्व दिया। भारत जैसे विशाल देश में लघु उद्योग के बिना रोजगार की समस्या हल भी नहीं हो सकती। गांधीजी के इस विचार को स्वर्गीय जे.सी. कुमारप्पा ने एक सिद्वान्त में बांधा है।

उद्योग के लिए दो साधन आवश्यक हैं–पूंजी और श्रम। विदेशों (जैसे अमरीका) में पूंजी अधिक है, श्रम सीमित है। अतः वहां ऐसे उद्योग धन्धे ही उपयुक्त हैं जिनमें पूंजी अधिक लगे और श्रम कम लगें। भारत में परिस्थिति इसके ठीक विपरित है। यहां पूंजी कम है श्रम अधिक। यदि हम यहां बड़े उद्योग धन्धे ही खोले तो परिणाम यह होगा कि एक तरफ तो जन शक्ति का पूरा उपयोग नहीं हो सकेगा और दूसरी ओर पूंजी की कमी पड़ जायेगी, अतः भारत की आवश्यकता को देखते हुए यहां लघु उद्योग ही ठीक है, परन्तु लघु उद्योग के विषय में कट्टरता नहीं होनी चाहिए अनेक धन्धे ऐसे हैं जो बड़े पैमाने पर ही होना आवश्यक हैं– लोहा उद्योग, रेल के कारखाने, जहाज, हवाई जहाज के काखाने, यातायात के साधन, सीमेण्ट तथा मशीनों का निर्माण–इनको बड़े पैमाने पर ही बनाना आवश्यक है परन्तु कपड़ा, जूता, साबुन तथा खाद्य तेल इन वस्तुओं को कुटीर क्षेत्र के लिए सुरक्षित कर देना चाहिए।

गांधीजी के प्रभाव का मूल्यांकन करना अभी सम्भव नहीं है। अभी उसके सिद्वान्तों का प्रयोग और चिन्तन चल रहा हे। यदि व्यवहार की कसौटी पर वे सिद्वान्त खरे उतरे तभी संसार उन्हें अपनायेगा अन्यथा त्याग देगा, परन्तु संसार की मनोवृत्ति को देखते हुए ऐसा लगता है कि गांधीजी का अहिंसा का सिद्वान्त तो चलेगा। विनोबाजी ने एक जगह कहा था, ''जिस दिन मुझे पता चला कि अणुबम से संसार का नाश हो सकता है, मै समझ गया कि अब अहिंसा की संसार मे ंएकमात्र विकल्प रह गया हैं'' और यदि अहिंसा आती है तो समाज का रूप निश्चय ही बदलेगा, क्योंकि शोषण भी हिंसा है।

भारत में दीर्धकाल तक लघु उद्योगों का महत्व रहेगा, केवल इसलिए कि लोगों को काम देने का और तरीका नहीं है, परन्तु लघु उद्योग के प्रति मोह नहीं होना चाहिए, उसे पूजा की वस्तु नहीं बनाना चाहिए। सम्भव है कि वह आग्रह आने वाला युग छोड़ देगा। लघु उद्योग कभी भी बड़े उद्योगों का स्थान नहीं ले सकेंगे। देश और विश्व यन्त्रों का प्रयोग नहीं छोड़ सकते।

न्यासवाद के सिद्वान्त में संशोधन होना शुरू हो गया है। व्यक्तिगत सम्पति पर वसे अधिकार बलपूर्वक कम करने की बात स्वीकृत की जा रही है। पूंजीपतियों पर शासन का नियन्त्रण भी न्यासवाद के सिद्वान्त का विरोध नहीं है।

सर्वोदय केवल अर्थव्यवस्था के परिवर्तन का नाम मात्र नहीं है। यह समाज को सत्य में प्रतिष्ठित करने का प्रयास है। यह समाज में आध्यात्मिक नैतिक क्रान्ति का नाम है। इसके लक्ष्य सही हैं तथा तरीके भी ठीक है, परन्तु इन सबके होते हुए भी कार्य अत्यनत कठिन है। सर्वोदय की सबसे बड़ी दुर्बलता इसका व्यावहारिक न होना है। इतिहास की कोई घटना तथा कोई क्रान्ति इस बात का समर्थन नहीं करती कि भविष्य का मनुष्य इतना सदाचारी होगा।

## 2.7 निष्कर्ष

देश में गांधीजी का महत्व कम नहीं हुआ। हो भी नहीं सकता। अधिकांश राजनीतिक दल उनसे प्रेरणा प्राप्त करते हैं यहां तक कि साम्यवादी भी उनका सम्मान करते हैं। परन्तु क्या आज के युग में गांधी के विचार प्रासंगिक (Relevant) हैं? क्या देश को इन विचारों की कोई आवश्यकता है?

असल में गांधी के विचार आर्थिक और गैर आर्थिक दोनों दो भागों में बांटे जा सकते हैं। पहले वर्ग में अनेक शाश्वत विचार है जो प्रत्येक देश के लिए लाभदायक हैं। सत्य, प्रेम अहिंसा, मानवतावाद इसी प्रकार के आदर्श अथवा मूल्य हैं। इनकी प्रासंगिकता तब तक रहेगी जब तक मानव इस धरती पर रहेगा। इनके अभाव में अब मनुष्य का अस्तित्व भी सम्भव नहीं है। एक शोषणहीन, वर्गहीन, समाज की रचना भी ऐसा ही आदर्श है।

दूसरे वर्ग में वे विचार हैं जो समय की गति के सथ बदलते हैं बदलना चाहिए। कुटीर उद्योग, लघु उद्योग ऐसे ही विचार हैं। भारत के युवकों को रोजगार देने के लिए वर्तमान समय में उनकी प्रासंगिकता है। भविष्य में नहीं रहेगी क्योंकि विशाल जनसंख्या को खिलाने पहनाने के लिए मशीन को काम में लाना ही पड़ेगा। अभी भी मशीनों के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। यह विचार शाश्वत नहीं है। गांधी के इस विचार में समाज ने संशोधन प्रारम्भ कर भी दिया है।

आज के हिंसा–धृणा भरे समाज में गांधी पहले से अधिक प्रासंगिक हैं।

## 2.8 अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय संदर्भ में गांधी जी के आदर्शवाद को दर्शाए।
2. गांधी जी के न्यास के सिद्वान्त को स्पष्ट कीजिए।
3. भारतीय श्रम तथा यंत्रीकरण के सम्बन्ध में महात्मा गांधी के विचार को स्पष्ट कीजिए।

## 2.9 संदर्भ सूची–


I. Gopalkrishana, P.K.- Development of Economic Ideas (1959).

II. Gregg, R- Gandhism Versus Socialism (1930).

III. Kale, V.G.- Gokhale and Economic Reforms (1916).

IV. Kumarappa, J.C- Gandhian Economic Thought (1951).

V. Muker ji, D.P.- Gandhiji’s Views on Machines and Technology,’ International social Bulletin, Vol. 6. No. 3, 1954.

## इकाई–03

## जे.के. मेहता के विचार

**इकाई की रुपरेखा–**

**3.0 उद्देश्य**

**3.1 प्रस्तावना**

**3.2 जे०के० मेहता आर्थिक विचार**

**3.3 प्रो० मेहता का लाभ का सिद्धान्त**

**3.4 प्रो० मेहता के अन्य विचार**

**3.5 निष्कर्ष**

**3.6 अभ्यास प्रश्न**

**3.7 संदर्भ सूची–**

### 3.0 उद्देश्य–

इस अध्याय का उद्देश्य भारतीय अर्थशास्त्रीय प्रो० जे०के० मेहता के अर्थशास्त्र विषय में दिये गये महत्वपूर्ण आर्थिक विचारों एवं सिद्धान्तों के बारें में जानकारी प्राप्त करना है।

प्रो० मेहता इलाहाबाद विश्वविद्यालय से जुड़े एक महान अर्थशास्त्रीय रहे हैं।

### 3.1 प्रस्तावना

प्रो.जे.के. मेहता वह प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने सैद्वान्तिक अर्थशास्त्र के विश्लेषण एवं विवेचना में भारतीय दर्शन एवं दृष्टिकोण को अपनाया तथा अर्थशास्त्र के प्रत्येक क्षेत्र में अपने मौलिक विचार व्यक्त कर अर्थशास्त्र के विकास में अप्रतिम योगदान दिया। प्रो. मेहता ने आर्थिक चिंतन के इतिहास में एक स्वस्थ एवं नवीन परम्परा को प्रारम्भ किया। प्रो. मेहता एवं उनके सहयोगियों द्वारा विकसित आर्थिक विश्लेषण की परम्परा को 'अर्थशास्त्र की इलाहाबादी परम्परा' के रूप में जाना जाता है।

### प्रो. जे. के. मेहता : जीवन परिचय

### (PROF. J. K. MEGTA : LIFE HISTORY)

जे. के. मेहता (Jamshed Kaikhusroo Mehta) का जन्म 25 दिसम्बर, 1901 को मुम्बई के एक पारसी परिवार में हुआ था। उनकी प्राथमिक शिक्षा राजनन्द गांव में हुई थी। उच्च्व शिक्षा के लिए वह इलाहाबाद विश्वविद्यालय गए जहां से उन्होंने 1925 ई. में अर्थशास्त्र विषय में एम. ए. की डिग्री प्राप्त की। 1927 में उनकी नियुक्ति प्राध्यापक के रूप में इलाहाबाद विश्वविधालय के अर्थशास्त्र विभाग में हुई। जहां से वह 1963 में अध्यापन का कार्य करते हुए अर्थशास्त्र के विभागध्यक्ष के पद से सेवातनवृति हुए। पुनः वह विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली द्वारा संस्तुति के आधार पर 1963–1969 तक

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग में यू.जी.सी. प्रोफेसर के रूप में अपना बहुमूल्य योगदान प्रदान किया। अगस्त 1980 में इस महान अर्थशास्त्री का देहावसान हो गया।

**रचनाएं**

**उनके प्रधान ग्रन्थ निम्नांकित हैं –** 1. Advanced Economic Theory, 2. Letter on Modern Economic Theory 3. Fundamentals of Economics; 4. Economics of Growth; 5. Economic Philosophy.

**3.2 जे०के० मेहता आर्थिक विचार**

**प्रो. जे. के. मेहता के आर्थिक विचार**

**(ECONOMIC THOUGHT OF PROF. J. K. MEHTA)**

आवश्यकता विहीनता का सिद्वान्त (Theory of Wantlessness) – यह प्रो. मेहता का सबसे अधिक प्रसिद्व सिद्वान्त है, जो उनके आवश्यकता के विश्लेषण पर आधारित है और इसी सिद्वान्त पर उनका आर्थिक चिन्तन आधारित है। अर्थशास्त्र की परिभाषा में उन्होंने कहा है, ''अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो आवश्यकता शून्यता के लक्ष्य को प्राप्त करने के एक साधन के रूप में मानवीय व्यवहार का अध्ययन करता है।''

मनुष्य के साथ आवश्यकता जुड़ी हुई है। आवश्यकता के साथ पीड़ा का भाव है, जिसके कारण मनुष्य का सहज आनन्द नष्ट हो जाता है। इस पीड़ा को दूर करके मनुष्य अपने साम्य (Equilibrium) को पुनः प्राप्त करना चाहता है। इसीलिए वह आवश्यकता से छुटकारा पाना चाहता है। आवश्यकता से छुटकारा दो प्रकार से पाया जा सकता है—एक तो उसकी पूर्ति करके कम से कम समय के लिए उससे मुक्ति पायी जा सकती है। दूसरी तरीका है कि आवश्यकता को उत्पन्न ही न होने दिया जाय। यह तरीका निग्रह और संयम का मार्ग है और पहले की अपेक्षा श्रेष्ट है।

अर्थशास्त्र मनुष्य के इन्हीं प्रयासों का अध्ययन करता है। मनुष्य का आदर्श आवश्यकता शून्यता है। आर्थिक समस्या आवश्यकता से छुटकारा पाने की समस्या का नाम है।

प्रो. मेहता ने कहा है कि सुख (Pleasure) साम्य के वापस होने का बोध है, दुख साम्य के नष्ट होने का। जब आवश्यकता का अभाव होता है, तो जो सहज स्थिति है उसे आनन्द कहते हैं। यही इष्ट है, ध्येय है। इस प्रकार अर्थशास्त्र एक आदर्शवादी विज्ञान है, जो मनुष्य का इस ध्येय तक ले जाता है।

आवश्यकता विहीनता या शून्यता के आदर्श का मूल्यांकन

(1) वैकल्पिक विधियां सदा सुलभ नहीं – प्रो. मेहता के इस कथन में कठिनाई यह है कि आवश्यकता हटाने की दो वैकल्पिक विधियां मानी हैं – एक उनको पूर्ण करना और दूसरा आवश्यकता हटाना ँ(जपेबिजपवद ंदक म्सपउपदंजपवद)। वस्तुतः यह वैकल्पिक विधियां प्रत्येक स्थिति में सम्भव नहीं हैं। कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति (Satisfaction) अनिवार्य है,

यद्यपि कुछ को बहिष्कृत किया जा सकता है। इस प्रकार प्रो. मेहता ने मार्शल वाला वर्गीकरण स्वीकार कर लिया है, जिनके अनुसार अनिवार्यता (Necessaries), आराम सम्बंधी तथा (Comfort) विलासिताएं (Luxriè) तीनों ही आवश्यकता के भेद हैं, किन्तु इनमें बड़ा आधारभूत अन्तर है। अनिवार्यता एक जरूरत होती है जिसके बिना जीवन खतरे में पड़ सकता है। भोजन, वस्त्र, निवास तथा औषधि इसी

प्रकार की आवश्यकताएं हैं जिनकी पूर्ति होनी चाहिए। ऐसी दशा में आवश्यकता विहीन जीवन में अनिवार्यताओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

(2) इच्छा और आवश्यकता में भेद न करना – प्रो. मेहता ने इच्छा और आवश्यकता को मिला दिया है यह एक मार्शलीय गलती वे कर गये हैं। आवश्यतका इच्छा का भेद या भाग नहीं है। एक बीमार आदमी के लिए औषधि आवश्यक है, भले ही उसकी इच्छा न हो और पूर्ति का साधन भी न हो। मार्शल की परिभाषा के अनुसार आवश्यकता होने के लिए चेतना (Consciousness of Desire) तथा साधन (Mean) होना आवश्यकता है। यह घोर पूंजीवादी एवं व्यक्तिवादी परिभाषा है। गरीब आदमी की भी आवश्यकता होती है और अज्ञानी की भी।

आदर्श 'आवश्यकता शून्यता' नहीं है वरन् इच्छा शून्य, कामना रहित होना है। पीड़ा से मुक्ति भोजन छोड़ने से नहीं होती वरन् भोजन की लालसा छोड़ने से होती है, अर्थात् सही स्थिति यह होगी – (क) सब चीजों की इच्छा से छुटकारा पाना – आसक्ति त्याग, (ख) जरूरतों (Need) का अवश्य पूर्ण होना, एवं (ग) विलासिता का त्याग–स्वरूप से भी और इच्छा से भी।

### 3.3 प्रो. मेहता का लाभ का सिद्वान्त

प्रो. मेहता ने कई सिद्वान्तों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं, परन्तु सबका विवेचक यहां सम्भव नहीं हैं। हम उनके लाभ सम्बन्धी विचारों का ही यहां वर्णन करेंगे। उनके लाभ के सिद्वान्त को हम निम्नलिखित खण्डों में विभक्त कर सकते हैंः

(1) लाभ जोखिम का पुरस्कार है। प्रबन्ध के पुरस्कार से इसे अलग करना चाहिए। जबकि प्रबन्ध में निर्णय लिया जाता है, जोखिम में हानि का उत्तरदायित्व उठाया जाता है। लाभ को अनिश्चितता का पुरस्कार भी कहा जा सकता है।

(2) जोखिम (त्पो) कई कारणों से उदय होती है – एक तो भविष्य सेः दूसरे, भविष्य के भिन्न होने से और चौथे, आदमी को इस बोध से कि जानकारी अपूर्ण है, अर्थात् जोखित प्रवैगिक (Dynamic) अवस्था में ही सम्भव है।

(3) परन्तु लाभ कोई बचत (Surplus) नहीं है। यह मजदूरी के समान ही एक कार्य का भुगतान होता है और इसलिए सदा धनात्मक होगा।

(4) इसकी कीमत जोखिम की मांग पूर्ति से निर्धारित होती है। यह लागत का भाग होता है।

(5) अब रहा मूल्य और लागत का अन्तर, इसे आकस्मिक आय (Accidental gain) अथवा आकस्मिक व्यय (Accidental loss) कहना अधिक उपयुक्त है। असली लाभ से इसका कोई सम्बंध नहीं। इसे लगान (Rent) भी कहा जा सकता है।

प्रो. मेहता का सिद्वान्त मार्शल, क्लार्क, एवं नाइट के सिद्वान्त से मिलता–जुलता होने पर भी इन सबसे भिन्न है।

### 3.4 प्रो. मेहता के अन्य विचार

यद्यपि यहां पर प्रो. मेहता के सब विचारों का विस्तृत वर्णन नहीं हो सकता, अतः यहां हम संक्षेप में उनके कुछ मौलिक विचार रख रहे हैंः

**(1) उपभोक्ता की बचत (Consumer's Surplus)** – प्रो. मेहता ने उपभोक्ता की बचत को प्राप्त उपयोगिता और दिये गये मूल्यों का अन्तर न मानकर प्राप्त उपयोगिता और किये गये त्याग का अन्तर माना है। एक स्थान पर प्रो. मेहता उपभोक्ताधिक्त को एक प्रकार का लगान कहते हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि लगान एक बचत है परन्तु बचत को लगान नहीं कहना चाहिए। लगान यदि प्रकृति का योगदान है तो ठोस वस्तुओं के रूप में होता है जबकि उपभोक्ताधिक्य एक काल्पनिक लाभ है। फिर भी स्मरणीय है कि यह बचत केवल उपभोक्ता को ही नहीं सभी पक्षों को होती है। मार्शल ने केवल उपभोक्ता की बचत पर अनावश्यक जोर दिया।

**(2) उपयोगिता मापी जा सकती है** – कुछ लेखकों (हिक्स, एलेन, आदि) का विचार है कि उपयोगिता जैसी अमूर्त वस्तु का माप नहीं किया जा सकता। प्रो. मेहता का कथन है कि गति, तापक्रम, लम्बाई ऊंचाई, आदि भी अमूर्त चीजें हैं इनका माप हो सकता है, उपयोगिता का भी हो सकता है फिर तुलना और माप एक ही चीज है मुद्रा जब माप करती है तो तुलना ही करती है।

थोड़ा इस विचार में संशोधन आवश्यक है। माप करने में पैमाना स्थिर होता है तुलना दो अस्थिर वस्तुओं में भी हो सकती है। मुद्रा की उपयोगिता यदि बदलती रहे तो मुद्रा उपयोगिता की माप नहीं कर सकती भले ही मुद्रा तथा अन्य वस्तु की उपयोगिता की तुलना हो जाय।

**(3) साम्य का विचार** – प्रो. मेहता के अनुसार साम्य की कल्पना बिना समय की अपेक्षा के नहीं की जा सकती। साम्य सदा किसी समय अवधि में होता है उन्होंने स्थैतिक साम्य (Static Equilibrium) उस साम्य को कहा है जो समय अवधि के बाहर भी बना रहता है। जो समय अवधि के बाहर भंग हो जाता है वह प्रवैगिक साम्य (Dynamic Equilibrium) है।

जहां तक किसी देश की अर्थव्यवस्था के साम्य का प्रश्न है। यदि देश का विकास बन्द हो गया तो देश में स्थैतिक साम्य कहा जायेगा। यदि देश में विकास हो रहा है तो '' देश में या तो असाम्य की अवस्था होगी या प्रवैगिक साम्य होगा।''

**(4) प्रतिनिधि फर्म (Representative firm) का विचार** मूलतः मार्शल का था। उन्होंने कहा था कि पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु का मूल्य प्रतिनिधि फर्म के द्वारा निर्धारित होता है। इस विचार पर पीगू ने भी अपना सिद्वान्त प्रस्तुत किया था। मार्शल ने प्रतिनिधि फर्म की कोई अच्छी परिभाषा नहीं दी। प्रो. मेहता ने प्रतिनिधि फर्म के विचार को मान्यता दी है और उसकी अपनी परिभाषा भी दी है। उन्होंने लिखा है, ''प्रतिनिधि फर्म वह है जिसकी प्रवुत्ति उद्योग बढ़ने के साथ बढ़ने की और उद्योग घटने के साथ घटने की होती है।''

मेहता और मार्शल दोनों के विचारों में प्रतिनिधि फर्म के कार्यो के विषय में मतभेद है। मार्शल के अनुसार प्रतिनिधि फर्म न घटती है न बढ़ती है। मेहता मानते हैं कि प्रतिनिधि फर्म उद्योग के बढ़ने के साथ बढ़ती है और उद्योग के घटने के साथ घटती है। आजकल प्रतिनिधि फर्म के विचार को कोई महत्व नहीं दिया जाता, परन्तु मेहता ने इस विचार का जोरदार समर्थन किया है और इसे उपयोगी बताया है।

प्रो. मेहता के सिद्वान्तों का अभी मूल्यांकन नहीं हो पाया हैं। केवल तर्क ही नहीं व्यवहार की कसौटी पर भी उनकी जांच होनी बाकी है। उनके कुछ सिद्वान्त ही अभी चर्चा का विषय हुए हैं। गांधीवाद, उपवास, आर्थिक विकास, आदि पर उनके कई मौलिक विचार हैं और उनमें कई विचारोतेजक हैं। परन्तु प्रो. मेहता ने भारत के आर्थिक चिन्तन को नवीन दिशा दी है।

### 3.5 निष्कर्ष

जे०के० मेहता के आर्थिक चिन्तन की निम्नलिखित विशेषताएं हैं :

(1) दर्शन पर आधारित– मेहता का अर्थशास्त्र एक विशाल दार्शनिक आधार पर स्थित है। इस अर्थ में इसे हम कार्ल मार्क्स, गांधीवाद, जे. एस. मिल के समकक्ष रख सकते हैं।

(2) निगमन तथा अमूर्त (Abstract) प्रणाली का प्रयोग – रिकार्डो, मार्क्स, आदि के समान मेहता का चिन्तन भी अमूर्त है। इसको अपनी सच्चाई का प्रयोग, तथा इतिहास में सिद्व करना होगा।

(3) भारतीय परम्परा पर आधारित – प्रो. मेहता के अर्थशास्त्र में हमें भारत के आदर्शो और मूल्यों का दर्शन होता है। यद्यपि उनको गांधीवादी या रूढ़िवादी कहना उचित नहीं है। महान् अर्थशास्त्रियों के समान वे भी मुक्त विचारक हैं।

### 3.6 अभ्यास प्रश्न

1. जे०के० मेहता आर्थिक विचारों को स्पष्ट कीजिए।

### 3.7 संदर्भ सूची


I. Black, R.D.C.- ‘jevons, Marginalism and Manchester’, the Manchester school, March 1972.

II. Blaug, M.- Economic theory in Retrospect (1968), Chaps, 8 and 13,

III. Blowely,M.-The Predecessors of Jevons : The Revolution that Wasn’t’ , The Manchester School, March 1972.

IV. Ekelund, R.B. and Herbert, R.G.-A History of Economic Theory and Method (1975), Chap. 10.

V. Friedman, M.- ‘leon Walras and His Economic System’, American Economic Review, December 1955.

VI. Ferguson, C.E.- Macroeconomic theory (1972) Chap. 15.

# इकाई–04

# बी.आर. अम्बेडकर के आर्थिक विचार

**इकाई की रुपरेखा–**


**4.0 उद्देश्य**

**4.1 प्रस्तावना**

**4.2 अम्बेडकर के आर्थिक विचार**

**4.3 अम्बेडकर का आर्थिक सुधार**

**4.4 निष्कर्ष**

**4.5 अभ्यास प्रश्न**

**4.6 संदर्भ सूची**


## 4.0 उद्देश्य

भीमराव अम्बेडकर एक प्रमुख कार्यकर्ता और समाज सुधारक थे जिन्होंने दलितों के उत्थान के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया व भारत के संविधान के मुख्य वास्तुकार थे और उन्होंने 1935 में भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। डॉ० अम्बेडकर ने अपने कैरियर के शुरूआत अर्थशास्त्र विषय के अध्ययन से किया था। ऐसे में इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य डॉ० अम्बेडकर के आर्थिक विचारों की जानकारी प्राप्त करना है।

## 4.1 प्रस्तावना

भीमराव का जन्म 14 अप्रैल 1891 ई. को इन्दौर के पास महू छावनी में हुआ। जन्म के समय उनका नाम भीम सकपाल था। महार जाति, जिसमें डॉ. अम्बेदकर का जन्म हुआ, महाराष्ट्र में अछूत समझी जाती थी। भीमराव के पिता राजी सकपाल कबीर के अनुयायी थे और इस कारण उनके मस्तिष्क में जातिवाद के लिए कोई स्थान नहीं था।

भीमराव ने हाई स्कुल तक का अध्ययन सतारा में किया और सन् 1907 में हाई स्कूल की परीक्षा पास की। भीमराव अच्छे विद्यार्थी थे। भीमराव की शिक्षा के प्रति उनके पिता पूरी तरह समर्पित थे तथा अध्यापक उनके परिश्रम से बहुत प्रसन्न थे। इसके बाद उन्होंने बम्बई के एलफिन्स्टन कॉलेज में प्रवेश लिया। बड़ौदा के महाराजा गायकवाड़ द्वारा प्रदान की गई छात्रवृत्ति से उन्हें कॉलेज शिक्षा प्राप्त करने में मदद मिली और 'गायकवाड़ छात्रवृत्ति' पर ही भीमराव को 1913 ई. में अमरीका के कोलम्बिया विश्वविद्यालय में प्रवेश मिल गया। वे भारत के पहले अछूत और महार थे, जो पढ़ने के लिए विदेश गए थे। विश्व विख्यात अर्थशास्त्री प्रो. सेल्गमैन अम्बेदकर के अध्यापक हुए और 1915 में उन्होंने अर्थशास्त्र विषय में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। 1917 में उन्होंने कोलम्बिया विश्वविद्यालय से ही पी–एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। 1916 में पी–एच.डी. का शोध प्रबंन्ध प्रस्तुत करने के बाद ही वे लन्दन आ गए और यहां उन्होंने विधि के अध्ययन के लिए 'दी ग्रेज इन' और अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए विश्व की प्रसिद्व शिक्षण संस्था 'लन्दन स्कूल ऑफ इकॉनॉमिक्स एण्ड पॉलिटीकल साइंस' में प्रवेश लिया। भीमराव में पढ़ने की ऐसी लगन थी कि वे दोपहर का खाना बिना खाए हुए पुस्तकालय में पढ़ते रहते थे, लेकिन

बड़ौदा रियासत के साथ हुए अनुबन्ध के आधार पर उन्हें अध्ययन बीच में छोड़कर दो वर्ष के लिए बड़ौदा राज्य के 'मिलिट्री सचिव' पद पर कार्य करना पड़ा। सन् 1920 में वे पुनः अध्ययन हेतु लन्दन चले गए और सन् 1921 में उन्होंने 'मास्टर ऑफ साइंस की उपाधि प्राप्त की। अपने शोध प्रबन्ध जीम च्तवइसमउ व िजीम तनचमम पर उन्होंने लन्दन विश्वविद्यालय से 1923 में पुनः पी–एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। इसके साथ ही उन्होंने 'बार एट लॉ की उपाधि भी प्राप्त की।

इंग्लैण्ड से लौटकर उन्होंने निश्चय किया कि वे अपनी आजीविका के लिए वकालत करेगें और शेष समय अछूतों व गरीबों की सेवा में लगाएंगे। सन् 1923 में उन्होंने वकालत प्रारम्भ की तथा साथ ही अछूतों के उद्धार के लिए संघर्ष प्रारम्भ कर दिया। 1923 से ही अम्बेदकर ने बम्बई से एक पाक्षिक समाचार–पत्र 'बहिष्कृत भारत' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। अम्बेदकर ने दलित वर्गो को संगठित करने की आवश्यकता अनुभव की, जिससे वे सवर्णो द्वारा किए जा रहे सामाजिक अन्याय का प्रभावशाली ढंग से विरोध कर सकें। इस उद्देश्य से उन्होंने 20 जुलाई 1924 को 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना की। इस सभा की गतिविधियों को गति देने के लिए उन्होंने महाराष्ट्र के विभिन्न भागों का दौरा किया तथा दलित वर्गो में इस संदेश का प्रसार किया कि उनका उत्थान शिक्षा, संगठन और स्वयं उनके द्वारा सक्रिय एवं प्रभावी संगठन के माध्यम से ही सम्भव है। अप्रैल, 1925 में अम्बेदकर ने बम्बई प्रेसीडेन्सी में नेपानी नामक स्थान पर 'प्रान्तीय दलित वर्ग सम्मेलन' की अध्यक्षता की।

डॉ. अम्बेदकर ने दलित वर्गो को संगठित संघर्ष की प्रेरणा भी दी। संगठित संघर्ष का यह प्रारम्भ 'महद सत्याग्रह' से हुआ। इस सत्याग्रह ने दलितों में आत्मविश्वास के भाव को जाग्रत किया। इसके बाद अम्बेदकर ने दलितों में चेतना जाग्रत करने और उन्हें उनके अधिकार दिलाने के लिए पूना –पारवती सत्याग्रह, कल्याण मन्दिर प्रवेश सत्याग्रह, आदि आन्दोलनों को प्रभावशाली नेतृत्व प्रदान किया। सन् 1930 में उन्होंने 'अखिल भारतीय दलित वर्ग संघ' (All India Depressed Class Association) का अध्यक्ष पद धारण किया। अपने अध्यक्षीय भाषण में 8 अगस्त, 1930 को उन्होंने हिन्दुओं की जातिगत व्यवस्था द्वारा उनकी नष्ट की गई शक्ति की कड़ी निन्दा की। इस अवसर पर उन्होंने भारत के लिए स्वशासन की जोरदार वकालत कीः किन्तु साथ ही स्पष्ट किया कि स्वाशासन की कोई योजना तभी सार्थक और सफल हो सकती है जबकि उसमें दलितों के समान अधिकरों को मान्यता दी जाय और उनके प्रति शताब्दियों से चले आ रहे सामाजिक अन्याय का प्रतिकार किया जाय। उन्होंने सन् 1930 और 1931 में लन्दन में आयोजित प्रथम और द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में दलितों के प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। सम्मेलन में और उसके बाद भी डॉ. अम्बेदकर ने इस बात पर बल दिया कि 'दलितो को विधान परिषदों में हिन्दू समाज से पृथक प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाना चाहिए।

डॉ. अम्बेदकर प्रबल देशभक्त और भारत के राष्ट्रीय एकीकरण के समर्थक थे, लेकिन सार्वजनिक जीवन में महात्मा गांधी और कांग्रेस के साथ उनके मतभेद बने रहे। मतभेद का एक आधार तो दलितों के लिए पृथम प्रतिनिधित्व का प्रश्न था। इसके साथ ही डॉ. अम्बेदकर का यह दृष्टिकोण था कि ''उन व्यक्तियों तथा संस्थाओं को अछूतों की बात कहने का हक नहीं है जो अछूत को नहीं हैं।'' कुछ अवसरों पर तो डॉ. अम्बेदकर ने कांग्रेस और महात्मा गांधी के प्रति भारी कटुता की स्थिति को अपना लिया। डॉ. अम्बेदकर कहते थे कि '' कांग्रेस ने अछूतोद्वार के कार्य में ईमानदारी का परिचय नहीं दिया है।''

डॉ. अम्बेदकर ने अपने साथियों की सलाह से अगस्त 1936 ई. में 'इण्डिपेण्डेण्ट लेबर पार्टी' की स्थापना की। इस राजनीतिक संस्था ने दलित वर्ग, मजदूर व किसानों की अनेक समस्याओं को लेकर कार्य आरम्भ किया। बम्बई प्रदेश में इस पार्टी ने सन् 1937 का चुनाव लड़ा। इसने अनुसूचित जातियों के लिए सुरक्षित 15 में से 13 स्थान जीते और 2 सामान्य स्थानों पर भी विजय प्राप्त की। बम्बई विधानसभा के सदस्य के रूप में डॉ. अम्बेदकर और उनकी इस पार्टी ने किरायेदारी कानून, एण्टी

स्ट्राइक बिल और खोटी बिल, आदि की खुलकर आलोचना की। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि मजदूरों को 'सत्याग्रह का अधिकार' होना ही चाहिए।

7 अगस्त 1942 को उन्हें गवर्नर जनरल की परिषद् का सदस्य मनोनीत किया गया। अब दलितों की अखिल भारतीय राजनीतिक संस्था स्थापित करने की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। अतः पुरानी 'इण्डिपेण्डेण्ट लेबर पार्टी' को अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ (All India Scheduled Caste Federation )में बदल दिया गया।

कांग्रेस के साथ डॉ. अम्बेदकर के तीव्र मतभेद थे, लेकिन कांग्रेस नेता, विशेषतया नेहरू और पटेल भी डॉ. अम्बेदकर की प्रतिभा के कायल थे। अतः कांग्रेस ने सहयोग देकर उन्हें संविधान सभा का सदस्य निर्वाचित कराया। संविधान सभा में उन्हें 'संविधान प्रारूप समिति' के अध्यक्ष का अत्यधिक महत्वपूर्ण दायित्व सौंपा गया और उन्होंने पूरी योग्यता के साथ इस दायित्व को निभाया। दलितों को सामाजिक जीवन में समानता की स्थिति प्राप्त हो इस बात के लिए संवैधानिक व्यवस्था डॉ. अम्बेदकर के प्रयत्नों का ही परिणाम है। भारतीय संविधान पर डॉ. अम्बेदकर के व्यक्तित्व की छाप अंकित है और संविधान निर्माण में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका के कारण ही उन्हें आधुनिक युग का मनु कहा जाता है।

3 अगस्त 1949 को डॉ. अम्बेदकर को भारत सरकार का कानून मंत्री बना दिया गया। कानून मंत्री के रूप में उनका सबसे अधिक प्रमुख कार्य 'हिन्दू कोड बिल' था। इस कानून का उद्देश्य था, हिन्दुओं के सामाजिक जीवन में सुधार। तलाक की व्यवस्था और स्त्रियों के लिए सम्मति में हिस्सा इस कानून की कुछ प्रमुख बातें थी। नेहरू और डॉ. अम्बेदकर के बीच कुछ प्रश्नों पर मतभेद थे और अन्त में 27 सितम्बर 1951 को डॉ. अम्बेदकर ने मंत्रिमण्डल से त्यागपत्र दे दिया।

1. अम्बेदकर के अनुयायियों ने उनकी मृत्यु के बाद 1957 में इस फेडरेशन को 'भारतीय रिपब्लिकन पार्टी' में बदल दिया।

डॉ. अम्बेदकर निरन्तर यह अनुभव कर रहे थे कि हिन्दू धर्म में दलितों को सम्मानजनक स्थिति प्राप्त नहीं है। वस्तुतः हिन्दू धर्म उनके स्वाभिमान के साथ मेल नहीं खा रहा था। इन परिस्थितियों में 1955 में उन्होने 'भारतीय बुद्व महासभा की स्थापना की तथा भारत में बौद्व धर्म के प्रचार प्रसार का बीड़ा उठाया। इसके बाद 14 अक्टूबर 1956 को उन्होंने नागपुर में हुई एक ऐतिहासिक सभा में 5 लाख व्यक्तियों के साथ बौद्व धर्म ग्रहण कर लिया। 6 दिसम्बर 1956 को प्रातःकाल की बेला में उनका देहावसान हो गया। निर्भयता, स्पष्टवादिता और अक्खड़पन उनके स्वभाव का अंग थे, जो सदैव उनके साथ बने रहे।

डॉ. अम्बेदकर पर प्रभाव जिन पुस्तकों ने डॉ. अम्बेदकर को प्रभावित किया, वे थी : रामायण और महाभारत तथा डॉ. अम्बेदकर के तीन आदर्श थेः गौतम बुद्व, कबीर और ज्योतिबा फुले। कबीर का प्रभाव था कि वे धार्मिक स्वभाव के तथा निष्पक्ष और निर्भीक थे। महात्मा फुले के प्रभाव से वे ब्राह्म्णवाद के विरूद्व हुए। उनके प्रभाव के कारण उन्होंने अछूतों को संगठित होने, शिक्षित होने तथा अत्याचारी के विरूद्व संधर्ष करने की शिक्षा दी थी। गौतम बुद्व से उन्होंने आध्यात्मिकता तथा छुआदूत विरोध की शिक्षा प्राप्त की। इसी शिक्षा के प्रभाव से उन्होंने धर्म परिवर्तन किया तथा अपने अनुयायियों को इस बात के लिए प्रेरित किया। इन महापुरूषों के अतिरिक्त वे अपने अमरीकी अघ्यापक जॉन दिवे (श्रवीद क्मअमल) से भी प्रभावित थे। वे बूकर टी.वाशिंगटन के जीवन से भी अत्यधिक प्रभावित थे, जिसने नीग्रो लोगों को शिक्षा दी थी और उनके लिए समानता के अधिकार की बात पर जोर दिया था।

### 4.2 डॉ. अम्बेदकर के आर्थिक विचार

## (ECONOMIC THOUGHT OF DR. AMBEDKAR)

डॉ. अम्बेदकर उन पहले भारतीयों में थे जिन्होंने अर्थशास्त्र में औपचारिक शिक्षा पाई और एक पेशेवर की तरह ज्ञान की इस शाखा का अध्ययन एवं उपयोग किया। डॉ. अम्बेदकर ने जिन प्रमुख आर्थिक समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित किया उनमें से कुछ प्रमुख निम्नवत् हैं :

अम्बेदकर ने कृषि की आर्थिक समस्या से सम्बन्धित विषयों पर अधिक शोधपत्र नहीं लिखे थे, परन्तु उनका 1918 का शोधपत्र आज भी सार्थक है। इसमें उन्होंने यह दिखाया था कि खेती की उत्पादकता केवल जमीन और खेतों के आकार पर ही नहीं, बल्कि उत्पादन के अनेक कारकों पर निर्भर करती है। इसीलिए भारत में कृषि में पूंजी निवेश की सबसे अधिक आवश्यकता है, क्योंकि ब्रिटिश राज में इस क्षेत्र में पूंजी निवेश गिरा है। परन्तु यह कार्य आजादी के बाद ही हो पाया जब सत्तर के दशक में सरकार द्वारा कृषि में पूंजी निवेश को प्रोत्साहित किया गया, जिसका परिणाम हरित क्रान्ति के रूप में सामने आया। उन्होंने तर्क दिया कि कृषि में आवश्यकता से अधिक श्रमिक कार्य कर रहे हैं, जिनके होने या न होने से उत्पादकता पर कोई अन्तर नहीं पड़ता। यह प्रच्छन्न बेरोजगारी का सिद्वान्त है, जिसे अम्बेदकर ने तभी चिन्हित कर लिया था, जबकि अर्थशास्त्र की मुख्य धारा में यह लगभग तीन दशक बाद प्रचलित हुआ जब नोबेल विजेता आर्थर लुइस ने इसे प्रचारित किया। अम्बेदकर के अनुसार इसका एह ही समाधान है– औद्योगीकरण। औद्योगीकरण ही कृषि में लगी अतिरिक्त श्रमिक जनसंख्या को सार्थक रोजगार दे सकता है और उसे गरीबी से निकलने में सहायक होगा।

रिजर्व बैंक की अभिकल्पना, रूपरेखा, कार्यशैली और नियम उपनियम सभी कुछ बाबा साहब अम्बेदकर के शोध 'प्रॉब्लम ऑफ रूपी' पर आधारित है।

डॉ. अम्बेदकर ने भारत की मुद्रा विनिमय प्रणाली के सम्बंध में गम्भीरता से शोध किया था और वे अत्यधिक व्यावहारिक थे। 1893 तक भारत में केवल चांदी के सिक्के प्रचलन में थे। इसके पहले 1841 तक सोने के सिक्के भी प्रचलन में थे। डॉ. अम्बेदकर ने पाया कि चांदी के सिक्के का मूल्य उसमें उपलब्ध चांदी के द्रव्यमान से आंका जाता था।

डॉ. अम्बेदकर ने यह सिद्वान्त प्रतिपादित किया कि मुद्रा का मूल्य उसके द्रव्यमान की कीमत से नहीं, बल्कि उससे मिलने वाली वस्तुओं एवं सेवाओं से निर्धारित होता है। इस आधार पर उन्होंने सरकार को सुझाव दिया था कि एक चांदी के सिक्के का मूल्य 1 शिलिंग तथा 6 पेंस रखना उचित होगा। डॉ. अम्बेदकर का सुझाव ब्रिटिश सरकार ने मान लिया था।

अम्बेदकर की पुस्तक 'द एवोल्यूशन ऑफ प्रॉविंशियल फाइनेन्स इन इण्डिया' सार्वजनिक वित्त के मुद्दों पर केन्द्रित है। उन्होंने स्पष्ट किया कि सार्वजनिक वित्त की आवश्यकता इसलिए होती है ताकि सड़कें कानून व्यवस्था जैसी मूल आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके और उनके लाभ सभी को प्राप्त हो।

### 4.3 अम्बेडकर का आर्थिक सुधार

यह डॉ. भीमराव अम्बेदकर की परिकल्पना थी कि सभी प्रमुख और आधारभूत उद्योग सरकार के अधीन हों। भूमि सुधार योजना को वे इसलिए जरूरी मानते थे कि आर्थिक सुधार की शुरूआत ही भूमि सुधार से होती है। डॉ. अम्बेदकर ने भूमि वितरण में असमानता के कारण समाज के एक बहुत बड़े हिस्से को छोटी–छोटी जोतों (खेती की इकाइयों) में काम करने से उत्पन्न व्यवस्थ पर चर्चा की। डॉ.

अम्बेदकर ने जमींदारी व्यवस्था के विरूद्व डटकर लिखा और श्रम शक्ति के समुचित उपयोग और सम्मान पर बल दिया।

डॉ. अम्बेदकर जिस समय में सक्रिय के रहे, तब बैंक, बीमा उद्योग और कृषि क्षेत्र पूरी तरह निजी हाथों में था डॉ. अम्बेदकर की क्रान्तिकारी योजना थी कि इन सभी का राष्ट्रीयकरण किया जाय। सरकार खेती के योग्य भूमि को अधिगृहीत कर ले और उसे उचित आकार में खेतों के रूप में बांट दे। उस खेती पर समाज के सभी लोग मिलकर फसल उगाएं और पूरा समाज उससे लाभान्वित हो।

### 4.4 निष्कर्ष

डॉ० बी.आर. अम्बेडकर एक बौद्धिक अर्थशास्त्री थे, जिनके पास जटिल समस्याओं का व्यावाहरिक समाधान था, और उन्होंने हमेशा अपनी नीतियों में लोगों के कल्याण को व्यक्त किया। उनके कई विचारों और दूरदृष्टि को भले ही उचित मान्यता नहीं मिली हो, लेकिन समग्र रूप से अर्थशास्त्र के क्षेत्र में उनका योगदान इस महानता और बुद्धि के प्रमाण है।

### 4.5 अभ्यास प्रश्न

1. डॉ अम्बेडकर के आर्थिक विचार और आर्थिक सुधारों को स्पष्ट कीजिए।

### 4.6 संदर्भ–सूची–


I. Singh, V.B.-From Naroji to Nehru (1975).

II. Agarwala, S.N.- The Gondhia Plan (1944).

III. Anjaria, J.J.- Essays on Gandhian Economics (1945).

IV. Ayangar, K.V.R.- Aspects of ancient Economic Thought (1965).

V. Bipin Behari-The Gandhian Economic philosophy (1963).

# इकाई–05

# नेहरू का प्रजातांत्रिक समाजवाद

## इकाई की रुपरेखा–

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 नेहरू के आर्थिक विचार

5.3 निष्कर्ष

5.4 अभ्यास प्रश्न

5.5 संदर्भ सूची

### 5.0 उद्देश्य–

इस अध्याय का उद्देश्य जवाहर लाल नेहरू के आर्थिक विचार एवं नीतियों के बारें में अवगत कराना है। जवाहर लाल नेहरू को हम किसी एक निश्चित विचारधारा से नहीं बाँध सकते हैं। उनका जीवन दर्शन अनेक विचारकों व अनेक परिस्थितियों से प्रभावित था। प्रमुख रूप से वह समाजवादी विचारधारा में रूचि रखते थे। नेहरू जी साम्यवादी और पूँजीवादी खेमों से सहायता लेकर भारत के आर्थिक विकास को नयी दिशा प्रदान करते रहे।

### 5.1 प्रस्तावना

स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री एवं आर्थिक विकास के अग्रदूत नेहरू जी का जन्म 14 नवम्बर 1889 में इलाहाबाद में हुआ। उनके पिता मोतीलाल नेहरू एक सफल एवं विख्यात वकील थे। एक सम्पन्न परिवार में जन्म लेने के कारण उस ढंग से नेहरू जी का पालन–पोषण हुआ। घर पर उनकी शिक्षा का प्रबन्ध किया। सन् 1905 में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए नेहरू जी को इंग्लैण्ड भेजा गया। ये तीन वर्ष तक रहे। नेहरू जी अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि के थे एवं उनकी ग्रहण शक्ति अत्यन्त तीव्र थी। वहां कानून का अध्ययन करने के बाद नेहरू जी सन् 1912 में बैरिस्टर बनकर भारत लौटे। भारत आकर उन्होंने भारतीय दशाओं का अध्ययन किया और देश की स्वतंत्रता को विचार ने उन्हें उद्वेलित किया। अतः कुछ समय तक वकालत करने के बाद वे सक्रिय राजनीति में कूद पड़े। नेहरू जी कई भारतीय नेताओं विशेषकर गांधीजी से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने पूर्ण रूप से अपने–आपको स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रयत्नों को समर्पित कर दिया। इस संबंध में उन्हें कई वर्षों की जेल यातनायें भी सहनी पड़ी लेकिन अपने पथ पर विचलित नहीं हुए।

नेहरू जी स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बनने के बाद जीवन पर्यन्त इसी पद पर बने रहे। वे एक महान लेखक, राजनीतिक कुशल वक्ता एवं इतिहास–प्रेमी थे। उनके विचारों पर दार्शनिक विचारधारा की नेहरू जी ने जो पुस्तकें लिखीं उनमें कुछ महत्वपूर्ण इस प्रकार है।

Autobiography Letter from a Father to his Daughter, Glimpses of world History, Discovery of India.

### 5.2 नेहरू जी के आर्थिक विचार–

गांधी के समान नेहरूजी अर्थशास्त्र के कोई विचारक नहीं थे यद्यपि उन्होंने इस संबंध में अर्थशास्त्र के ग्रन्थों का अध्ययन किया था। उन्होंने भारतीय परिस्थितियों के देखते हुए जो विचार व्यक्त किये उन्हीं में हम उनके विचार ढूंढ सकते है। उन्होंने स्वतंत्र रूप से अर्थशास्त्र पर पुस्तक नहीं लिखी वरन् उनके भाषणों, संसदीयवादी विवादों लेखों इत्यादि से ही उनके आर्थिक विचार की झलक मिलती है। नेहरूजी विचारों में भी व्यवहारिक अर्थशास्त्र को लेकर चलते है। विशेष रूप से उनके भारत की निर्धनता एवं उसके आर्थिक विकास से प्रभावित है जो इस प्रकार है :–

1. **समाजवादी समाज की रचनाः–**भारतीयों में व्याप्त असमानता को दूर करने के लिए तथा पूँजीवादी प्रणाली के दोषों को दूर करने के लिए नेहरूजी ने समाजवादी समाज (Socialistic Pattern of Society) की रचना पर बल दिया। प्रारम्भ में ही नेहरूजी ने यह समझ लिया था कि बिना समाजवाद लाये, भारत की आर्थिक व्यवस्था में निहित दोषों को दूर नहीं किया जा सकता। इससे संबंधित विचार हमें उनकी कृति श्ˇपजीमत प्दकपंश में मिलती है। सन् 1927 की रूस यात्रा ने नेहरूजी को समाजवादी विचारधारा को अधिक प्रभावित किया। उनके लिए समाज– वाद का अर्थ समानता से था। लेकिन वे इसे अच्छी तरह जानते थे कि एकदम से पूंजीवाद को नष्ट कर समाजवाद नहीं लाया जा सकता अतः इसके लिए उन्होंने कठोर उपायों का सहारा न लेकर लचीले उपायों को अपनाया । सन् 1955 में अवाड़ी में कांग्रेस के सत्र में नेहरूजी ने समाजवादी समाज की रचना का प्रस्ताव प्रस्तुत किया । 'समाजवादी समाज' की रचना के बाद के क्रमशः प्रजातांत्रिक समाजवाद ;क्मउवबतंजपब ैवबपंसपेउद्ध की ओर बढ़े। प्रजातन्त्र में विश्वास रखते हुए वे एक ऐसे समाज की रचना करना चाहते थे जिसमें अवसरों की समानता, वितरण की समानता, आय तथा सम्पत्ति के वितरण में विषमता की समाप्ति उत्पादन में वृद्धि, रोजगार में वृद्धि तथा प्रत्येक के जीवन स्तर में वृद्धि हो । इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने जनवरी सन् 1964 में भुवनेश्वर कांग्रेस के सत्र में 'प्रजातांत्रिक समाजवाद' का नारा दिया। समाजवाद को लाने के लिए उन्होंने निजी क्षेत्र (Private Sector) को एकदम समाप्त नहीं किया वरन् उसके साथ ही साथ सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) को समन्वित करके, मिश्रित अर्थ–व्यवस्था (Mixed Economy) की नींव डाली। वे चाहते थे कि धीरे–धीरे आर्थिक व्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र का हिस्सा बढ़ना चाहिए इस संबंध में हम उनके विचार सन् 1948 एवं 1956 में स्वीकार की गई भारत की औद्योगिक नीति में ढूंढ़ सकते हैं।

चूंकि नेहरूजी लोकतन्त्रीय समाजवाद में विश्वास रखते थे अतः वे भारत की उस व्यवस्था के पोषक नहीं थे जिसका संचालन राजा–महाराजा कर रहे थे। रियासतों को समाप्त करने में उनका महत्वपूर्ण योगदान था। इस नीति के पीछे वे गांधीजी की सर्वोदय विचारधारा से प्रभावित थे एवं किसी भी रूप में विद्यमान शोषण को समाप्त करने के पक्ष में थे ।

2. **अर्थशास्त्र का उद्देश्य–** नेहरू जी कठोर रूप से किसी 'वाद' के समर्थक नहीं थे। हम उनके विचारों में लोच पाते हैं तथा भारत की परिस्थितियों को देखते हुए उन्होंने अर्थशास्त्र की विभिन्न विचारधाराओं का अनुसरण किया। यद्यपि वे जोवन में महान आदर्शों को लाना चाहते थे लेकिन उसके पहले वे चाहते थे कि मनुष्यों की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा किया जाना चाहिए। जब तक मनुष्य अपनी भोजन, वस्त्र एवं आवास संबंधी न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरी नहीं कर लेता उसके सामने आदर्श एवं मानव मूल्यों की बात करना बेकार ही है। अतः अर्थशास्त्र का उद्देश्य यही होना चाहिए कि ऐसा सुदृढ़ आधार तैयार किया जाय ताकि मनुष्य की न्यूनतम

आवश्यकताएँ पूरी की जा सकें । इस प्रकार नेहरूजी ने अर्थशास्त्र को सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से ग्रहण न कर उसे व्यावहारिक रूप में ग्रहण किया। नेहरूजी आर्थिक प्रणाली एवं विभिन्न आर्थिक सिद्धांतों से परिचित थे और समय–समय पर वे बड़े–बड़े अर्थशास्त्रियों से विचार–विमर्श करते रहते थे लेकिन किन्हीं भी सिद्धांतों का अनुसरण बिना सोचे–समझे एवं भारतीय परिस्थितियों की कसौटी पर कसे बिना नहीं करते थे। वे अर्थशास्त्र की आगमन विधि के समर्थक थे एवं इस बात से सहमत थे कि बिना देश–काल की परिस्थितियों को ध्यान में रखे हुए आर्थिक सिद्धान्तों को लागू नहीं किया जा सकता।

3. **औद्योगीकरण –** नेहरू जी के सामने सबसे प्रमुख समस्या यह थी कि भारत को औद्योगिक रूप से कैसे विकसित क्रिया जाय? ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत भारत का शोषण किया गया एवं एक ओर तो यहां के कुटीर उद्योगों को नष्ट कर दिया जाय एवं दूसरी ओर यहाँ पर सामान्य तौर पर उद्योगों की स्थापना नहीं की गई– केवल अपने हितों की पूर्ति के लिए यहाँ कुछ उद्योगों की स्थापना कर अंगेजों ने इस क्षेत्र में एकांगी विकास किया । नेहरूजी का विश्वास था कि जब तक हम औद्योगिक रूप से सुदृढ़ नहीं होते, अन्य देशों के साथ मुकाबला नहीं कर सकते और न ही इस क्षेत्र में आत्म–निर्भरता की ओर बढ़ सकते हैं। आर्थिक विकास के लिए भी उद्योगों की स्थापना को वे एक पूर्व शर्त मानते थे । उनका विचार था कि यदि हम राजनीतिक स्वतंत्रता को कायम रखना चाहते हैं तो उसके लिए सुदृढ़ आर्थिक आधार होना चाहिए और यह आर्थिक आधार औद्योगीकरण के द्वारा ही सम्भव है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने तकनीकी ज्ञान तथा शक्ति के साधनों पर बल दिया । नेहरूजी वैज्ञानिक अन्वेषणों के समर्थक थे तथा आधारभूत एवं भारी उद्योगों की स्थापना करना चाहते थे । लेकिन एक बात यहाँ महत्वपूर्ण है कि वे आँख मूंदकर औद्योगीकरण को नहीं अपनाना चाहते थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के सामने प्रमुख समस्या खाद्य समस्या थी।

अतः प्रथम पंचवर्षीय योजना में उन्होंने कृषि उत्पादन को प्राथमिकता दी तथा उसके बाद ही औद्योगीकरण पर बल दिया। इसके लिए उन्होंने वैज्ञानिक साधनों, मशीनों, आधुनिक तकनीक तथा परमाणु शक्ति इत्यादि पर बल दिया। इसकी झलक उनके इन विचारों से मिलती है, ''हम भारत में लोगों का जीवन–स्तर ऊँचा उठाने में लगे हुए हैं। हम जो कुछ कर रहे है उसका परिणाम हमें तुरन्त नहीं मिल जाता जिस प्रकार औद्योगिक क्रांति सफल रही, भले ही कुछ लोगों ने इसे पसंद न किया हो उसी प्रकार औद्योगिक विकास के लिए परमाणुशक्ति की क्रांति आवश्यक है–या तो आप इसके माध्यम से आगे बढ़े अन्यथा दूसरे आप को पीछे छोड़ जायेंगे।''

औद्योगीकरण को बढ़ावा देने के लिए एवं कृषि उद्योग को विकसित करने के लिए उन्होंने भारी उद्योगों एवं बाँधों के निर्माण को प्राथमिकता दी। इन्हें ही वे ''आधुनिक मन्दिर'' मानते थे।

4. **व्यक्तिगत स्वतन्त्रता–** गांधीजी का विश्वास था कि उत्पादन के केन्द्रीकरण से मानवीय स्वतंत्रता की रक्षा नहीं की जा सकती किन्तु नेहरूजी ने औद्योगिक केन्द्रीकरण एवं व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में समन्वय लाने का प्रयास किया। लेकिन वे ऐसे केन्द्रीकरण के विरोध में थे जो व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को सीमित करता है। इस प्रकार वे इन दोनों में संतुलन स्थापित करना चाहते थे ताकि मानव का पूर्ण विकास हो सके। इसी उद्देश्य से ही नेहरूजी ने गाँवों में कुटीर उद्योगों की स्थापना पर बल दिया

5. **आर्थिक नियोजन–** भारत के आर्थिक विकास के लिए नेहरू जी ने आर्थिक नियोजन को आवश्यक माना, क्योंकि वे एक क्रमबद्ध एवं उचित प्रणाली के विकास में विश्वास रखते थे। नेहरूजी, रूस के नियोजन से, जो सन् 1928 में प्रारंभ हुआ था, काफी प्रभावित हुए। ऐसी बात

नहीं है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ही नेहरूजी का ध्यान नियोजन की ओर गया वरन् काफी पहले से ही भारत में आर्थिक नियोजन को अपनाने का विचार नेहरूजी के मन में था लेकिन उसे प्रस्फुटित एवं कार्यान्वित करने के लिए उन्हें उचित वातावरण नहीं मिल रहा था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सन् 1950 में योजना आयोग (Planning Commission) की स्थापना करने में नेहरूजी का महत्त्वपूर्ण हाथ था और वे प्रधानमंत्री बनने के बाद अपनी मृत्यु के समय तक इस आयोग के अध्यक्ष रहे। पंचवर्षीय योजना के निर्माण में भी नेहरूजी की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। वास्तव में नियोजन से उनका सम्बन्ध सन् 1938 से या जबकि वे भारतीय कांग्रेस द्वारा नियुक्य राष्ट्रीय नियोजन समिति के अध्यक्ष बनाये गये। नेहरूजी का विश्वास था कि आयोजन के लिए यह पूर्ण शर्त कि देश में पूर्ण स्वतन्त्रता हो तथा वह बाहरी नियंत्रण से बिल्कुल मुक्त हो। नेहरूजी नियोजन को एक ऐसा कार्यशील विज्ञान मानते थे जो लोगों को गतिशील बनाकर उनमें जागरूकता पैदा कर सके और लोगों में विकास करने की जिज्ञासा पैदा कर सके। इसी उद्देश्य से नेहरू जी ने इस बात पर बल दिया कि लोगों में योजना संबंधी ज्ञान पैदा किया जाना चाहिए एवं उन्हें नियोजन के प्रति सचेत (Planning Minded) बनाया जाना चाहिये।

नेहरू जी इस पक्ष में थे कि यदि नियोजन को कार्यान्वित करने लिए हमें विदेशी सहायता की आवश्यकता पड़ती है। तो उसे भी स्वीकार करना चाहिये किन्तु हमें बिदेशी सहायता पर निर्भर नहीं रहना चाहिये।

6. **सामुदायिक विकास योजनाएँ–** गांधी जी के समान नेहरू जी भी भारत की ग्रामीण समस्याओं एवं उनकी आर्थिक कठिनाइयों के प्रति जागरूक थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने सामुदायिक विकास योजनाओं को प्रारम्भ किया। वे चाहते थे कि इन योजनाओं के द्वारा गाँवों में सरकार की सहायता एवं ग्रामीणों के उत्साह तथा पहल के माध्यम से आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक चहुंमुखी विकास किया जा सके। वे चाहते थे कि गांवों में कृषि, पशु पालन, शिक्षा, उद्योग, समाज शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सहकारिता तथा स्थानीय प्रशासन समस्त क्षेत्रों में इस प्रकार उन्नत की जाय ताकि ग्रामीण जीवन की समस्याओं को हल किया जा सके और बाद में लोग स्वयं अपनी समस्याओं को हल कर सकें।

उन्होंने पंचवर्षीय योजनाओं में सामुदायिक विकास को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। उनका विचार था कि प्रत्येक गांव में एक स्कूल, एक सहकारी भंडार तथा एक पंचायत होनी चाहिए। सामुदायिक विकास योजनाओं के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों के सर्वांगीण विकास में उन्हें पूर्ण विश्वास था। उनका कथन है कि, ''सामुदायिक योजनाएँ सम्पूर्ण भारत में कान्तिमान, जीवन्त एवं गतिशील चिनगारियों के समान हैं जिनमें से शक्ति, विश्वास और उत्साह की किरणें निकलती है।'' वे इसे देश के विकास एवं नई चेतना का प्रतीक मानते थे।

7. **कृषि एवं भूमि सुधार–** नेहरू जी का विश्वास था कि भारत जैसे देश में जहाँ करीब 75 प्रतिशत लोग कृषि करते हैं, कृषि में सुधार करना एवं भूमि सुधारों को प्राथमिकता देना पहला कदम होना चाहिए। उनका कथन था कि ''कृषि को सर्वाधिक प्राथमिकता देने की आवश्यकता है। यदि कृषि असफल रहती है तो सरकार और राष्ट्र दोनों असफल रहते हैं।'' इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर उन्होंने जमींदारी उन्मूलन का कदम उठाया। आज भारत के विभिन्न प्रान्तों में जो जोत की सीमा निर्धारित की जा रही है उसके पीछे नेहरू जी की भूमि सुधार की प्रेरणा छिपी हुई है। कृषि के क्षेत्र में उन्होंने सहकारिता को भी महत्व दिया । नेहरू जी प्रथम व्यक्ति थे जिनका सहकारिता का सिद्धान्त अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा स्वीकार किया गया। उनका सहकारी कृषि का सिद्धान्त किसी भय या दबाव पर आधारित नहीं था वरन वे किसानों

को सहकारिता के क्षेत्र में इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहते थे कि वे इसके जाभों को समझ सकें और खुद आगे आयें।

**कृषि**—संकट को दूर करने के लिए उनका विचार था कि कृषि का भी यंत्रीकरण किया जाय ताकि उत्पादन में वृद्धि हो सके । किन्तु वे इसे एक धीमी प्रक्रिया के रूप में अपनाना चाहते थे क्योंकि भारत की परिस्थितियों में यह उपयुक्त नहीं था कि खेती में किसी बड़े स्तर पर मशीनों का प्रयोग किया जा सके।

इस तरह नेहरू जी ने जो विचार व्यक्त किये, भारत की परिस्थितियों को देखते हुए समयानुकूल थे। वे भारत का आन्तरिक विकास तो करना चाहते ही थे, साथ ही अन्तरर्राष्ट्रीय जगत में भी उसे स्थान दिलाना चाहते थे।

### 5.3 निष्कर्ष

इस प्रकार नेहरू जी के विचार समाजवाद एवं भौतिक सभ्यता से प्रभावित थे। किन्तु यह ध्यान रखने योग्य है कि उन्होंने किसी भी वाद का बिना सोचे—विचारे अनुसरण नहीं किया। उन्होंने न तो पूर्ण रूप से मार्क्सवाद को अपनाया और न ही पूर्ण रूप से गांधीवाद का अनुसरण किया। वे शान्तिपूर्ण तरीकों से समस्याओं को सुलझाने के पक्ष में थे। उन्होंने भारत को स्थैतिक दशाओं से निकालकर गतिशील अर्थव्यवस्था में प्रवेश कराया। उन्होंने देश में आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिरता की सुदृढ़ नींव डाली। देश के आर्थिक विकास में उन्होंने जो योगदान दिया, उसके लिए सदैव उनका नाम स्मरणीय रहेगा।

### 5.4 अभ्यास प्रश्न—

1. नेहरू जी के प्रमुख आर्थिक विचारों की विवेचना कीजिए।

### 5.5 संदर्भ सूची—


I. Dantwala, M.L.- Gandhism Reconsidered (1944).

II. Dutt, R.C.- The Economic history, Vols. I and II (1901 and 1906).

III. Gandhi, M.G.- Gandhi and Marx (1969).

IV. Gandhi, M.K.- constructive Programme (1941).

V. India of My Dream (1947).

VI. Towards Non-violent Socialism (1951).

VII. Sarvodaya (1957).

VIII. Ganguli, B.N.- Indian Economic Thought (1977).

# इकाई–06

# पॉल.ए. सैमुएलसन एवं सर जान हिक्स

## इकाई की रुपरेखा–

**6.0 उद्देश्य**


**6.1 प्रस्तावना**

**6.2 सैमुएलसन के आर्थिक विचार**

**6.3 हिक्स का आर्थिक विचार**

**6.4 सांराश**

**6.5 अभ्यास प्रश्न**

**6.6 संदर्भ–सूची**


### 6.0 उद्देश्य–

इस अध्याय के अन्तर्गत पॉल, ए. सैमुएलसन एवं जान हिक्स के आर्थिक विचारों को दर्शाया गया है। दोनों केन्सेलर अर्थशास्त्रियों ने समष्टि अर्थशास्त्र एवं व्यष्टि अर्थशास्त्र के विकास में अनेक महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रतिपादित किए। इस अध्याय के अध्ययन का उद्देश्य अर्थशास्त्र विषय में दोनों अर्थशास्त्रियों के योगदान के विषय में जानकारी प्राप्त करना है।

### 6.1 प्रस्तावना

सैमुएलसन एक अमेरिकी अर्थशास्त्री थे। 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के अर्थशास्त्रियों में से सबसे प्रभावशाली अर्थशास्त्री माने जाते है। सैमुएलसन ने गणित को अर्थशास्त्रियों के लिए ''प्राकृतिक भाषा'' माना और अर्थशास्त्र की गणितीय नींव में महत्वपूर्ण योगदान दिया। सैमुएलसन ने अमेरिकीय राष्ट्रपति कैनेडी और लिंडन जानसन के आर्थिक सलाहकार के रूप में कार्य किया। सैमुएलसन ने शिकांगो विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्रीय प्रो० मिल्टन फ्रिडमैन के साथ कार्य किया। सैमुएलसन एक स्व–वर्णित ''कैफेटेरिया कीन्सीयन'' के रूप में कीन्सीयन दृष्टिकोण अपनाने का दावा किया, लेकिन केवल वह स्वीकार किया जो उन्हें अच्छा लगा। किसी भी अन्य समकालीन अर्थशास्त्रीय की तुलना में सैमुएलसन ने आर्थिक विज्ञान में सामान्य विश्लेषणात्मक और पद्धतिगत स्तर को बढ़ाने में अधिक मदद की है। उन्होंने अर्थशास्त्र में समस्याओं और विश्लेषणात्मक तकनीकों दोनों की मौलिक एकता को भी दर्शाया है।

### 6.2 पॉल ए. सैमुएलसन के आर्थिक विचार

### प्रकृट अधिमान का सिद्धान्त–(Theory of Revealed)

प्रकट अधिमान सिद्धान्त के प्रतिपादक प्रो० सैमुअलसन (Samuelsun) अपने सिद्धान्त को मांग के तार्किक सिद्धान्त का तीसरा मूल (Third Root of Logical Theory of Demand) मानते है प्रो. सैम्युअलसन का सिद्धान्त मांग के नियम की व्यवहारात्मक दृष्टिकोण (Behaviouristic Approach) से व्याख्या करता है। इस सिद्धान्त से पूर्व मार्शल द्वारा विकसित उपयोगिता विश्लेषण तथा हिक्स–ऐलन

का उदासीनता वक्र विश्लेषण उपभोक्ता के मांग वक्र की मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण (Psychological Approcch) से व्याख्या करते है जिसकी पूर्ण व्याख्या एवं स्पष्टीकरण हम गत अध्यायों में कर चुके है।

**सैम्युअलसन के सिद्धान्त के दो मान्यताएँ है–**

1. अनेक उपलब्ध विकल्पों (Alternatives) में से उपभोक्ता एक निश्चित संयोग का चुनाव करता है दूसरे शब्दों में वह अपने निश्चित अधिमान को प्रकट करता है।
2. उपभोक्ता व्यवहार के सांमजस्य और संक्रमकता को भी स्पष्ट करता है– प्रो. सैम्युअलसन ने अपने लेख (Consumption Theory in Terms of Reveled Preference') 1948 में अपनी परिकल्पना को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया है।

यदि किसी दिये गये संयोग बिन्दु A से होती हुई गई कीमत अनुपात के बराबर ढाल वाली सीधी कीमत या बजट रेखा खींची जाय तो उस कीमत रेखा पर या उसके अन्दर वस्तु के सभी संयोग वास्तव में खरीदे गये संयोग के अधिमान में खरीदे जा सकते थे किन्तु वे नहीं खरीदे गये इस प्रकार वे सभी । तुलना में निम्न घोषित किये गये।''

सैम्युअलसन शब्दों में कोई वस्तु जिसकी मांग केवल मौद्रिक आय के बढ़ने पर बढ़ती है निश्चित रूप से मांग में घटेगी यदि केवल उसकी कीमत में वृद्धि होती है, इस प्रमेय के प्रथम भाग में 'आय' एवं मांग का सीधा एवं धनात्मक सम्बन्ध दिखाया है जो धनात्मक आय लोच' (Postive Income Elasticity) का सूचक है प्रमेय का दूसरा भाग प्रथम कथन को दूसरे शब्दों में व्यक्त करता है जिसमें कीमत और मांग के विपरीत तथा ऋणात्मक कीमत लोच (Negative Price Elasticity) सूचित करता है वस्तुतः प्रमेय के आधार पर दोनों एक ही हैं अर्थात्; धनात्मक आय लोच, ऋणात्मक कीमत लोच को प्रदर्शित करती है इसे सैम्युअलसन ने उपभोग सिद्धान्त का आधारभूत नियम (Fundamental Theorem of Consumption Theory) करते है।

**गुणक एवं त्वरक की पारस्परिक क्रिया (Interaction Between Multiplier and Accelerator)**

गुणक तथा त्वरक के सिद्धान्तों को एक मॉडल में प्रस्तुत करके उसकी पारस्परिक क्रिया को समझा जा सकता है, चूंकि निवेश अथवा उपभोग व्यय में वृद्धि में या तो त्वरक या गुणक निहित होता है एक व्यय में वृद्धि होने का दूसरे व्यय पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है परन्तु किस सीमा तक यह प्रभाव होगा यह इस पर निर्भर करेगा कि अर्थव्यवस्था में फालतू उत्पादन क्षमता कितनी विद्यमान है अन्य शब्दों में निवेश में स्वायत्त वृद्धि होने से उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग हो रहा है। त्वरक सिद्धान्त के अनुसार प्रेरित उपभोग में वृद्धि होने से प्रेरित निवेश में वृद्धि होगी गुणक तथा त्वरक की पारस्परिक क्रिया क्रम निम्नांकित प्रकार का होगा।

यह बताने के लिए कि अर्थव्यवस्था में किस प्रकार आर्थिक क्रियाओं के स्तर में उतार–चढ़ाव होते है तथा किस प्रकार ये परिवर्तन स्वंय–स्फूर्त होते है अर्थशास्त्रियों द्वारा विभिन्न गुणक–त्वरक मॉडल प्रस्तुत किए गए है कोई भी इच्छित परिणाम प्राप्त करने के लिए हमें त्वरक (V) तथा सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (b) के उपयुक्त मूल्य लेने होगे यदि V शून्य है तो केवल गुणक कार्यशील होगा तथा ऐसी स्थिति में अर्थव्यवस्था में चक्रीय उतार–चढ़ावों की सीमा त्वरक एवं सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति के मूल्यों पर निर्भर करेगी यदि इनका अंकीय योग इकाई के समीप है तो उतार–चढ़ाव आकर के होंगे।

**साधन गहनता व्युत्क्रम :—**

(Factor Intensity Reversals) साधन गहनता व्युत्क्रम उस स्थिति में विद्यमान होते है जब एक समनता वक्र ''दूसरे सममात्रा वक्र पर स्थित हो अथवा जब एक सममात्रा वक्र दूसरे सममात्रा वक्र को अनेक बिन्दुओं पर काटे इनमें से पहले को एक साधन गहनता व्युत्क्रम और दूसरे को बहु साधन गहनता व्यत्क्रम कहा जाता हैं, स्टोप्लर–सैम्यूल्सन प्रमेय साधनों की वास्तविकता आय के लिए कीमतों में हुए परिवर्तन के परिणामों की जांच करता है साधन कीमत समानीकरण सिद्धान्त साधन आय के अनुपात को वस्तु कीमतों में होने वाले परिवर्तनों से सम्बन्ध स्थापित करता है परन्तु स्टोप्लर–सैम्यूल्सन सिद्धान्त व्यक्तिगत आय से वस्तु कीमतों में होने वाले परिवर्तनों को बताता है यह सिद्धान्त कहता है कि यदि दो साधन दो वस्तु अर्थव्यवस्था में किसी वस्तु की कीमत बढ़ती जिस वस्तु की कीमत बढ़ी है उसके उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले प्रचुर साधन की कीमत बढ़ जाएगी और दुर्लभ साधन की कीमत गिर जाएगी और विलोमशः भी।

**सामाजिक कल्याण फलनः—**

विगत कुछ वर्षों में कल्याणवादी अर्थशास्त्र की पुनर्स्थापना करने की दिशा में प्रो० बर्गसन, सैम्युल्सन, टिण्टनर जैसे अर्थशास्त्रियों का योगदान महत्वपूर्ण है।

इन अर्थशास्त्रियों का यह निश्चित मत है कि यदि कल्याणवादी अर्थशास्त्र को मूल्यगत–निर्णयों (Value-Judgements) से अलग रखा जाता है तो यह अपने उद्देश्य में विफल हो जायेगा मूल्य–निर्णयों अथवा नैतिक मापदण्डों के बिना कल्याणकारी अर्थशास्त्र व्यवहारिक नीतियों के निर्माण में कोई भी योगदान नहीं कर सकेगा और इसलिए वास्तविक जीवन में इसकी उपयोगिता ही समाप्त हो जायेगी इन अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता है कि कल्याणवादी अर्थशास्त्र आवश्यक रूप से एक आदर्शात्मक अध्ययन (Normative Study) है इसका स्पष्ट निर्देश यह है कि ''वस्तुएं कैसी होनी चाहिए।'' (What Dught tobe) अपनी इस मान्यता के पक्ष में इन लोगों ने यहां तक सिफारिश की है कि यदि अर्थशास्त्रियों के पास अपने मूल्य–निर्णय (Value-Judgements) नहीं है तो वे इन्हें दूसरे व्यक्तियों अथवा दूसरे विज्ञानों से प्राप्त कर सकते है। समाज के आर्थिक कल्याण में वृद्धि करने के लिए मूल्यगत निर्णयों (Value-Judgements) को शामिल किया जाना आवश्यक है।

सामाजिक कल्याण फलन उन सब तत्वों अथवा चरों ;टंतपंइसमेद्ध को बतलाता है जिन पर समाज के सभी व्यक्तियों का कल्याण निर्भर करता है यदि अति महत्वपूर्ण है कि एक व्यक्ति का कल्याण केवल उसकी अपनी आय अथवा उसके उपभोग पर ही निर्भर नहीं करता है बल्कि वह समाज के सभी व्यक्तियों के कल्याण के वितरण पर निर्भर करता है। इसी प्रकार समाज का कल्याण समाज के प्रत्येक सदस्य द्वारा वस्तुओं तथा सेवाओं के उपयोग पर निर्भर करता है अतः सामाजिक कल्याण फलन, समाज के कल्याण का क्रमवाचक–सूचकांक ** (Ordinal Indicatore) होता है। तथा इसमें नैतिक निर्णयों को स्पष्ट रूप से शामिल किया गया होता है। इस भांति व्यक्तिगत उपयोगिकताओं को जोड़कर, सामूहिक उपयोगिता फलन (Collection Utility Function) प्राप्त किया जाता है उसी को वास्तव में सामाजिक कल्याण फलन (Social Welfare Function) की संज्ञा दी गयी है।

**6.3 हिक्स के आर्थिक विचार**

प्रो० हिक्स आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर हैं। प्रो० हिक्स का नाम आधुनिक अर्थशास्त्रीय सिद्धांतों के उच्चस्तरीय विश्लेषण के साथ जुड़ा हुआ है। प्रो० हिक्स को सन् 1951 में कर–प्रणाली के रायल कमीशन का सदस्य होने का गौरव प्राप्त हुआ। अर्थविज्ञान में महत्त्वपूर्ण योगदान के कारण प्रो० हिक्स को 1972 में अर्थशास्त्र का नोबल पुरस्कार प्रदान कर सम्मानित किया गया।

आपके महत्वपूर्ण प्रकाशनों में ष्टंसनम ंदक ब्ंचपजंसष का स्थान अग्रणी है जो 1939 में प्रकाशित हुई। आपके अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकाशन हैं – Theory of Wages (1932), Taxation of War Wealth (1940), Standards of Local Expanditure (1943) A Contribution to the theory of the Trade Cycle (1950), A Revision of Demand Theory (1956), Essay in the world Economics (1959).

## हिक्स के मुख्य आर्थिक विचार

अर्थविज्ञान के क्षेत्र में उपभोक्ता की मांग, व्यापार चक्र, सामान्य संतुलन तथा गतिशील आर्थिक विश्लेषण के क्षेत्र में प्रो० हिक्स का नाम उल्लेखनीय है। जहां गणितीय विश्लेषण में आप अग्रणी रहे हैं, वहीं नीति–निर्धारण के संबंध में आपकी सेवाएं कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। अपनी पुस्तक ष्टंसनम ंदक ब्ंचपजंसष में आपने प्रो० बालरस और परेटो द्वारा प्रतिपादित विचारों को आगे बढ़ाया है। हिक्स ने परेटो के सामान्य संतुलन सिद्धांत को उन समस्याओं पर भी लागू किया है जो मूल्य और ब्याज के कारण पैदा होती है। आपके मुख्य आर्थिक विचार इस प्रकार हैं–

## उपभोक्ता की मांग का सिद्धांत

प्रो हिक्स ने मार्शल के उपयोगिता सिद्धांत को संशोधित रूप में प्रस्तुत किया है यद्यपि उन्होंने अपना सिद्धांत मार्शल के सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम से ही ग्रहण किया है। मार्शल ने अपने मांग विश्लेषण में मुद्रा की सीमांत उपयोगिता को स्थिर मान लिया था अर्थात् मुद्रा की सीमांत उपयोगिता एवं वस्तु की कीमत में स्थिर अनुपात रहता है। परंतु इसकी आलोचना करते हुए प्रो० हिक्स कहते हैं कि मार्शल ने आय–प्रभाव की अवहेलना की अर्थात् मार्शल ने इस बात पर ध्यान दिया कि वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप वास्तविक आय में परिवर्तन का मांग पर क्या प्रभाव पड़ता है। प्रो० हिक्स ने मार्शल की उपयोगिता की संख्यात्मक गणना विधि की आलोचना की है क्योंकि उनकी दृष्टि में उपयोगिता को नापना असंभव है। केवल क्रम के आधार पर उपयोगिता की गणना की जाती है अर्थात् हम केवल यह कह सकते हैं कि वस्तु की अमुक इकाई से अधिक उपयोगिता मिली और अमुक इकाई से कम। उपयोगिता के विश्लेषण के लिए हिक्स ने तटस्थता वक्र का प्रयोग किया है। संतुलन की स्थिति में दो वस्तुओं के बीच प्रतिस्थापन की सीमांत दर उनके मूल्यों के अनुपात के बराबर रहती है। अपनी पुस्तक श्त्मअपेपवद व िक्मउंदक जीमवतलश में प्रो० हिक्स ने मांग के नवीनतम सिद्धांतों का विवेचन किया है एवं प्रो० सेमुअल्सन द्वारा प्रतिपादित प्रकट अधिमान सिद्धांत (Revealed Reference Theorem) के संबंध में उसने विचार प्रस्तुत किये हैं।

## उपभोक्ता की बचत

मार्शल की संख्यात्मक उपयोगिकता गणना के स्थान पर प्रोफेसर हिक्स ने तटस्थता वक्र के माध्यम से उपभोक्ता की बचत का विश्लेषण किया है। प्रारम्भ में तो प्रोफेसर हिक्स ने मार्शल की परिभाषा के समान ही उपभोक्ता की बचत को परिभाषित किया है किन्तु आगे चलकर हिक्स ने अपनी उपभोक्ता की बचत की परिभाषा में संशोधन किया और कहा कि ''यह मुद्रा की वह मात्रा है जो उपभोक्ता आर्थिक स्थिति में परिवर्तन के फलस्वरूप या तो उपभोक्ता को इस तरह भुगतान किया जाना चाहिए या उसके ले लिया जाना चाहिए ताकि उसकी कुल संतुष्टि पर कोई प्रभाव न पड़े इसकी व्याख्या करने के लिए हिक्स ने आय में क्षतिपूरक परिवर्तन का प्रयोग किया है।

## विनिमय का सामन्य संतुलन

प्रो० हिक्स ने अपनी पुस्तक 'Value and Capital' में सामान्य संतुलन सिद्धांत का भी विश्लेषण किया है। प्रो० हिक्स ने इस क्षेत्र में लियोन बालरस (Leon Walras) के योगदान को स्वीकार किया है। हिक्स के अंनुसार, निश्चित कीमतों के आधार पर, एक व्यक्ति उन वस्तुओं की मांग करेगा जो उसके पास नहीं

हैं तथा उनके बदले में उन वस्तुओं को देने को तत्पर रहेगा जो उसके पास हैं। इस प्रकार हम प्रत्येक वस्तु की मांग और पूर्ति का निर्धारण कर सकते हैं। यदि कीमत प्रणाली इस प्रकार है कि वस्तुओं की मांग और पूर्ति में समानता है तो यह स्थिति विनिमय के सामान्य संतुलन की होगी। हिंक्स ने सामान्य संतुलन सिद्धांत का प्रतिपादन न केवल स्थैतिक दशाओं में किया है वरन् प्रावैगिक (Dynamic) दशाओं में भी किया है जो मुख्य रूप से यह जानने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है कि व्यवहार में एक स्वतंत्र समाज किस प्रकार कार्य करती है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि उन्होंने स्थैतिक संतुलन पर अधिक ध्यान दिया है एवं उन दशाओं की खोज की है जो स्थिर संतुलन के लिए आवश्यक हैं। हिक्स की मान्यता है कि स्थिर संतुलन का अध्ययन प्रावैगिक दशाओं में अस्थिरता के अध्ययन का आरंभ–बिंदु है।

हिक्स ने जो फर्म के संतुलन की धारणा प्रस्तुत की है उसमें एवं विनिमय के सामान्य संतुलन में काफी समानता है। उनके अनुसार फर्म के संतुलन की धारणा, विनिमय के सामान्य संतुलन के सिद्धांत को विकसित करने में काफी सहायक है। उत्पादन और बाजार की दशाओं में प्रत्याशाओं (Expectation) को स्वीकार करते हुए हिवस ने यह मत व्यक्त किया है कि इसमें कुछ न कुछ अनिश्चितता का तत्त्व विद्यमान रहता है जिसका ध्यान रखना आवश्यक है । पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत आगतों (Inputs) के मूल्यों एवं उत्पत्ति के अन्य साधनों की कीमतों के आधार पर उद्यमी अपने लाभ की गणना कर सकते हैं। विभिन्न वस्तुओं की कीमतों में एक ही दिशा में होने वाले परिवर्तनों की गणना में होने वाली कठिनाई को दूर करने के लिए हिक्स ने वस्तुओं के समूह को एक वस्तु मान लिया है। इस प्रकार अनेक चरों (Variables) को एक में परिवर्तित चर, उसे सामान्य बना दिया गया है।

यदि पूर्ण प्रतियोगिता के स्थान पर, बाजार में एकाधिकार की दशाएं विद्यमान रहती हैं तो स्थिरता विद्यमान नहीं रह सकती और न ही निश्चितता के आधार पर लाभ की गणना की जा सकती है।

### उत्पादन का सामान्य संतुलन

हिक्स का विश्वास है कि चूंकि उनका संतुलन का सिद्धांत उत्पादन से संबंधित है, अतः वह विनिमय के संतुलन सिद्धांत की तुलना में अधिक व्यापक है तथा उसकी सहायता से वितरण और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की दीर्घ–कालीन समस्याओं का हल भी निकाला जा सकता है। परंतु इसके निष्कर्षों को लागू करते समय अत्यंत सावधानी की आवश्यकता है।

सामान्य संतुलन सिद्धांत के संबंध में प्रो० हिवस ने स्वयं अपनी कमजोरियों को स्वीकार किया है। उनके अनुसार मुख्य दोष इस प्रकार हैं–

I. उनका सिद्धांत एकाधिकार एवं अपूर्ण प्रतियोगिता की अवहेलना करता है।

II. इसमें राज्य की आर्थिक क्रियाओं पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है, एवं

III. इसमें पूंजी, व्याज, बचत, विनियोग एवं सट्टे पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है।

श्रो० हिक्स ने अपनी पुस्तक "Value and Capital" में उक्त दोषों का उल्लेख किया है।

### व्यापार चक्र संबंधी विचार

हिक्स का विचार है कि चक्रीय उच्चावचन, गुणक और त्वरक की अंर्तक्रिया के फलस्वरूप होते हैं। अर्थव्यवस्था में जब विनियोग किया जाता है तो गुणक प्रभाव के फलस्वरूप आय में कई गुनी वृद्धि होती है जिससे उपभोग की वस्तुओं की मांग बढ़ती है। त्वरक प्रभाव के कारण, उपभोग वस्तुओं की मांग में वृद्धि होने से, विनियोग में वृद्धि होती है। इस प्रकार गुणक और लेखक के संयुक्त प्रभाव के कारण

अर्थव्यवस्था में तेजी की स्थिति आती है जब गुणक और त्वरक विपरीत दिशा में कार्य करते हैं तो मंदी की स्थिति आती है। हिक्स के अनुसार विनियोग दो प्रकार का होता है– स्वायत्त विनियोग (Autonomous Investment) और उत्प्रेरित विनियोग (Induced Investment)। स्वायत्त विनियोग विद्यमान आर्थिक दशाओं–राष्ट्रीय आय का स्तर एवं उपभोग आदि से स्वतंत्र होता है। इस विनियोग का दबाव गुणक के रूप में प्रकट होता है। उत्प्रेरित विनियोग, बाह्य दशाओं से प्रभावित होता है तथा इसका दवाव त्वरक के रूप में प्रकट होता है। हिक्स के अनुसार गुणक के माध्यम में स्वायत्त विनियोग और त्वरक के माध्यम से उत्प्रेरित विनियोग व्यापारिक क्रियाओं में उच्चावचन पैदा करते हैं।

**ब्याज का सिद्धान्त–**

प्रो० हिक्स ने मौद्रिक और अमौद्रिक तथ्यों को मिलाकर ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। अतः हिक्स का सिद्धान्त प्रतिष्ठित और कीन्स के ब्याज के सिद्धान्त का मिश्रण है। हिक्स के अनुसार यदि चार परिवर्तनशील तत्वों–बचत, विनयोग, तरलता पसंदगी और मुद्रा की पूर्ति को आय के साथ मिला दिया जाय तो ब्याज के संतोषजनक सिद्धान्त को प्राप्त कर सकते है। हिक्स ने दो वक्रों का प्रयोग किया है बचत–विनियोग वक्र तथा तरलता पसंदगी–मुद्रा पूर्ति वक्र। जिस बिन्दु पर ये दोनों वक्र एक–दूसरे को काटते है वहीं पर ब्याज दर का निर्धारण होता है।

**6.4 सारांश–**

अपने महत्वपूर्ण योगदान के कारण प्रो० हिक्स को आधुनिक अर्थशास्त्रियों में प्रथम श्रेणी का स्थान प्रदान किया सामान्य संतुलन और मांग के सिद्धान्त के क्षेत्र में प्रो० हिक्स ने पूर्ण और वैज्ञानिक विचारों की नींव की स्थापना की। आर्थिक विकास के क्षेत्र में भी प्रो० हिक्स का योगदान सराहनीय है। उन्होंने आर्थिक विकास का प्रावैगिक मॉडल प्रस्तुत किया है। अर्थव्यवस्था में मुद्रा की भूमिका के संबंध में प्रो० हिक्स और कीन्स विचारों में काफी समानता मिलती है। इसके बावजूद भी प्रो० हिक्स के विचारों में जटिलता है क्योंकि उन्होंने गणितीय सूत्रों का प्रचुरता का प्रयोग किया है। यह उनकी पुस्तक ''वैल्यू एण्ड कैपिटल'' से स्पष्ट है।

**6.5 अभ्यास प्रश्न–**

1. प्रो० सैमुएलसन के आर्थिक विचारों को स्पष्ट कीजिए–
2. प्रो० हिक्स के आर्थिक विचारों की व्याख्या कीजिए।

**6.6. संदर्भ सूची–**


I. Hicks, J.R.- 'Leon Walras', Econometrica, October 1934.

II. Higgins, B.H.-'Jevons- a centenary Estimate', Manchester school, 1935.

III. Howley,R.S.- The Rise of the Marginal Utility school 1870-1889 (1960).

IV. Hutchison,T.W.- A Review of Economic Doctrines (1953), Chap. 1,2,9 and 13.

V. Jaffe, W.- 'Leon Walras', in Encyclopedia of the SocialScience (1968).

VI. Samuelson, P.A.- Review of Torsten Gartund, The life of Knut Wicksell, in The review of Economics and Statistice, February 1969, reprinted in Stiglitz (ed.), The Collected Scientific Papers of Paul A. Samuelson (1966).

# इकाई–07

# अमर्त्यसेन एवं अन्य नोबेल अर्थशास्त्रीय

## इकाई की रुपरेखा–

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 अमर्त्य सेन का आर्थिक विचार

7.3 निष्कर्ष

7.4 अभ्यास प्रश्न

7.5 संदर्भ सूची

### 7.0 उद्देश्य–

इस अध्याय में भारतीय अर्थशास्त्रीय प्रोफेसर अमर्त्यसेन के आर्थिक विचारों को दर्शाया गया है। इस अध्याय के अध्ययन का उद्देश्य नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन के आर्थिक विचारों की जानकारी प्राप्त करना है।

### 7.1 प्रस्तावना

अमर्त्यसेन का जन्म 3 नवम्बर 1933 को शान्ति निकेतन में हुआ था। इनकी शिक्षा–दीक्षा शान्ति निकेतन, कलकत्ता प्रेसीडेन्सी कॉलेज और ऑक्सफोर्ड के ट्रिनिटी कॉलेज में हुई। तेईस वर्ष की उम्र में ही वे जादवपुर विश्वविद्यालय, कलकत्ता में प्रोफेसर बन गए। वर्ष 1959 में उन्होंने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से पी–एच. डी. की उपाधि प्राप्त की। इसके उपरान्त वे देश–विदेश के जिन प्रख्यात संस्थानों में अर्थशासत्र के प्रोफेसर रह चुके है। इनमें प्रमुख हैं–दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स, लन्दन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स के पहले गैर–अमेरिकी अध्यक्ष बने। जनवरी 1998 में उन्हें कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी के ट्रिनिटी कॉलेज के मास्टर के पद पर नियुक्त कर सम्मानित किया गया। उल्लेखनीय है कि मास्टर के पद पर वहां इससे पहले कभी भी किसी अश्वेत अथवा गैर अंग्रेज की नियुक्ति नहीं हुई थी। विश्वभर के 40 से अधिक विश्वविद्यालय उन्हें मानद डॉक्ट्रेट की उपाधि से अलंकृत कर चुके हैं। 14 अक्टूबर 1998 को प्रो. अमर्त्य सेन को अर्थशास्त्र के क्षेत्र में नोबेल पुरस्कार हेतु चुना गया। प्रो. सेन नोबेल पुरस्कार से सम्मानित होने वाले छठे भारतीय और अर्थशास्त्र के लिए पुरस्कृत किए जाने वाले पहले एशियाई हैं। भारत सरकार ने 1999 में उन्हें उच्चतम नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' से अलंकृत किया।

### रचनाएं

प्रो. अमर्त्य सेन ने अनेक पुस्तकों एवं लेखों की रचना की है। इनकी रचनाओं में प्रमुख हैं– 1. आर्थिक विषमताएं, 2. गरीबी और अकाल, 3.भारत का विकासः कुछ प्रादेशिक अध्ययन तथा 4. भारतः

विकास की दिशाएं आदि। इन पुस्तकों में उन्होंने अर्थशास्त्र के अनेक आयामों पर प्रकाश डाला है। कल्याण अर्थशास्त्र (Welfare Economics) पर उनकी रचनाएं बहुत जानी मानी जाती हैं।

वर्ष 1998 में प्रो. सेन को नोबेल पुरस्कार से सम्मानित करते हुए स्वीडन की रॉयल ऐकेडमी ऑफ साइंसिज ने अपने प्रशस्ति पत्र में लिखा है – इन्होंने कल्याण अर्थशास्त्र की मूलभूत समस्याओं के विषय में शोध के माध्यम से अनेक महत्वपूर्ण योगदान दिए हैं। इनके (बौद्विक) योगदानों का प्रसरण सामाजिक चयन के तर्काश्रित सिद्वान्त के निरूपण, आर्थिक कल्याण की परिभाषा के स्पष्टीकरण और गरीबी के मानक सूचकों की रचना से लेकर अकालों के आंकड़ों पर आधारित तथ्यात्मक विवेचन तक विस्तृत रहा है। इस तरह, अमर्त्य सेन को अपने शोध कार्यो के द्वारा राजनीतिक अर्थशास्त्र को ऐसे सरोकारों से जोड़ने के लिए सम्मानित किया गया है जो दुनियादारी से परे हैं यथा–सामाजिक विकल्प निर्धनता सूचकांक व अकाल को लेकर अध्ययन। सेन की रूचि के ये विषय विगत वर्षो में बाजारोनमुखी अनुसन्धान के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित अन्य व्यक्तियों से काफी अलग हैं।

### 7.2 अमर्त्य सेन के आर्थिक विचार

प्रो. अमर्त्य सेन अपनी पहली प्रमुख कृति 'कलेक्टिव च्वाइस एण्ड सोशल बेलफेयर' 1970 के प्रकाशन के पश्चात् ही वे छात्रों, शिक्षकों और विशेष रूप से सरकारी नीति निर्धारिकों के लिए एक आदर्श बन गए। वर्ष 1981 में प्रकाशित उनकी पुस्तक **'गरीबी और अकाल'** में यह विस्तार से बताया गया है कि अकाल अनाज की कमी से अधिक गलत वितरण प्रणाली का नतीजा होते हैं। इसके साथ ही प्रायः यह देखा जाता है कि अकाल पीड़ित इलाकों से अनाज का निर्यात किया जाता है। अमर्त्य सेन का कथन है कि अकाल मूल रूप से वितरण की समस्या हो सकता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि आवश्यकता होने पर भी अनाज पहुंचाना सम्भव नहीं हो पाता (कुछ परिस्थितियों में ऐसा हो भी सकता है)। इसे वितरण की समस्या इस रूप में कहा गया है कि किन्हीं कारणों से किसी क्षेत्र विशेष की जनसंख्या का बहुत पिछड़ा वर्ग पहले की अपेक्षा बहुत गरीब हो जाता है। इस कारण से उसके पास पर्याप्त (न्यूनतम आवश्यक) मात्रा में खाद्य पदार्थ खरीद पाने के लिए आवश्यक क्रय शक्ति का अभाव पैदा हो जाता है। यह अभाव उस समय भी पैदा हो सकता है जब सकल खाद्य पूर्ति में कोई कमी नहीं आई हो। उन्होंने बहुत ही विश्वासोत्पाद तर्को द्वारा समझाया कि 1943 का बंगाल का अकाल एक ऐसी ही विषम घटना थी।

अमर्त्यसेन एक मानव कल्याणवादी अर्थशास्त्री है उन्होंने अर्थशास्त्र को मानवीय चेहरा प्रदान करने का प्रयास किया है। प्रो० सेन के निम्नलिखित आर्थिक विचार है–

#### 1. सामाजिक विकास व आर्थिक विकास में सम्बन्ध

प्रो० सेन अपने आर्थिक चिन्तन का मनो निचोड़ प्रस्तुत करते हुए कहते है कि हमें सफल राष्ट्रीय उत्पादन की विकास दर को किसी देश के आर्थिक कल्याण की कसौटी नहीं माननी चाहिए, आर्थिक विकास होने पर भी देश में निरक्षता, अस्वास्थ्यता व अन्य कल्याण अभावों का बोलबाला हो सकता है। अतः सेन का मत है कि बिना सामाजिक सुधार किये कल्याणकारी आर्थिक विकास नहीं हो सकता है। प्रो० सेन पश्चिम देशों के अनुभवों के आधार पर बताते है कि जिन देशों में आम जनता को शिक्षा व स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध करायी जा रही है, वहां आर्थिक विकास का लाभ लोगों को व्यापक पैमाने पर मिल रहा है। अतः प्रो० सेन का मत है कि भारत में आर्थिक सुधार तभी अपेक्षित सफलता हासिल कर सकता है जबकि शिक्षा स्वास्थ्य और भूमि पर विशेष ध्यान दिया जाय।

अतः अमर्त्य सेन के अनुसार सामाजिक विषमता और पिछड़ेपन के कारण निम्नलिखित है–

I. शिक्षा पर उचित ध्यान न दिया जाना

II. स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव

III. भूमि सुधार

IV. यौन वैषम्य का निराकरण

**2. लोकतन्त्र में विश्वास**

डॉक्टर सेन की विचारधारा से यह स्पष्ट पता चलता है कि उनकी लोकतन्त्र में प्रबल आस्था है। उनका विचार है कि राजतन्त्र के द्वारा ही भारत जैसे विकासशील देशों का हित हो सकता है, पर लोकतन्त्र में राजसत्ता को और दूरगामी दृष्टि रखनी चाहिए। डॉक्टर सेन इस बात से खुश हैं कि भारत में धर्म जाति एवं वर्ग विभेदना होते हुए भी यहाँ लोकतान्त्रिक भक्तियों ने पृथक्वादी तत्वों को परास्त किया है। डॉक्टर सेन का अभिमत यह है कि प्रजातन्त्र में भुखमरी और अकाल नहीं आ सकते हैं, या उनकी गम्भीरता उतनी नहीं हो सकती। उसका अर्थ यह नहीं है कि प्रजातन्त्र से खाना पैदा हो जाता है पर प्रजातन्त्र में जनता अपनी माँग रख सकती है, अपनी स्थिति बता सकती है। सरकार अपनी क्रियाओं पर परदा नहीं डाल सकती है, सारी स्थितियाँ बहुत पारदर्शी होती हैं और इसलिए किसी प्रजातान्त्रिक सरकार को अपनी जनता को भूखा रखना महँगा सिद्ध होगा। इसलिए सरकार की कार्यवाही से अनाज निश्चित रूप से उन तक पहुँचाने की व्यवस्था करना जरूरी हो जायेगा और इसलिए भुखमरी नहीं होगी। इसलिए प्रजातन्त्र एक बेहतर व्यवस्था है और इसी आधार पर अन्य मामलों में आगे जाना चाहिए ताकि लोग अपने चुनाव और पसन्दगी को अभिव्यक्त कर सकें।

**3. अकाल और निर्धनता**

प्रोफेसर अमर्त्य सेन ने इस प्रचलित धारणा को चुनौती दी है कि खाद्यान्न की कमी ही अकाल का एकमात्र कारण होता है। अकाल हमेशा खाद्यान्न की कमी से नहीं आते। भुखमरी की समस्या को केवल परम्परागत अर्थशास्त्र के खांचे में ही सीमित नहीं रखा जा सकता। यहीं पर सामाजिक मूल्य दर्शन, नीतिशास्त्र, सरकार की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक, सांस्कृतिक आदि नीतियाँ भी महत्वपूर्ण हो जाती हैं। प्रोफेसर सेन महाराष्ट्र और अफ्रीका देश साहेल का उदाहरण देते हुए बताते हैं कि सन् 1970 के दशक में दोनों क्षेत्रों को सूखे का सामना करना पड़ा। खाद्यान्न की उपलब्धता महाराष्ट्र की अपेक्षा साहेल में दुगनी थी लेकिन मरने वालों की संख्या साहेल में ही ज्यादा थी, जबकि महाराष्ट्र में एक–दो लोगों की ही भूख से मरने की घटनाएँ सामने आयीं। कारण स्पष्ट था। महाराष्ट्र में ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों ने स्थानीय निवासियों की क्रय शक्ति बनाये रखी, जबकि साहेल ऐसी कोई कारगर व्यवस्था खड़ी नहीं कर पाया। प्रोफेसर सेन यह मानते हैं कि अकाल से बचने के लिए लोकतन्त्र सबसे अच्छी प्रणाली है क्योंकि विपक्ष और मीडिया के दबाव के कारण सरकार इस समस्या को हल करने के लिए बाध्य होती है, जबकि निरंकुश प्रणाली के सामने ऐसी कोई बाध्यता नहीं होती।

गरीबी उन्मूलन बहुत–कुछ सरकारी नीतियों पर निर्भर करता है। वे गरीबी के व्यापक निरक्षरता, निम्न स्तर की स्वास्थ्य व्यवस्था, अधूरे भूमि सुधारों, लिंग भेद, महिलाओं को अधिकारों से वंचित रखना और बच्चों को उपेक्षा के रूप में देखते हैं। डॉक्टर सेन ने सुझाव दिया है कि पश्चिमी देशों की तरह ही लोगों के हित के लिए एक सामाजिक व्यवस्था अपनायी जाये। विश्व अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण से लाभ उठाने और कमजारों की इससे रक्षा करने के लिए भिन्न देशों को 'सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था' की जरूरत है।

## 4. सामूहिक विकल्प और सामाजिक कल्याण

सन् 1970 में प्रोफेसर सेन की 'क्लेक्टिव चॉइस एण्ड सोशल वेलफेयर' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में प्रोफेसर सेन ने इस बात को प्रतिपादित किया है कि व्यक्ति एक–दूसरे के बारे में बेहतर जानकारी होने पर ही परस्पर बेहतर तालमेल रख पाते हैं और यह मात्र लोकतन्त्र में ही सम्भव है। इस पुस्तक में मुख्य जोर विकास और आय के वितरण पर दिया है। विकास या कल्याणकारी कार्यक्रमों के लाभ किन–किन तबकों तक किन–किन रूपों में पहुँचते हैं इसका मूल्यांकन सामाजिक विकल्प सिद्धान्त के द्वारा किया गया है। इसके लिए उन्होंने सामाजिक मूल्यों से लेकर शासन प्रणाली, व्यक्तिगत अधिकार आदि अनेक पहलुओं को एक साथ रखकर विचार किया है।

## 5. विषमता पर पुनर्विचार

प्रोफेसर सेन की हाल में ही एक पुस्तक प्रकाशित हुई है– 'इन इक्वलिटी रीज एक्जामिड'। इसमें उन्होंने 'सभी लोग जन्मजात समान हैं' का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। यह सिद्धान्त इस तथ्य से हमारा ध्यान हटा देता है कि हमारी लिंग, उम्र, प्रतिभा और शारीरिक क्षमताओं में अन्तर है तथा हमारी भौतिक लाभ की स्थितियों और सामाजिक पृष्ठभूमि में भी भिन्नताएँ हैं।

## 6. सेन निर्देशांक

किसी भी अर्थव्यवस्था में गरीबी के साथ–साथ विषमता का अध्ययन और उसका निराकरण आवश्यक है। इसके लिए विषमता की माप आवश्यक है और इसके लिए जरूरी है–एक उपयुक्त मापदण्ड। इस उपयुक्त मापदण्ड की ही चर्चा प्रोफेसर सेन ने सन् 1973 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'ऑन इकोनामिक इन क्वालिटी' में की है। प्रोफेसर सेन ने गरीबी निर्देशांक बनाने के लिए एक नया फार्मूला दिया जो गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों की आय में विषमता पर आधारित है। यह फार्मूला 'सेन निर्देशांक' (Sen IndeÛ) के नाम से जाना जाता है। यह निर्देशांक यू. एन. डी. पी. की मानव विकास की रिपोर्ट के लिए मानव विकास सूचकांक की गणना में सहायक है।

## 7.3 निष्कर्ष।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि प्रोफेसर सेन प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की श्रेणी में आते हैं और एडम स्मिथ, जे. एस. मिल व कार्ल मार्क्स की परम्परा को आगे बढ़ाते हैं। प्रोफेसर सेन आर्थिक सिद्धान्तों को दर्शन शास्त्र और नीतिशास्त्र के विचारों से मिलाकर प्रस्तुत करते हैं अतः इस अर्थ में वे अन्य प्रचलित अर्थशास्त्रियों से भिन्न हैं।

अन्त में, यद्यपि अमर्त्य सेन को जो नोबेल पुरस्कार मिला है, उस सम्मान को हम राष्ट्रीय गौरव का विषय मान रहे हैं। लेकिन दुःखद पहलू यह है कि गरीबी, अकाल, अशिक्षा, शिशु और स्त्री मृत्यु दरों को लेकर अमर्त्य सेन की जो चिन्ताएँ रही हैं, उनमें वास्तविक स्तर पर साझा नहीं कर पा रहे हैं, अर्थात् उन्हें कम करने के लिए सकारात्मक कदम की दिशा में सरकार की इच्छा शक्ति व दृढ़ संकल्प की कमी दिख रही है।

## 7.4 अभ्यास प्रश्न

1. अमर्त्यसेन के आर्थिक विचारों का वर्णन कीजिए।

## 7.5 संदर्भ सूची–


I. Gopalkrishana, P.K.- Development of Economic Ideas (1959).

II. Gregg, R- Gandhism Versus Socialism (1930).

III. Madan,G.R.-Economic Thinking in India (1966).

IV. Mudgal, B.S.- Political Economy in Ancient India.